UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186138

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—902—26-3-70—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 338.82 Accession No. G.H 3880

Author CAAE

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

एकाधिकारिक प्रतियोगिता
का
सिद्धान्त

THE THEORY OF
MONOPOLISTIC COMPETITION

[A Re-Orientation of the Theory of Value]

by

EDWARD HASTINGS CHAMBERLIN

Eighth Edition

ई. एच. चैम्बरलिन

★ एकाधिकारिक प्रतियोगिता का सिद्धान्त

E H. Chamberlin

The Theory Of Monopolistic Competition

रग्नार नर्क्स

★ अल्पविकसित देशों में पूँजी निर्माण की समस्याएँ

Ragnar Nurkse

Problems Of Capital Formation In Under-deve'oped Countries

जी. सी. एलन

★ जापान का संक्षिप्त आर्थिक इतिहास

G. C. Allen

A Short Economic History Of Modern Japan

आर्थर बर्नी

★ यूरोप का आर्थिक इतिहास

Arthur Birnie

An Economic History Of Europe

भारत सरकार शिक्षा मन्त्रालय द्वारा स्वीकृत

एकाधिकारिक प्रतियोगिता का सिद्धान्त

[मूल्य-सिद्धान्त का एक पुनरनुस्थापन]

लेखक

ऐडवर्ड हेस्टिंग्ज चैम्बरलिन

अनुवादक

सुरेश चन्द्र पन्त

कैपिटल बुक हाउस

26-यू. बी, जवाहर नगर, दिल्ली-7

ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, बम्बई
द्वारा प्रबन्धित

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय (शिक्षा मन्त्रालय) द्वारा
प्रकाशकों के सहयोग से कार्यान्वित योजना के
अन्तर्गत प्रकाशित

वितरक :
कैपिटल बुक डिपो
नई सड़क, दिल्ली-6

प्रकाशक :
आर. एस. वर्मा
कैपिटल बुक हाउस
26-यू. बी., जवाहर नगर
दिल्ली-7

मुद्रक :
इण्डिया प्रिंटर्ज
एस्प्लेनेड रोड
दिल्ली-6

दो शब्द

हिन्दी के विकास और प्रसार के लिए शिक्षा मन्त्रालय के तत्वावधान में पुस्तकों के प्रकाशन की विभिन्न योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही हैं। हिन्दी में अभी तक ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में पर्याप्त साहित्य उपलब्ध नहीं है, इसलिए ऐसे साहित्य के प्रकाशन को विशेष प्रोत्साहन दिया जा रहा है। यह तो आवश्यक है ही कि ऐसी पुस्तकें उच्च कोटि की हों किन्तु यह भी जरूरी है कि वे अधिक मंहगी न हों ताकि सामान्य हिन्दी पाठक उन्हे खरीद कर पढ़ सकें। इन उद्देश्यों को सामने रखते हुए जो योजनाएँ बनाई गई हैं, उनमें से एक योजना प्रकाशकों के सहयोग से पुस्तकें प्रकाशित करने की है। इस योजना के अधीन भारत सरकार प्रकाशकों को या तो वित्तीय सहायता प्रदान करती है अथवा निश्चित सख्या मे प्रकाशित पुस्तकों की प्रतियां खरीद कर उन्हें मदद पहुँचाती है ।

प्रस्तुत पुस्तक इसी योजना के अन्तर्गत प्रकाशित की जा रही है। इसके अनुवाद और कापीराइट इत्यादि की व्यवस्था प्रकाशक ने स्वयं की है तथा इसमें शिक्षा मन्त्रालय द्वारा निर्मित शब्दावली का उपयोग किया गया है।

हमें विश्वास है कि प्रकाशकों के सहयोग से प्रकाशित साहित्य हिन्दी को समृद्ध बनाने में सहायक सिद्ध होगा और साथ ही इसके द्वारा ज्ञान-विज्ञान से सम्बन्धित अधिकाधिक पुस्तकें हिन्दी के पाठकों को उपलब्ध हो सकेंगी।

आशा है, यह योजना सभी क्षेत्रो में लोकप्रिय होगी।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय
शिक्षा मन्त्रालय

ए. चंद्रहासन

निदेशक

अनुवादक का प्राक्कथन

अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों को प्रोफेसर चैम्बरलिन की पुस्तक का परिचय देने की आवश्यकता नही है। यह मेरा सौभाग्य है कि इस महान कृति का अनुवाद करने का अवसर मुझे मिला।

मै श्री महेशचन्द्र, रीडर, अर्थशास्त्र विभाग, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, का आभारी हू जिन्होने अनुवाद के परिष्कार और परिमार्जन के लिए अपना अमूल्य समय दिया और अथक परिश्रम किया।

अर्थशास्त्र विभाग
इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

सुरेश चन्द्र पन्त

आठवें (अंग्रेजी) संस्करण की भूमिका

इस पुस्तक के आठवें (और निश्चित रूप से अन्तिम) संस्करण में तीन नये परिशिष्ट—'छ' : विक्रय लागत की परिभाषा; 'ज' : संख्या और लोच; और 'झ' : एकाधिकारिक प्रतियोगिता सिद्धान्त की उत्पत्ति और प्रारम्भिक विकास,—सम्मिलित किए गए है । प्रत्येक संस्करण में ग्रन्थ-सूची मे प्रसार करने की प्रथा को बद कर दिया गया है । उसकी वृद्धि की वर्हिविष्ट दर (देखिए पहले संस्करण की भूमिका) ऐसी थी कि उसे 1956 से आगे ले जाने के बारे में सोचना तक कठिन था ।

विक्रय लागत की परिभाषा पर परिशिष्ट 'छ' पहली बार प्रकाशित हुआ है । परन्तु पुराने विद्यार्थियों को अध्याय 6 मे परिवर्तन की आवश्यकता की पुरानी स्वीकृति और सेमिनारों मे, जिनमें उन्होंने भाग लिया था, सन्निहित वाद-विषयों पर कई वर्षो तक हुए वाद-विवाद की याद आएगी ।

संख्या और लोचो पर परिशिष्ट 'ज' *Festskrift til Frederik Zeuthen* कोपनहेगन, 1958, की अनुमति से पुनर्मुद्रित किया गया है । इसमें इस सामान्यतया स्वीकृत प्रस्थापना पर विचार किया गया है कि बाजार में विक्रेताओं की सख्या जितनी ही अधिक होगी, प्रत्येक विक्रेता के उत्पाद की माग की लोच उतनी ही अधिक होगी; और इस निष्कर्ष (आगे पृ. 198) का कि विशिष्टकृत उत्पाद के लिए सामान्यीकरण सभव नही है, और विकास किया गया है और यह दिखाया गया है कि एकरूप उत्पाद के लिए भी यह प्रस्थापना केवल कुछ विशेष कल्पनाओं के अन्तर्गत सच है ।

एकाधिकारिक प्रतियोगिता सिद्धान्त की उत्पत्ति और प्रारम्भिक विकास पर परिशिष्ट 'झ' नवम्बर 1961 के *Quarterly Journal of Economics* से पुनर्मुद्रित किया गया है । अपने स्वभाव से इसे पुस्तक के "प्राक्कथन" के रूप मे प्रकाशित होना चाहिए था, न कि अन्तिम परिशिष्ट के रूप मे । इससे भी अधिक, उसे 1933 में लिखा जाना चाहिए था, न कि 1961 मे । परन्तु दुर्भाग्य से (उसके दूसरे पैरा का निर्देश करते हुए) पहले मुझे "अनुवर्ती विकासो" का कोई अनुमान नही था । इस लेख की प्रतिक्रिया मे कई पत्र निकले है, परन्तु मुझे यह देखकर विशेष सतोष हुआ कि ऐसे कई लोग थे जिन्हे उसमे न केवल "बौद्धिक इतिहास" का एक दिलचस्प अश मिला (जो किसी भी समय लिखा जा सकता था), बल्कि जिन्होने उसमें विषय की व्याख्या के प्रति अशदान भी पाया । इन्होने स्पष्ट रूप से कहा है कि यह "कितने खेद की बात" रही कि वह कई वर्ष पहले नही लिखा गया ।

नयी सामग्री की अनुक्रमणिका कुमारी करेन पोलेन्स्के ने बनाई है, जिन्होने साथ-साथ सम्पूर्ण अनुक्रमणिका पर कार्य किया और उसमे बहुत सुधार किए ।

कैम्ब्रिज, मैसेच्युसैट्स
जून, 1962

ऐ. हे. चै.

सातवें (अंग्रेजी) संस्करण की भूमिका

सातवें संस्करण में किया गया मुख्य परिवर्तन ग्रन्थ-सूची में एक नये परिशिष्ट का जोड़ा जाना है। इस परिशिष्ट में मई 1948 से मई 1956 तक की सामग्री है, और उसे नवम्बर 1956 के *Quarterly Journal of Economics* से पुनर्मुद्रित किया गया है। इसके पहले के परिशिष्ट में, जो सात वर्ष की अवधि में प्रकाशित सामग्री को सम्मिलित करता था, केवल 234 रचनाएं थीं, और जब इस सूची को 1956 तक पूरा करने का निर्णय लिया गया तो लगभग इसी परिमाण की आशंसा थी। लेकिन इन आठ वर्षों में, "संक्षिप्तता" की खातिर कई रचनाओं को छोड़ देने पर भी, 806 शीर्षक मिले, जो 1948 से पहले की सम्पूर्ण अवधि में प्रकाशित रचनाओं से अधिक हैं। अब उनका कुल योग 1497 हो गया है। (जो लेखादि छोड़ दिए गए हैं उनके बारे में यह बता दिया जाना चाहिए कि प्राप्त पुनर्मुद्रणों या अन्य के द्वारा बताए गए कुछ लेखों को छोड़कर लेखादि की खोज हार्वर्ड यूनिवर्सिटी पुस्तकालय तक सीमित रखी गई।) सम्पूर्ण ग्रन्थ-सूची में किसी व्यक्ति-विशेष के लेखादि के पाने के लिए अब तीन स्थानों में देखना आवश्यक है, क्योंकि पहले के लेखादि के क्रम को अस्त-व्यस्त न करने के लिए प्रत्येक परिशिष्ट को क्रमवार अलग-अलग रखा गया है।

इस सातवें संस्करण में मैं पहले संस्करण की भूमिका में दिए गए कथन को स्मरण करना चाहूंगा कि "यह पुस्तक एक विशेष और संकीर्ण समस्या पर नही बल्कि सम्पूर्ण मूल्य-सिद्धान्त पर विचार करती है।"[1] अपनी हाल की रचनाओं में मैं, विभिन्न "व्यावहारिक" क्षेत्रों से उसकी सुसंगति के संबध में और अल्प बनाम दीर्घ काल, आंशिक बनाम सामान्य सन्तुलन, स्थैतिक बनाम गत्यात्मक वाद-विषयों पर उसकी "तटस्थता" के संबध मे, सामान्य सिद्धान्त के रूप में एकाधिकारिक प्रतियोगिता की भूमिका पर बल देता रहा हूं। मेरा यह दृढ विश्वास है कि इस सस्करण में ग्रन्थ-सूची में किया गया प्रसार इसका महत्वपूर्ण साक्ष्य देता है कि उसे ऐसे सिद्धान्त के रूप में मान्यता दिए जाने की दिशा मे कुछ प्रगति हो रही है।

कैम्ब्रिज, मैसेच्युसैट्स
मई, 1956

ऐ. हे. चै.

---

[1] सिद्धान्त के इस सामान्य स्वरूप का विकास *'Towards a more General Theory of Value'* में इसी शीर्षक के पहले लेख में विस्तारपूर्वक किया गया है।

छठे (अंग्रेजी) संस्करण की भूमिका से

पहले संस्करण के बाद के संस्करणों और आवृत्तियों में असंख्य सुधार और अल्प-परिवर्तन किए गए, जिनका उल्लेख करना कठिन है। दूसरे संस्करण में ग्रन्थ-सूची जोड़ी गई, और तीसरे संस्करण में उसमें अनुपूर्ति की गई। चौथे संस्करण में वह दुगुने से अधिक हो गई और उसे एक ही सूची में एकीकृत किया गया। छठे संस्करण में उसमें एक नया परिशिष्ट जोड़ा गया, जिसमें मई 1948 तक की रचनाएं है। चौथे संस्करण में सम्मिलित की गई रचनाओं का अधिकांश (परन्तु पूरा नहीं) नवम्बर 1941 के *Quarterly Journal of Economics* में "A Supplementary Bibliography on Monopolistic Competition" शीर्षक से छपा था। इसे तैयार करने में मुझे डॉ. रॉबर्ट ट्रिफिन से महत्वपूर्ण सहायता मिली और कमेटी ऑन रिसर्च इन द' सोशल साइन्सेज, हार्वर्ड, से आर्थिक महायता मिली। छठे संस्करण में सम्मिलित की गई रचनाएं अगस्त 1948 के *Quarterly Journal of Economics* में प्रकाशित हुई थीं। तीसरे संस्करण से, 1933 में लिखा गया लेख, "Monopolistic Competition and the Productivity Theory of Distribution," अध्याय 8 के रूप में जोड़ा गया। यह लेख अपने वर्तमान रूप में *Explorations in Economics* में छपा था, और इस पुस्तक के प्रकाशक मैक्ग्र हिल बुक कंपनी की सौजन्यता से यहा पुनर्मुद्रित किया गया है।

पांचवें संस्करण में "एकाधिकारिक और 'अपूर्ण' प्रतियोगिता में भेद" शीर्षक एक और अध्याय जोड़ा गया। यह अध्याय अगस्त 1937 के *Quarterly Journal of Economics* में प्रकाशित लेख, "Monopolistic or Imperfect Competition ?" का संशोधित रूप है।

छठे सस्करण मे ग्रन्थ-सूची के एक और परिशिष्ट का उल्लेख किया जा चुका है, और असंख्य अल्प परिवर्तन किए गए है। फर्म के लागत वक्र का एक नया विश्लेषण भी प्रकाशित किया गया है, जो पहले के परिशिष्ट 'ख' का स्थान लेता है। पहले के प्रतिपादन की केन्द्रीय थीसिस वही थी, जो इस नये प्रतिपादन की है : कि "अनुपात की और आकार की समस्याओं को साधारणतया पृथक् नहीं किया जा सकता... दक्षतम अनुपात आकार पर निर्भर करता है।" यह एक ऐसा निष्कर्ष है जो प्रचलित मत के संलक्ष्य रूप से विसंगत है। परन्तु उसे अंशतः एक अन्य आमतौर पर स्वीकृत प्रस्थापना के द्वारा बनाए रखा गया था, जो यह है कि कारकों की पूर्ण विभाज्यता की कल्पना पैमाने की किफायतों को लुप्त कर देती है। दूसरी प्रस्थापना कई वर्षों से

मेरे शिक्षण के विसंगत थी और अब उसका स्पष्टतया खंडन किया जा रहा है। प्रस्तुत परिशिष्ट 'ख' इस तथा बहुत से अन्य विषयों पर विचार करता है। यह फरवरी 1948 में *Quarterly Journal of Economics* में छपे लेख "Productivity, Divisibility and Economies of Scale" का (मामूली परिवर्तनों के साथ) पुनर्मुद्रण है।

कैम्ब्रिज, मैसेच्युसैट्स
मई, 1948

ऐ. हे. चै.

पहले (अंग्रेजी) संस्करण की भूमिका

इस पुस्तक का नाम भ्रमोत्पादक हो सकता है, क्योंकि मैंने "एकाधिकारिक प्रतियोगिता" वाक्यांश को अन्य लेखकों द्वारा दिए गए अर्थ से किंचित् भिन्न अर्थ दिया है।[1] प्रोफेसर यंग ने एक बार "अपूर्ण प्रतियोगिता का सिद्धान्त" सुझाया था, और यह विषय के क्षेत्र का निकट से वर्णन करता है, यद्यपि इसे अशुद्ध मानकर छोड़ दिया गया। यह पुस्तक एक विशेष और संकीर्ण समस्या पर नही बल्कि सम्पूर्ण मूल्य-सिद्धान्त पर विचार करती है। इसकी थीसिस यह है कि अधिकांश कीमतों के निर्धारण में एकाधिकारिक और प्रतियोगितामूलक, दोनों प्रकार की, शक्तियां संयुक्त होती है, और इसलिए यह कि कीमत प्रणाली के अध्ययन में, एकाधिकार के सिद्धान्त से संपूरित पूर्ण प्रतियोगिता के सिद्धान्त की अपेक्षा, एक संकर सिद्धान्त अधिक प्रबुद्धकारी है। इससे जो वैश्लेषिक तकनीक निकलती है वह, प्रतियोगिता के और एकाधिकार के सुपरिचित सिद्धान्तों की तकनीकों से और उनके बीच किसी सरल मध्यमार्ग से, विशिष्ट है। शुद्ध प्रतियोगिता के निष्कर्षों से इसके निष्कर्षो की तुलना दिखाती है कि आर्थिक सिद्धान्त बहुधा परोक्ष और अवास्तविक होते है—इसलिए नहीं कि रीति गलत है, बल्कि इसलिए क्योंकि अन्तर्निहित कल्पनाएं उतने घनिष्ठ रूप से तथ्यों के अनुरूप नही होती जितनी वे हो सकती है।

यह अध्ययन 1 अप्रैल 1927 के दिन हार्वर्ड यूनिवर्सिटी में डॉक्टर की थीसिस के रूप मे विचारार्थ उपस्थित किया गया था और इसके दो वर्ष पहले इसकी रूप-रेखा बनी थी।[2] तब से इसे फिर से पूर्णतया लिखा गया है। अध्याय 3 जिस रूप में वह अब है लगभग उसी रूप में नवम्बर 1929 के *Quarterly Journal of Economics* में प्रकाशित हुआ था।

संशोधन करने मे समस्या के विषय-क्षेत्र को अधिक कठोरता से परिभाषित किया गया है और अधिक एकता और तार्किक सुसगति प्राप्त करने के लिए तर्क का आद्योपान्त अनुकूलन किया गया है। जो सिद्धान्त के मुख्य निष्कर्षो के लिए अप्रासंगिक था उसका अधिकांश हटा दिया गया है, कमिया पूरी कर दी गई है और समस्या की विभिन्न अवस्थाओं की ओर उपगमन की रीतिया एक-दूसरे के अनुरूप बना दी गई है। कभी-कभी निष्कर्षों में अल्प-परिवर्तन किए है, परन्तु कुल मिलाकर जिस रूप में तर्क अब प्रकाशित हुआ है वह (मै आशा करता हूं कि) 1927 मे प्रस्तुत की गई और हार्वर्ड यूनिवर्सिटी पुस्तकालय में रखी हुई थीसिस का केवल अधिक युक्तियुक्त प्रतिपादन है।

[1] प्रोफेसर पिगु ने, विशेष रूप से, इस पद का प्रयोग अल्पाधिकार का वर्णन करने मे किया है, जो इस पुस्तक मे समस्या का केवल एक भाग माना गया है।

[2] अधिक सम्पूर्ण विवरण के लिए, देखिए परिशिष्ट 'भ'।

मैं प्रोफेसर ऐफ. डब्लू. टॉसिग और प्रोफेसर जे. ए. शुम्पीटर के प्रति सलाह और सुझावों के लिए, प्रोफेसर ई. ऐस. मेसन और डॉ. ए. ई. मोन्रो के प्रति पांडुलिपि पढ़ने और उसकी आलोचना करने के लिए, प्रोफेसर डब्लू. सी. ग्रोस्टाइन और प्रोफेसर डब्लू. ऐल. क्रम के प्रति परिशिष्ट 'क' के संबंध में सलाह के लिए, और डॉ. डी. व्ही. ब्राउन और डॉ. ओ. ऐच. टेलर के प्रति अध्याय 6 को फिर से लिखने में मिले सहायक सुझावों के लिए, कृतज्ञता प्रकट करता हूं। परन्तु सबसे अधिक मैं स्वर्गीय प्रोफेसर यंग का आभारी हूं, जिनके निर्देशन में यह अध्ययन डॉक्टर की थीसिस के रूप में पहली बार लिखा गया। उन्होंने इस योजना में, जैसे-जैसे वह विकसित हुई, सक्रिय दिलचस्पी लेकर मुझे प्रोत्साहन दिया और इस सिद्धान्त में जो तर्कसंगति और सुस्पष्टता है उसमें उनकी सहृदय और प्रखर आलोचनाओं ने बहुत अंशदान किया है।

कैम्ब्रिज, मैसेच्युसैट्स
अक्तूबर, 1932

ऐ. हे. चै.

विषय-सूची

1. विषय-प्रवेश ... 1
2. शुद्ध प्रतियोगिता में मूल्य ... 8
    1. मांग और पूर्ति के समीकरण और सन्तुलन में भेद ... 8
    2. शुद्ध प्रतियोगिता में विक्रेता ... 12
    3. लागत वक्र और उत्पादन का पैमाना ... 15
    सन्तुलन से विचलन पर टिप्पणी ... 19
3. द्वयधिकार और अल्पाधिकार ... 24
    1. समस्या का वर्णन ... 24
    2. वह स्थिति जिसमें पारस्परिक आश्रितता की उपेक्षा की गई है : प्रत्येक विक्रेता अपने प्रतिद्वन्द्वी की पूर्ति स्थिर मानता है ... 26
    3. वह स्थिति जिसमें पारस्परिक आश्रितता की उपेक्षा की गई है : प्रत्येक विक्रेता अपने प्रतिद्वन्द्वी की कीमत स्थिर मानता है ... 28
    4. वह स्थिति जिसमे पारस्परिक आश्रितता स्वीकार की जाती है ... 37
    5. संशय का प्रभाव ... 40
    6. साराश ... 42
4. उत्पाद का विशिष्टीकरण ... 44
    1. विशिष्टीकरण का अर्थ ... 44
    2. पेटेन्ट और व्यापार-चिह्न ... 45
    3. पूर्णत: एकाधिकारिक जैसी आर्थिक पद्धति ... 51
    4. एकाधिकारिक प्रतियोगिता ... 54
5. उत्पाद विशिष्टीकरण और मूल्य-सिद्धान्त ... 56
    1. विषय-प्रवेश ... 56
    2. वैयक्तिक सन्तुलन ... 59
    3. समूह-सन्तुलन ... 64
    4. छोटा समूह : अल्पाधिकार एवं उत्पाद विशिष्टीकरण ... 80
    5. अतिरिक्त क्षमता के साथ सन्तुलन ... 84
    6. प्रत्येक उत्पादक की परिवेशी दशाओं की विविधता ... 88
    7. शुद्ध प्रतियोगिता और एकाधिकारिक प्रतियोगिता की तुलना ... 92

6. विक्रय लागत बनाम उत्पादन लागत ... 95
1. विक्रय लागत मांग को कैसे प्रभावित करती है ... 95
2. विक्रय लागत और उत्पादन लागत में भेद ... 100
3. उक्त भेद की सार्थकता ... 102
7. विक्रय लागत और मूल्य का सिद्धान्त ... 106
1. विक्रय लागत का वक्र ... 106
2. वैयक्तिक सन्तुलन ... 114
3. समूह-सन्तुलन ... 122
4. छोटा समूह और विक्रय लागत ... 139
5. विक्रय लागत और अतिरिक्त उत्पादन क्षमता ... 140
6. प्रत्येक उत्पादक की परिवेशी दशाओं की विविधता ... 141
7. निष्कर्ष ... 142
8. एकाधिकारिक प्रतियोगिता और वितरण का उत्पादिता सिद्धान्त ... 146
9. एकाधिकारिक और अपूर्ण प्रतियोगिता में भेद ... 157
1. कुछ व्यापक मिथ्या धारणाएं ... 157
2. एकाधिकारिक और अपूर्ण प्रतियोगिता में भेद ... 165
परिशिष्ट ... 177
क. द्वयधिकार और अल्पाधिकार के गणितीय सिद्धान्त ... 179
ख. एक उत्पादक का लागत वक्र ... 188
ग. शुद्ध क्षेत्रीय प्रतियोगिता ... 215
घ. एकाधिकार आय के रूप में नगरीय भाटक ... 221
च. व्यापार-चिह्न अतिलघन और "अनुचित" व्यापार के पक्ष में तर्क ... 226
छ. विक्रय लागत की परिभाषा ... 231
ज. विक्रेताओं की संख्या और लोचें ... 238
झ. एकाधिकारिक प्रतियोगिता सिद्धान्त की उत्पत्ति और उसका प्रारंभिक विकास ... 248
तलटीप ... 273
शब्दानुक्रमणिका ... 339
अनुक्रमणिका ... 347

एकाधिकारिक प्रतियोगिता
का
सिद्धान्त

अध्याय 1

विषय-प्रवेश

अर्थशास्त्र के साहित्य में प्रतियोगिता और एकाधिकार के विचारों का विचित्र सम्मिश्रण—भ्रान्ति और पृथक्करण का—पाया जाता है। एक ओर तो, विश्लेषण ने इनके भेदों को प्रकट किया है जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक के लिए एक पृथक् सिद्धान्त का निष्पादन और परिष्कार किया गया है। यद्यपि ये दो शक्तियाँ कीमत-प्रणाली में सर्वत्र जटिल रूप से आपस में बुनी हुई है और अनेक प्रकार के डिज़ाइन बनाती हैं, परन्तु इस बुनाई को उधेड़कर नये सिरे से दो बुनाइयों में बुना गया है, जिनमें से प्रत्येक मूल बुनाई से अधिक सरल है, और उसमे केवल आंशिक सादृश्य रखती है। इसके अतिरिक्त, मुख्यतया यह कल्पना कर ली गई है कि कीमत-प्रणाली इसी प्रकार की है—कि जिन घटनाओं की व्याख्या करनी है वे **या तो** प्रतियोगितामूलक है **या** एकाधिकारमूलक और इसलिए यह कि दो परिशोधित और चरम प्रकार के सिद्धान्तों की तरकीब यथेष्ट है।

दूसरी ओर, वास्तविक जीवन में प्रतियोगिता और एकाधिकार की मिलावट के तथ्य इनके बीच उस सिद्धान्ततः पूर्ण भेद के विरुद्ध सूक्ष्मता से कार्य करते रहे हैं जो इनमें से किसी को भी स्पष्ट रूप से समझने के लिए आवश्यक है। क्योंकि यह कल्पना कर ली गई है कि **वास्तविक** प्रतियोगिता (जो शायद ही कभी एकाधिकार तत्वों से मुक्त होती है) की व्याख्या शुद्ध प्रतियोगिता के सिद्धान्त से हो जाती है, इसलिए वे सुपरिचित परिणाम जिनका कारण वास्तव में एकाधिकारिक शक्तियों को बताया जाना चाहिए, एक ऐसे सिद्धान्त के साथ निस्संकोच सम्बद्ध कर दिए जाते है जो उन्हें अस्वीकार (नकारता) करता है। जिन तथ्यों के बारे में प्रतियोगिता का सिद्धान्त ठीक नही उतरता, उनके साथ उसे सम्बद्ध करने के परिणामस्वरूप न केवल ग़लत (मिथ्या) निष्कर्ष निकाले गए है, बल्कि सिद्धान्त भी अस्पष्ट हो गया है। ऐसा करना और अधिक चिन्ताजनक (गभीर) है, क्योंकि इन दो शक्तियों का मिश्रण एक रासायनिक प्रक्रिया जैसा है, केवल संकलन का मामला नही है। एकाधिकार के स्वल्प तत्व भी तर्क करने में ऐसा जाल रच देते है कि परिणाम उनके आभासी महत्व की तुलना में बिल्कुल भिन्न होते हैं।

उदाहरण के लिए "द्वयधिकार" की समस्या को लें, जो केवल दो प्रतियोगी विक्रेताओं के होने पर कीमत-निर्धारण की समस्या है। इस समस्या का समाधान करने में कूर्नो और ऍजवर्थ ने यद्यपि गणितीय रीतियों की सूक्ष्मता का उपयोग किया था, फिर भी वे पूर्णतया भिन्न हलों पर पहुंचे। कूर्नो के अनुसार कीमत निर्धार्य

(determinate) है और एकाधिकार कीमत और पूर्ण प्रतियोगिता कीमत (जहाँ विक्रेताओं की संख्या अनन्त है) के बीच कही होगी, एँजवर्थ के अनुसार कीमत अनिर्धार्य (indeterminate) है और इन दो चरम मानों के बीच निरन्तर डोलती है। इस अन्तर की व्याख्या इस तथ्य के द्वारा अशत: की जा सकती है[1] कि जिस स्थिति पर एँजवर्थ ने विचार किया है उसे हल करने मे मान लिया गया है कि, विक्रेताओं की अल्पता के अलावा, प्रतियोगिता शुद्ध है, जब कि वास्तव मे वह कुछ अन्य एकाधिकार तत्वो को अन्तर्विष्ट करती है जो परिणाम को प्रभावित करते है।

एक अन्य दृष्टान्त के रूप मे हम जे. ऐम क्लार्क का विरोधाभासी तर्क ले सकते हैं। बाज़ार का विश्लेषण करने मे वे कहते है कि "यदि कीमत मे कोई कटौती होने पर सब विक्रेता उसका तत्क्षण अनुसरण करें तो प्रत्येक को उत्पादन मे हुई परिणामी वृद्धि मे से अपना यथांश (कोटा) मिल जाएगा और किसी विक्रेता के व्यवसाय मे होने वाली आनुपातिक वृद्धि उस वृद्धि से अधिक नही होगी जो एक एकाधिकारी के व्यवसाय में उतनी ही कटौती करने पर होती। इस प्रकार कीमत मे प्रतियोगितात्मक कटौती ठीक वही पर स्वभावत: रुक जाएगी, जहाँ प्रतियोगिता न होने पर रुकती।"[2] इससे ऐसा प्रतीत होगा कि पूर्ण प्रतियोगिता की दशा मे वही कीमत होती है जो पूर्ण एकाधिकार की दशा में।[3] उनका यह निष्कर्ष कि प्रत्येक उत्पादक को प्राप्त "सीमित एकाधिकार" (qualified monopoly) ही बाजार को वास्तव में प्रतियोगितामूलक बनाता है, और वही तदनुसार कीमत मे कटौती करने देता है, इस विषय को और अधिक उलझा देता है। इसी विषय पर किंचित् भिन्न दृष्टिकोण से विचार करते हुए प्रोफेसर नाइट कहते है कि "ऐसा अवश्य प्रतीत होता है कि सिद्धान्ततः पूर्ण प्रतियोगिता के विचार में आखिरकार कुछ हेगेलीय स्वतोव्याघात (Hegelian self-contradiction) है।"[4] लेकिन ये व्याघात और विरोधाभास (paradox) इसलिए उत्पन्न होते है, क्योंकि पूर्ण मानी गई प्रतियोगिता वास्तव में अपूर्ण होती है। कीमत-सिद्धान्त के निरूपण मे पहला कदम प्रतियोगिता और एकाधिकार की दो मूलभूत शक्तियों की स्पष्ट परिभाषा करना, और प्रत्येक को दूसरे से अलग करके उसकी परीक्षा करना, अवश्य होना चाहिए।

दूसरा क़दम इन दोनो का सश्लेषण (synthesis) करना अवश्य होना चाहिए। इस प्रकार हम अपने पुराने कथन पर आ जाते है कि कीमत सिद्धान्तों मे, एक मध्य-मार्ग को (सचेत रूप से) पहचाने बिना, मुख्यतया दो चरम स्थितियों का अध्ययन किया गया है। परिमाण की दृष्टि से प्रतियोगितामूलक सिद्धान्त छाया रहा है—वस्तुत:, कीमत-प्रणाली की अन्तर्निहित व्याख्या के रूप में प्रतियोगिता के सिद्धान्त को इतनी व्यापक स्वीकृति मिली है कि जब तक उसे अनुपयुक्त सिद्ध न कर दिया जाए उसे उपयुक्त मानना चाहिए; उसकी अक्षमता सिद्ध करना अभी शेष है। ऐसा नहीं है कि एकाधिकार तत्वों की सर्वव्यापकता और मध्यवर्ती सिद्धान्त की सम्भावना के बारे में किसी ने कुछ न कहा हो। इस प्रकार प्रोफेसर नाइट कहते हैं कि "इस

तथ्य को देखते हुए कि लगभग प्रत्येक व्यवसाय आंशिक रूप से एकाधिकार है, यह उल्लेख्य है कि अर्थशास्त्र के सैद्धान्तिक प्रतिपादन में इतने अनन्य रूप से पूर्ण प्रतियोगिता और पूर्ण एकाधिकार का वर्णन हुआ है।"[5] और व्हॅब्लॅन कहते है कि "····इसमें बहुत सन्देह है कि आधुनिक उद्योगों के क्षेत्र मे ऐसे सफल व्यावसायिक उद्यम हो जिनमें एकाधिकार तत्वों का पूर्ण अभाव हो ।"[6] ऐसी उक्तियों को ढूंढ निकालना कठिन नही है, जिनमे इस समस्या को अंशतः पहचाना गया है ।[7] फिर भी द्वयधिकार के अपवाद को छोड़कर, प्रतियोगिता और एकाधिकार के मध्यवर्ती क्षेत्र की छानबीन वस्तुतः किसी ने नही की और इस प्रकार के सिद्धान्त के अनुप्रयोग (application) की संभावनाओ की उपेक्षा हुई है ।[8]

"शुद्ध प्रतियोगिता" के विचार (idea) का उपयोग करके हम समस्या को नया मोड देते है । एकाधिकार तत्वों से अमिश्रित प्रतियोगिता का वर्णन करने के लिए यहाँ विशेषण "शुद्ध" का जानबूझकर प्रयोग किया गया है । शुद्ध प्रतियोगिता का प्रत्यय (concept) "पूर्ण" प्रतियोगिता के प्रत्यय की अपेक्षा कही अधिक सरल और कम समावेशी (inclusive) है, क्योकि पूर्ण प्रतियोगिता का प्रयोग न केवल एकाधिकार का अभाव बताने के लिए बल्कि अन्य प्रकार की पूर्णता के बारे में भी किया जा सकता है । उदाहरण के लिए, पूर्ण प्रतियोगिता का तात्पर्य कारकों की आदर्श सुप्रवाहिता या गतिशीलता के अर्थ मे निर्घर्ष (friction) का अभाव हो सकता है, जिससे परिवर्तनशील दशाओ के साथ समायोजन, जो वास्तव में समय लेता है, सिद्धान्त मे तत्क्षण पूरा हो जाता है । उसका तात्पर्य भविष्य का पूर्ण ज्ञान और फलस्वरूप सशय (uncertainty) का अभाव भी हो सकता है ।[9] उसके अन्तर्गत ऐसी अन्य "पूर्णताओं" का भी समावेश किया जा सकता है जिन्हें कोई सिद्धान्तकार अपनी समस्या के लिए सुविधाजनक और उपयोगी समझता है । शुद्ध और पूर्ण प्रतियोगिता के भेद को स्पष्ट रूप से दिखाने के लिए दो दृष्टान्त पर्याप्त होंगे । गेहूँ की वास्तविक कीमत उसकी सामान्य कीमत से काफ़ी भिन्न होती है, फिर भी गेहूँ के उत्पादक किसी किसान के पास एकाधिकार शक्ति का लेश तक नही होता । यद्यपि बाजार बहुत अपूर्ण है, तिस पर भी वहाँ शुद्ध प्रतियोगिता है ।[10] दूसरी ओर, अन्य दृष्टियों से "पूर्ण" या 'आदर्श" दशाओ में भी एकाधिकार मिल सकता है। जे. बी. क्लार्क ने स्थैतिक अवस्था (static state) और पूर्ण प्रतियोगिता को समानार्थी समझकर गलती की है । कोई कारण नही है कि किसी ऐसी अवस्था में जहाँ जनसंख्या, पूजी-संभरण, टैक्नोलौजी, संगठन और आवश्यकताओं से सम्बन्धित दशाएं अपरिवर्तित बनी रहती है, वहां सब प्रकार के और सब कोटियों के (मात्राओं में) एकाधिकार क्यों न हों । "शुद्ध" और "पूर्ण" प्रतियोगिता को एकसम (identical) नही समझना चाहिए, और एकाधिकारिक प्रतियोगिता (monopolistic competition) के सिद्धान्त को अस्पष्ट रूप से "अपूर्ण" प्रतियोगिता का सिद्धान्त समझना विचार्य विषय (issue) को उलझा देना है ।

एकाधिकार का अर्थ साधारणतया पूर्ति पर, और इसलिए कीमत पर, नियंत्रण होता है। इससे शुद्ध प्रतियोगिता की एकमात्र पूर्वापेक्षा (pre-requisite) मिलती है—कि किसी का भी किसी भी मात्रा में ऐसा नियंत्रण न हो।[11] इसका दो अवस्थाओं में विश्लेषण किया जा सकता है। प्रथम, क्रेताओं और विक्रेताओं की संख्या बहुत बड़ी होनी चाहिए, ताकि किसी एक का या अनेक के सम्मिलन का प्रभाव नगण्य हो। यह आवश्यक नही है कि उनकी संख्याएं अनन्त हों (यद्यपि कुछ प्रयोजनों के लिए उनकी संख्याओं को अनन्त मान लेना सर्वथा उचित और आवश्यक है), परन्तु वे इतनी बडी अवश्य हों कि किसी एक व्यक्ति का कीमत पर वास्तव में किंचित् प्रभाव होने पर भी वह उसका प्रयोग न करे, क्योंकि ऐसा करना उसके लिए विशेष लाभदायक नही है। यदि कोई विक्रेता यह मानकर उत्पादन करे कि उसकी सम्पूर्ण उत्पत्ति चालू या बाजार कीमत पर बेची जा सकती है, और वह उत्पत्ति में का कोई भाग न रोके तो जहाँ तक संख्या का सम्बन्ध है, शुद्ध प्रतियोगिता है। इससे कोई फ़र्क नही पडता कि वह वास्तव में किस कीमत पर बेचता है और वह वास्तव में कितना प्रभाव डालता है।

दूसरे, कीमत पर नियंत्रण तभी पूरी तरह से लुप्त होता है जब सब उत्पादक एकसम माल का उत्पादन कर रहे हों और उसे एक ही बाज़ार में बेच रहे हो। माल का पूर्णतया एकरूप (homogeneous) या मानकित (standardised) होना आवश्वयक है, क्योंकि यदि किसी विक्रेता का उत्पाद अन्य के उत्पादो से किंचित् भिन्न हुआ तो उसका अपने प्रकार (variety) की कीमत पर कुछ न कुछ नियंत्रण रहता है, जब कि शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत उसका नियंत्रण किसी चीज की कीमत पर नही हो सकता। यदि उसका उत्पाद अन्य के उत्पादों से किंचित् भिन्न है तो उत्पादक के लिए यह मानकर चलना भूल होगी कि वह चालू कीमत पर उत्पाद की किसी भी राशि को बेच सकता है, क्योंकि हो सकता है कि क्रेता अन्य प्रकारों को पसन्द करें और उसके प्रकार की बृहत्तर राशियों को कीमत के कम किए जाने पर या विज्ञापन द्वारा प्रेरित किए जाने पर ही खरीदें (साधारण व्यवसायी अपने को इसी परिस्थिति में पाता है, और इसीलिए अधिकतर बाज़ार शुद्ध रूप से प्रतियोगितामूलक नही है।)

शुद्ध प्रतियोगिता की दशा में न केवल माल को बल्कि विक्रेताओं को भी "मानकित" अवश्य होना चाहिए। कोई भी ऐसी चीज़ जिसके कारण क्रेता एक विक्रेता को अन्य से अधिक पसन्द करें, चाहे वह व्यक्तित्व हो या ख्याति या उपयुक्त स्थिति या दुकान का वातावरण, वह उस मात्रा तक खरीदे गए पदार्थ को विशिष्ट (differentiate) कर देती है, क्योंकि जो खरीदा गया है वह वास्तव मे तुष्टिगुणों (utilities) का एक समूह है, और ये चीज़ें उसका एक भाग है। सब विक्रेताओं के द्वारा सब क्रेताओं को दिए जाने वाले तुष्टिगुण एकसम होने चाहिए, अन्यथा प्रत्येक (individual) विक्रेता का अपने पदार्थ की कीमत पर कुछ न कुछ नियंत्रण रहेगा।[12] ऐसी दशाओं में स्पष्ट है कि लेनदेनों की बहुत बड़ी संख्या लेने पर क्रेता और विक्रेता "यादृच्छिक" रूप में (at random) जोड़े (युगल) बनाएंगे। कोई क्रेता किस विक्रेता से पदार्थ खरीदता

है यह पूर्णतया संयोग पर निर्भर करेगा और किसी समयावधि में की गयी खरीददारियाँ सब विक्रेताओं में संभाविता के नियम के अनुसार बँट जाएंगी। आखिर, यह सब इसी बात को कहने का दूसरा ढंग है कि उत्पाद एकरूप है।

शुद्ध प्रतियोगिता की ये दो अपेक्षाए उन दो रूपों का सकेत करती हैं जिनमें एकाधिकारिक और प्रतियोगितामूलक तत्व मिले हो सकते हैं। प्रथमतः, हो सकता है कि एक ही बाज़ार में एकसम उत्पाद को एक या कुछ या बहुत विक्रेता बेचें। यहाँ एक ही बाज़ार में सब बेचते है, और यदि किसी का कीमत पर नियंत्रण है तो वह उस एकल (single) कीमत पर है जिस पर सबको बेचना पड़ता है। जैसे-जैसे विक्रेताओं की सख्या बढती है, एकाधिकार की दशा धीरे-धीरे क्रमशः रूप बदलकर शुद्ध प्रतियोगिता मे परिवर्तित हो जाती है। इस स्थिति मे, मध्यवर्ती क्षेत्र के लिए मूल्य-सिद्धान्त का प्रतिपादन दो विक्रेताओं अर्थात् "द्वयधिकार" की समस्या के विशेष सन्दर्भ में, मुख्यतया गणित-अर्थशास्त्रियों के द्वारा, किया जा चुका है, और हम कुछ (a few) विक्रेताओं की स्थिति का वर्णन करने के लिए "अल्पाधिकार" (oligopoly) शब्द का प्रयोग करके इस शब्दावली को विस्तृत कर सकते है।[13] अध्याय 2 में शुद्ध प्रतियोगिता पर विचार करने के बाद हम अध्याय 3 में इस स्थिति पर विचार करेंगे।

दूसरे, हो सकता है कि विक्रेता एकसम, किंचित् भिन्न या पूर्णतया भिन्न उत्पाद बेच रहे हों। यदि उत्पाद एकसम है तो प्रतियोगिता शुद्ध है (बशर्ते कि विक्रेता बहुत बड़ी संख्या मे हों)। विशिष्टीकरण के साथ एकाधिकार प्रकट होता है, और जैसे-जैसे वह बढता है एकाधिकार का तत्व भी बढ़ता जाता है। जहाँ यत्किंचित् मात्रा मे विशिष्टीकरण है वहाँ भी प्रत्येक विक्रेता का अपने उत्पाद पर निरपेक्ष (absolute) एकाधिकार होता है, परन्तु वह इससे प्रभावित होगा कि उसे न्यूनाधिक मात्रा मे अपूर्ण स्थानापन्नों (imperfect substitutes) से प्रतियोगिता करनी होती है। चूकि प्रत्येक एकाधिकारी है और इस पर भी उसके प्रतियोगी है, इसलिए हम उन्हें "प्रतियोगी एकाधिकारी" कह सकते है, और कार्यरत शक्तियों को "एकाधिकारिक प्रतियोगिता" की शक्तियाँ कहना असाधारण रूप से उपयुक्त होगा।[14] इस स्थिति पर अध्याय 4 और इसके बाद के अध्यायों में विचार किया गया है।[15]

एकाधिकारिक प्रतियोगिता की समस्या विशेष रूप से दिलचस्प और महत्वपूर्ण है। जहाँ एक-एक के उत्पाद मे अद्वितीयता का किंचित् तत्व भी होता है, उन सब क्षेत्रों मे होने वाली प्रतियोगिता एक एकरूप उत्पाद के लिए सुसंगठित बाज़ार में होने वाली शुद्ध प्रतियोगिता से बहुत कम सादृश्य रखती है। उदाहरण के लिए, मोटरगाड़ी उद्योग मे प्रतियोगितामूलक विश्लेषण के अनुप्रयोग पर विचार करें। ऐसी स्थिति में जहाँ गुण, डिज़ाइन और प्रकार में परिवर्तनों के कारण अलग-अलग इकाइयों की कीमतें कई सौ से कई हज़ार डालर होती हैं, "सामान्य रूप से मोटरगाड़ियो" के माँग और पूर्ति वक्रों की कल्पना कैसे की जाए? किसी विशेष

कीमत पर बाज़ार में गाड़ियों की एक संख्या को खरीदा और बेचा जाता है, परन्तु इकाइयों की संख्या की परिभाषा कैसे की जाए ? उत्पाद के कई प्रकारों के कारण अधिकांशत: उत्पन्न होने वाली कई प्रकार की लागतों को इस विश्लेषण के उपयुक्त कैसे बनाया जाए ? ये कठिनाइयाँ बहुत बड़ी है, परन्तु कदाचित् (शायद) दुस्तर नहीं है। लेकिन वास्तविक कठिनाई न तो परिभाषा की है न व्याख्या की, और उसे पार नहीं किया जा सकता । प्रतियोगितामूलक सिद्धान्त ठीक नही उतरता (बैठता) क्योंकि सारे समूह में प्रतियोगिता केवल आंशिक है और अत्यन्त असमान है। दौड़ की कार और दस-टनी ट्रक के बीच प्रतियोगिता यथार्थत: शून्य अवश्य होगी। संभवत: फोर्ड कारों और लोकोमोबाइल गाड़ियों की संयुक्त मांग सारणी बनाने की अपेक्षा फोर्ड कारों और मकानो की सयुक्त मांग सारणी बनाने का औचित्य अधिक है। कदाचित् ये उदाहरण चरम स्थितियों के है, परन्तु यह तथ्य कि सारे समूह के प्रत्येक उत्पादक का अपना बाजार दूसरे के बाजार से, अशत: ही सही, भिन्न है, ऐसी शक्तियों को उत्पन्न कर देता है जो शुद्ध प्रतियोगिता मे नही पाई जाती, और जो परिणामों को सारत: प्रभावित करती है। सर्वत्र कीमतों का समायोजन अशत: एकाधिकार सिद्धान्त के अनुसार किया जाता है। इसके अतिरिक्त, यह तथ्य कि प्रत्येक विक्रेता का बाजार सीमित है, विज्ञापन और विक्रय सम्बन्धी व्ययों को बढावा देता है, जब कि शुद्ध रूप से प्रतियोगितामूलक बाजार स्वभाव ही से ऐसा है कि वहाँ विक्रय की समस्या नही उठती है। ऐसे उद्योग में आर्थिक शक्तियो के समायोजन की व्याख्या करने के लिए शुद्ध प्रतियोगिता का सिद्धान्त पूर्णतया अनुपयुक्त है।

क्योंकि अधिकतर कीमतें एकाधिकार तत्वों को सन्निहित करती है, इसलिए "प्रतियोगिता" जैसे सरल शब्द का प्रयोग किए जाने पर लोग "एकाधिकारिक प्रतियोगिता" की कल्पना करते है। वास्तव मे, यहाँ तक कहा जा सकता है कि शुद्ध प्रतियोगिता की दशा में क्रेताओं और विक्रेताओं मे उस अर्थ मे प्रतियोगिता नही होती जिस अर्थ मे इस शब्द का आजकल प्रचलन है। विशाल बाजारों के सम्बन्ध मे "प्रतियोगिता" शब्द का प्रयोग कभी नहीं सुना जाता और "कीमत काटना" (price cutting), "अपविक्रयण" (underselling), "अनुचित प्रतियोगिता", "प्रतियोगिता का सामना करना", "बाजार सुरक्षित करना" इत्यादि वाक्यांशों का प्रयोग अज्ञात है। इसमें कोई आश्चर्य नही कि जब ऐसे बाजार के सिद्धान्त का प्रयोग "व्यवसाय" की दुनिया मे किया जाता है, जहाँ ये शब्द माने रखते है, तो वह इतना अवास्तविक प्रतीत होता है। यह सिद्धान्त इस अनुमान पर आधारित है कि प्रत्येक विक्रेता कीमत को स्वीकार करता है (दिया हुआ मानता है) और उसे सारत: प्रभावित किए बिना अपनी सम्पूर्ण राशि को (उस कीमत पर) बेच सकता है। इस प्रकार कीमत नीति चुनने की, उत्पाद को क्रेताओं की (वास्तविक या कल्पित) आवश्यकताओं के अधिक अनुकूल बनाने की, क्रेताओं की आवश्यकताओं को बदलने के लिए विज्ञापन की कोई समस्या नही उठती। यह आशा नही की जा

सकती कि शुद्ध प्रतियोगिता का सिद्धान्त इन तथ्यों की व्याख्या करेगा जो उसकी कल्पनाओं से इतने भिन्न हैं। परन्तु कोई कारण नही है कि एक ऐसा मूल्य-सिद्धान्त न बनाया जा सके जो इन तथ्यों के लिए ठीक उतरता है—एक ऐसा सिद्धान्त जो विशिष्ट (specific) रूप से ऐसे पदार्थों के सम्बन्ध में है जो एकरूप नही है। इस पुस्तक के अगले अध्यायो में यही किया गया है। पहले हम शुद्ध प्रतियोगिता के सिद्धान्त पर विचार करेंगे।

अध्याय 2

शुद्ध प्रतियोगिता में मूल्य

"शुद्ध प्रतियोगिता" का प्रयोग विशेष बाजारों का वर्णन करने के लिए किया जाता है, न कि सामान्य कीमत प्रणाली का। कीमत प्रणाली में शुद्ध रूप से प्रतियोगी बाजार के साथ-साथ ऐसे बाजार भी सम्मिलित हैं जिनमें एकाधिकारिक और प्रतियोगी प्रभाव विविध रूप से सम्मिश्रित होते है (इसमे एकाधिकार, उस अर्थ मे जिसमें इस शब्द का साधारणतया प्रयोग किया जाता है, भी सम्मिलित है)। एकाधिकारिक प्रभाव के कारण कीमतें, शुद्ध प्रतियोगिता की दशा मे जो वे होती उससे सामान्यतया अधिक होती है। इसलिए एक शुद्ध रूप से प्रतियोगी प्रणाली का विचार अग्राह्य है, क्योंकि यह विचार न केवल इस तथ्य की उपेक्षा करता है कि एकाधिकार का प्रभाव सम्पूर्ण कीमत प्रणाली पर विभिन्न मात्राओ मे पड़ता है, बल्कि यह उसका सर्वथा बहिष्कार कर देता है, और बताता है कि कीमतें एक ऐसे स्तर की ओर "प्रवृत्त" होती है जो सामान्यतया बहुत नीचा होता है। वास्तव मे, जैसा आगे बताया जाएगा, यदि कीमत प्रणाली के वर्णन मे से किसी एक तत्व को हटाना ही हो तो सार्वत्रिक एकाधिकार की कल्पना को बनाए रखने का पक्ष अधिक प्रबल है।[1] परन्तु आगे विचार किए बिना कोई भी चरम स्थिति उचित नहीं है, क्योंकि कीमत प्रणाली के सही चित्रण मे उसकी विविधता की स्वीकृति सन्निहित है। इस दृष्टिकोण से, शुद्ध प्रतियोगिता के सिद्धान्त में दिलचस्पी का कारण यह है कि वह आर्थिक क्रिया के एक भाग का वर्णन करता है।

परन्तु शुद्ध प्रतियोगिता पर यहाँ विचार करने का केवल यही एक कारण नही है। इसका उपयोग इस अध्ययन के मुख्य विषय, एकाधिकारिक प्रतियोगिता, की ओर प्रवृत्त होने के लिए भी किया गया है, और विशेष रूप से इस दृष्टिकोण से उसके कुछ पहलुओं को स्पष्ट करना आवश्यक है। यहाँ इस सिद्धान्त पर विस्तृत रूप में विचार करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि दूसरों ने इसे समुचित रूप से कर रखा है।[2] इसलिए केवल उन स्थितियों पर विचार किया जाएगा जो एकाधिकारिक प्रतियोगिता से उसकी भिन्नता बताने के लिए आवश्यक है। समस्या एक ऐसे बाज़ार में कीमत की है जिसमें प्रतियोगिता के साथ एकाधिकार के कोई भी तत्व न हों।

1. मांग और पूर्ति के समीकरण और संतुलन में भेद

मैं मान लेता हूं कि विश्लेषण के उपकरण के रूप में मांग और पूर्ति वक्र या सारणियाँ, जो क्रमशः यह बताते हैं कि विभिन्न कीमतों पर पदार्थ की कितनी राशि

की मांग और पूर्ति की जाएगी, अर्थ-सिद्धान्ती के लिए सुपरिचित हैं और उनकी अधिक व्याख्या की आवश्यकता नही है। हमारा इन प्रश्नों से कि क्या उनकी व्याख्या तुष्टिगुण या लागत के द्वारा की जा सकती है, और किस मात्रा तक की जा सकती है, और ऐसे निर्वचन की प्रकृति से, अधिकांश में कोई सरोकार नहीं है। न ही हमारा सरोकार बाजार और सामान्य कीमत के भेद से है। आखिरकार, ये वक्रों की अन्तर्वस्तु से सम्बद्ध प्रश्न है। यदि बाँज़ार में क्रेता और विक्रेता विभिन्न कीमतों पर जिन राशियों को खरीदने और बेचने के लिए तैयार है वे दी हुई हों और शुद्ध प्रतियोगिता की दशाएं भी दी हों, तो परिणामी कीमत अन्तर्वस्तु के निरपेक्ष होनी चाहिए। हमारा सरोकार मुख्यतया निर्धारित कीमत से है।

किसी पदार्थ के माग और पूर्ति वक्र, अपने प्रतिच्छेद के द्वारा, उस कीमत को बताते है जिस पर मांग और पूर्ति बराबर होगे। किन्तु वे इसकी किसी व्याख्या से रिक्त है कि कीमत इसी बिन्दु पर क्यों स्थिर हो जाए। वे केवल यह बताते है कि **यदि** कुछ निश्चित कीमतें नियत की जाए तो पदार्थ की कितनी राशियां मांगी और प्रस्तुत की जाएगी। जिस एक बिन्दु पर माग और पूर्ति बराबर होते है उसे बताने के साथ-साथ वे कई ऐसे बिन्दुओ को बताते है जहाँ माग और पूर्ति मे से एक दूसरे से अधिक है। यह कहना कि कोई कीमत इसलिए नियत हो जाएगी **क्योंकि** वह मांग और पूर्ति को समीकृत करती है, इस समीकरण को **स्वयंतथ्यमूलक** समझना है। ऐसा कोई स्वयं-तथ्य नही है। यह प्रश्न उचित रूप से सीधे-सीधे पूछा जाए कि कीमत क्या होगी, और क्यो ?

माग और पूर्ति की, और प्रतियोगिता या एकाधिकार या दोनों की, दी हुई दशाओं मे कीमत की प्रवृत्ति सन्तुलन बिन्दु पर स्थिर होने की होती है जहाँ विरोधी बलों का सन्तुलन होता है। "ऐसा सन्तुलन **स्थायी** (stable) होता है ; अर्थात् यदि कीमत को इससे किंचित् विस्थापित किया जाए तो उसकी प्रवृत्ति, जिस प्रकार लोलक अपने निम्नतम बिन्दु के चारो ओर दोलन करता है उसी प्रकार, पुरानी कीमत पर लौट आने की होती है।"[3] लेकिन सामान्यतया कीमत वही नही होती जो समकारी कीमत है; वास्तव मे, ऐसा केवल शुद्ध प्रतियोगिता की दशा मे होता है। इन दो के भेद का एक सरल दृष्टान्त इस विषय को स्पष्ट कर देगा, और यह दृष्टान्त एकाधिकार की स्थिति का है। चित्र 1 मे DD' माग वक्र है और SS' पूर्ति वक्र है, और समकारी कीमत BP है। लेकिन एकाधिकारी किसी उच्चतर बिन्दु पर, जहाँ उसका कुल लाभ अधिकतम होगा, कीमत, मान लीजिए AQ, नियत करता है।[4] वह इस कीमत को बनाए रखने मे समर्थ है, क्योकि, प्राक्कल्पनानुसार, ऐसा दूसरा कोई नही है जो इससे कम कीमत पर पदार्थ को बेचता हो। एकाधिकार के कारण ये वक्र बदले नही है[5], और प्रत्यक्ष है कि इस कीमत पर मांग और पूर्ति बराबर नही हैं—मांग OA है और पूर्ति OC।[6] इस पर भी दी हुई परिस्थितियों में AQ को सन्तुलन कीमत कहना उचित होगा। कीमत की प्रवृत्ति इसकी ओर है; यदि

एकाधिकारी की भूल-चूक या अल्पकालिक परिस्थतियों के कारण कीमत इस बिन्दु

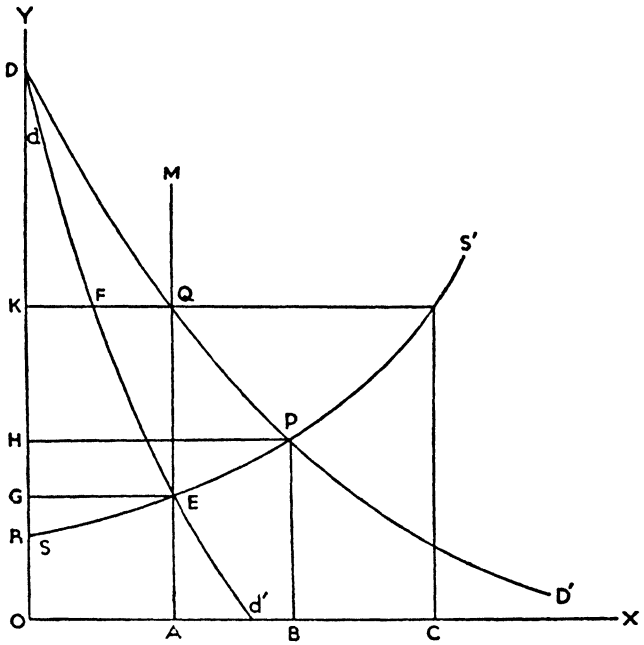

चित्र 1

से विचलित हो जाए तो उसकी प्रवृत्ति फिर वही आने की होगी। यह लाभ और हानि की विरोधी शक्तियो के ऐसे सन्तुलन को निरूपित करता है जो कुल लाभ को अधिकतम बना देता है।

यदि यह "यथार्थ" सन्तुलन प्रतीत नही होता, या यदि यह प्रतियोगिता के सन्तुलन से भिन्न अर्थ मे सन्तुलन प्रतीत हो, तो इसका और विस्तार से वर्णन किया जा सकता है। मांग और कीमत मे दिए हुए सम्बन्ध को जिन अनेक रीतियों से व्यक्त किया जा सकता है उनमे से DD' केवल एक है। यह बिके हुए पदार्थो के प्रत्येक परिमाण के लिए **औसत** आय, अर्थात् कुल आय बटा इकाइयो की सख्या, है। अब वक्र dd' खीचो जो प्रत्येक अनुक्रमिक इकाई के बिकने पर कुल आय मे होने वाली **वृद्धि** बताता है। इसे सीमन्त आय का वक्र कहा जा सकता है।[7] यह वक्र औसत आय वक्र DD' की अपेक्षा अधिक तीव्रता से गिरता है, क्योंकि प्रत्येक अनुक्रमिक इकाई अन्य इकाइयों की कीमत को गिरा देती है और कुल आय में जो वृद्धि करती है वह उसकी कीमत से कम होती है। इस प्रकार A पर बिक्री की गई एक अतिरिक्त इकाई, AQ कीमत पर बिकने पर भी, कुल आय में केवल AE के बराबर वृद्धि करती

है, क्योंकि इस इकाई की बिक्री O और A के बीच की पहली सब इकाइयों की कीमत को थोड़ा-सा घटा देती है। पदार्थ के किसी परिमाण की बिक्री से मिलने वाली कुल आय इस सीमान्त आय वक्र के अन्तर्गत समुचित क्षेत्रफल है। OA राशि के लिए यह $ODEA$ $(=OKQA)$ है। स्पष्ट है कि, एकाधिकारी को अपनी उत्पत्ति OA तक बढ़ाने से लाभ होगा, क्योंकि जब तक वह इस बिन्दु पर नहीं पहुँचता प्रत्येक अतिरिक्त इकाई से होने वाली आय उसकी लागत से अधिक है। परन्तु वह इस बिन्दु के आगे नही जाएगा क्योंकि लागत में होने वाली वृद्धियां आय में होने वाली वृद्धियों से अधिक होंगी। इसलिए वह OA राशि बेचता है और प्रति इकाई कीमत $ODEA$ बटा OA, अर्थात् AQ, होगी। एकाधिकारी के सन्तुलन का निरूपण प्रतिच्छेदी रेखाओं की उसी लेखाचित्रीय युक्ति के द्वारा किया जा सकता है जिसका उपयोग प्रतियोगिता की स्थिति मे किया जाता है। परन्तु यहाँ मांग और पूर्ति समीकृत नही होते है।[8]

आर्थिक शक्तियों के सन्तुलन को ग़लती से मांग और पूर्ति के सन्तुलन के एकसम समझा गया है। मांग और पूर्ति का सन्तुलन पहले की केवल एक विशेष स्थिति है। जब तक अन्य दशाएं मालूम न हो, मांग और पूर्ति के वक्र स्वत: या अपने प्रतिच्छेद के द्वारा इस बारे मे कुछ नही बताते कि क्या कीमत नियत होगी। वे मानो सुस्पष्ट चिह्न जैसे है, परन्तु इससे अधिक कुछ नही है। सन्तुलन की धारणा को मांग और पूर्ति वक्रों के प्रतिच्छेद से उसके साहचर्य से मुक्त करने के लिए एक सरल और सुपरिचित दृष्टान्त के रूप मे एकाधिकार की स्थिति को चुना गया है। इस पुस्तक का उद्देश्य यह दिखाना होगा कि अधिकांश कीमतों मे प्रतियोगिता के साथ विभिन्न रीतियो से सम्मिश्रित एकाधिकार के (जिन्हें प्राय: प्रतियोगिता की "अपूर्णताओ" में सम्मिलित किया जाता है) तत्व सन्निहित होते है, और सामान्यतया परिणाम ऐसी सन्तुलन कीमते होता है जो मांग और पूर्ति को समीकृत नही करती। अब यह बताया जा सकता है कि शुद्ध प्रतियोगिता की दशाओं मे सन्तुलन-समायोजन विशिष्ट रूप क्यो लेते है।

इसका कारण यह नही है कि प्रतियोगी बाजार की प्रमुख शक्ति एकाधिकारिक बाजार की प्रमुख शक्ति से भिन्न कोटि की है। आर्थिक दृष्टि से प्रतियोगी किसी भी माने मे एकाधिकारी से भिन्न प्रकार का व्यक्ति नही है।[9] ऐसा नही है कि वह "प्रतियोगिता करता है" और कीमत घटाता है, जब कि, इसके विपरीत, एकाधिकारी लाभ को अधिकतम करने के लिए कीमत को ऊचा बनाए रखता है। यह प्रकल्पना है कि वह अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए उतना ही तुला रहता है जितना एकाधिकारी और इस साध्य की प्राप्ति मे समान बुद्धि और दूरदर्शिता से लगा रहता है। शुद्ध रूप से प्रतियोगी बाजार की प्रकृति को समझने के लिए एकाधिकार और प्रतियोगिता के इस सारूप्य का पूरा बोध होना आवश्यक है। यह सारूप्य प्रतियोगी बाज़ार और एकाधिकारिक बाज़ार की तुलना करने से नही बल्कि दो व्यक्तियों, एक प्रतियोगी[10] और दूसरा एकाधिकारी, की तुलना करने से प्रकट होता है।

2. शुद्ध प्रतियोगिता में विक्रेता

शुद्ध प्रतियोगिता की पहले ही दी गई परिभाषा के अनुसार शुद्ध प्रतियोगिता की दशा में (1) एक पूर्णतया समरूप पदार्थ के (2) क्रेता और विक्रेता अपेक्षाकृत बहुत बड़ी सख्या में होते हैं। इनमें से दूसरे के कारण सामान्य बाज़ार स्थिति में किसी एक का प्रभाव नगण्य हो जाता है; और पहले के कारण, किसी एक विक्रेता के उत्पाद को उसके प्रतियोगियों के उत्पादों से पूर्णतया एकसम करके, उसका अपनी कीमत पर, सामान्य बाज़ार कीमत से भिन्न कीमत के रूप में, कोई नियन्त्रण नही रह जाता, क्योंकि यह नियन्त्रण इस कारण से हो सकता है कि क्रेता पदार्थ के एक प्रकार को दूसरे प्रकार पर अधिमान देते हों। आइए, ऐसे बाजार के मांग और पूर्ति वक्र खीचें, जैसे चित्र 2*a* में। समकारी कीमत *AP* है, जिस पर समय की प्रति इकाई पदार्थ की 1,00,00,000 इकाइयों का विनिमय किया जाएगा। हम प्रतियोगी विक्रेताओं की सख्या 1000 मान लेते है। अब हम जिन प्रश्नों पर विचार करेगे वे है : एक **अकेले** विक्रेता के मांग वक्र की आकृति क्या है—अर्थात् जैसे-जैसे वह बाजार मे अधिकाधिक राशि प्रस्तुत करता है, तो विभिन्न राशियाँ किस कीमत पर खरीद ली जाएगी ? बाजार के सामान्य पूर्ति वक्र से भिन्न उसके अपने पूर्ति वक्र की आकृति क्या है ? अन्त में, इन माग और पूर्ति वक्रों की दृष्टि से, उसके अपने कारबार के कैसे समायोजन उसके लाभ को अधिकतम करेंगे ?

ऐसे व्यक्तिगत वक्र चित्र 2*b* मे खीचे गए है, परन्तु पहले हम चित्र मे प्रयुक्त पैमाने में परिवर्तन की आवश्यकता का उल्लेख कर ले। प्रत्यक्ष है कि एक विक्रेता द्वारा किए जाने वाले समायोजन चित्र 2*a* में नही दिखाए जा सकते क्योंकि विक्रेताओं की संख्या 1000 है और प्रत्येक विक्रेता के हाथ में पदार्थ की राशि का लगभग $\frac{1}{1000}$ है और यदि इस राशि को आधार रेखा पर बताया जाए तो वह अति

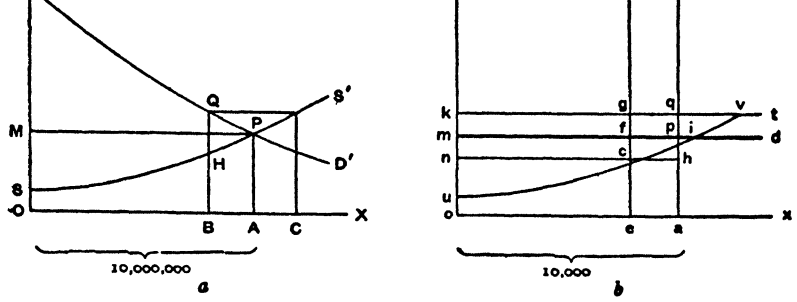

चित्र 2

सूक्ष्म हो जाती है। इसलिए चित्र 2*b* खींचा गया है जिसका क्षैतिज पैमाना 1000 गुना बड़ा है, जिससे *Oa* (चित्र 2*b*) 10,000 इकाइयाँ, या *OA* (चित्र 2*b*) का $\frac{1}{1000}$, बताता है। ऊर्ध्वाधर पैमाना दोनों चित्रों में एक ही है।

किसी एक विक्रेता के उत्पाद के लिए मांग वक्र एक क्षैतिज रेखा होगा जो *Y*-अक्ष में चालू बाज़ार कीमत के बिन्दु से शुरू होगा। यदि कीमत *BQ* है तो मांग वक्र *kt* है; यदि कीमत *AP* है तो वह *md* है। मांग वक्र क्षैतिज है क्योंकि चित्र 2*b* में दिखाए गए परिसर (range) में किसी अकेले व्यक्ति के द्वारा नियन्त्रित पूर्ति के समायोजन कीमत में इतना कम परिवर्तन लाएंगे कि उसकी उपेक्षा की जा सकती है। अधिक सूक्ष्मतया यह कहा जा सकता है कि बाज़ार में से इन 10,000 इकाइयों को हटा देने पर, या इतनी ही इकाइयाँ बढ़ा देने पर कीमत मे होने वाला परिवर्तन *DD'* वक्र मे होने वाले उस चढ़ाव-उतार के बराबर होगा जो बिन्दु *A* से उससे *OA* के $\frac{1}{1000}$वें हिस्से की दूरी में (बाएँ या दाहिने) स्थित बिन्दु पर पहुँचने में होगा (चित्र 2*a*)। जैसा कि प्रकट है, यह परिवर्तन लेखाचित्रीय निरूपण से लुप्त हो जाता है, ठीक उसी प्रकार जैसे वह विक्रेता की गणना में नही आता।[11] *kt* की और *md* की क्षैतिजता कीमत पर अकेले प्रतियोगी के नियन्त्रण के अभाव को प्रभावी रूप से प्रकट करती है। वह चालू बाज़ार कीमत पर जितनी राशि चाहे उतनी बेच सकता है।

किसी एक विक्रेता के उत्पाद के लिए यह मांग-रेखा औसत आय वक्र और सीमान्त आय वक्र दोनों है। प्रत्यक्ष है कि ऐसा अवश्य होना चाहिए क्योकि वह क्षैतिज है। इस तथ्य के कारण से यह उलझन हो सकती है कि यदि चित्र 2*a* में सीमान्त आय वक्र खीचा जाए तो वह औसत आय वक्र के नीचे होगा। उदाहरणार्थ, चित्र 1 मे जब कीमत (औसत आय) *AQ* है तो सीमान्त आय *AE* है। इसलिए ऐसा लग सकता है कि चित्र 2*b* में सीमान्त आय रेखा यद्यपि क्षैतिज होगी परन्तु उसे औसत आय वक्र के नीचे होना चाहिए। लेकिन वह नीचे नहीं होती, क्योंकि जबकि चित्र 1 मे औसत आय से सीमान्त आय इसलिए कम है क्योंकि *O* से *A* तक की सब इकाइयों की कीमत कम हो जाती है, चित्र 2*b* में केवल 10,000 इकाइयों की कीमत कम होती है, और इनको अगर चित्र 2*a* में दिखाया जाए तो ये एक बिन्दु, मान लीजिए *B*, पर स्थित होंगी। दूसरे शब्दों में, यदि औसत आय (कीमत) 10,000 इकाइयों के परिसर में लगभग स्थिर है, तो सीमान्त आय भी, उसी स्थान पर, स्थिर अवश्य होगी।

विक्रेता के पूर्ति वक्र के सम्बन्ध में विभिन्न दशाएं मिल सकती है। हो सकता है कि वह 10,000 से कम या अधिक इकाइयाँ प्रस्तुत करे[12] और वह इन सब को एक ही कीमत पर या विभिन्न कीमतों पर प्रस्तुत करे। वक्र *nhb*, *ncr*, *uv*, *mfr*, *mpb*, *kgr* और *kqb* कई संभावनाओं को बताते हैं। पहले दो विक्रेता अपनी सम्पूर्ण राशियों, 10,000 इकाई और 8,000 इकाई, को $BH(=ah)$ कीमत पर

प्रस्तुत करते हैं। ये दो सीमान्त के भीतर हैं। तीसरा विक्रेता अपनी राशि को विभिन्न कीमतों पर प्रस्तुत करता है। चौथा और पाँचवाँ विक्रेता सीमान्त विक्रेता है और अन्तिम दो सीमान्त के बाहर है। व्यक्तिगत वक्र अनेक होते है और हो सकता है कि विविध आकृतियो के हों। जब उन्हे प्रत्येक कीमत पर जोड़ा जाता है तो वे चित्र $2a$ के से सम और सरल वक्र SS' देते है।

ये वैयक्तिक मांग और पूर्ति वक्र एकाधिकृत पण्य के मांग और पूर्ति वक्रों के प्रतिरूप है। इन्ही वक्रो की सहायता से एक विक्रेता जिसका लक्ष्य कल्पनानुसार लाभ को अधिकतम करना है, अपनी उत्पत्ति मे समायोजन करता है। अब दिखाया जा सकता है कि शुद्ध प्रतियोगिता की दशा में मांग और पूर्ति की समीकारी कीमत इसलिए स्थापित होती है **क्योंकि यही केवल ऐसी है जो बाजार में प्रत्येक विक्रेता के अधिकतम लाभ के संगत है।**

कल्पना कीजिए कि कीमत पल भर के लिए BQ हो जाती है, और उत्पाद की बिक्री के लिए प्रस्तुत राशि केवल OB रह जाती है। तब माँग वक्र, जैसा वह एक विक्रेता को प्रतीत होता है, kt है। प्रत्येक विक्रेता उस राशि को प्रस्तुत करके जो उसके अपने पूर्ति वक्र और kt के प्रतिच्छेद के द्वारा बताई जाती है, अपने लाभ (पूर्ति कीमत के ऊपर आधिक्य) को अधिवतम करेगा, और इन राशियो का योग OC है (चित्र $2a$)। प्रत्येक स्थिति में लाभ (पूर्ति वक्रों को लागत वक्र समझने पर) पुराने क्रमानुसार क्रमशः $nhqk$, $ncgk$, uvk, $mfgk$, $mpqk$, 0, और 0 है। (इनमें से अन्तिम दो चालू कीमत पर अपना माल बेचने के लिए कठिनाई से प्रेरित होते है, और उन्हें पूर्ति-कीमत के ऊपर कोई लाभ नही मिलता।) केवल OB इकाइयों की BQ कीमत पर लगातार बिक्री असभव है क्योंकि इस कीमत पर प्रत्येक विक्रेता और अतः सब प्रतियोगियों द्वारा लाभ को अधिकतम किए जाना यह अपेक्षा करता है कि बृहत्तर राशि OC की बिक्री हो। प्रत्येक का अपने लाभ को अधिकतम करने का यत्न, वास्तव में, कीमत को घटाता है। विक्रेता द्वारा प्रस्तुत की गई पहले से बड़ी राशि ऐसी कीमत पर बिक जाती है कि कीमत में की गई कमी, स्वतः और उसके लिए, नगण्य होती है, परन्तु अन्य के साथ सयुक्त किए जाने पर वह काफ़ी हो जाता है। मांग-रेखा kt नीचे आ जाती है और गणनाओं को सामान्य रूप से दुहराया जाता है। कुछ विक्रेता बाजार छोड़ने के लिए और अन्य प्रस्तुत राशि को कम करने के लिए बाध्य हो जाते है। अब भी प्रत्येक अपने उत्पाद के पूर्ति वक्र और नयी मांग-रेखा के सापेक्ष इष्टतम पूर्ति प्रस्तुत करता है, लेकिन यदि उनका लाभ को अधिकतम करना अब भी इसकी अपेक्षा करता है कि चालू कीमत पर जितनी बिक्री संभव है उससे अधिक हो तो मांग-रेखा उससे अवश्य नीचे गिरती जानी चाहिए। जब मांग-रेखा md हो जाती है, तो सबके लाभों को अधिकतम बना देने के लिए अपेक्षित राशि OA है। चूँकि ठीक यही राशि खरीदी भी जाएगी इसलिए आगे परिवर्तन की प्रवृत्ति नहीं होती है। md से नीचे की मांग-रेखाएं नहीं टिक सकती क्योंकि प्रस्तुत की गई राशि कम

कर दी जाएगी, और विक्रेताओं को अधिकतम लाभ दिलाने के लिए जिस कीमत पर ये राशियां बेची जा सकती है वह AP से अधिक होगी। AP कीमत बनी रहेगी क्योंकि केवल यही ऐसी कीमत है जो प्रत्येक विक्रेता के अधिकतम लाभ के संगत है।[13] इन सब समायोजनों में प्रतियोगी ठीक वही करता है जो एकाधिकारी करता है—**वह अपने उत्पाद** के मांग और पूर्ति वक्रों के संदर्भ में अपने लाभ को अधिकतम बनाने की चेष्टा करता है। प्रतियोगिता-सन्तुलन प्रत्येक के लिए प्रतिबन्धहीन अधिकतम लाभ के न केवल सगत है, उसमें लाभ आवश्यक दशा के रूप से सन्निहित है।

एकाधिकार या प्रतियोगिता या इनके किसी सम्मिश्रण मे आर्थिक सन्तुलन की परिभाषा करने के प्रारम्भ मे यह कल्पना अवश्य की जानी चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति, शर्त के या विभ्रम के बिना, अपने आर्थिक लाभ को अधिकतम करने की चेष्टा करता है। यद्यपि, माग और पूर्ति वक्रों के दिए हुए होने पर, ऐसा प्रतीत होता है कि लाभ को अधिकतम करने का परिणाम एक प्रकार का होता है और "प्रतियोगिता" का दूसरे प्रकार का, परन्तु ऐसा होने का कारण इन दो शक्तियो की प्रकृति मे कोई अन्तर नहीं है। इसका कारण केवल यह तथ्य है कि एकाधिकार की दशाओं का निरूपण करने में ये वक्र एक अकेले विक्रेता के होते है, जब कि प्रतियोगी दशाओं का निरूपण करने में ये विक्रेताओ के एक समूह के होते है। प्रतियोगिता की दशा मे वक्रों को जितने विक्रेता है उतने भागों मे विभाजित करने पर यह प्रकट हो जाता है कि प्रतियोगिता मे मिलने वाला परिणाम एकाधिकार के परिणाम से किसी प्रकार भिन्न नही है; प्रत्येक स्थिति मे अकेले विक्रेता के लाभ अधिकतम किए जाते है। इस प्रकार, शुद्ध प्रतियोगिता के अतर्गत सन्तुलन बिन्दु की परिभाषा करने के लिए व्यक्ति की, एवं समूह की, मांग और पूर्ति की दशाओ की जांच करना आवश्यक है। इस परिष्कार की पूरी सार्थकता केवल तब स्पष्ट प्रकट होगी जब इस चित्र में एकाधिकार तत्वों का समावेश किया जाएगा।

3. लागत वक्र और उत्पादन का पैमाना

जब हम "सामान्य", अथवा "दीर्घावधि" की, दशाओं मे समस्या पर विचार करते है तो लागत वक्र पूर्ति वक्रों का स्थान ले लेते है,[14] और एक-एक उत्पादक की लागत की दशाओं का विवेचन शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत उत्पादन के पैमाने के बारे मे एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष की ओर ले जाता है। उसका (प्रति इकाई) औसत लागत वक्र "भीतरी" किफ़ायतों का, अथवा बड़े पैमाने पर उत्पादन की किफ़ायतों का, वक्र मात्र है, जो चित्र 3*b* में cc' है। (थोड़ी देर के लिए वक्र mm' पर विचार न कीजिए।) बड़े पैमाने पर उत्पादन की किफ़ायतों की संकल्पना इतनी सुविदित है कि यहां इस वक्र की आकृति के विस्तृत स्पष्टीकरण की कोई आवश्यकता नही है।[15] उत्पत्ति की कम राशि के लिए प्रति इकाई लागत ऊंची होती है; जैसे-जैसे उत्पत्ति बढ़ती है वह घटती है, जब तक कि उत्पादन सर्वाधिक दक्ष पैमाने पर नही होने लगता; और इसके

बाद, जब उत्पादन-इकाई का संगठन अति जटिल और बेडौल हो जाता है, वह बढ़ने लगती है।

एक उत्पादक के लागत वक्र के ये सामान्य लक्षण हमेशा अवश्य होने चाहिए।[16] इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि पण्य (या सेवा) क्या है क्योंकि उत्पादन का ऐसा पैमाना हमेशा अवश्य होगा जो किसी अन्य से अधिक दक्ष है और जिसके दोनों ओर लागत उच्चतर होगी। न्यूनतम बिन्दु की स्थिति और विभिन्न अवस्थाओं में वक्र की प्रवणता (slope) में उद्योगानुसार बहुत बड़े अन्तर होंगे और एक शुद्ध रूप से स्पर्धात्मक उद्योग में ये विभिन्न उत्पादन-इकाइयों के लिए किंचित् भिन्न होंगे।

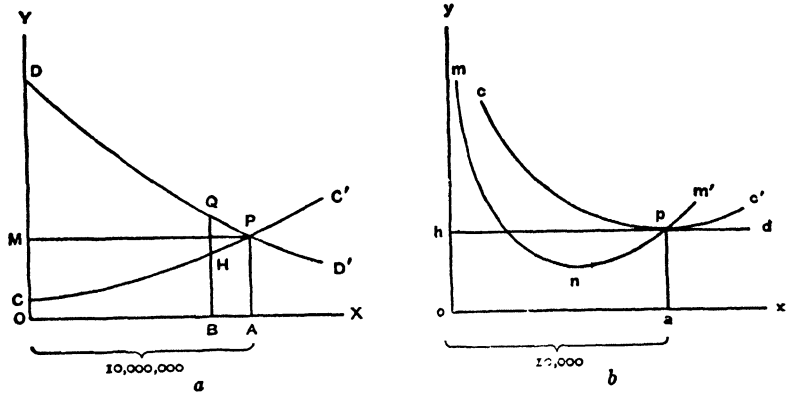

चित्र 3

कुछ समय के लिए मान लीजिए कि, जब सामान्य बाजार चित्र 3*a* में निरूपित रूप में सन्तुलन में है, यह वक्र **सीमान्त** उत्पादक की लागत की दशाओं का वर्णन करता है। जैसा पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है, माग-रेखा *hd* है। जिस एकमात्र उत्पत्ति पर वास्तविक हानि नहीं होती वह *oa*, या 10,000 इकाइयां, है, जहाँ प्रति इकाई लागत, *ap*, न्यूनतम है और कीमत के बराबर है। इस स्थिति में लाभ इस क्षेत्र में पूंजी और व्यवसाय योग्यता को आकर्षित करने के लिए न्यूनतम आवश्यक राशि के ठीक बराबर है। ज्ञातव्य है कि यह राशि लागत वक्र मे हमेशा सम्मिलित की जाती है। शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत इसी परिणाम की प्रत्याशा की जाती है।

सीमान्तान्तरिक (Intra-marginal) उत्पादकों के लागत वक्रों का निम्नतम बिन्दु भी प्रत्यक्षतः वही होगा यदि उनको अधिशेषों को लागत के रूप में सम्मिलित कर लिया जाए जैसा कि अवश्य किया जाना चाहिए। यद्यपि कुछ दृष्टिकोणों से, या कुछ प्रयोजनों के लिए, या कुछ निर्वचनों के अधीन, अधिशेष हो सकता है अतिरेक हों, परन्तु एक उत्पादक के लिए वे किसी अन्य नकद व्यय से भिन्न नही हैं। वे उसकी अपनी क्रियाओं के कारण से अतिरेक के रूप में उत्पन्न नहीं होते; वे एक लागत हैं जिन्हें अधिशेष देने

वाली सम्पत्ति का उपयोग करने के लिए, अपने स्पर्धियों की प्रतियोगिता के कारण, उसे लगाना पड़ता है। कारकों के बीच सबसे लाभप्रद अनुपात के बारे में और क्रिया के सबसे लाभप्रद पैमाने के बारे में उसकी गणनाओं में जिस प्रकार श्रम की मजदूरी और पूंजी का ब्याज आते है उसी प्रकार ये अधिशेष भी आते है।[17]

परन्तु आवश्यक नहीं है कि उत्पादन का सर्वाधिक दक्ष पैमाना सबके लिए एकरूप हो। यद्यपि प्रत्येक उत्पादक के वक्र का निम्नतम x-अक्ष से समान दूरी पर होता है परन्तु हो सकता है कि y-अक्ष से उसकी दूरी भिन्न-भिन्न हो। नियोजित कारकों के गुणात्मक भेद इसके लिए उत्तरदायी है। उदाहरणार्थ, अधिक महंगे कारक, जैसे उत्कृष्ट भूमि या व्यवसाय-योग्यता, का अधिक प्रगाढ़ रूप से उपयोग किया जाएगा,—उनके साथ अन्य कारकों की बृहत्तर राशियां काम में लाई जाएंगी,—और परिणाम एक बृहत्तर आकार की उत्पादन इकाई हो सकता है।[18] पुनः, हो सकता है कि उद्यमकर्ताओं की रीतियां भिन्न-भिन्न हों, और जो एक के लिए सबसे प्रभावकारी है वह आवश्यक नही है कि दूसरे के लिए भी सर्वाधिक प्रभावकारी हो।

cc' की सामान्य आकृति (चित्र $3b$) CC' की आकृति (चित्र $3a$) से स्वतंत्र है, उसी प्रकार जैसे मांग रेखा hd की क्षैतिजता सामान्य बाजार के मांग वक्र DD' की आकृति से प्रभावित नहीं होती। अकेले एक व्यक्ति के द्वारा अपने उत्पादन के पैमाने मे परिवर्तन का पदार्थ के कुल उत्पादन पर, अतः समस्त उत्पाद की लागत-प्रवृत्ति पर, नगण्य प्रभाव पड़ता है। उत्पादन के कुछ कारकों की दुर्लभता के कारण जब उत्पादन के बढ़ने पर लागत बढ़ती है, जैसा चित्र $3a$ में, यह सच है; यह तब भी सच है जब, "बाहरी" किफायतों के कारण, वह घटती है; अथवा जब, इन दोनों कारणों के अभाव के कारण या एक दूसरे को काट देने के कारण, व स्थिर रहती है। एक कृषक द्वारा अधिक श्रम-प्रधान खेती करने का कृषि-अधिशेष पर प्रभाव नहीं पड़ता; न ही अकेली एक व्यवसाय इकाई के उत्पादन में परिवर्तनों के कारण "बाहरी" किफायतों पर कोई विशेष प्रभाव पड़ता है। इसी बात को दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है अकेले उत्पादक की पण्य के उत्पादन के लिए आवश्यक कारकों की मांग उनकी कुल मांग का इतना अल्प भाग है कि उसके पैमाने में परिवर्तन का उसके उत्पाद को बनाने वाले तत्वों की लागत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसके सच होने के कारण, उसके उत्पाद की प्रति इकाई लागत के परिवर्तन का एकमात्र कारण यह हो जाता है कि वह अपनी सिब्बंदी में उत्पादन के कारकों को कितने प्रभावशाली ढंग से संयोजित और संगठित करता है। यह पूछा जा सकता है कि यदि चित्र $3b$ में cc' नीचे गिरता है तो उसी प्रकार चित्र $3a$ में, कम से कम बिल्कुल बायीं ओर, CC' नीचे क्यों नहीं गिरता। वास्तव में, यदि कुल उत्पत्ति इतनी कम हो कि एक या कुछ उत्पादक पर्याप्त हों, तो वह नीचे गिरता है। परन्तु जैसे ही कुल उत्पत्ति इतनी बड़ी होती है कि कुछ से अधिक सिब्बंदियों की अपेक्षा करती है, तो प्रत्येक सिब्बंदी द्वारा अधिकतम भीतरी दक्षता की दशाओं से समायोजन करने के

मार्ग में कोई रुकावटें नहीं होंगी, और लागत वक्र CC' को, जो प्रत्येक बताई गई उत्पत्ति के लिए उत्पादन की दक्षतम दशाओं के संदर्भ में हमेशा खीच जाता है, इस तथ्य को मान्यता देनी पड़ेगी। वह उन शक्तियों के अधीन है जो उद्योग पर या समस्त उत्पत्ति पर लागू होती है, और चाहे नीचे को गिरे या ऊपर को उठे या क्षैतिज रहे, वह कुल उत्पत्ति (न कि प्रति फर्म उत्पत्ति) में परिवर्तन होने पर एकैक सिब्बंदियों के वक्रों के **न्यूनतमों** का बिन्दु-पथ होता है।

यद्यपि cc' और CC' की आकृतियाँ असम्बद्ध है, तथापि पहले की **स्थिति** कुल उत्पत्ति पर आश्रित होती है, विभिन्न परिमाणों के लिए जिसकी औसत लागत (अधिशेष सहित) दूसरे के द्वारा बताई जाती है। इस प्रकार, यदि वर्धमान लागत की दशाएं हों (जैसा चित्र 3a में), तो जब कुल उत्पत्ति अधिक होती है, cc' का निम्नतम बिन्दु उच्चतर होगा, और इस विशेष परिमाण के लिए CC' के द्वारा बताई गई प्रति इकाई लागत[19] के बराबर हमेशा होता है। सदृश रूप से, बाहरी किफायतों के कारण ह्रासमान लागत ("वर्धमान प्रतिफल") की दशाओं मे, कुल उत्पत्ति के बढ़ने पर cc' का निम्नतम बिन्दु लगातार नीचे होगा। यदि लागत स्थिर है तो प्रत्यक्ष है कि कुल उत्पत्ति के अनपेक्ष उसकी स्थिति वही बनी रहेगी। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, मांग रेखा भी सामान्य बाजार में कीमत के ऊंचे-नीचे होने के अनुसार ऊपर-नीचे होगी।

अकेले उत्पादक का सीमान्त लागत वक्र mm' है, जो औसत लागत वक्र cc' से प्रत्यक्ष रूप से व्युत्पन्न किया गया है। वह उत्पत्ति में प्रत्येक इकाई की वृद्धि के कारण कुल लागत मे होने वाली वृद्धि बताता है। वह अपने निम्नतम बिन्दु पर औसत लागत वक्र से पहले पहुँच जाता है, फिर ऊपर को उठता है और औसत लागत वक्र को उसके निम्नतम बिन्दु पर काटता है। इसका कारण सरल है। प्रत्यक्ष है कि, जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ाया जाता है, औसत लागत तब तक गिरती है जब तक कुल लागत मे वृद्धि पहले की औसत लागत से कम है और कालान्तर में तब तक बढ़ती है जब इसका विलोम सच है। उत्पाद के किसी परिमाण के लिए कुल लागत सीमान्त लागत वक्र के अन्तर्गत क्षेत्रफल द्वारा दिखाई जाएगी। उदाहरणार्थ, oa उत्पत्ति के लिए कुल लागत $oapnm$ $(=oaph)$ है। इस प्रकार सन्तुलन दशाओं में विक्रेता अपनी उत्पत्ति को oa बनाने में, न केवल अपनी औसत लागत को न्यूनतम बनाता है, बल्कि सीमान्त लागत और सीमान्त आय को समीकृत करता है।[20]

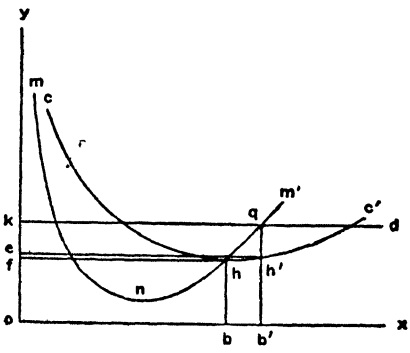

चित्र 3c

अब कुसमायोजन की स्थिति से सन्तुलन की ओर गति का वर्णन किया जा सकता है, और यह सन्तुलन समायोजन की प्रकृति को स्पष्टतर करेगा। यदि कीमत BQ होती, तो एक-एक विक्रेता के उत्पादों के लिए मांग वक्र इस (BQ) ऊंचाई पर होते और लागत वक्र, cc' और mm', चित्र 3c की भाँति, नीचे होते। यदि विक्रेता अल्पतर संख्या में होते और वे सब इस कम उत्पत्ति से सर्वाधिक प्रभावकारी रूप से समायोजित होते, तो प्रत्येक के लागत वक्र का निम्नतम बिन्दु BH के ठीक बराबर होता।[21] अतिरिक्त लाभ $eh'qk$ $(=ob'qk-ob'qnm)$ प्राप्त करने के लिए प्रत्येक अपनी उत्पत्ति का समायोजन ob' पर करता, जो उसके सीमान्त लागत वक्र mm' और उसके सीमान्त आय वक्र kd के प्रतिच्छेद के संगत है। ये अतिरिक्त लाभ अन्य को इस क्षेत्र की ओर आकर्षित करते, उत्पत्ति का विस्तार होता, और चित्र 3c में माग रेखाएं नीचे को गिरती और लागत वक्र ऊपर को उठते, जो वृहत्तर उत्पत्ति के कारण, जैसा चित्र 3a में दिखाया गया है, कीमत के गिरने और लागत के बढ़ने के संगत होते। यह गति तब तक होती रहती जब तक माग रेखा लागत वक्र cc' के निम्नतम बिन्दु पर उसकी स्पर्श-रेखा न हो जाती, और यह समायोजन सन्तुलन कीमत AP पर पूर्ण हो जाता (चित्र 3a)। यदि प्रारम्भ में कीमत BQ न होकर AP से कम होती तो एक-एक पूर्ति वक्र माग रेखाओं से ऊपर होते, और समायोजन उत्पादकों द्वारा उद्योग छोड़ने के कारण तब तक होता जब तक कि पूर्ति वक्र नीचे गिर कर और मांग वक्र ऊपर उठ कर स्पर्श-बिन्दु पर नही आ जाते।[22] शुद्ध प्रतियोगिता मे अन्तिम सन्तुलन समायोजन मे न केवल (1) पूर्ति और माग का समीकरण और (2) प्रत्येक प्रतियोगी के लिए अधिकतम लाभ सन्निहित है, बल्कि (3) प्रत्येक सिब्बदी मे उत्पादन के दक्षतम पैमाने की प्राप्ति भी सन्निहित है।

सन्तुलन से विचलन पर टिप्पणी[23]

शुद्ध प्रतियोगिता में सन्तुलन से उच्चावचन, या विचलन, की प्रकृति के बारे में कुछ कहा जा सकता है। विशेष करके, इस मिथ्या धारणा से बचना चाहिए कि वे किसी न किसी प्रकार एकाधिकार के तत्वों से सम्बन्धित हैं। शुद्ध और पूर्ण प्रतियोगिता के भेद को याद करें। शुद्धता केवल एकाधिकार के अभाव की अपेक्षा करती है और वह तब प्राप्त हो जाती है जब **एक ही** (पूर्णतया मानकित) उत्पाद के बहुत अधिक क्रेता और विक्रेता होते हैं। पूर्णता अन्य मामलों से भी सम्बन्धित है : साधनों की गतिशीलता, पूर्ण ज्ञान, इत्यादि।[24] हमारे उद्देश्य के लिए पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षाओं को गिनाना आवश्यक नही है, बल्कि केवल इतना बताना है कि प्रतियोगिता की पूर्णता उसकी शुद्धता से भिन्न है, जहां शुद्धता का अर्थ एकाधिकार तत्वों से मुक्ति है। इसका अभिप्राय यह है कि पूर्णता के विचार का प्रयोग एकाधिकार और एकाधिकारिक प्रतियोगिता एवं प्रतियोगिता के लिए किया जा सकता है। उदाहरणार्थ,

एकाधिकरी की स्थिति में साधनों की गतिशीलता जो उसे अपनी उत्पत्ति को इष्टतम राशि के साथ शीघ्रतापूर्वक समायोजित करने में और उस उत्पत्ति के सन्दर्भ में अपने साधनों को सर्वाधिक प्रभावकारी रूप से नियोजित करने में समर्थ करती है, हो भी सकती है और नहीं भी। इसी प्रकार उसे मांग का और अपनी लागत का पूर्ण ज्ञान, जो उसे अपने लिए सबसे अच्छी कीमत को ठीक-ठीक जानने में समर्थ करता है, हो भी सकता है और नहीं भी। ये ही तथ्य एक एकाधिकारिक प्रतियोगी समूह के लिए भी सच है। एकाधिकार के तत्व सन्तुलन की परिभाषा बदल देते है, परन्तु जिस सुविधा से वह प्राप्त होता है उसे नही बदलते। मांग और पूर्ति की एक-सी दशाएं होने पर, एकाधिकार में सन्तुलन समायोजन एक चीज है, शुद्ध प्रतियोगिता में दूसरी, और एकाधिकारिक प्रतियोगिता में एक समूह के लिए तीसरी। परन्तु किसी स्थिति में जिस यथार्थता के साथ वास्तविक कीमत सन्तुलन समायोजन के निकट होती है वह एक दूसरी चीज पर आश्रित है—उस "पूर्णता" पर जिससे सम्बन्धित आर्थिक शक्तियाँ परिणाम को पाती है। पूर्णता के इस विचार में क्या सम्मिलित है और करना चाहिए इस पर विचार करने पर हम अपनी मुख्य विषय वस्तु, एकाधिकार और प्रतियोगिता के सम्बन्ध, से बहुत दूर हट जाएगे।

यदि शुद्ध रूप से प्रतियोगी बाजार पूर्ण भी है तो, सही अर्थो में, सन्तुलन से विचलन क्षण भर के लिए भी नही हो सकते। इसलिए यह सामान्य उपपत्ति कि सन्तुलन कीमत के अलावा कोई दूसरी कीमत अपने को बनाए नही रख सकती, इसकी उपपत्ति अवश्य समझी जानी चाहिए कि ऐसी कीमत पल भर के लिए भी प्रकट नहीं हो सकती है। न तो किसी सन्तुलन की ओर गति होगी, न ही उसके चारों ओर दोलन होंगे। सन्तुलन कीमत मांग और पूर्ति की शक्तियों की क्रिया के द्वारा प्राप्त नही होगी। जिस क्षण बाजार अस्तित्व में आएगा उसी समय स्थायित्व की प्राप्ति के द्वारा सन्तुलन का भी अस्तित्व होगा।

एक अन्य दृष्टिकोण के अनुसार, पूर्णतया प्रतियोगी बाजार में अन्तःकालीन विचलन हो सकते हैं, जिनका स्थान अन्त में एक स्थायी समायोजन ले लेगा। उदाहरणार्थ, नीलाम की बोली एक अस्थायी कीमत है, जो जैसे ही ऊंची बोली बोली जाती है स्वतः रद्द हो जाती है। बेकार बोलियों का यह सिलसिला अन्ततोगत्वा एक अन्तिम कीमत की प्राप्ति के असंगत नही है। ऍंजवर्थ ने प्रतियोगिता के व्यापक सिद्धान्त का वर्णन ऐसे ही शब्दों में किया है। वे बाजार को ऐसी संविदाओं की प्रणाली मानते हैं जो लगातार किये जाते रहते हैं। "अन्तिम निपटारा" तब तक नहीं होता जब तक "बाजार ऐसे करारों को पा नही लेता जिन्हें फिर से संविदा करने वाले सब लोगों को लाभ पहुँचा कर बदला नही जा सकता है।"[25] इस प्रकार, यद्यपि अस्थायी परिवर्तन हो सकते है, तथापि एक अन्तिम निर्धारित कीमत के आने तक होने वाली सविदाओं के द्वारा बाजार अन्त

में "पूर्णता" प्राप्त कर लेता है। इन दो स्थितियों में, यह कि विचलन हो ही नहीं सकते और यह कि हो तो सकते हैं परन्तु अन्त में लुप्त हो जाते हैं, शाब्दिक से अधिक भेद नहीं हो सकता। ये दोनों एक पूर्णतः (और शुद्धतः) प्रतियोगी बाजार में आर्थिक शक्तियों के समायोजन का संतोषजनक वर्णन करती हैं।

लेकिन वास्तविक जीवन के तथ्य बाकी रहते हैं; संतुलन की ओर गति और उसके चारों ओर उच्चावचन स्वभावतया अपने पीछे वास्तविक कीमतों की एक लीक छोड़ जाते है, जो हो सकता है कि दुहराई न जाएं, परन्तु जो अन्तिम है। वास्तव में बाजार न्यूनाधिक अपूर्ण होते है। इन वास्तविक कीमतों का सिलसिला सन्तुलन कीमत से किस प्रकार सम्बन्धित है, और घटती-बढ़ती कीमतों मे बेची गई राशियों और सन्तुलन राशि की तुलना कैसे की जाए? इस सरल निष्कर्ष का कि वास्तविक परिणामो की "प्रवृत्ति" संतुलन की ओर होगी, औचित्य प्रतिपादित करना कठिन है।

कीमतों के उच्चावचन बिक्री के परिमाण को मांग और पूर्ति वक्रों द्वारा बताई जाने वाली सन्तुलन राशि से सामान्यतया अधिक बना देते हैं। क्योंकि सन्तुलन कीमत से उच्चतर सब कीमतों पर बहिष्कृत माने गए विक्रेताओं को अपना माल बेचने का मौका मिलता है और कोई कारण नही है कि उनमें से कुछ ऐसा क्यों न करें। इसी प्रकार, जब उच्चावचन के कारण कीमत सन्तुलन कीमत से नीचे आ जाती है तो बहिष्कृत माने गए क्रेता भी बाजार में शामिल हो जाते है। क्योकि किसी भी परिस्थिति में सामान्यतया सम्मिलित किए गए क्रेता और विक्रेता नही छोड़े जा सकते हैं, इसलिए जिस कुल राशि का विनिमय किया जाता है वह मांग और पूर्ति को समीकृत करने वाली राशि से अधिक अवश्य होनी चाहिए। यह तर्क एक चित्र द्वारा स्पष्ट हो जाएगा। मान लो कि सन्तुलन कीमत BP है (चित्र 4), और मान लो कि वास्तविक कीमत AP' और CP'' के बीच रहती है। B और C के बीच के विक्रेता O से B तक के क्रेताओं के साथ BP से AP' के बीच किसी कीमत पर सौदा पूरा कर सकते हैं। मान लो कि ये क्रेता OF द्वारा बताए जाते हैं। इसी प्रकार, BC क्रेता OF विक्रेताओं के साथ BP से CP'' तक की कीमतों पर सौदा कर सकते हैं। और तब F से B तक के क्रेता और विक्रेता साथ हो जाएं और तब बिक्री का कुल परिमाण OC है। यह अधिकतम राशि को बताता है; OB न्यूनतम राशि है; और वास्तविक राशि इन दो सीमाओं के बीच कहीं होगी।[26] इससे यह परिणाम निकलता है कि जिस औसत कीमत BP पर यह राशि (OB से अधिक, OC से कम) वास्तव में बेची जाती है वह उस कीमत से सामान्यतया अधिक होती है जिस पर यह राशि एक पूर्ण बाजार में बेची जाती, क्योंकि यह राशि OB से अधिक है, और मांग वक्र DD' उस अकेली कीमत को बताता है जिस पर वह

बेची जाती ।[27] अन्त में, यदि *OB* राशि घटती-बढ़ती कीमतों पर बेची जाती तो,

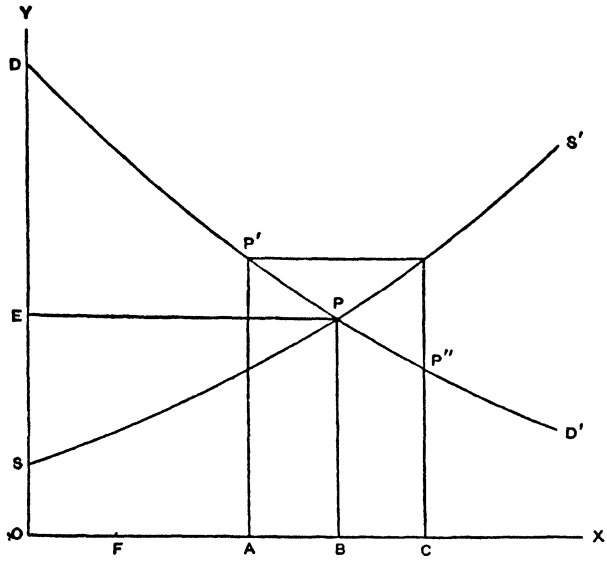

चित्र 4

समरूप कारणों से, *BP* से अधिक औसत कीमत होती ।

सन्तुलन कीमत की प्राप्ति में सट्टे की क्रिया द्वारा होने वाली सहायता या रुकावट के सम्बन्ध में कुछ और कहा जा सकता है । कभी-कभी यह समझा जाता है कि जब कीमत बहुत ऊंची होती है तो सटोरिए बेचेंगे या खरीदना बन्द कर देंगे, फलतः कीमत को गिराने के कारण होंगे । कीमत के बहुत नीची होने पर इसका उलटा होगा । इस प्रकार भावी कीमतों की प्रत्याशा पर आधारित कार्यों को सन्तुलन की दशाओं को अधिक शीघ्र प्राप्त करने वाले और बनाए रखने वाले उपकरण के रूप में देखा जाता है ।[28]

यद्यपि **हो सकता है** कि सट्टा वास्तव में कीमतों को स्थिर करता हो, परन्तु लेखक की समझ मे ऐसा कोई पूर्वसिद्ध (a priori) कारण नहीं है कि ऐसा क्यों हो, या यह कि सट्टे के परिणामस्वरूप अन्त में सन्तुलन कीमत क्यों स्थापित हो । सटोरिए का उद्देश्य कीमतों की **गतिविधि** से लाभ प्राप्त करना है । यह तर्क कि सट्टा स्थिरीकरण करता है इस अव्यक्त कल्पना पर आधारित है कि उसकी दिलचस्पी केवल उस गतिविधि में है जो सन्तुलन कीमत की दिशा मे है । उदाहरणार्थ, यह मान लिया गया है कि जब कीमत सन्तुलन कीमत से कम होता है तो वह बेचना बन्द कर देता है और खरीदने लगता है । इसकी प्रवृत्ति कीमत

को ऊंचा करने या उसके उतार को रोकने की होगी । जब सन्तुलन कीमत प्राप्त हो जाती है तो वह फिर बेचने लगेगा और कीमत के चढ़ाव को रोक लेगा । परन्तु यदि कीमत बढ़ रही है तो वह सन्तुलन कीमत पर क्यों बेचे ? बल्कि वह और क्यों न खरीदे या कम से कम बेचना क्यों न बन्द कर दे, और ऐसा करके इस गति को और बढावा क्यों न दे ? दूसरे शब्दों में, वह सन्तुलन कीमत से दूर ले जाने वाली गतिविधि में लाभ के अवसरों की उपेक्षा क्यों करे ?

वस्तुतः, यह अधिक सम्भाव्य लगता है कि सट्टे के कारण अधिक और बड़े उच्चावचन होंगे । बाजार मे बड़ी संख्या मे ऐसे व्यापारियों का होना जिनके क्रय और विक्रय एक दूसरे को अंत मे काट देते है, क्योंकि वे सब एक दिशा में जाते है और फिर दूसरी दिशा में, मांग और पूर्ति में अनियमित विचलन ले आते है । सटोरियों द्वारा प्रत्येक गतिविधि से लाभ उठाने के प्रयत्नों के कारण प्रत्येक गतिविधि अधिक तीव्र हो जाती है । जब गतिविधि धीमी पड़ जाती है या रुक जाती है तो अपने लाभ के नकदीकरण की और नये लाभो का आधार बनाने की चिन्ता, हो सकता है कि, सटोरियों को पूरी तरह से रोक दे और विपरीत दिशा मे चला दे, जिसके बाद वह सटोरियों की स्वयं की क्रियाओं के कारण सवेग प्राप्त कर लेगी ।[29] निस्सन्देह, यदि प्रत्येक यह जानता कि सन्तुलन कीमत क्या है तो उससे किसी भी प्रकार के विचलन न होते, और बाजार में केवल आरभिक "असली" व्यापारी होने पर ऐसा होता । पूर्णतर ज्ञान कीमतों को स्थिर करेगा, परन्तु अधिक संख्या मे सटोरिए ऐसा नही करेंगे ।

यदि यह सच है कि सट्टा उच्चावचन बढ़ा देता है, तो इसे उच्चावचन के कीमतों पर प्रभाव के बारे मे पहले के निष्कर्ष के साथ जोड़ा जा सकता है । सट्टा कीमतों को, जो वे अन्यथा होती उनसे, ऊंचा कर देता है ।

अध्याय 3

द्वयधिकार और अल्पाधिकार[1]

1. समस्या का वर्णन

इस अध्याय में एकाधिकार और प्रतियोगिता की मध्यवर्ती स्थिति का प्रतिपादन किया गया है, जिसमें विक्रेताओं की सख्या एक से अधिक है, परन्तु इतनी बड़ी नही है कि बाजार-कीमत पर किसी एक के प्रभाव को नगण्य बना दे।

"पूर्ण" प्रतियोगिता के और एकाधिकार के परिणामो के बारे में बहुत कुछ सामान्य सहमति पाई जाती है। इसके विपरीत, इस समस्या के जो समाधान प्रस्तुत किए गए है वे एक दूसरे से बहुत भिन्न है। दो विक्रेताओं मे प्रतियोगिता के परिणाम के बारे में निम्नलिखित विचार प्रकट किए गए है :—एकाधिकार कीमत, प्रतियोगी कीमत, इन दो के बीच एक निर्धार्य कीमत, इन दो के बीच एक अनिर्धार्य कीमत, निरन्तर दोलायमान कीमत, और कोई कीमत का न होना क्योंकि यह समस्या असम्भव है। इतने विभिन्न उत्तरों की व्याख्या कैसे की जाए ? अशतः इस भिन्नता का कारण तर्क करने में त्रुटि है। परन्तु कहीं अधिक अश में इसका कारण एक प्रकटतः सरल परिकल्पना की वास्तविक जटिलता है। इसलिए मै पहले बारी-बारी से उन विविध उप-समस्याओं पर विचार करूंगा जिनमें केन्द्रीय समस्या को विभाजित किया जा सकता है। जहाँ भी सम्भव होगा, विशेष लेखकों को उनके निष्कर्षों के लिए समुचित कल्पनाओं के साथ सम्बन्धित किया जाएगा।[2]

या तो क्रेता, या विक्रेता, या दोनों, अल्प सख्या में हो सकते हैं। हम अपने को उस समस्या तक सीमित रखते है जिसमें अपेक्षाकृत कम सख्या मे विक्रेता क्रेताओं के एक बड़े समूह के साथ व्यापार करते है। यह समस्या एकाधिकार की साधारण समस्या का विस्तरण है जिसमें अनेक विक्रेता सम्मिलित कर लिये जाते है, परन्तु इतने नहीं कि कुल पूर्ति मे प्रत्येक के अंशदान को नगण्य बना दें।[3] दो विक्रेताओं, या द्वयधिकार, की विशिष्ट समस्या के द्वारा सारभूत सिद्धान्त ढूंढ़े गए हैं। चूकि हमारा उद्देश्य संख्या की न्यूनता में सन्निविष्ट विशेष प्रकार के एकाधिकार तत्वों पर ध्यान केन्द्रित करना है, हम अन्य सब सन्दर्भों में प्रतियोगिता को शुद्ध मानते हैं। विशेष करके, बेचा जाने वाला उत्पाद पूर्णतः मानकित है, और सब क्रेताओं और विक्रेताओं का एक दूसरे से पूरा सम्पर्क है, ताकि वे वास्तव में एक ही बाजार में हैं।

इस समस्या की एक शर्त दोनों विक्रेताओं का सम्पूर्ण स्वातन्त्र्य अवश्य होना चाहिए, क्योंकि, प्रत्यक्ष है कि, यदि वे मिल जाते है तो एकाधिकार हो जाता है। लेकिन, इस स्वातन्त्र्य की व्याख्या सावधानी से की जानी चाहिए, क्योंकि, स्थिति के सारभूत गुणों को ध्यान में रखते हुए, जब केवल दो या कुछ विक्रेता होते है तो उनके **भाग्य स्वतन्त्र** नही है। स्वतन्त्रता का अर्थ केवल इतना है कि कोई वास्तविक, या मौन, समझौता नही हो सकता है। प्रत्येक को परिस्थिति स्वयं इसके लिए बाध्य कर देती है कि वह अपनी नीति का निर्धारण करने मे अपने स्पर्धी की नीति को ध्यान मे रखे, और इसका अर्थ यह नही लगाया जा सकता कि उनमें "मौन समझौता" है।

उसकी अपनी नीति के निर्धारण मे उसके स्पर्धी की नीतियां चाहे कितने ही जटिल रूप मे क्यो न आए, यह सच है। अपने स्पर्धी की **वर्तमान** नीति को देखते हुए, अर्थात् यह मानते हुए कि वह नही बदलेगी, हो सकता है कि एक निश्चित चाल, मान लो कीमत मे कटौती, विक्रेता के लिए लाभप्रद हो। लेकिन यदि यह निश्चित है कि स्पर्धी प्रति-चाल चलेगा, तो यह मान लेने का कोई कारण नही है कि वह ऐसा नहीं करेगा; और पहले विक्रेता का इस तथ्य को समझने का अर्थ स्वातन्त्र्य का नकार नही लगाया जा सकता कि उसके स्पर्धी की नीति दत्त-सामग्री नही है, बल्कि अंशतः उसकी अपनी नीति से निर्धारित होती है। इसका अर्थ केवल इतना है कि वह अपनी क्रियाओं के परोक्ष परिणामों पर—वह अपने पर अपनी ही नीति के प्रभाव पर, जिनके बीच मे उसके प्रतियोगी की नीति आ जाती है—विचार करता है। निस्सन्देह, वह इन को ध्यान मे रख सकता है और नही भी, परन्तु दोनों स्थितियों में वह समान रूप से स्वतन्त्र है।

यदि एक विक्रेता अपनी नीति को यह मानकर तय करता है कि उसकी क्रियाओं का उसके स्पर्धियों पर कोई प्रभाव नही पड़ता, तो हम कह सकते हैं कि वह केवल इस बात को ध्यान मे रखता है कि उसका कीमत पर प्रत्यक्ष प्रभाव क्या है। चूँकि द्वयधिकार की समस्या के बारे मे प्राय. इसी प्रकार सोचा गया है, इसलिए पहले हम इस कल्पना के अन्तर्गत मिलने वाले परिणामो पर विचार करेंगे। इसके बाद यह तर्क प्रस्तुत किया जाएगा कि इस केन्द्रीय परिकल्पना से कि प्रत्येक विक्रेता अधिकतम लाभ प्राप्त करना चाहता है, पूर्णतया संगत केवल वह हल है जिसमें वह अपने प्रति-द्वन्द्वियों पर (और अतः फिर अपने पर) अपनी नीति के प्रभाव को ध्यान में रखता है। इस दूसरी स्थिति मे, हम कह सकते है कि वह कीमत पर अपने **कुल** प्रभाव (प्रत्यक्ष एवं परोक्ष) पर विचार करता है।

इन प्रारम्भिक बातों को समाप्त करने के पहले एक और भेद कर लिया जाना चाहिए। उसके प्रतिद्वन्द्वी की नीति या तो प्रस्तुत की गई राशि के या जिस कीमत पर राशि प्रस्तुत की जाती है उसके सम्बन्ध मे स्थिर रह सकती है। जैसा हम आगे देखेंगे

इन दो स्थितियों में हल भिन्न-भिन्न होंगे ।

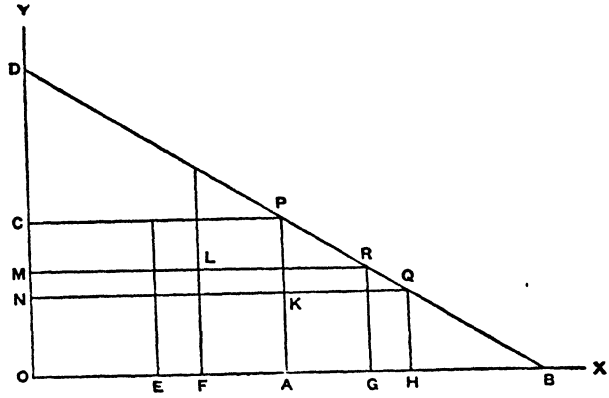

चित्र 5

2. वह स्थिति जिसमें पारस्परिक आश्रितता की उपेक्षा की गई है : प्रत्येक विक्रेता अपने प्रतिद्वन्द्वी को पूर्ति स्थिर मानता है

पहले हम मान लेते है कि प्रत्येक विक्रेता उस पूर्ति को निर्धारित करता है जो, उसके प्रतिद्वन्द्वी की वर्तमान पूर्ति को देखते हुए, उसके लिए सबसे लाभप्रद है । कूर्नो ने समस्या के बारे में इसी ढग से सोचा था, और यहा दिया गया प्रतिपादन उनके सिद्धान्त का गणितरहित शब्दों में एक विशिष्ट अनुप्रयोग है ।[4] कूर्नो की भाँति हम कल्पना करते है कि दो खनिज स्रोत है जिनका उपयोग उनके स्वामी उत्पादन-व्यय के बिना कर रहे है, और दोनों एक ही बाजार में बेचते है । प्रतिपादन को सरल बनाने के लिए हम यह कल्पना भी करते है कि खनिज जल का मांग वक्र एक सरल रेखा है (चित्र 5 में DB), और यह कि $OA = AB =$ प्रत्येक स्रोत की प्रति दिन की उत्पत्ति, जिससे जब कुल सम्भव उत्पत्ति बाजार में प्रस्तुत की जाती है तो कीमत ठीक शून्य है। यदि ये दो उत्पादक मिल जाते तो वे दोनों मिलकर OA राशि को AP कीमत पर बेचते, जिस पर उनका संयुक्त लाभ, $OAPC$, अधिकतम होता । परन्तु चूंकि वे स्वतन्त्र है, यदि उनमें से कोई एक अकेला इस राशि को (अपनी सम्पूर्ण उत्पत्ति को) बेच रहा है और इस एकाधिकार लाभ को प्राप्त कर रहा है, तो उसका प्रतिद्वन्द्वी अपने हित मे जो सबसे अच्छा अतिक्रमण कर सकता है वह है AH राशि बेचना, जो कुल पूर्ति को OH और कीमत को HQ बना देती है (क्योकि त्रिभुज ABP के अन्तर्गत सबसे बडा आयत $AHQK$ हो सकता है) । ऐसा होने पर, अब पहला उत्पादक पाएगा कि उसके लाभ, $OAKN$, कम हो गए है, और वह उन्हे अपनी उत्पत्ति को $\frac{1}{2}(OB - AH)$

कम करके बढ़ा सकता है। यह प्रक्रिया चलती रहेगी ; अपने प्रतिद्वन्द्वी की चालों के कारण पहला उत्पादक क्रमिक रूप से अपनी उत्पत्ति को घटाने के लिए बाध्य हो जाएगा, दूसरा उत्पादक अपनी उत्पत्ति को धीरे-धीरे तब तक बढ़ाता चला जाएगा जब तक कुल उत्पत्ति में दोनों का अंशदान बराबर नही हो जाएगा। इन समायोजनों में प्रत्येक उत्पादक अपनी पूर्ति को $\frac{1}{2}(OB$—दूसरे की पूर्ति) के बराबर करके अधिकतम लाभ हमेशा प्राप्त करेगा।[5]

कुल उत्पत्ति होगी :

$$OB\ \left(1-\tfrac{1}{2}+\tfrac{1}{4}-\tfrac{1}{8}+\tfrac{1}{16}-\tfrac{1}{32}\ldots\ldots\right)=\tfrac{2}{3}\ OB\ (=OG).$$

पहले उत्पादक की उत्पत्ति होगी :

$$OB\ \left(1-\tfrac{1}{2}-\tfrac{1}{8}-\tfrac{1}{32}\ldots\ldots\right)=\tfrac{1}{3}\ OB\ (=\tfrac{1}{2}\ OG).$$

दूसरे उत्पादक की उत्पत्ति होगी :

$$OB\ \left(\tfrac{1}{4}+\tfrac{1}{16}+\tfrac{1}{64}+\ldots\ldots\right)=\tfrac{1}{3}\ OB\ (=\tfrac{1}{2}\ OG).$$

प्रत्येक श्रेणी के क्रमिक पद क्रमिक समायोजनों को, जैसे वे बताए गए है, बताते है। चाहे कही से गतिविधि शुरू क्यों न हो, अन्तिम सन्तुलन यही होगा। यदि, यहाँ वर्णित विस्तृत गतिविधि के स्थान पर, ये दो उत्पादक अपने उत्पादों को $\frac{1}{2}\ OA$ से धीरे-धीरे और एक साथ बढ़ाएँ, या वे किसी भी अन्य कल्पनीय रीति से क्यों न चलें, जब तक इस समस्या की इन सारभूत शर्तों का निर्वाह किया जाता है कि प्रत्येक अपने लाभ को दूसरे से स्वतन्त्र रूप से अधिकतम करना चाहता है और दूसरे पर अपने प्रभाव की उपेक्षा करता है, परिणाम यही होगा। चित्र 5 को देखने से स्पष्ट है कि यदि कोई एक विक्रेता $OF\ \left(=\frac{1}{3}\ OB\right)$ राशि प्रस्तुत करता है, तो उसका प्रतिद्वन्द्वी अपने हित मे जो सबसे अच्छा काम कर सकता है वह यह है कि $\frac{1}{2}(OB-OF)$ राशि प्रस्तुत करे, जो FG है और OF के बराबर है, और इस प्रकार वह $FGRL$ लाभ प्राप्त करता है। चूकि दूसरा उसी स्थान में है, इसलिए इस बिन्दु पर स्थायी सन्तुलन होगा।[6]

इसी प्रकार यह भी प्रमाणित किया जा सकता है कि यदि तीन उत्पादक होते तो कुल पूर्ति $\frac{3}{4}\ OB$ होती और प्रत्येक की पूर्ति इसका $\frac{1}{3}$ होती और इसी प्रकार आगे भी। यदि 100 उत्पादक होते तो पूर्ति $\frac{100}{101}\ OB$ होती, और यदि उत्पादकों की संख्या बहुत बड़ी होती तो पूर्ति प्रभावतः OB होती, कीमत प्रभावतः शून्य होती (सामान्यतया, शुद्धतः प्रतियोगी कीमत—जो वर्तमान कल्पनाओं के अन्तर्गत शून्य है)। इस समस्या में लागत वक्रों पर भी विचार करने पर सारभूत निष्कर्ष बदलता नहीं, जो यह है कि जैसे-जैसे विक्रेताओं की सख्या एक से बढ़ती हुई अनन्त होती है, तो कीमत जो वह एकाधिकार की दशाओं मे होती उससे लगातार गिरकर उस कीमत के बराबर हो जाती है जो वह शुद्ध प्रतियोगिता की दशाओं मे होती; और यह कि विक्रेताओ की संख्या कितनी ही भी हो कीमत पूर्णतया निर्धारणीय है। विक्रेताओं की किसी दी हुई संख्या के लिए, सन्तुलन कीमत ह्रासमान लागत में स्थिर लागत की

अपेक्षा शुद्धत: प्रतियोगी कीमत के निकटतर होगी, और वह वर्धमान लागत की अपेक्षा स्थिर लागत में उसके निकटतर होगी। यह निष्कर्ष (इस स्थिति में) क्रेताओं की सीमित सम्भव उत्पत्ति पर आश्रित नहीं है; वह यही होगा यदि कोई विक्रेता अकेला OB या अधिक राशि का उत्पादन कर सकता है।

3. वह स्थिति जिसमें पारस्परिक आश्रितता की उपेक्षा की गई है : प्रत्येक विक्रेता अपने प्रतिद्वन्द्वी की कीमत स्थिर मानता है

अब हम मान लेते है कि प्रत्येक विक्रेता अपने प्रतिद्वन्द्वी की (पूर्ति के स्थान पर) कीमत को अपरिवर्ती मानता है। इन दो प्रकार के समायोजनों मे भिन्नता की प्रकृति को एक सरल उदाहरण से अच्छी तरह समझा जा सकता है। चित्र 5 मे, यदि एक उत्पादक OA राशि बेचता रहता है तो उसका प्रतिद्वन्द्वी इस राशि पर अतिक्रमण नही कर सकता; अधिक से अधिक वह यह कर सकता है कि स्वय AH राशि प्रस्तुत करके उसे इस राशि को निम्नतर कीमत पर बेचने के लिए बाध्य कर दे। लेकिन, यदि पहला उत्पादक AP कीमत लेता रहता है तो दूसरा, अपनी कीमत को थोडा-सा कम करके, OA राशि (उसकी सम्पूर्ण उत्पत्ति) बेच सकता है, और पहले को ग्राहक-रहित बना सकता है। इन दो प्रकार के समायोजनों के भेद को सक्षेप मे इस प्रकार लिखा जा सकता है कि यदि एक विक्रेता अपनी पूर्ति को स्थिर रखता है, तो दूसरे की गतिविधि द्वारा उसकी कीमत का अतिक्रमण किया जाता है; यदि वह कीमत को स्थिर रखता है, तो दूसरे के द्वारा उसकी पूर्ति का अतिक्रमण किया जाता है। पहली स्थिति में, जैसाकि हम देख चुके है, उसके प्रतिद्वन्द्वी की आरम्भिक चाल AH राशि को HQ कीमत पर प्रस्तुत करना है; दूसरी स्थिति में, उसकी चाल अपनी सम्पूर्ण उत्पत्ति $OA(=AB)$ को AP से किंचित् कम कीमत पर बेचना है।

इस स्थान पर यह आपत्ति की जा सकती है कि यदि दोनों उत्पाद एकसम हैं और यदि ये दो उत्पादक एक पूर्ण बाजार में प्रतियोगिता कर रहे हैं, तो एक ही समय में दो कीमतों का अस्तित्व नहीं हो सकता, और इसलिए यह कि एक पूर्णत: मानकित उत्पाद के लिए इस प्रकार की प्रतियोगिता असंगत ठहराई जानी चाहिए।[7] लेकिन, इन अन्तरों को अनन्तिम और एक सम्भव अन्तिम निर्धारण के, जिसमे वे एक अकेली कीमत में बदल जाते है, संगत समझा जा सकता है; और हम उन्हें ऐसा ही समझेंगे।

यदि प्रत्येक प्रतियोगी कल्पना कर लेता है कि उसके प्रतिद्वन्द्वी की कीमत नही बदली जाएगी, तो वह अपनी कीमत किंचित् नीचे स्थिर करके बाजार पर हावी हो सकता है और अपनी सम्पूर्ण उत्पत्ति को बेच सकता है, और अपने लाभ को प्रभावत: उसी अनुपात में बढ़ा सकता है जिसमें उसकी बिक्री बढ़ती है। यही कल्पना करते हुए उसका प्रतिद्वन्द्वी अपनी कीमत में और कटौती करेगा और यह अधोमुखी गति तब तक होती रहेगी जब तक उनकी संयुक्त उत्पत्ति बिक नहीं जाती, अर्थात्

(इस उदाहरण में) जब तक कीमत शून्य नहीं हो जाती। जब कीमतों का समायोजन किया जाता है (और जब परोक्ष प्रभावों की उपेक्षा की जाती है) तो अनेक सम्भव हलों में से यह पहला हल है।

इसी दृष्टिकोण से कूर्नो के सिद्धान्त पर पहले-पहल आक्षेप किए गए। बर्ट्रेन्ड ने यह कह कर उनका खण्डन किया कि कीमत के गिरने की कोई सीमा नही होगी (स्पष्टत: उन्होंने कल्पना की कि पूर्ति की कोई सीमा नही है), क्योंकि प्रत्येक उत्पादक अपनी कीमत कम करके अपनी उत्पत्ति को हमेशा दूना कर सकता है।[8] वर्धमान प्रतिफल की स्थिति के विशेष सन्दर्भ में, मार्शल ने तर्क किया कि "···यदि प्रत्येक प्रतिद्वन्द्वी की बिक्री का क्षेत्र असीम हो और जिस पण्य का वे उत्पादन करते हैं वह वर्धमान प्रतिफल के नियम का पालन करे तो, जब प्रत्येक एक ही पैमाने पर उत्पादन करता है, प्राप्त सन्तुलन की स्थिति अस्थायी होगी। क्योंकि यदि किसी भी प्रतिद्वन्द्वी को कुछ श्रेष्ठता प्राप्त हो और वह उत्पादन का पैमाना बढ़ाए तो फलस्वरूप उसे और भी श्रेष्ठता प्राप्त हो जाएगी और वह शीघ्र ही अपने सब प्रतिद्वन्द्वियों को इस क्षेत्र से निकाल बाहर करेगा। कूर्नो का तर्क ऐसी परिसीमाओं को समाविष्ट नही करता जो इस परिणाम को रोकने के लिए आवश्यक हैं।"[9] यद्यपि एक प्रतिद्वन्द्वी को "श्रेष्ठता" प्राप्त होने का क्या अर्थ है यह निश्चित नही है, तथापि यह सबसे सम्भाव्य प्रतीत होता है कि कूर्नो के सन्तुलन को नष्ट करने वाले साधन के रूप मे मार्शल के दिमाग में रिआयती कीमत थी। अपनी पहले की कृति में परेटो ने कहा था कि दो विक्रेताओ के होने पर प्रतियोगिता का परिणाम ठीक वही होगा जैसे कि कई विक्रेता हों, क्योंकि प्रत्येक अपनी कीमत को तब तक गिराता जाएगा जब तक उसका सब उत्पाद बिक नही जाता।[10] वे आगे कहते है कि यदि कुल पूर्ति नियत हो तो कीमत की एक निचली सीमा होगी।

वास्तव में, यह निष्कर्ष मुश्किल से कूर्नो का खण्डन प्रतीत होता है, जब तक कि इसके विलोम को स्वीकार न किया जाए कि अपनी बारी में कूर्नो इसका खण्डन करते है। ये दोनो एक दूसरे का विरोध नही करते, बल्कि पूरक है। प्रत्येक एक विशिष्ट कल्पना पर आधारित है—पहला इस पर कि जो विक्रेता थोड़ी देर के लिए निष्क्रिय है वह पूर्ति को स्थिर रखेगा, दूसरा इस पर कि वह कीमत स्थिर रखेगा। इस केन्द्रीय परिकल्पना से कि प्रत्येक अपने लाभ को अधिकतम करना चाहता है, इन दो में से किसी के पक्ष में, उसकी आगे परीक्षा किए बिना, यह नहीं कहा जा सकता कि वह सच है।

जब समायोजन कीमतों का किया जाता है तो एक दूसरा सम्भव हल एॅजवर्थ ने सुझाया है।[11] वह यह है कि "एक अनिर्धारित क्षेत्र होगा जिसमें मूल्य का सूचक दोलन करेगा, अथवा वस्तुत: समय की अनिश्चित अवधि तक अनियमित रूप से कंपन (vibrate) करेगा,"[12] क्योंकि जैसे ही वह अभी-अभी वर्णित निचली सीमा पर पहुँचता है, कोई भी विक्रेता उसे उठा कर लाभ प्राप्त करता है। वे एक अनोखी रचना

का उपयोग करते है, जिसकी प्रतिकृति चित्र 6 है, जो यह दिखाती है कि सम्पूर्ण बाजार दो विक्रेताओं के बीच सम रूप से बँटा हुआ है। उनके उत्पादों की दो मांग

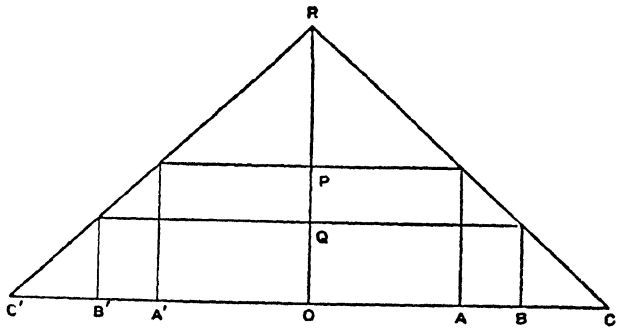

चित्र 6

रेखाएं RC और RC' है और प्रत्येक की अधिकतम सम्भव उत्पत्ति OB और OB' हैं। यदि वे दोनों मिल जाते है तो OP कीमत स्थिर होगी और OQ कीमत पर सम्पूर्ण उत्पत्ति $2OB$, या $B'B$, बिक जाएगी। अब पहला उत्पादक जो आधे क्रेताओं के साथ व्यापार कर रहा है, OP कीमत नियत करेगा, क्योंकि यह कीमत उसके लाभ को अधिकतम कर देती है। तब दूसरे उत्पादक के लिए उसी कीमत पर OA' राशि बेचने की (अपने प्रतिद्वन्द्वी के साथ बाजार मे हिस्सा रखने की) अपेक्षा OP से किंचित् कम कीमत नियत करना, पहले विक्रेता के ग्राहकों में से कुछ को पा लेना, और अपनी सम्पूर्ण उत्पत्ति को बेचना अधिक लाभप्रद होगा। जब पहला उत्पादक देखेगा कि उसके ग्राहक उसे छोड़कर चले जा रहे है तो वह अपनी कीमत कम कर देगा। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक कीमत OQ नही हो जाती।

यहाँ तक दिया गया तर्क प्रतियोगी बोली लगाने के नतीजे के बारे मे अभी-अभी दिए गए तर्क के अनुरूप है। परन्तु एॅजवर्थ के अनुसार यह कीमत स्थायी नहीं है। "इस स्थान पर ऐसा प्रतीत हो सकता है कि उत्पादक सन्तुलन पर आ गए होंगे। निश्चित है कि किसी भी एकाधिकारी के हित में यह नहीं है कि कीमत को और आगे घटाए। परन्तु यह प्रत्येक के हित में है कि कीमत बढ़ाई जाए। इनमें से एक एकाधिकारी द्वारा नियत कीमत OQ पर वह $2N$ ग्राहकों में से केवल N ग्राहकों की जरूरतें पूरी कर सकता है (मान लो कि क्यू में खड़े पहले N ग्राहकों की)। शेष N ग्राहक (OR से कम) किसी भी कीमत पर अपनी जरूरतें पूरी किए जाने पर खुश होंगे। इसलिए दूसरा एकाधिकारी इन बचे हुए ग्राहकों की जरूरतों को अपने लिए सब से लाभदायक कीमत पर, अर्थात् OP पर, पूरा कर सकता है। उसे अपने प्रतिद्वन्द्वी का डर नहीं होगा, क्योंकि यह प्रतिद्वन्द्वी अपनी सम्पूर्ण पूर्ति को बाजार में

प्रस्तुत कर के अधिकतम नुकसान पहले ही पहुँचा चुका है। उसका प्रतिद्वन्द्वी अब अपने हित मे जो सबसे अच्छा काम कर सकता है वह यह है कि वह अपने सामने रखे गए उदाहरण का अनुसरण करे और अपनी कीमत को बढाकर OP करे। इस प्रकार हम उसी स्थान पर पहुँच गए है जहाँ से हमने शुरू किया था और एक नया चक्र शुरू हो जाता है।"[13] यह बताया गया है कि वास्तव में दोलन OP और OQ से किंचित् ऊपर बिन्दु के बीच होंगे, क्योंकि OQ कीमत पर पहुँचने के पहले इनमें से एक विक्रेता के लिए दूसरे से कम कीमत करने की अपेक्षा अपनी कीमत को OP तक बढ़ा देना लाभदायक होगा। हमारी अपनी पहले की रचना में (चित्र 5), इस तर्क के अनुसार कीमत AP और $\frac{1}{2}\ AP$ से किंचित् नीचे के बिन्दु के बीच लगातार दोलन करती है जिससे किसी विक्रेता को कीमत को और भी कम करने और अपनी सम्पूर्ण उत्पत्ति (OA) को बेचने से होने वाला लाभ अपनी कीमत को बढा कर AP करने और अपनी उत्पत्ति के एक भाग को उन लोगों को जो उसके प्रतिद्वन्द्वी द्वारा कम कीमत पर OA राशि बेचने के बाद बच जाते है, बेचने पर मिलने वाले लाभ से कम होगा।

ऍजवर्थ अपना तर्क एकसम पण्यो की स्थिति में विकसित करते है, परन्तु उनका मत है कि यह उन पदार्थो पर भी लागू होता है जो एक दूसरे के न्यूनाधिक स्थानापन्न है। "पदार्थो के बीच सहसम्बन्ध की मात्रा के घटने के साथ अनिर्धार्यता की मात्रा भी घटती है" और अन्त मे, सहसम्बन्ध न होने की सीमान्त स्थिति मे, प्रत्येक की कीमत OP होगी।[14]

पहले इसका उल्लेख कर दिया जाना चाहिए कि यद्यपि ऍजवर्थ द्वारा द्वयधिकार का यह हल उनके प्रतियोगिता के सामान्य सिद्धान्त के एक भाग के रूप मे प्रस्तुत किया गया था, वास्तव में यह उसके बिल्कुल असंगत है। उन्होने अपनी *Mathematical Psychics* में (पृ. 19) निर्धार्य सन्तुलन की परिभाषा दी है, और यह परिभाषा जिस लेख पर हम विचार कर रहे है उसमें स्पष्टतः मानी गई है। द्वयधिकार के सम्बन्ध में वे कहते है कि उसमें "सन्तुलन की वह निर्धारित स्थिति कभी नही आएगी जो पूर्ण प्रतियोगिता का लक्षण है, जो परिभाषानुसार वह दशा है जिसमे किसी—चाहे क्रेताओं के या विक्रेताओं के—समूह का कोई व्यक्ति दूसरे समूह के व्यक्तियों के साथ कोई ऐसी नयी सविदा नही कर सकता जिसमें नयी संविदा करने वाले **सब** व्यक्ति संविदाओं की पहले की प्रणाली के अन्तर्गत जैसे थे उससे बेहतर हों।"[15] यह सत्य नही है। सन्तुलन का ऐसा बिन्दु OQ है, जो इस परिभाषा के अनुसार पूर्णतः स्थायी है क्योंकि क्रेता या क्रेताओं का समूह विद्यमान व्यवस्था को अधिमान देगा और परिवर्तन नही चाहेगा, क्योंकि किसी विक्रेता से उच्चतर कीमत पर पुनः संविदा करने से वह बदतर अवस्था में हो जाएगा। यह निश्चित है कि उन्हीं साधनों पर एकाधिकार होने पर कीमत OP होती, क्योंकि तब दूसरा विक्रेता न होता जो क्रेताओं के एक भाग से फिर संविदा करता (दूसरे शब्दों में, कीमत को कम करता)। पर एक "अन्तिम निपटारे",

या OQ पर एक निर्धारित सन्तुलन, को देने के लिये दो विक्रेता पर्याप्त हैं। यह वही बिन्दु है जिस पर विक्रेताओं की संख्या के बहुत बडी होने पर ऐसा निपटारा होता।[16] यह उस स्थिति के हमारे पहले हल के अनुरूप है, जिसमे कीमतों का समायोजन किया जाता है और उस सम्बन्ध में बर्ट्रेन्ड, मार्शल और परेटो द्वारा दिए गए तर्कों के अनुरूप है।[17]

द्वयधिकार के ऍजवर्थ के हल में दोलन होता है, इसलिए नही कि विक्रेता कम हैं बल्कि इसलिए कि यह प्रक्रिया, उनके सामान्य सिद्धान्त की भाँति, संविदा या प्रतियोगी बोली बोलने की नहीं है। इस प्रक्रिया द्वारा कीमत कम तो हो जाती है, परन्तु कीमत विक्रेताओं द्वारा मनमाने रूप से फिर उच्चतर कीमत स्थिर करके बढ़ाई जाती है और क्रेताओं को चाहे-अनचाहे फल भुगतना पडता है।[18] किसी एक विक्रेता की ऐसा करने की सामर्थ्य को स्वीकार अवश्य किया जाना चाहिए। परन्तु ऍजवर्थ ने इसकी मात्रा को बढ़ा-चढ़ा कर माना है। वे जिन विस्तृत दोलनों का वर्णन करते है वे इसलिए नहीं होते कि विक्रेता केवल दो है, बल्कि इसलिए होते है कि उनकी प्रतियोगिता की दशाएं बदल जाती हैं। कीमत को घटाने की स्थिति मे उनके व्यक्तिगत बाजार एक बाजार में सम्पूर्णतः विलीन हो जाते है, और प्रत्येक विक्रेता कीमत को किंचित् कम करके दूसरे से अबाध रूप से ग्राहक खीच लेता है। परन्तु कीमत के फिर से बढने के लिए उनके बाजार सम्पूर्णतः पृथक् कर दिए जाते है; एक विक्रेता अपने ग्राहको से OQ कीमत लेता है (चित्र 6), और दूसरा OP, और जब पहला विक्रेता OQ कीमत पर बेच रहा है तो ये दूसरे ग्राहक अलग किए हुए-से रहते है। यदि प्रतियोगिता द्वारा कीमत को उसके निम्नतम बिन्दु पर पहुंचाए जाने के बाद बाजार भागों में विभाजित हो जाता है, ताकि प्रत्येक विक्रेता एक एकाधिकारी हो जाता है, जो क्रेताओ के एक भाग के साथ अलग से व्यापार करता है, तो यह दिखाया जा सकता है अनिश्चित रूप से बड़ी संख्या में विक्रेताओं[19] के होने पर भी उन्ही दो सीमाओं के बीच दोलन होगे। यदि दस विक्रेता होते, तो प्रत्येक के लिए चित्र 6 के दायें (या बायें) अर्धभाग के संगत चित्र खीचे जा सकते थे (कुल दस चित्र)। समस्या की दशाएँ पहले जैसी रहने पर, सबके लिए कीमत गिर कर OQ पर आ जाने के बाद, किसी एक विक्रेता के लिए अपनी कीमत को OP करना लाभप्रद होगा। इसी प्रकार, फिर से OP कीमत लेना दूसरे के लिए, तीसरे के लिए, और उन **सब** के लिए लाभदायक होगा, जिसके बाद कोई कीमत को कम कर देगा और दोलन अनिर्धारित रूप से जारी रहेंगे।[20] यदि एक हजार विक्रेता होते तब भी यही होता।

विक्रेताओं की संख्या के अनपेक्ष केवल तब कीमत बढ़कर OP हो सकती है यदि (परोक्ष प्रभावों के प्रति उदासीनता के साथ कीमत समायोजनों की वर्तमान कल्पनाओं के अन्तर्गत) प्रत्येक विक्रेता क्रेताओं के अपने आनुपातिक भाग के साथ अलग से व्यापार करता है। इस स्थिति में कीमत OP पर स्थायी है और उसकी अधोमुखी गति का कोई कारण नहीं है। यदि विक्रेता अलग-थलग नहीं हैं, बल्कि एक

ही बाजार में हैं, तो कीमत की ऊपरी सीमा वह बिन्दु है जिस तक एक विक्रेता, जब कि उसका (या उसके) प्रतिद्वन्द्वी अपनी सम्पूर्ण उत्पत्तियाँ बेच रहा है, अपनी क्रियाओं के द्वारा उसे चढा सकता है। परन्तु कीमत **सब के लिए एक ही** होगी।

कीमत की एकसमानता की व्याख्या किंचित् (मात्र किंचित्) उदारता से की जानी चाहिए। बाजार की **परम** पूर्णता की स्थिति में मिले परिणाम के बारे में जो पहले ही कहा जा चुका है[21] उसे अब स्मरण किया जा सकता है। इस स्थिति में, एक विक्रेता द्वारा उच्चतर कीमत नियत किए जाने पर दूसरे की कीमत ठीक उतनी ही हो जाती है, और चाहे कीमत कुछ भी हो, बेची गई राशि उन दो के बीच समान रूप से बँट जाती है क्योंकि क्रेताओं का एक पर दूसरे को अधिमान देने का कोई कारण नहीं है। अपनी कीमत को दूसरे की कीमत से किंचित् कम रख कर कोई विक्रेता अपने प्रतिद्वन्द्वी से अधिक नहीं बेच पाएगा। इसलिए इन मे से कोई एक अपनी कीमत को तुरन्त एकाधिकार कीमत तक बढ़ा देगा, और (**दूसरे की सम्मति के बिना भी**) उसे वहाँ बनाए रखने में समर्थ होगा, और (इस प्रकार) अधिकतम सयुक्त लाभ का आधा प्राप्त कर लेगा।

लेकिन यदि कीमत मे किंचित् भेद स्वीकार किया जाए, तो हम कल्पना कर सकते हैं कि एक विक्रेता अपनी कीमत को उस निम्नतर सीमा के ऊपर बढाता है जहाँ वह प्रतियोगी कीमत-कटौती के कारण पहुँचो थी, और दूसरा क्रेताओं की प्रतियोगिता के कारण उसका निकट से अनुसरण करेगा, परन्तु इसकी कीमत सदैव कुछ कम रहेगी और यह अन्तर उसे अपनी सम्पूर्ण उत्पत्ति बेचने मे समर्थ करेगा। इन परिस्थितियों में किसी एक उत्पादक, मान लो कि पहले उत्पादक, के लिए कीमत को बढ़ाकर $\frac{1}{2}$ AP करना, परन्तु इससे अधिक नही, लाभदायक होगा (चित्र 5); तब वह $A\ HQK$ लाभ प्राप्त करेगा और दूसरे उत्पादक के लिए $OAKN$ (से किंचित् कम) लाभ छोड़ देगा। दूसरे उत्पादक को ऐसा कोई प्रोत्साहन नही है कि ऊर्ध्वमुखी गति को बढ़ावा दे क्योंकि उसके लिए अब अपनी कीमत को $\frac{1}{2}$ AP से अधिक करने का अर्थ है अपने प्रतिद्वन्द्वी को सम्पूर्ण उत्पत्ति बेचने देना और अपने लाभ को न केवल वर्तमान राशि $OAKN$ से कम करना बल्कि $AHQK$ से भी कम करना, जो पहले का आधा है। लेकिन अधोमुखी गति शुरू हो जाएगी, पहला उत्पादक अपने प्रतिद्वन्द्वी से कम कीमत पर बेचेगा, जिसे बाजार ने अपनी कीमत को $\frac{1}{2}$ AP (से किंचित् कम) तक बढ़ाने के लिए बाध्य कर दिया था।[22] इस अधोमुखी गति की निचली सीमा $\frac{1}{4}$ AP है, क्योंकि इस कीमत से कम पर अपनी सम्पूर्ण उत्पत्ति को बेच कर किसी को मिलने वाला लाभ उस लाभ से कम होगा जो उसे कीमत को बढ़ा कर HQ पर अपनी आधी राशि बेचने पर होता है। इसलिए, $\frac{1}{2}$ AP और $\frac{1}{4}$ AP के बीच दोलन होता है। तीन विक्रेताओं की स्थिति में, जिनके बीच कुल उत्पत्ति OB बराबर बँटी है, गति $\frac{1}{3}$ AP और $\frac{1}{6}$ AP के बीच होगी, और इसी प्रकार आगे भी। इस हल में इस कल्पना के प्रति कि सब क्रेता और विक्रेता एक ही बाजार में हैं, अधिक सच्चा होने के साथ-साथ यह गुण

भी है (जो ऍजवर्थ के हल में नही है) कि जैसे-जैसे विक्रेताओं की संख्या में वृद्धि होती है यह शुद्धतः प्रतियोगी परिणाम के निकट होता जाता है।

यहाँ यह उल्लेख अवश्य कर दिया जाना चाहिए कि प्रत्येक विक्रेता द्वारा अपने प्रतिद्वन्द्वी की **पूर्ति** को स्थिर मानने की स्थिति (कूर्नो की परिकल्पना) का परिणाम प्रत्येक की अधिकतम संभव उत्पत्ति से स्वतन्त्र है। परिणाम वही रहता है चाहे अकेले विक्रेता की पूर्ति *OB* या अधिक हो। परन्तु जिस स्थिति में प्रत्येक विक्रेता मानता है कि उसके प्रतिद्वन्द्वी की **कीमत** स्थिर है, वहाँ परिणाम इतना स्वतन्त्र नहीं है। इस दूसरी स्थिति में, यदि कोई विक्रेता अकेला *OB* या अधिक पूर्ति कर सकता, तो दूसरा, यदि कीमत को शून्य से किंचित् अधिक नियत करता तो, बाजार से बहिष्कृत हो जाता। इसलिए कीमत शुद्धतः प्रतियोगी स्तर पर (हमारे दृष्टान्त मे शून्य पर) स्थायी होती।[23] जिन स्थितियों मे प्रत्येक विक्रेता की पूर्ति, बिलकुल स्थिर न हो कर मूल्य सापेक्ष है और लागत से सम्बन्धित है वहाँ यह तथ्य बहुत महत्वपूर्ण है। इस स्थिति में एक विक्रेता द्वारा उच्चतर कीमत नियत किए जाने का प्रभाव यह होगा कि वह निम्नतर कीमत वाले बाजार से बहिष्कृत हो जाएगा, और उसके प्रतिद्वन्द्वी या प्रतिद्वन्द्वियों को अपनी उत्पत्ति बढ़ाने का प्रलोभन मिलेगा। यह संभावना उस बिन्दु को नीचा कर देगी जिस तक एक अकेला विक्रेता लाभ के साथ कीमत को बढ़ा सकता है, और विक्रेताओं की अपेक्षाकृत कम संख्या होने पर कीमत प्रभावतः शुद्धतः प्रतियोगी स्तर तक घट जाएगी।

प्रोफेसर पिगु ऍजवर्थ के इस निष्कर्ष को स्वीकार करते है कि द्वयधिकार के अन्तर्गत उत्पादन में लगाए गए साधनों की राशि अनिर्धार्य है और कहते है कि

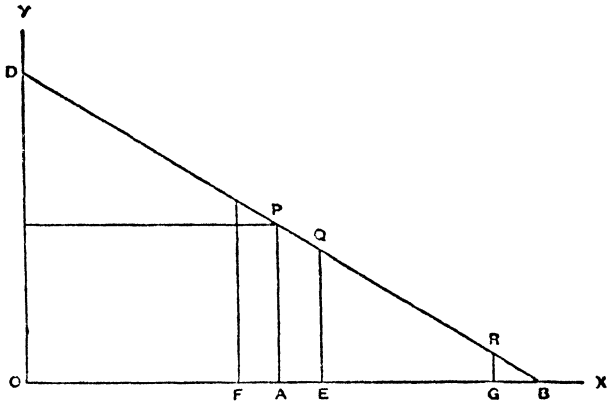

चित्र 7

इसे "अब गणित-अर्थशास्त्रियों द्वारा स्वीकार किया जाता है।"[24] लेकिन उनके द्वारा दी गई अनिर्धार्यता की सीमाएं वे नहीं हैं जो ऍजवर्थ की है। समस्त निवेशित साधनों

के रूप में ये सीमाएं "एक छोर पर शून्य और दूसरे छोर पर वह राशि है जो B के न होने पर A की एकाधिकार आय को अधिकतम करने वाले निवेश और A के न होने पर B की एकाधिकार आय को अधिकतम करने वाले निवेश का योग है।"[25] एँजवर्थ के उदाहरण में (चित्र 6) यह कीमत का परिसर OR से OQ के बीच करेगा और हमारे अपने उदाहरण में (चित्र 5) OD से शून्य के बीच।

कीमत की ऊपरी सीमा को (साधनों की निचली सीमा को) गम्भीरतापूर्वक लेना कदाचित् कठिन होगा, क्योंकि यह स्पष्ट है कि कीमत किसी भी परिस्थिति में उस कीमत से अधिक कभी नही होगी जो विक्रेताओं के संयुक्त लाभ को अधिकतम करती है। दिलचस्पी की चीज कीमत की निचली सीमा है। वक्रों के सरल रेखा होने पर यह कहा जाता है कि सरल प्रतियोगिता की कीमत की अपेक्षा यह कीमत उच्चतर होती है (अर्थात्, साधनों का निवेश कम होता है)। परन्तु यह आवश्यक रूप मे सच नहीं है, जैसा कि तर्क का चित्र 5 और 6 मे अभी-अभी किया गया प्रयोग (पिछले पैरा के अन्त मे) प्रकट करता है। परन्तु हम उस स्थिति को लें जहाँ यह सच है। चित्र 7 में, मान लो पहले की भाँति माग वक्र DB है, और मान लो कि पहले उत्पादक की अधिकतम संभव उत्पत्ति OF, दूसरे की OE, और इन दो का योग OB है। दूसरे के न रहने पर पहला अपनी सम्पूर्ण उत्पत्ति OF प्रस्तुत करेगा; पहले के न रहने पर दूसरा OA राशि प्रस्तुत करेगा। इनका योग OG है। मैं यह देख पाने में असमर्थ हूँ कि इस योग को, और फलतः कीमत GR को, कोई महत्व क्यों दिया जाए। इसके औचित्य के बारे में प्रोफेसर पिगु द्वारा दिया गया एकमात्र तर्क यह है कि "सामान्यतया, किसी एक के लिए उससे अधिक निवेश करना लाभदायक नही होगा जितना निवेश वह तब करता जब दूसरा बिलकुल निवेश न करता।" परन्तु यदि पहले उत्पादक ने RG कीमत नियत की है, तो दूसरे उत्पादक के लिए उससे कम कीमत नियत करके अपनी सम्पूर्ण उत्पत्ति OE बेचना लाभदायक होगा, जो पहले उत्पादक के न रहने पर उसके द्वारा बाजार मे प्रस्तुत की गई राशि से अधिक है। (जब तक किसी को भी और आगे लाभ न मिले तब तक) प्रतियोगी बोली बोलने की प्रक्रिया जब तक नियम विरुद्ध न कर दी जाए, कीमत RG से कम तक गिरेगी। और यदि यह प्रक्रिया नियमविरुद्ध कर दी जाए तो, जैसा पहले ही बताया जा चुका है, कीमत की निचली सीमा एक उच्चतर बिन्दु हो जाता है। वास्तव में प्रोफेसर पिगु का कथन, जो दूसरे के निवेश को दृष्टि में रख कर पहले उत्पादक के लिए लाभदायक निवेश के शब्दों में है, कूर्नो की याद दिलाता है, एँजवर्थ की नही, और यह पर्याप्त ऊंचे बिन्दु पर एक निर्धार्य हल का संकेत करता है।

यदि उठते हुए लागत वक्रों की कल्पना की जाए, जैसा कि चित्र 8 में, तो यह सच है कि कीमत की निचली सीमा, जैसी उसकी पिगु ने परिभाषा की है, सरल प्रतियोगिता में कीमत से उच्चतर होती है। चित्र 8 में, DD' उस बाजार का मांग वक्र है जहाँ दोनों प्रतियोगिता कर रहे हैं, OS_1 पहले उत्पादक का पूर्ति वक्र है, OS_2

दूसरे उत्पादक का पूर्ति वक्र है, और OS उन दोनों का सम्मिलित पूर्ति वक्र है जो इस प्रकार खींचा गया है कि $EP = EF + EG$, और इसी प्रकार आगे भी। परिभाषा के अनुसार, यहाँ कीमत की निम्न सीमा वह कीमत है जिस पर $\frac{1}{2} OM_1 + \frac{1}{2} OM_2$ राशि बेची जाएगी, और यह शुद्धतः प्रतियोगी कीमत से अपरिहार्यतः अधिक होगी। जैसा कि पिगु दिखाते हैं यह उस कीमत से भी अधिक होगी जिस पर OM_2 राशि, जो कम राशि के बहिष्कृत हो जाने पर शुद्ध प्रतियोगिता में प्रस्तुत की जाएगी, बेची जाएगी। परन्तु अभी भी सुस्पष्ट नहीं है कि यह निम्न सीमा क्यों होगी।

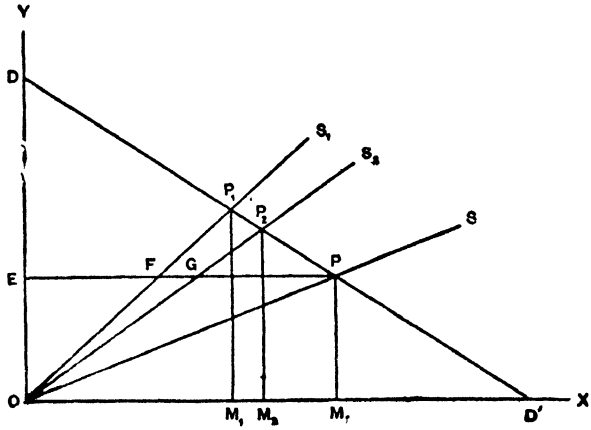

चित्र 8

अनिर्धार्यता की प्रोफेसर पिगु की व्याख्या, यद्यपि प्रतीयमानतः ऐंजवर्थ पर आधारित है, समस्या के ऐंजवर्थ द्वारा दिए गए कथन से रहित है और एक ऐसे कारण को समाविष्ट करती है जिस पर अभी विचार नहीं किया गया है। यह कारक है "प्रत्येक के द्वारा नियोजित [साधनों की] राशि इस पर आश्रित है कि वह उस नीति के बारे में क्या निर्णय लेता है जिसका अनुसरण दूसरा करेगा, और यह निर्णय, प्रत्येक की भावदशा (mood) और झांसे की नीति से सफलता के बारे में उसकी आशंसा के अनुसार, कुछ भी हो सकता है। जैसा कि शतरज के खेल में होता है, प्रत्येक खिलाड़ी की चाल विरोधी की मनोवृत्ति के सम्बन्ध में उसके अनुमान और विरोधी के उत्तर के बारे में उसकी अटकल से सम्बन्धित होती है।"[26] समस्या के अन्तिम समाधान मे यह संशय अत्यन्त महत्वपूर्ण कारक है; परन्तु इस पर विचार करना तब तक के लिए स्थगित करना अच्छा है जब तक कि उन सब कारकों को जमा नही कर लिया जाता जिनके बारे में संशय हो सकता है।

4. वह स्थिति जब पारस्परिक आश्रितता स्वीकार की जाती है

अब मैं इस समस्या की एक नयी अवस्था पर विचार करता हूँ। अब तक दिया गया कोई हल इस परिकल्पना के पूर्णतया समनुरूप नही है कि प्रत्येक विक्रेता इस प्रकार क्रिया करता है ताकि उसका लाभ अधिकतम हो। ऐसा करने के लिए, वह कीमत पर अपने **कुल**, परोक्ष एव प्रत्यक्ष, प्रभाव को ध्यान मे रखेगा। जब एक विक्रेता की चाल दूसरे को प्रतिचाल चलने के लिए सुस्पष्टतः बाध्य करती है, तो यदि वह यह कल्पना करके आगे बढ़ता है कि दूसरा प्रतिचाल नही चलेगा तो उसका अपनी नाक के आगे देखने से इनकार करना मूर्खता है।[27] जैसा तर्क पहले ही किया गया है, स्वतन्त्रता की कल्पना का यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि वह यह अपेक्षा करती है कि विक्रेता ऐसे प्रतियोगिता करते है जैसे कि उनके भाग्य एक-दूसरे से स्वतन्त्र हों, क्योकि ऐसा करना स्वयं अल्पाधिकार की समस्या को झुठलाना है। इसका संकेत केवल क्रिया के स्वातन्त्र्य की ओर हो सकता है— समझौते या "मौन" समझौते का न होना। एक प्रतियोगी के लिए नीति के उन परिवर्तनों को ध्यान में रखना जिनके लिए वह दूसरे को बाध्य करता है, स्वय अपनी क्रियाओं के परोक्ष फलों पर विचार करना मात्र है। इसलिए मान लो कि प्रत्येक विक्रेता, अपने लाभ को अधिकतम करने के यत्न में, अच्छी तरह चिन्तन [विमर्श] करता है, और अपनी चाल के कुल फलों को ध्यान में रखता है। उसे न केवल इस पर विचार करना है कि उसका प्रतियोगी अभी क्या कर रहा है, बल्कि इस पर भी कि जिस परिवर्तन का वह स्वयं अन्वेक्षण कर रहा है उसको दृष्टि में रख कर वह क्या करने के लिए बाध्य होगा।[28]

पहले हम मानेंगे कि वे राशि का समायोजन करते है, और बाद में यह मानेंगे कि कीमत का समायोजन करते है।

मान लो कि पहला उत्पादक, पहले की भांति, OA राशि की पूर्ति करके शुरू करता है (चित्र 5), और दूसरा उत्पादक अपने हित में जो सब से अच्छा काम कर सकता है वह है AH राशि की पूर्ति करना। अब पहला अपनी पूर्ति को घटा कर $OE=AH$ कर देता है, और कुल राशि OA एकाधिकार कीमत AP पर बिकेगी।[29] वह इस राशि की पूर्ति करेगा क्योंकि उसके लिए समायोजनों की किसी अन्य शृंखला का अनुसरण करने के **अन्तिम** फल अपने प्रतिद्वन्द्वी के साथ OA राशि में बराबर हिस्सा करने की अपेक्षा कम लाभदायक है। हमारी कल्पनाओं के अन्तर्गत, कीमत AP पूर्णतः स्थायी है क्योंकि उससे विचलित होने पर कोई भी विक्रेता **स्वयं अपना** और अपने प्रतिद्वन्द्वी का विनाश ला देता है।

यदि विक्रेताओं की संख्या तीन या अधिक है तो, जब तक प्रत्येक अपने अन्तिम हित के बारे में सतर्क रहता है, परिणाम वही होंगे। संख्या के बढ़ने के साथ कीमत शुद्धतः प्रतियोगी स्तर तक धीरे-धीरे नहीं गिरेगी, जैसा कि कूर्नो के हल में होता है।

व्यतिक्रम तब होता है जब कीमत पर अकेले विक्रेता का प्रभाव इतना कम हो जाता है कि वह उसकी उपेक्षा करता है; और यहाँ भी प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रभाव में भेद अवश्य किया जाना चाहिए। परोक्ष प्रभाव की उपेक्षा कीमत को उसी स्थान (figure) तक गिराएगी जो कूर्नो का हल देता है, और वह प्रतियोगी स्तर के समनुरूप केवल तब होगी यदि विक्रेताओं की संख्या अपरिमित हो अथवा, मान लो कि, बहुत बड़ी हो। लेकिन, जैसे ही विक्रेता कीमत पर अपने प्रत्यक्ष प्रभाव की उपेक्षा करने लगते हैं वह गिरकर प्रतियोगी स्तर (हमारे उदाहरण में शून्य) पर तुरन्त आ जाएगी, उनकी संख्या चाहे कुछ भी हो। इस प्रकार, द्वयधिकार के अन्तर्गत जब कीमत AP हो, यदि प्रत्येक विक्रेता मान ले कि उसका कीमत पर कोई प्रभाव नहीं है, तो वह अपनी सम्पूर्ण उत्पत्ति को तुरन्त प्रस्तुत कर देगा और कीमत गिरकर शून्य हो जाएगी। गणित के अनुसार, इनमें से किसी प्रभाव की उपेक्षा केवल तब उचित ठहराई जा सकती है जब विक्रेताओं की संख्या अपरिमित हो। व्यवहार में जब वे अपेक्षाकृत कम हों तब भी ऐसा हो सकता है; विशेषतः क्योंकि मांग वक्र केवल अस्पष्ट और अनिश्चित रूप से ज्ञात रहता है।

जब विक्रेता अपनी पूर्तियों के स्थान पर अपनी कीमतों का समायोजन करते हैं तो परिणाम वही रहता है। मान लो कि अस्थायी रूप से कीमत AP पर रुक जाती है। यदि कोई विक्रेता कीमत में कटौती करता है तो वह अपने प्रतिद्वन्द्वी को, उसकी बिक्री में दखल करके, तुरन्त अपना अनुसरण करने के लिए बाध्य कर देगा। इस तर्क का कि यदि वह कटौती नहीं करता तो उसका प्रतिद्वन्द्वी कटौती करेगा, उत्तर यह है कि जिस कारण से वह कटौती नहीं करता उसी कारण से उसका प्रतिद्वन्द्वी भी नही करेगा। यदि प्रत्येक युक्तिसगत रूप से और बुद्धिमत्तापूर्वक अधिकतम लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, तो वह अनुभव करेगा कि जब केवल दो या कुछ विक्रेता होते है तो उसकी चाल का उसके प्रतियोगियों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है, और यह मान लेना निराधार है कि वे उसके द्वारा उन पर लादी गई हानि को प्रतिकार किए बिना स्वीकार कर लेंगे। चूकि किसी के द्वारा कटौती का अपरिहार्य परिणाम उसके अपने लाभ को कम करना है, इसलिए कोई भी कटौती नही करेगा, और यद्यपि विक्रेता सर्वथा स्वतन्त्र हैं, सन्तुलन परिणाम ऐसा होगा जैसे कि उनमें एकाधिकारमूलक समझौता हो।

जैसा राशियों में समायोजन की स्थिति में होता है उसी प्रकार शुद्ध प्रतियोगी स्तरों की ओर व्यतिक्रम तब आता है जब विक्रेताओं की संख्या इतनी बड़ी होती है कि प्रत्येक कीमत पर अपने प्रभाव की उपेक्षा करने लगता है। जब तक कि कम से कम दो विक्रेता हों प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव की उपेक्षा, संविदा अथवा प्रतियोगी बोली बोलने के सिद्धान्त के कारण, वही परिणाम देती है जैसे कि शुद्ध प्रतियोगिता हो, या, प्रत्येक की पूरी शक्ति को स्वीकार करने के कारण से उसका परिणाम, जैसा कि ऊपर बताया गया है, किंचित् उच्चतर स्तर पर दोलन होता है। लेकिन इस बात पर फिर

बल दिया जाना चाहिए कि **यह परिणाम इस कल्पना से नहीं निकलता कि प्रत्येक अपने लाभ को स्वतन्त्र रूप से अधिकतम करने का यत्न करता है**; प्रत्युत्, इसके परिणामस्वरूप यह निष्कर्ष निकलता है कि विक्रेताओं की संख्या कम होने पर एकाधिकार कीमत होती है। कोई भी विक्रेता एकाधिकार कीमत में कटौती नहीं करेगा क्योंकि ऐसा करने पर वह दूसरों को अपना अनुसरण करने के लिए बाध्य करता है, और इससे अपनी तबाही करेगा। जब उनकी संख्या बढ़ती है तो यह बताना असंभव है कि ठीक किस स्थान पर यह विचार (consideration) एक प्रभावकारी तत्व नहीं रह जाता। यदि 100 विक्रेता हों तो, किसी एक विक्रेता द्वारा अपनी बिक्री को दूनी करने वाली कटौती उसके प्रतियोगियों में प्रत्येक की बिक्री का $\frac{1}{99}$वां हिस्सा कम कर देगी, यदि इस वृद्धि में उसके सब प्रतियोगियों का हिस्सा बराबर हो; और हो सकता है कि यह कमी इतनी कम हो कि उन्हें, कटौती के **कारण**, ऐसा कोई काम करने के लिए बाध्य न करे जो वे उसके बिना न करते। जिस भी बिन्दु पर यह सच होता है वहाँ सब के संयुक्त लाभों को अधिकतम करने वाली कीमत से नीचे कीमत गिराने पर रोक हट जाती है। कोई भी विक्रेता अपने को इस रोक को हटाने का **कारण** नहीं समझेगा क्योंकि वह अपने किसी भी प्रतिद्वन्द्वी को अपेक्षाकृत बहुत कम बाधा पहुँचा कर लाभ प्राप्त करता है। इन परिस्थितियों मे कोई कारण नही है कि वह कीमत मे ऐसा परिवर्तन न करे जो उसके लिए लाभप्रद है, और जिसकी प्रतिक्रिया नहीं होती है। न ही कोई ऐसा कारण कि दूसरे ऐसा न करें, और कीमत पूर्णतया प्रतियोगी कीमत हो जाती है।[30]

उपर्युक्त तर्क इस कल्पना पर किया गया है कि अपने प्रतिद्वन्द्वी की किसी चाल के प्रति प्रत्येक विक्रेता की अनुक्रिया तात्क्षणिक होती है। यदि एक कटौती करता है तो अन्य तुरन्त कटौती करते हुए माने जाते है, और ऐसा कोई अन्तराल नही होता जिसमें वह प्रत्याशित वृहत्तर लाभ प्राप्त करता है। वास्तव में, कोई अन्तराल न होने के कारण, इस धारणा को ही त्याग देना चाहिए कि कोई अपनी कीमत को दूसरों से कम करता है। सब की कीमतें साथ-साथ चलती हैं, और इससे तुरन्त यह परिणाम निकलता है कि सन्तुलन कीमत एकाधिकार कीमत होती है।[31] यदि "पुन संविदा" के विचार को स्वीकार किया जाए तब भी यही निष्कर्ष निकलता है, क्योकि इससे यह सुनिश्चित होता है कि, भले ही अन्त.कालीन संविदाएं इधर-उधर हो, अन्तिम संविदा ऐसी नही होती। (किंचित् कम कीमत पर बृहत्तर संख्या में क्रेताओं के साथ) एक नयी अन्तःकालीन संविदा करने के लिए, जो लाभदायक है, कोई प्रोत्साहन नहीं रहेगा यदि उसे करने की क्रिया ही ऐसी शक्तियों को गतिशील बना देती है जो उसे नष्ट अवश्य कर देती है और उसके स्थान पर एक कम लाभदायक सविदा ले आती है। यदि विक्रेताओं की संख्या बहुत बडी न हो, तो यही स्थिति होती है। वास्तव में, "पुनःसंविदा" निर्घर्ष (friction) के अभाव को व्यक्त करने का दूसरा तरीका है। चाहे निर्घर्ष को बिलकुल न रहने दिया जाए या उसे रहने दिया जाए और फिर हटा

दिया जाए, परिणाम एक-से होते हैं।

लेकिन, यदि निर्घर्ष रहने दिया जाए और हटाया न जाए तो परिणाम भिन्न होते हैं।[32] यदि कीमतों के समायोजनों के बीच अन्तराल रहता है (और यदि प्रत्येक बिक्री अन्तिम है) तो, इस अन्तराल की अवधि चाहे कुछ भी हो, उसके दौरान कीमत में कटौती करने वाले को फायदा होगा, और यह कीमत नीति के बारे में उसके निर्णय में प्रभावी तत्व होगा। विषय की इस अवस्था का संक्षेप में वर्णन इस सामान्य कथन के द्वारा किया जा सकता है कि विक्रेता के लिए उसकी कीमत में कटौती के **अन्तिम** परिणाम (कीमत पर उसके परोक्ष प्रभाव के कारण से) न्यूनाधिक महत्व के तत्व है, जिनका महत्व इस पर निर्भर करता है कि जिस अवधि तक वह बिक्री करते रहने की आशंसा करता है उसके **सापेक्ष** समय-पश्चता (time lag) छोटी है कि लम्बी। यदि वह व्यवसाय मे स्थायी रूप से लगा हुआ है, तो कीमत मे कटौती के अस्थायी लाभों का महत्व नगण्य है। वह अपनी क्रियाओं के परोक्ष, अथवा अन्तिम, परिणामों को पूरा महत्व देगा, और ऐसी कोई चाल नही चलेगा जो भावी बिक्री की कीमत कम कर देगी।[33] दूसरी ओर, यदि वह बाजार में अस्थायी रूप से है और उत्पाद की एक निश्चित राशि को बेचने पर तुला हुआ है, तो उसकी गणना मे अन्तिम परिणाम बिलकुल नही आते है। यदि वह चालू कीमत से किंचित् कम पर अपने पदार्थ की सम्पूर्ण राशि को बेच सके तो उसे आगे बेचना नही है और इसलिए वह इसकी परवाह नही करता है कि अनुवर्ती बिक्री किस कीमत पर की जाती है। इन दो चरम स्थितियों के बीच मे ऐसी स्थितियाँ आती है जिनमे तात्कालिक लाभ और अन्तिम हानि की तुलना करनी पड़ेगी, जिसमे कीमत पर प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रभावो को समुचित भार देना पडेगा।

5. संशय का प्रभाव

अब केवल एक कारक पर विचार करना बच गया है और वह है दूसरा विक्रेता क्या करने जा रहा है, इसके बारे में पहले विक्रेता का सशय। इस कारक पर विचार करना इसलिए स्थगित किया गया था ताकि जिन विभिन्न शक्तियों **के बारे में** सशय हो सकता है उनकी कार्य-प्रणाली को समयपूर्व धुँधला न कर दिया जाए। हम देख चुके हैं कि इस समस्या का हल एकाधिकारमूलक समझौते में निर्धारित सन्तुलन कीमत से लेकर शुद्ध प्रतियोगिता की दशा में निर्धारित सन्तुलन कीमत तक कहीं भी हो सकता है, जो इस बात पर निर्भर करता है कि एक विक्रेता अपने प्रतिद्वन्द्वी के कार्य-संचालन के बारे में क्या कल्पना करता है। अब, यदि वह नहीं जानता कि क्या कल्पना की जाए, तो ये निष्कर्ष अवश्य निकलते हैं कि इन दो सीमाओं के बीच कीमत कुछ भी हो सकती है, और इस पर निर्भर करती है कि संयोग, चातुर्य या हताशा उसे किस कल्पना को चुनने की ओर प्रवृत्त करती है, और इस पर भी कि उसका प्रतिद्वन्द्वी यही

कल्पना चुनता है या नहीं। लेकिन, संशय का कारण स्थापित किए बिना उसका आग्रह नही किया जा सकता। तो, उसका प्रतियोगी क्या करेगा इसके बारे में विक्रेता के सदेह का आधार क्या है ?

कीमत पर प्रत्येक विक्रेता के केवल प्रत्यक्ष प्रभाव के संदर्भ में जिस प्रकार समस्या दी गई है उसकी सीमाओं में संशय का पहला तत्व रहता है। यदि प्रत्येक मान लेता है कि उसके प्रतिद्वन्द्वी की वर्तमान नीति, उसकी नीति से अप्रभावित रह कर, आगे भी बनी रहेगी, तब भी उसके पास यह जानने का कोई तरीका नही है कि नीति की यह स्थिरता उसके प्रतिद्वन्द्वी की पूर्ति के सम्बन्ध मे होगी या कीमत के सम्बन्ध मे।[34] इसलिए इस स्थिति में समस्या का सामान्य उत्तर यह अवश्य होना चाहिए कि कीमत कूर्नो के हल से लेकर शुद्धत. प्रतियोगी कीमत तक कही भी हो सकती है। इसके विपरीत, यदि वह निश्चिन्त है कि उसके प्रतिद्वन्द्वी की नीति उसकी अपनी नीति से प्रभावित होती है, तो इस बारे मे कोई अनिर्धार्यता नहीं रहती है, क्योकि अब इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि उसकी कीमत प्रभावित होती है या उसकी पूर्ति—जब कीमत पर कुल प्रभाव को ध्यान में रखा जाता है तो परिणाम सदैव एकाधिकार कीमत होता है।

सशय के दूसरे सभव तत्व का सम्बन्ध प्रतियोगियों की बुद्धिमता और दूरदर्शिता की मात्रा से है। यह सच है कि, अपेक्षाकृत कम सख्या होने पर, यदि प्रत्येक अपनी कीमत मे कटौती के अन्तिम परिणामो को देख सकता तो कीमत एकाधिकार कीमत से नीचे की ओर नही गिरती। परन्तु, यद्यपि कुछ विक्रेता अपने हित का अनुसरण धीरता से कर सकते है, कुछ अन्य ऐसे हो सकते है जो आर्थिक लाभ के लिए इतने उत्सुक हो कि वे अपने प्रतिद्वन्द्वियों से कम कीमत पर बेच कर होने वाले तात्कालिक लाभ के सिवाय कुछ न देख पाएँ। कोई एक विक्रेता कीमत पर अपने परोक्ष प्रभाव से पूर्णतया अवगत हो सकता है, परन्तु उसे इस बारे मे सशय हो सकता है कि उसके प्रतियोगियो मे कितने अपने परोक्ष प्रभाव से अवगत हैं। तब उसे कीमत को बनाए रखने के सम्बन्ध मे अपनी दूरदर्शिता के बारे मे सदेह होगा, और इसलिए इस बारे मे भी सदेह होगा कि वह कीमत को कम करे या उसे बनाए रखे।

सशय का तीसरा तत्व तब उत्पन्न होता है जब विक्रेताओं की संख्या ऐसी हो कि किसी के दिमाग मे इस बारे में सदेह बना रहे कि उसकी चाल अन्य की बिक्री मे कितना दखल (incursion) करेगी। (सशय का पिछला तत्व अलग रख दिया जाए और यहाँ इस कल्पना द्वारा भिन्न रखा जाए कि प्रत्येक विक्रेता अपने परोक्ष प्रभाव से अवगत है और अन्य अपने परोक्ष प्रभावों से अवगत है।) अब सशय और अतः अनिर्धार्यता विद्यमान है, इसलिए नही कि संख्या कम है, बल्कि वे पर्याप्त रूप से बड़ी सख्या मे है, परन्तु किस पर भी इतनी बड़ी संख्या में नहीं हैं कि शुद्ध प्रतियोगिता की दशाओं को ले आए। यदि सख्या पर्याप्त रूप से कम हो, तो कोई भी विक्रेता निश्चित हो सकता है कि कीमत मे कटौती द्वारा दूसरों में दखल

इतना बड़ा होगा कि उनसे उसका अनुसरण करवाएगा; और इसलिए कोई भी कटौती नहीं करेगा। यदि संख्या बहुत बड़ी हो तो वह निश्चित हो सकता है कि उसका दखल प्रत्येक अन्य विक्रेता के लिए ऐसा नगण्य कारक होगा कि कोई भी उसका "अनुसरण" नही करेगा (अर्थात् इसलिए कटौती नही करेगा **क्योंकि** उसने की है); और इसलिए प्रत्येक कटौती करेगा। परन्तु इन दो स्थितियों के बीच में संदेह रहता है। ठीक किस बिन्दु पर अन्य उत्पादकों पर कीमत में कटौती के प्रभाव "नगण्य" हो जाते है ? यह निर्विवाद है कि संख्या के कम होने पर प्रभाव नगण्य नही होते है, और संख्या के बहुत बड़ी होने पर वे ऐसे हो जाते हैं। इन दो सीमाओं के बीच परिणाम अपूर्वानुमेय (unpredictable) है।

सशय का चौथा तत्व उस स्थिति में प्रकट होता है जब बाजार के कार्यकरण में "निर्घर्ष" हो। वह समय-पश्चता की अवधि [लम्बाई] के सम्बन्ध में उत्पन्न होता है। (अन्तिम परिणाम की सापेक्ष निश्चितता के प्रश्न पर पहले ही विचार किया जा चुका है।) कीमत में किसी कटौती के "तात्कालिक" प्रभाव (अर्थात्, प्रतिद्वन्द्वियों द्वारा कटौती किए जाने से पहले के फायदे) समय के किसी क्षण मे तत्काल प्राप्त नहीं हो जाते, बल्कि कुछ विलम्ब से मिलते है जिसकी अवधि अनिश्चित होती है और इस पर निर्भर करती है कि कटौती के बारे में जानकारी कितनी शीघ्रता से फैलती है और क्रेता स्थापित सम्बन्धों को कितनी शीघ्रता से बदलते है। यह किसी एक विक्रेता द्वारा की गई कटौती के परिणाम के बारे मे सशय पैदा करता है, भले ही यह निश्चित (sure) हो कि उसके प्रतिद्वन्द्वी कीमत को बनाए रखेंगे। परन्तु विशेष करके महत्वपूर्ण इस बारे मे अतिरिक्त संशय है कि (क) दूसरे विक्रेता पर, उसकी बिक्री के घटने के कारण से, **कितनी शीघ्रता से** अनुसरण करने के लिए दबाव वास्तव में पड़ेगा, और (ख) वह किस मात्रा तक इसकी प्रत्याशा करेगा। यह प्रत्येक प्रतियोगी को सदेह में रखता है, इस बारे मे नही कि उसका प्रतिद्वन्द्वी क्या करेगा, बल्कि वह उसे कब करेगा, लेकिन, यह उसे इस बारे मे संशय मे डालने के लिए पर्याप्त है कि वह प्रथमतः क्या करे। इन परिस्थितियों में, जिस बुद्धिमत्ता से विक्रेता अपने को अधिकतम लाभ प्राप्त करने में लगाते है उसके बारे में, सर्वज्ञता से कम, कोई कल्पना परिणाम को निर्धार्य नहीं बनाएगी।

6. सारांश

अब इस अध्याय के सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्षो का संक्षेपण किया जा सकता है:—

1. अल्पाधिकार एक समस्या नही है, बल्कि अनेक समस्याएँ है। कल्पित दशाओं के अनुसार हल बदलता है। संशय के कारक को अलग रख देने पर यह (अप्रधान अपवादों को छोड़कर) कल्पनाओं के प्रत्येक कुलक (set) के लिए निर्धार्य है (देखिए, लेकिन, नीचे 5)।

2. यदि विक्रेता कीमत पर अपने **कुल** प्रभाव को ध्यान में रखते हैं तो कीमत एकाधिकार कीमत होगी। उत्पादकों की स्वतन्त्रता और स्वहित का अनुसरण कीमत को गिराने के लिए पर्याप्त नही है। जब संख्या इतनी बड़ी हो जाती है कि किसी एक के द्वारा किए गए समायोजन का अन्य में से प्रत्येक पर पड़ने वाले प्रभाव को नगण्य बना देती है, केवल तब सन्तुलन कीमत शुद्धतः प्रतियोगी कीमत होती है। लेकिन, यदि बाजार अपूर्ण है तो स्वहित अपेक्षा करता है कि जिस मात्रा तक बाजार अपूर्ण हो वहाँ तक परोक्ष प्रभाव की उपेक्षा कर दी जाए।

3. यदि विक्रेता कीमत पर अपने परोक्ष प्रभाव की उपेक्षा करते हैं और प्रत्येक अपनी नीति को इस प्रकार निर्धारित करता है जैसे कि उसने जो किया है उससे उसके प्रतियोगी प्रभावित नहीं होते हैं, तो परिणाम, अन्य परिस्थितियों के अनुसार, बदल जाते है। यदि प्रत्येक यह कल्पना करता है कि उसके प्रतियोगियों की पूर्तियाँ अपरिवर्तित रहती है, तो जैसे-जैसे विक्रेताओं की संख्या बढ़ती जाती है सन्तुलन कीमत एकाधिकार कीमत की तुलना में घटती जाती है, और शुद्धतः प्रतियोगी स्तर पर केवल तब पहुँचती है जब उनकी संख्या अपरिमित हो जाती है। यदि प्रत्येक अपने प्रतियोगियों की कीमतों को अपरिवर्तित मानता है, और यदि प्रतियोगी बोली बोलना, अथवा "पुनःसंविदा", तब तक जारी रहता है जब तक कि कीमत का अगला परिवर्तन किसी को नुकसान पहुँचाए बिना नही किया जा सकता, तो केवल दो विक्रेताओं के लिए, और, अवश्यमेव, किसी बड़ी संख्या के लिए, सन्तुलन कीमत शुद्धतः प्रतियोगी कीमत होती है। लेकिन, यदि विक्रेता की अपनी कीमत को बदलने की पूरा शक्ति को, क्रेता के लिए हानिकारक होते हुए भी, स्वीकार किया जाए, तो कीमत एक ऐसे क्षेत्र में दोलन करती है जो जैसे-जैसे विक्रेताओं की संख्या बढ़ती है, अधिक सकीर्ण और शुद्धतः प्रतियोगी कीमत के अधिकाधिक निकट होता जाता है।

4. यदि विक्रेता कीमत पर अपने परोक्ष और अपने प्रत्यक्ष दोनों प्रभावों की उपेक्षा करते है तो, **उनकी संख्या के अनपेक्ष**, परिणाम शुद्धतः प्रतियोगी कीमत होगा।

5. जहाँ इस बारे में संशय विद्यमान हो कि (क) अन्य प्रतियोगी अपनी राशियों को स्थिर रखेंगे या कीमतों को, (ख) वे दूरदर्शी है या नही, (ग) उनके बाजारों में संभव दखल की मात्रा, और (घ) समय-पश्चता की स्थिति में उसकी लम्बाई, वहाँ प्रत्येक स्थिति के लिए बताए गए विशेष कारणों से वह परिणाम को अनिर्धार्य बना देता है।[35]

अध्याय 4

उत्पाद का विशिष्टीकरण

1. विशिष्टीकरण का अर्थ

एकाधिकारमूलक और प्रतियोगितामूलक शक्तियों की जिस अन्योन्यक्रिया पर हम अब विचार करेंगे वह पिछले अध्याय में वर्णित परस्परक्रिया से भिन्न प्रकार की है। जिसे हम उत्पाद का विशिष्टीकरण (differentiation) कहते है, वह इसके उत्पन्न होने का कारण है। यह अध्याय विशिष्टीकरण के अर्थ की व्याख्या करके और यह बताकर कि वह एकाधिकार और प्रतियोगिता दोनों को किस प्रकार और किस सम्बन्ध में सन्निहित करता है, विषय-प्रवेश कराता है।

उत्पाद का कोई सामान्य वर्ग विशिष्टीकृत है यदि एक विक्रेता के पदार्थ (अथवा सेवा) का दूसरे के पदार्थ (अथवा सेवा) से भेद करने के किसी सार्थक आधार का अस्तित्व हो। ऐसा आधार हो सकता है वास्तविक हो या काल्पनिक, बशर्ते कि वह क्रेताओं के लिए कुछ भी महत्व का हो, और पदार्थ के एक प्रकार पर दूसरे प्रकार को अधिमान देने मे परिणत होता हो। जहाँ ऐसा विशिष्टीकरण विद्यमान रहता है, भले ही अल्प हो, क्रेताओं और विक्रेताओ के युगल, सयोग से और यादृच्छिक रूप से नहीं, (जैसा शुद्ध प्रतियोगिता मे होता है), बल्कि उनके अधिमानों के अनुसार बनेंगे।

विशिष्टीकरण पदार्थ के कुछ लक्षणों पर आधारित हो सकता है, जैसे अनन्य पेटेन्टकृत लक्षण; व्यापार-चिह्न; व्यापार नाम; पैकेज या डिब्बे की विलक्षणताएँ; यदि हों तो; अथवा गुण, डिजाइन, रंग अथवा शैली में विचित्रता। वह पदार्थ की बिक्री की प्रतिवेशी दशाओं के सम्बन्ध मे भी हो सकता है। केवल एक दृष्टान्त के तौर पर, फुटकर व्यापार में ये दशाएँ ऐसे कारकों को समाविष्ट करती हैं जैसे विक्रेता की स्थिति की सुविधा, उसकी सिब्बदी का वातावरण या स्वरूप, उसका व्यापार करने का ढग, निष्कपट व्यवहार के लिए उसकी ख्याति, सौजन्य, कुशलता, और वे सब व्यक्तिगत सम्बन्ध जो उसके ग्राहकों को उससे या उसके द्वारा नियुक्त कर्मचारियों से जोड़ते है। जिस मात्रा तक ये और अन्य अमूर्त कारक प्रत्येक विक्रेता के लिए अलग हैं, "उत्पाद" प्रत्येक स्थिति में भिन्न है, क्योंकि क्रेता इन्हें न्यूनाधिक मात्रा मे ध्यान में रखते हैं और यह समझा जा सकता है कि पण्य के साथ वे इन्हें भी खरीदते है। जब विशिष्टीकरण के ये दो पक्ष दिमाग में रखे जाते है तो यह सुस्पष्ट है कि वस्तुतः सब उत्पाद कम से कम कुछ हद तक विशिष्टीकृत है, और आर्थिक क्रिया के एक विस्तृत क्षेत्र में विशिष्टीकरण बहुत महत्वपूर्ण है।

इस क्षेत्र मे आर्थिक शक्तियों के समायोजन की व्याख्या के रूप में अर्थ-सिद्धान्त ने (क) एक प्रतियोगिता का सिद्धान्त, और (ख) एक एकाधिकार का सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। यदि उत्पाद पर्याप्त रूप से विशिष्ट है, जैसे बिजली की रेलगाडी की सेवा, या यदि उस पर पेटेन्ट या कापीराइट की कानूनी मुहर लगी है, तो इसे प्राय: एकाधिकार समझा जाता है। दूसरी ओर, यदि वह एक सामान्य वर्ग के अन्य "उत्पादो" से अधिक स्पष्ट रूप से अलग नही है, तो उसे उनके समूह मे रख दिया जाता है और उसे एक ऐसे उद्योग या आर्थिक क्रिया के क्षेत्र का भाग समझा जाता है जो सारत: प्रतियोगितामूलक है। इस प्रकार, यद्यपि पेटेन्टों को प्राय: एकाधिकार के वर्ग मे रखा जाता है, परन्तु व्यापार-चिह्नों के बारे में यह समझा जाता है कि वे उत्पाद को अपेक्षाकृत कम विशिष्टता प्रदान करते है, और अत: प्रतियोगिता के सर्वथा सगत है (कभी-कभी तो उसके लिए अपेक्षित है)। इस व्यवस्था के द्वारा, पेटेन्ट पदार्थो के मूल्यों की व्याख्या जिस बाजार पर उसका नियन्त्रण है उसमे अपने कुल लाभ को अधिकतम करने वाले एकाधिकारी के सिद्धान्त के शब्दों मे की जाती है, जब कि व्यापार-चिह्नित पदार्थो के मूल्यों की व्याख्या एक अधिक विस्तृत क्षेत्र में माग और पूर्ति के सन्तुलन के शब्दों मे की जाती है। सब मूल्य-समस्याएँ, उनके प्रबल तत्व के अनुसार, पहले या दूसरे वर्ग मे डाल दी जाती है; और एक पर दूसरे द्वारा लगाई गई रोक की उपेक्षा कर दी जाती है।

इस क्रियाविधि का परिणाम सोचने का ऐसा ढग हुआ है जो इससे भी आगे जाता है और जो गौण (minor) माने गए तत्व के अस्तित्व को ही नकारता है। बहुत सामान्यत: यह समझा जाता है कि एकाधिकार और प्रतियोगिता न केवल परस्पर-विरोधी (antithetical) है, बल्कि परस्पर-अपवर्जी (exclusive) है। प्रतियोगिता का प्रमाण देना एकाधिकार की अनुपस्थिति सिद्ध करना है, और इसका विपरीत भी सच माना जाता है। वस्तुत:, कई को तो वाक्यांश "एकाधिकारिक प्रतियोगिता" ही स्वतोव्याघाती—एक शब्दजाल—प्रतीत होगा। यह धारणा बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है। इनमें से कोई शक्ति दूसरी का अपवर्जन नहीं करती, और कीमतों के बुद्धिमत्तापूर्ण विवरण के लिए बहुधा दोनों अपेक्षित होती है।

2. पेटेन्ट और व्यापार-चिह्न

इन दोनों तत्वों को समवर्ती रूप से स्वीकार करने वाले सिद्धान्त की सामान्य स्थिति को एक विशेष समस्या की जांच करके प्रस्तुत किया जा सकता है। यह समस्या है : क्या पेटेन्ट और व्यापार-चिह्नों में भेद करने के किसी आधार का वास्तव में अस्तित्व है? साधारणतया पेटेन्ट (और कापीराइट) को एकाधिकार समझा जाता है। वे संयुक्त राज्य के संविधान द्वारा कांग्रेस में निहित प्राधिकार के अधीन "लेखकों और उपज्ञाताओं का, सीमित अवधि तक, अपनी कृतियों और आविष्कारों पर अनन्य

अधिकार" सुनिश्चित करने के लिए मंजूर किये जाते हैं। यह विशेषाधिकार **अनन्य** है—उपज्ञाता को सत्रह वर्ष तक अपनी उपज्ञा का निर्माण करने और उसे बेचने का एकमात्र अधिकार होता है। इस विशेषाधिकार की एकाधिकार-प्रकृति को पेटेन्ट के और सामान्य अर्थशास्त्र के साहित्य में सामान्यतया स्वीकार किया जाता है।[1] यह सच है कि प्रायः वाद-विषय का स्पष्ट रूप से वर्णन नहीं किया गया है, परन्तु यह धारणा बनती है कि ये वे स्थितियाँ है जिनमे एकाधिकार मूल्य के सिद्धान्त बिना शर्त के सच हैं।

दूसरी ओर, इसमें प्रतियोगितामूलक तत्व का निर्देश किया गया है और यहाँ तक दावा किया गया है कि पेटेन्ट सारतः एकाधिकारमूलक की अपेक्षा प्रतियोगितामूलक है। व्हॉघ्न (Vaughn) कहते है कि "पेटेन्टकृत उत्पाद हो सकता है कि अन्य पेटेन्टकृत और अपेटेन्टकृत माल से प्रतियोगिता करें। वास्तव में पेटेन्ट-कानून प्रतियोगिता में सहायक होता है—इस कारण से कि वह वैयक्तिक उपक्रम और निजी उद्यम को प्रोत्साहन देता है।"[2] सीजर (Scager) बताते है कि "बहुत बड़ी संख्या मे वे [पेटेन्ट] प्रतिद्वन्द्वी प्रक्रियाओं के सरक्षण के लिए है और विभिन्न रीतियों का उपयोग करने वालों में प्रतियोगिता को घटाने के बदले बढाते है।"[3] हाउस ऑफ रिप्रेजैन्टेटिव्स की कमेटी ऑफ पेटेन्ट्स ने 1912 मे प्रतिवेदन किया कि व्यापार को अवरुद्ध करने वाले न्यासों और सयोजनों के समय के पहले "पेटेन्ट-कानून के द्वारा स्वीकृत एकाधिकार, जो सीमित था, की प्रवृत्ति देर-सबेर प्रतियोगिता को प्रोत्साहन देने की होती थी। वह उपज्ञाताओ को नया प्रयत्न करने के लिए उकसाता था, और पूजीपतियों तथा व्यापारियों को नयी उपज्ञाओं का विकास करने के लिए प्रोत्साहन मिलता था। इन परिस्थितियों में किसी पेटेन्ट की प्रवृत्ति, एक विशिष्ट पदार्थ पर एकाधिकार को मंजूर करते हुए भी, व्यापार की किसी शाखा पर एकाधिकार करने की बिरले ही होती थी, क्योंकि शायद ही कुछ उपज्ञाओं के गुण इतने मूलभूत होते थे कि पेटेन्ट के स्वामी को व्यापार की किसी शाखा में एकाधिकार दे दें; और यह निश्चित था कि किसी एक पेटेन्ट से मिलने वाली प्रत्येक महान वित्तीय सफलता का परिणाम प्रतिद्वन्द्वी उपज्ञाएं होता था।"[4] यदि पेटेन्ट अलग-अलग हाथों में हों तो सामान्यतया विद्यमान प्रतियोगिता का प्रदर्शन इस प्रतिवेदन में निम्नलिखित शब्दों मे किया गया है: "पेटेन्ट के माध्यम से उद्योग पर नियन्त्रण करने की चेष्टा करने वाली पूजी उस विशिष्ट क्षेत्र से सम्बन्ध रखने वाले सब महत्वपूर्ण पेटेन्टों को जितना हो सके उतना खरीदना शुरू कर देती है। इसका प्रभाव यह होता है कि विभिन्न पेटेन्टों के अलग-अलग और एक-दूसरे के विरोधी स्वामी होने के कारण जो प्रतियोगिता अवश्यम्भावी होती वह समाप्त हो जाती है।"[5] स्पष्ट है कि इस प्रकार जब वे एक के हाथ में होते हैं तो यह तथ्य है कि वे एकाधिकार है इस का निषेध नही करता कि वे एक-दूसरे से प्रतियोगिता करते हैं। प्रत्येक पेटेन्टकृत पदार्थ को न्यूनाधिक अपूर्ण स्थानापन्नों की प्रतियोगिता का सामना करना होता है।

यही स्थिति कापीराइट की भी है। कापीराइट वाली पुस्तकें, पत्रिकाएं, चित्र

और नाटकीय रचनाएँ एकाधिकार हैं; परन्तु उन्हें समरूप (similar) (कापीराइट वाले तथा बिना कापीराइट वाले दोनों) उत्पादनों की प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है अपने उत्पादन की कीमत पर व्यक्ति का नियन्त्रण, स्थानापन्नों की विविधता और प्रचुरता के कारण, काफी संकीर्ण सीमाओं के भीतर रहता है। कापीराइट वाले प्रत्येक उत्पादन पर कापीराइट के स्वामी का एकाधिकार होता है; परन्तु उसे अधिक विस्तृत क्षेत्र में विद्यमान प्रतियोगिता का भी सामना करना पड़ता है।

अब हम व्यापार-चिह्नों पर विचार करेंगे। उनकी एकाधिकारिक प्रकृति की पूर्णतः उपेक्षा नही की गई है। जॉन्सन कहते है, "पेटेन्ट से मिलने वाले लाभ के किंचित् सदृश लाभ वे है जो व्यापार-चिह्न का उपयोग करने से या संस्था के 'सुनाम' से मिलते है।" ये प्रतिफल "एकाधिकारिक लाभ की सामान्य मद के अन्तर्गत आते है।"[6] लेकिन दुविधा के स्वर पर गौर किया जाना चाहिए, क्योंकि यह लाक्षणिक है। ये लाभ वैसे ही नही है जैसे पेटेन्ट से मिलने वाले, वे केवल "किंचित् सदृश" है। ऐसी व्यापार-चिह्नों को "सामान्य कल्याण एकाधिकार" के वर्ग में रखते है,[7] और, यद्यपि "यह आपत्ति की जा सकती है कि क्या उन्हे इस वर्ग मे रखना उचित है,"[8] वे तर्क करते है कि ऐसा किया जाना चाहिए। "वे किसी एक के उत्पादन का भेद दिखाने के लिए किसी निश्चित चिह्न या छाप का उपयोग या एकाधिकार प्रदान करते है।.....नि.सदेह, दूसरा व्यक्ति पदार्थों के एक अन्य वर्ग का निर्माण (build up) कर सकता है और एक अन्य व्यापार-चिह्न का मूल्य स्थापित कर सकता है।" इसलिए वे यह निष्कर्ष निकालते है कि "यह केवल एक निश्चित दिशा मे एकाधिकार है, एक निर्माता के माल को पृथक् करना है।" व्हॅब्लॅन (Veblen) "गाहकी और प्रतिष्ठा पर आधारित" एकाधिकारो के बारे में कहते है कि वे "सुनाम, व्यापार-चिह्नों, छापों, इत्यादि के नाम के अन्तर्गत प्रायः बेचे जाते है।"[9] नाइट (Knight) "व्यापार-चिह्नों, व्यापार-नामों, विज्ञापन मे प्रयुक्त आकर्षक शब्दों, इत्यादि, को एकाधिकार के एक ही वर्ग मे" रखते है और "इसमें हम सुस्थापित ख्याति वाले (चाहे उसका वास्तविक आधार कुछ भी हो) व्यावसायिक लोगों की सेवाओं को सम्मिलित कर सकते है।"[10] इस सूची को और आगे बढ़ाया जा सकता था।

दूसरी ओर, व्यापारिक दुनिया में व्यापार-चिह्नो और छापो को एक विक्रेता द्वारा दूसरे से प्रभावकारी रूप से प्रतियोगिता करने मे समर्थ करने वाले साधन के रूप मे सामान्यतया समझा जाता है—जो प्रतियोगिता के संगत और यहाँ तक कि उसके लिए आवश्यक है। आर्थिक साहित्य में, व्यापार-चिह्नों को कुछ भी ध्यान न देने की सामान्य स्थिति के कारण, इस दृष्टिकोण का अव्यक्त रूप से अनुमोदन किया गया है। उन्हे सारतः प्रतियोगितामूलक पद्धति के एक भाग के रूप में ग्रहण कर लिया गया है। प्रायः केवल पेटेन्ट और कापीराइट का एकाधिकार के रूप में उल्लेख किया जाता है। इसका आशय यह है कि व्यापार-चिह्न एकाधिकार नहीं हैं। इस बारे मे स्वर्गीय प्रोफेसर यंग ने निश्चित और स्पष्ट दृष्टिकोण अपनाया है। ऐली की

Outlines of Economics में ऐली की *Monopolies and Trusts* में दिया गया विस्तृत वर्गीकरण इस महत्वपूर्ण परिवर्तन के साथ उद्धृत किया गया है कि व्यापार-चिह्न छोड़ दिए गए है। "इस यथार्थत: कानूनी अर्थ में कि उनका अन्य कोई उपयोग नहीं कर सकता, व्यापार-चिह्न, पेटेन्टों की भाँति, एकाधिकार है। परन्तु पेटेन्ट के असदृश, उनका परिणाम एकाधिकार इस आर्थिक अर्थ में नही होता कि वे एक प्रकार के व्यापार पर अनन्य नियन्त्रण देते है।" व्यापार-चिह्न के कारण एक सफल व्यापारी "अपने को प्रतियोगिता के 'चरम तल' (dead level) से थोड़ा ऊंचा उठाने मे समर्थ हो सकता है; वह उसे प्राप्त करने में समर्थ होता है जिसे एकाधिकार-वत् कहा जा सकता है। परन्तु क्योकि अपने उत्पाद की कीमत को नियन्त्रित करने की उसकी शक्ति सच्चे एकाधिकारी की ऐसा करने की शक्ति की अपेक्षा सामान्यतया कही अधिक सीमित होती है, और क्योंकि प्रतियोगिता उसकी क्रियाओं को अन्य प्रकार से सीमित और प्रतिबधित करती है, इसलिए उसके व्यापार को एकाधिकार-मूलक न कह कर प्रतियोगितामूलक कहना अधिक उचित होगा।"[11] इस दृष्टिकोण के विरुद्ध दो बातें कही जा सकती है : पहली, जैसा दिखाया जा चुका है, अकेला पेटेन्ट एक प्रकार के व्यापार पर अनन्य नियन्त्रण साधारणतया नही देता और इस अर्थ मे एकाधिकार प्रदान नही करता; और दूसरी, यदि यह मान भी लिया जाए कि पेटेन्ट **अधिक** नियन्त्रण देता है, यह केवल मात्रा का मामला है जो सापेक्ष माँग की लोच मे परिणत हो सकता है। पेटेन्ट और व्यापार-चिह्न दोनो की कल्पना, जिन पदार्थों से वे संलग्न है उनके, एकाधिकार तत्वों के रूप मे की जा सकती है; और इन दोनों स्थितियों मे इन और अन्य पदार्थो की समरूपताएँ प्रतियोगितामूलक तत्व हैं। व्यापार-चिह्नों को प्रतियोगितामूलक और पेटेन्ट को एकाधिकारमूलक कह कर पहले के एकाधिकार तत्व और दूसरे के प्रतियोगिता तत्व की उपेक्षा करना, दो ऐसी चीजों को जो, वास्तव में, सारत: एक-सी है, विरोधी चरम सीमाओं पर रखना और उन्हें **पूर्णत:** भिन्न बताना है।

व्यापार-चिह्नों की प्रतियोगितामूलक प्रकृति के बारे में दृढ़ दृष्टिकोण रोजर्स (Rogers) की *Goodwill, Trade-Marks and Unfair Trading* में मिलता है। "ये [पेटेन्ट और कापीराइट] कानून द्वारा बनाए गए एकाधिकार है।... व्यापार-चिह्न एक बिलकुल भिन्न चीज है। इसमें एकाधिकार का कोई तत्व सन्निहित नहीं है। ...व्यापार-चिह्न एकाधिकार के विचार का निषेध करता है। यह एक पदार्थ का दूसरे से भेद दिखाने का साधन है; इसलिए यह परिणाम निकलता है कि दूसरे पदार्थ, जिनसे भेद दिखाया जाता है अवश्य होने चाहिए। यदि अन्य पदार्थ है तो एकाधिकार नहीं है, और यदि एकाधिकार है तो भेद दिखाने की कोई आवश्यकता नहीं है।"[12] यहाँ स्पष्ट रूप से वह द्वन्द्वात्मक तर्क मिलता है जो आर्थिक और कानूनी चिंतन में व्यापक रूप से प्रचलित इस अभिवृत्ति के पीछे है, और जिसका संदर्भ पहले ही दिया गया है, कि एकाधिकार और प्रतियोगिता को विकल्प अवश्य समझा जाना

चाहिए। स्पष्ट है कि यह पेटेन्ट पर भी उतना ही लागू होता है, क्योंकि, इस तर्क का पदान्वय करने पर, पेटेन्टकृत पदार्थ अन्य से चाहे कितना ही पूर्णतः भिन्न हो, अन्य पदार्थ सदैव हाते हैं, और इसलिए एकाधिकार नही होता है। इस तर्क के अनुसार, एकाधिकार केवल तब एक सभावना है जब केवल एक पदार्थ का अस्तित्व हो। कठिनाई क्या है? सुनिश्चित है कि दो वस्तुएं कुछ दृष्टियों से एक-सी और कुछ से भिन्न हो सकती हैं। उनके सादृश्य या उनके असादृश्य (इन दो में से केवल एक स्थिति) पर ध्यान केन्द्रित करना चित्र का केवल आधा भाग देना है। इस प्रकार, यदि एक व्यापार-चिह्न एक उत्पाद का दूसरे से भेद दिखाता है, अर्थात् उसे दूसरे से पृथक् करता है, तो वह विक्रेता को एकाधिकार प्रदान करता है, जिससे हम, रोजर्स का अनुसरण करते हुए, यह तर्क कर सकते हैं कि कोई प्रतियोगिता नही है। वस्तुत, रोजर्स स्वय इस जाल में फस जाते है और कुछ पृष्ठों के बाद अपने ही तर्क का खण्डन करते है, जहां क्रेता के "क्वैकर ओट्स" के लिए कल्पित अधिमान के बारे में वे कहते है कि "यह साफ और सीधे आदत है, और यह **छाप** की आदत है, **व्यापार-चिह्न** की आदत है, जो हमे और हम जैसे दूसरों को है, और जिस उत्पादक के माल का उपयोग करने के हम आदी हो गए है उसके लिए इस आदत का कुछ न कुछ मोल है। यह **प्रतियोगिता को हटा देता है**, क्योंकि हमारे लिए कोई दूसरी वस्तु ठीक 'उतनी अच्छी नही' है।"[13] यदि व्यापार-चिह्न "एकाधिकार का निषेध करते है" और "प्रतियोगिता को हटा देते है," तो बचे हुए की प्रकृति के बारे में क्या कहिए।

पेटेन्ट और व्यापार-चिह्नो मे भेद दिखाने के आखिर क्या आधार है? प्रत्येक एक उत्पाद को कुछ मानों में अद्वितीय बनाता है; यह उसका एकाधिकारमूलक पहलू है। प्रत्येक लगभग उस जैसे, किन्तु बिलकुल वैसे ही नहीं, अन्य पण्यों के लिए गुजाइश रखता है, यह उसका प्रतियोगितामूलक पहलू है। इन का अन्तर केवल मात्रा का है, और यह सन्देहास्पद है कि इस आधार पर भी कोई सार्थक भेद किया जा सकता है। साधारणतया यह माना जाएगा कि पेटेन्ट की स्थिति मे एकाधिकार की मात्रा अधिक होती है। किन्तु, दृष्टांत के रूप में, "कोडाक", "आइव्हरी", "उनीडा", "कोका कोला", और 'ओल्ड डच क्लीन्जर" जैसे नामों का विशाल प्रतिष्ठा-मूल्य किसी को भी कम से कम संशयालु बनाने के लिए पर्याप्त है। पेटेन्ट और कापीराइट के रूप में संयुक्त राज्य सरकार द्वारा मजूर किए गए एकाधिकार के अधिकारों के मूल्य की और व्यापार-चिह्नों, व्यापार-नामों, और सुनाम के रूप में विद्यमान एकाधिकारों के मूल्य की तुलना के लिए संतोषजनक रूप से गणना करना असम्भव होगा। (कुल लाभों में से घटाने के उद्देश्य से) "प्रतियोगी" प्रतिफल की और अन्य एकाधिकार तत्वों से मिले हुए माने गए लाभों की परिभाषा दुस्तर कठिनाई पैदा करेंगी। पेटेन्ट और व्यापार-चिह्नों की अवधि के अन्तरों का, कई स्थितियों में सयोजन के कारण से पेटेन्टों के बढ़े हुए मूल्यों का, और अन्य कारकों का भी ध्यान रखना होगा। किन्तु ऐसी तुलना का सुझाव देना ही इस बारे में गंभीर सन्देह पैदा कर देता है कि पेटेन्ट का एकाधिकार तत्व क्या मात्रात्मक रूप से उतना महत्वपूर्ण है जितना व्यापार-चिह्नों का।

अब हम, ऊपर उल्लिखित, विशिष्टीकरण की दूसरी अवस्था -- वह विशिष्टीकरण जो उत्पाद की बिक्री की दशाओं के सम्बन्ध में है—पर इस तर्क को लागू करें। फुटकर व्यापार में स्थिति का तत्व इसका एक उदाहरण है। पण्य का एक स्थान पर उपलब्ध न होकर दूसरे स्थान पर उपलब्ध होना क्रेताओं के लिए महत्व रखता है। हम इन पदार्थों को क्षेत्रीय रूप से विशिष्टीकृत मान सकते है और "क्षेत्रीय (spatial) एकाधिकार" पद का प्रयोग पूर्ति पर उस नियन्त्रण के लिए कर सकते हैं जो किसी विक्रेता का उसकी स्थिति के कारण से है। जब इसमें विक्रेता की विशेष स्थिति के, क्रेताओं को, लाभ भी सम्मिलित कर लिए जाते है तो फुटकर विक्रेता का अपने "उत्पाद" की पूर्ति पर पूर्ण और एकान्तिक नियन्त्रण हो जाता है। अन्य बातें समान होने पर, जो लोग उसके व्यापार के स्थान को अपने घरों से, अपने खरीददारी के रास्ते में, अपने कर्म-स्थान से आने-जाने में सब से सुविधाजनक पाते है, वे अधिक दूरवर्ती स्थानों में ठीक उसी जैसे (identical) पदार्थों के रूप में मिलने वाले न्यूनाधिक अपूर्ण स्थानापन्नों की अपेक्षा उससे व्यापार करना अधिक पसंद करेंगे; ठीक उसी प्रकार जैसे व्यापार-चिह्नित पदार्थों की और गुणात्मक रूप से विशिष्टीकृत पदार्थों की स्थिति मे, अपनी व्यक्तिगत रुचियों, आवश्यकताओं या आयों मे भिन्नता के कारण से क्रेता एक प्रकार को दूसरे पर अधिमान देने लगते हैं।

बिक्री की परिस्थितियों के कारण विशिष्टीकृत "उत्पादो" के इस क्षेत्र में, हम, पेटन्ट और व्यापार-चिह्नों की स्थिति की भाति कह सकते हैं कि एकाधिकारमूलक और प्रतियोगितामूलक दोनों प्रकार के तत्व विद्यमान है। यह क्षेत्र सामान्यतया प्रतियोगितामूलक समझा जाता है, परन्तु यह उन क्षेत्रों से केवल मात्रा मे भिन्न है जो तुरन्त एकाधिकारमूलक के वर्ग में रखे जाते। फुटकर व्यापार मे, प्रत्येक "उत्पाद" जिस सिब्बंदी में वह बेचा जाता है उसकी विशिष्टता के कारण, जिसमें उसकी स्थिति भी सम्मिलित है (एवं व्यापार-चिह्नों, गुणात्मक भेदों, इत्यादि के कारण), अद्वितीय बन जाता है। यह उसका एकाधिकारमूलक पहलू है। प्रत्येक को भिन्न परिस्थितियों में और अन्य स्थानों में बिकने वाले अन्य "उत्पादों" से प्रतियोगिता करनी पड़ती है। यह उसका प्रतियोगितामूलक पहलू है। विशिष्टीकृत उत्पादों के क्षेत्र में अन्यत्र की भांति, यहां भी एकाधिकार और प्रतियोगिता दोनों सदैव विद्यमान रहते हैं।

अधिक व्यापक शब्दों में, यदि हम एकाधिकार को प्रतियोगिता का विलोम (antithesis) मानें, तो उसकी चरम सीमा केवल उस स्थिति में आती है जब सब आर्थिक पदार्थों की पूर्ति पर नियन्त्रण हो। इसे इस अर्थ में शुद्ध एकाधिकार कह सकते है कि स्थानापन्नों से सब प्रतियोगिता परिभाषानुसार वर्जित है। दूसरे छोर पर शुद्ध प्रतियोगिता है, जिसमें पदार्थों के वर्ग पूर्णतया मानकित होते हैं, और विक्रेता अपने उत्पाद के लिए पूर्ण स्थानापन्नों की प्रतियोगिता का सामना करता है। इन दो छोरों के बीच अन्य सब श्रेणियां हैं, परन्तु दोनों तत्व सदा विद्यमान रहते है, और

उन्हें सदा मान्यता अवश्य दी जानी चाहिए। प्रतियोगिता या एकाधिकार को अलग करना परिणाम को मिथ्या करना है, और इस मात्रा तक मिथ्या करना है जो कि उपेक्षित कारक के आभासी महत्व के अनुपात में कहीं अधिक हो सकती है।

अतः, जब उत्पाद (किंचित् भी) विशिष्टीकृत होता है, शुद्ध प्रतियोगिता का सिद्धान्त कीमतों की व्याख्या के रूप में अपर्याप्त होता है। एकाधिकार तत्वों को अलग करके (अर्थात् उत्पाद को एकरूप समझ करके) वह उनके द्वारा ऊपर की ओर लगाए गए बल की उपेक्षा करता है, और ऐसी सन्तुलन कीमत का निर्देश करता है जो सच्चे मानक से कम है।[14] सघटक बलों का सादृश्य, यद्यपि यथार्थ नहीं है, सहायक है। वास्तविक कीमतें शुद्धतः प्रतियोगी कीमतों के सन्निकट नही होतीं, ठीक उसी प्रकार जैसे दो नोदक (propeller) वाले जहाज का मार्ग एक नोदक चलाने पर मिलने वाले मार्ग के सन्निकट नही होता। शुद्ध प्रतियोगिता और शुद्ध एकाधिकार दो छोर है, ठीक उसी प्रकार जैसे अलग-अलग करके एक-एक नोदक को चलाकर मिलने वाले जहाज के दो मार्ग चरम स्थितियां है। वास्तविक कीमतों की प्रवृत्ति इन दो में से किसी ओर नहीं होती, बल्कि मध्य की ओर होती है जो प्रत्येक स्थिति में इन दो शक्तियों की सापेक्ष सामर्थ्य के सम्बन्ध में निर्धारित होती है। शुद्धतः प्रतियोगी कीमत प्रसामान्य कीमत नही है; और कीमत प्रणाली मे उन कुछ स्थितियों को छोड़कर जहां प्रतियोगिता वास्तव मे शुद्ध है, उसके स्थापित होने की कोई प्रवृत्ति नही होती है।

ऐसा प्रतीत हो सकता है कि एकाधिकार का सिद्धान्त, प्रतियोगितामूलक तत्वों का निषेध करके, विपरीत अर्थ मे विलघन करता है। लेकिन, यह केवल **शुद्ध** एकाधिकार की स्थिति मे होगा, जैसीकि उसकी परिभाषा ऊपर दी गई है—अर्थात् एक ही व्यक्ति या एजेन्सी का सब आर्थिक पदार्थो की पूर्ति पर नियन्त्रण। एकाधिकार के सिद्धान्त की ऐसी व्याख्या कभी नहीं की गई है। वह विशेष पदार्थों पर लागू होता है, और इस रूप मे सम्बन्धित उत्पाद और अन्य में प्रतियोगिता को सदैव स्वीकार करता है। वस्तुतः, हम यहा तक कह सकते है कि यह सिद्धान्त दोनों तत्वों को उचित मान्यता देने की सारभूत अपेक्षा को पूरी तरह से पूरा करता **प्रतीत** होता है, और यह दिलचस्प संभावना तुरन्त सूझती है कि मामला पलट दिया जाए और आर्थिक समाज का वर्णन उसे (लगभग) पूर्णतः प्रतियोगी कहने के स्थान पर पूर्णतः एकाधिकारिक कह कर दिया जाए। इस दृष्टिकोण का खण्डन अनुवर्ती अध्यायों में किया जाएगा। इस बीच मे, इसमें अन्तर्विष्ट सत्य के काफी बड़े अंश को सामने लाकर वाद-विषयों को स्पष्ट किया गया है। अब हम इस पर विचार करें कि इसका खण्डन किस आधार पर **नहीं** किया जा सकता।

3. पूर्णतः एकाधिकारिक जैसी आर्थिक पद्धति

एकाधिकार का सार पूर्ति पर नियन्त्रण है।[15] इसलिए, क्या विशिष्टीकृत

उत्पाद के सम्पूर्ण क्षेत्र का वर्णन पूर्ण एकाधिकारों के शब्दों में (प्रत्येक विक्रेता के लि एक) नहीं किया जा सकता ?

पहली आपत्ति यह की जा सकती है कि कई उत्पादों के स्थानापन्न विद्यमान जो वस्तुतः लगभग एक ही उत्पाद हैं; जिससे यह प्रतीत होगा कि एकाधिकार तत्व, परम और पूर्ण होने के स्थान पर, लगभग अविद्यमान है।

अब, इसमें सन्देह नहीं कि, किसी व्यापार-चिह्न के स्वामी का जिस विस्तृत क्ष में यह चिह्न अन्य से प्रतियोगिता करता है उस पर एकाधिकार या किसी मात्रा एकाधिकार नहीं है। "लकी स्ट्राइक्स" का एकाधिकार सिगरेटोंका एकाधिकार नहीं क्योंकि उसके उत्पादक का अन्य स्थानापन्न छापों की पूर्ति पर किसी भी मात्रा नियन्त्रण नहीं है। परन्तु यदि, पूर्ण एकाधिकार प्राप्त करने के लिए, स्थानापन्नों भी नियन्त्रण होना है, तो जिस पूर्ण एकाधिकार की कल्पना की जा सकती है, वह चीजों की पूर्ति का समावेश करेगा क्योंकि सब चीजें एक-दूसरे की न्यूनाधिक मात्र अपूर्ण स्थानापन्न है। कोई कारण नहीं कि सिगरेटों की पूर्ति पर ही क्यों न जाए। निश्चित प्रकार की या कीमत-विस्तार की सिगरेटो की पूर्ति पर ही क्यों रुका जाए (जो क्षेत्र को अधिक संकीर्ण कर देता है); या फिर तम्बाकू के रूपों मे उसकी पूर्ति पर विचार क्यों न किया जाए (जो क्षेत्र को अधिक विस्तृत देता है)। जिस चीज पर एकाधिकार है उसका उल्लेख किए बिना "एकाधिक शब्द निरर्थक है। हीरों पर एकाधिकार रत्नों पर एकाधिकार नहीं है न ही, आगे बढ़ने पर, गहनों पर एकाधिकार है। विशिष्टीकरण का निहितार्थ है श्रेणीकर और एक उत्पाद पर **पूर्ण** एकाधिकार के यह अविरुद्ध (compatible) है कि सामान्य वर्ग से यह उत्पाद आता है और जिसके अन्दर **प्रति**योगिता है, वहां नियन्त्रण नहीं है।

यद्यपि इस विचार का मूल्य के एक संकर सिद्धान्त में विकास कभी नहीं कि गया, फिर भी, यहाँ तक, यह आजकल स्वीकृत सिद्धान्त को प्रस्तुत करता केवल दो लेखकों को उद्धृत करना पर्याप्त है। टॉसिग के अनुसार "कापीराइट पेटेन्ट कानून द्वारा परम एकाधिकार की सरलतम स्थितियाँ प्रदान करते है।"[16] पर भी वे इस बारे में स्पष्ट हैं कि "ऐसे एकाधिकार के धारक को न्यूनाधिक उप स्थानापन्नों की प्रतियोगिता का ध्यान रखना पड़ता है, और इस प्रकार वह अ कीमतों को घटाने और अपनी पूर्ति को जितना वह अन्यथा रखता उससे बढ़ा लिए विवश होता है।"[17] ऍली बताते हैं कि "स्थानापन्नों का उपयोग एकाधिका संगत है, और वे लगभग सदा विद्यमान होते हैं। लगभग प्रत्येक वस्तु का जिसे सोच सकते हैं, कोई न कोई न्यूनाधिक मात्रा में पूर्ण स्थानापन्न होता है, स्थानापन्नों का उपयोग एकाधिकारी की शक्ति की सीमाओं में एक है। एकाधि पर विचार करते समय हमें यह पूछना पड़ता है कि स्थानापन्न क्या हैं, और वे कि प्रभावकारी है ?"[18]

आर्थिक समाज की पूर्णतः एकाधिकारिक रूप में संकल्पना के विरुद्ध, द्वितीयतः, यह आपत्ति की जा सकती है कि यदि विशिष्टीकरण अत्यल्प हो, तो पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण होने पर भी हो सकता है कि कीमत पर नगण्य या अस्तित्वहीन नियन्त्रण प्राप्त हो। इसी आधार पर प्रोफेसर यंग ने, दो विकल्पों में से एक को चुनने में, व्यापार-चिह्नों को एकाधिकारमूलक न कह कर प्रतियोगितामूलक कहना पसन्द किया।[19] सीजर भी कीमत पर नियन्त्रण को अपनी एकाधिकार की परिभाषा का एक महत्वपूर्ण तत्व बनाते है।[20] अब कीमत पर एकाधिकारी का नियन्त्रण दो कारणों में से एक से सीमित हो सकता है : पहला, क्योंकि पूर्ति पर उसका केवल आंशिक नियन्त्रण है, या दूसरा, क्योंकि उसके उत्पाद की मांग बहुत लोचदार है। यदि पूर्ति पर नियन्त्रण पूर्ण नही है, तो स्पष्टतः एकाधिकार पूर्ण नही है, और कीमत पर केवल आशिक नियन्त्रण है। परन्तु बहुत लोचदार मांग एक अन्य प्रकार की परिसीमा है। कीमत पर एकाधिकारी का नियन्त्रण इस अर्थ मे कि वह अपने उत्पाद की मांग की दशाओं के अनपेक्ष उसे नियत कर सकता है, कभी पूर्ण नही होता। यह निश्चित है कि मांग का बेलोचदार होना उसके हित में है, परन्तु उसके एकाधिकार की पूर्णता को मांग की लोच की मात्रा से नापना सामान्य प्रथा के अनुसार नही है।

किसी पदार्थ की मांग इतनी लोचदार हो सकती है कि विक्रेता के लिए सर्वोत्तम कीमत उस कीमत से बहुत कम भिन्न हो जिस पर अन्य लगभग एकरूप उत्पादों को बेचते हों। अधिक न होकर हो सकता है कि वह कम हो, या हो सकता है कि वह पदार्थों के उस सामान्य वर्ग के लिए सामान्यतया स्वीकृत कीमत के समानुरूप हो। परन्तु यह तथ्य कि सब उत्पादक एक ही कीमत नियत करते है, एकाधिकार का अभाव सूचित नही करता क्योकि, जैसा बाद मे दिखाया जाएगा, यह कीमत उस कीमत से अधिक होगी जो तब होती यदि पण्य पूर्णतः एकरूप होता और शुद्ध प्रतियोगिता की दशाओं मे बेचा जाता। स्वभावतः, हो सकता है कि कीमत और भी ऊची होती यदि, प्रत्येक भिन्न छाप पर एकाधिकार के स्थान पर, उत्पाद के सम्पूर्ण वर्ग पर एकाधिकार होता। कोई विक्रेता जितने ही अधिक स्थानापन्नों पर नियन्त्रण रखता है, वह उतनी ही ऊची कीमत रख सकता है। परन्तु यह दूसरा मामला है। जब तक स्थानापन्न किसी भी मात्रा मे अपूर्ण है, उसका अपने उत्पाद पर एकाधिकार है और उसकी कीमत पर उन सीमाओं के अन्दर नियन्त्रण है जो किसी भी एकाधिकारी पर लागू होती हैं (ये सीमाएं मांग की है)।[21]

तीसरे, यह आपत्ति की जा सकती है कि प्रभेदक लक्षण बहुधा ऐसे लाभ देते है जो अत्यधिक, अनुचित, या "प्रतियोगी स्तर" से ऊंचे नहीं होते। यह निस्सन्देह सच है, परन्तु इसका प्रस्तुत प्रश्न से कोई सम्बन्ध नही है। अधिकांश पेटेन्ट निष्फल होते है; परन्तु वे इस कारण से प्रतियोगितामूलक नहीं है। वे बेकार के एकाधिकार हैं—ऐसी चीजें जिन्हें कोई नहीं चाहता। कई कापीराइटकृत पुस्तकें असफल होती हैं, और अन्य, यद्यपि वे शुद्ध प्रतियोगिता में कीमत से ऊंची कीमत पर बेची जाती हैं, इतनी

कम संख्या में बिकती हैं कि लाभ या तो नाम मात्र को होता है या होता ही नहीं। यह बिलकुल संभव है कि क्रेताओं के अधिमान कई प्रतियोगी विक्रेताओं के उत्पादों के बीच लगभग समान रूप से बँटे हों, जिससे सब को लगभग एक-से लाभ मिलें। एकाधिकार में न तो समरूप पदार्थों की कीमतों से उच्चतर कीमत सन्निहित है और न ही साधारण दर से उच्चतर लाभ।

संक्षेप में, जहाँ भी उत्पाद विशिष्टीकृत हों, एकाधिकार का सिद्धान्त उनकी कीमतों का समुचित रूप से वर्णन करता **प्रतीत** होता है। व्याख्या में से प्रतियोगिता का विलोपन नहीं किया जाता; इस बात को मान्यता देकर कि प्रत्येक एकाधिकारी के उत्पाद की मांग की लोच पर स्थानापन्नों का प्रभाव पड़ता है, उसका पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता है।

4. एकाधिकारिक प्रतियोगिता[22]

अब यह पूछा जा सकता है कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता इससे किस माने में भिन्न है। क्या यह एक नये नाम से अधिक कुछ है, जो इसलिए चुना गया है कि एकाधिकार के सिद्धान्त का इसके पहले जो कहीं अधिक विस्तृत प्रयोग किया गया है उसे कम कर दिया जाए? और यदि इससे अधिक है तो, एकाधिकार के सिद्धान्त में (समुचित कह कर जिसका बचाव अभी-अभी किया गया है) कमी किस बात में है?

इन प्रश्नों के उत्तरों का पूरा-पूरा विकास आगामी अध्यायों मे किया गया है। एकाधिकारिक प्रतियोगिता **शुद्ध** एकाधिकार से या **शुद्ध** प्रतियोगिता से सुस्पष्टतः भिन्न चीज है। जहाँ तक एकाधिकार का सम्बन्ध है, **जैसी उसकी कल्पना और परिभाषा साधारणतया की जाती है**, एकाधिकारिक प्रतियोगिता उसका समावेश करती है और उसी से शुरू करती है। ऐसा करना सभव है जब कि, अभी-अभी इतने विस्तार से बताए गए कारण से, प्रतियोगिता से शुरू करना सभव नही होता। कारण यह है कि एकाधिकार का सिद्धान्त समस्या के दोनों तत्वों को कम से कम स्वीकार तो करता है, जब कि प्रतियोगिया का सिद्धान्त एकाधिकारिक तत्वों को "अपूर्णताए" मान कर उन तत्वों को अलग कर देता है।

हम शीघ्र ही देखते हैं कि एकाधिकार का सिद्धान्त, यद्यपि वह पच्चड़ का काम करता है, अपर्याप्त है। कारण यह है कि वह विसम्पर्कित (isolated) एकाधिकारी पर विचार करता है, जिसके उत्पाद का मांग वक्र दिया हुआ है। यद्यपि जिन स्थितियों मे काफी दूर के स्थानापन्न होते है वहाँ यह सिद्धान्त हो सकता है कि उपयोगी हो, परन्तु विक्रेताओ के समूहों के प्रतियोगितामूलक परस्पर-सम्बन्ध उनमें से किसी के भी उत्पाद की मांग सारणी को दिया हुआ मानने का निषेध (preclude) करते हैं। किसी उत्पाद की मांग सारणी उन स्थानापन्नों की प्रकृति और कीमतों पर निर्भर करती है जिनके साथ उसकी निकट प्रतियोगिता है। घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित

उत्पादों के किसी समूह के अन्दर (जैसे वे जो एक अपूर्णतः प्रतियोगी बाजार में सम्मिलित किए जाते है) किसी एक की मांग और लागत की दशाओं (अत. उसकी कीमत) की परिभाषा केवल तब की जाती है यदि अन्य के सम्बन्ध में मांग और लागत की दशाएं दी हुई मानी जाएँ। इस प्रकार के आंशिक हल, जो एकाधिकार के सिद्धान्त से प्राप्त होते है, सम्पूर्ण समस्या के हल के प्रति कोई अंशदान नही करते, क्योंकि प्रत्येक हल अन्य के सम्बन्ध में की गई कल्पनाओं पर आधारित रहता है।[23] इसलिए एकाधिकारिक प्रतियोगिता न केवल **वैयक्तिक** सन्तुलन की समस्या से (साधारण एकाधिकार सिद्धान्त से), बल्कि **समूह** सन्तुलन से भी (प्रतियोगी एकाधिकारियों के एक समूह के अन्दर आर्थिक शक्तियों के समायोजन से, जिसे साधारणतया केवल प्रतियोगियों का समूह समझा जाता है) मतलब रखती है। इस बारे मे यह प्रतियोगिता के सिद्धान्त और एकाधिकार के सिद्धान्त, दोनों, से भिन्न है।

इस बात को दूसरी तरह से भी कहा जा सकता है। हम पहले ही देख चुके हैं कि जब उत्पाद विशिष्टीकृत होते है तो क्रेताओ को अधिमान का आधार मिल जाता है, और इसलिए वे क्रेताओं के साथ यादृच्छिक रूप से नही (जैसा शुद्ध प्रतियोगिता में होता है) बल्कि इन अधिमानों के अनुसार जोडियो में बंट जाते है। शुद्ध प्रतियोगिता मे प्रत्येक विक्रेता का बाजार प्रतिद्वन्द्वियों के बाजारों के साथ पूर्णतः विलीन हो जाता है। परन्तु अब यह स्वीकार करना होता है कि प्रत्येक बाजार कुछ मात्रा तक विसम्पर्कित है, जिससे सम्पूर्ण बाजार कई विक्रेताओं का एक अकेला विशाल बाजार नही है, बल्कि सम्बन्धित बाजारो का एक जाल है, जिसमे प्रत्येक विक्रेता का एक बाजार है। यह सिद्धान्त सर्वव्यापी आंशिक स्वतन्त्रता से उत्पन्न एकाधिकार तत्वों को आगे कर देता है। अर्थ-साहित्य में इन तत्वों को केवल आंशिक मान्यता मिली है, और, एक ऐसे सिद्धान्त मे जो उनका निश्चित रूप से अपवर्जन करता है, "अपूर्णताओं" के अन्तर्गत उनका उल्लेख करने के सिवाय, उन्हे कीमतो की सामान्य व्याख्या का एक भाग कभी नही होने दिया गया है।[24] अब हमारा उद्देश्य अकेले विक्रेता के बाजार पर ध्यान केन्द्रित करके जिस भी मात्रा मे अलगाव हो उसे उचित महत्व देना है। इस दृष्टिकोण से "प्रतियोगिता" का अध्ययन ऐसे परिणाम देता है जिनका स्वीकृत प्रतियोगिता-सिद्धान्त से तालमेल नही है।

अध्याय 5

उत्पाद विशिष्टीकरण और मूल्य-सिद्धान्त

1. विषय प्रवेश

शुद्ध प्रतियोगिता में किसी एक विक्रेता का बाजार सामान्य बाजार में पूर्णतया विलीन हो जाता है और इसलिए वह चालू कीमत पर जितना चाहता है उतना बेच सकता है। लेकिन, एकाधिकारिक प्रतियोगिता में उसका बाजार उसके प्रतिद्वन्द्वियों के बाजारों से किसी मात्रा तक पृथक् होता है, और इसलिए उसकी बिक्री निम्नलिखित तीन नये कारकों द्वारा निर्धारित और सीमित होती है—(1) उसकी कीमत, (2) उसके उत्पाद का स्वरूप, और (3) उसका विज्ञापन व्यय।

विक्रेता के उत्पाद का मांग वक्र क्षैतिज नहीं रह जाता और यह उसके ऊपर एक कीमत-समस्या थोप देता है जो शुद्ध प्रतियोगिता में अनुपस्थित थी। यह समस्या वैसी ही है जैसी एकाधिकारी से साधारणतः सम्बन्धित की जाती है। माग वक्र की लोच और उत्पाद के लागत वक्र के सापेक्ष उसकी स्थिति को देखते हुए, हो सकता है कि लाभ कीमत को बढ़ा कर कम बेचने से शायद बढ जाएँ या कीमत को घटा कर अधिक बेचने पर शायद बढ़ जाएँ। वह कीमत रखी जाएगी जो कुल लाभ को अधिकतम बना देती है।

इसी प्रकार विशिष्टीकरण का तथ्य विक्रेता पर अपने उत्पाद के समायोजन की एक नयी समस्या थोप देता है। उसकी बिक्री का परिमाण अशतः इस बात पर निर्भर करता है कि उसका उत्पाद उसके प्रतियोगियो के उत्पादो से किस प्रकार भिन्न है। यहाँ हम जिस विस्तृत अर्थ में "उत्पाद" शब्द का प्रयोग कर रहे है उसे लगातार ध्यान में अवश्य रखना चाहिए।[1] हो सकता है कि उत्पाद के "विचरण" उसके गुणों मे परिवर्तन का निर्देश करते हों—तकनीकी परिवर्तन, नया डिजाइन, या बेहतर सामग्री; उसका अर्थ नया पैकेज या डिब्बे हों; उसका अर्थ शीघ्र या सुशील सेवा, व्यापार करने का एक भिन्न तरीका हो, या शायद भिन्न स्थिति हो। कुछ स्थितियों में परिवर्तन निर्दिष्ट और निश्चित होता है—जैसे नया डिजाइन अपनाना। दूसरी स्थितियों मे, हो सकता है कि वह क्रमिक, शायद अचेतन, हो—जैसे सेवा के प्रकार में परिवर्तन। शुद्ध प्रतियोगिता में उत्पादक एक कार्यक्षेत्र से दूसरे में निस्सन्देह जा सकता है, परन्तु उसकी बिक्री का परिमाण उसके द्वारा चुने गए उत्पाद या उत्पाद के प्रकार पर कभी निर्भर नही करता, जैसा कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता में होता है, क्योकि वह सदा एक ऐसे बाजार का भाग है जिसमे अन्य उत्पादक एकरूप पदार्थ का उत्पादन कर रहे है।[2] शुद्ध प्रतियोगिता मे जिस प्रकार वह अपनी कीमत में परिवर्तन किए बिना अपनी बिक्री को एक बड़े परिसर में बदल सकता है, ठीक उसी प्रकार

क या कम करना चाहे कर सकता है। लेकिन, जहाँ विशिष्टीकरण की संभावना मान है, बिक्री इस पर निर्भर करती है कि किस निपुणता से पदार्थ अन्य से भिन्न गया है और क्रेताओं के किसी विशेष समूह के लिए आकर्षक बनाया गया है। कता है कि, कीमत में पुन समायोजन करके या बिना किए, "उत्पाद" में सुधार ा गया हो या उसे बिगाड़ा गया हो या केवल बदल दिया गया हो। लाभ को कतम करने की परम्परागत कल्पनाएँ इस पर, एवं कीमत पर, साधारणतया लागू ाएगी।[3]

तीसरे, हो सकता है कि विक्रेता अपनी बिक्री के परिमाण को ऐसे व्यय करके वेत करे जो उसी उद्देश्य के लिए विशिष्ट रूप से लक्षित किए गए है। विज्ञापन से व्यय के प्रतिरूपी के रूप में समझा जा सकता है। ऐसा व्यय उसके उत्पाद की और उसकी लागत, दोनों, को बढाता है, और व्यय की राशि का समायोजन इस र किया जाएगा, जैसे कीमतों और "उत्पादो" का किया जाता है, कि उद्यम के लाभ धिकतम बना दे। अन्य की तरह यह तीसरा कारक भी एकाधिकारिक प्रतियोगिता वशेषता है, क्योंकि शुद्ध प्रतियोगिता में, जिसमे कोई विक्रेता विज्ञापन के बिना जितना उतना बेच सकता है, वह निष्प्रयोजन होगा। परन्तु वह पहले ही सम्मिलित किए एकाधिकार तत्वो के साथ आवश्यक रूप से प्रकट नही होता। बाद में यह तर्क किया ा कि इस स्रोत से लाभ इसलिए सभव होते है क्योकि (क) जिस साधन के आवश्यकताए सब से प्रभावकारी रूप से सन्तुष्ट की जा सकती है उसके बारे मे ो का ज्ञान अपूर्ण होता है; और (ख) विज्ञापन या विक्रयण-आकर्षण (selling eal) द्वारा आवश्यकताओ मे परिवर्तन करने की संभावना रहती है। इस बारे मे धीरे आगे बढना और जब तक स्वत: विशिष्टीकरण के परिणामों की खोज नही ी जाती तब तक विवेचन के इस क्षेत्र को स्थगित करना सहायक होगा। सम्प्रति, ोगी क्रिया के रूप मे विज्ञापन पर हम विचार नही करेगे और अपने ध्यान को रों, कीमत और "उत्पाद", पर केन्द्रित करेंगे। दी हुई आवश्यकताओं और उन्हें ट करने के लिए उपलब्ध साधनो के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान की कल्पना पर स्पष्ट से चल कर ऐसा किया जा सकता है।

जिस स्थिति में कीमतों और "उत्पाद" दोनों में परिवर्तन किए जा सकते है, सन्तुलन में इन दोनों के सम्बन्ध मे स्थायित्व सन्निहित अवश्य होना चाहिए। ाद सन्तुलन" की धारणा के स्पष्टीकरण की आवश्यकता है, और हो सकता है सका महत्व तुरन्त प्रतीत न हो। मूल्य के सिद्धान्त ने एक दिए हुए पदार्थ के ा-समायोजन से मतलब रखा और इसकी पूर्णतया उपेक्षा कर दी; और ऐसा ा होता है कि किसी को[4] भी यह नही सूझा कि दी हुई कीमत पर उत्पाद-समायोजन तिलोम समस्या रखी जा सकती है। वास्तव में कीमत-समायोजन सम्पूर्ण प्रतियोगी ा की मात्र एक अवस्था है और वह भी बहुधा अपेक्षया अमहत्वपूर्ण अवस्था।

क्रेताओं का ध्यान व्यापार-चिह्न की ओर फेर कर या प्रकार अथवा सेवा के आधार पर प्रतियोगिता करके (या विज्ञापन के द्वारा, जिस पर सम्प्रति विचार नहीं किया जा रहा है) कीमत प्रतियोगिता से अधिकाधिक बचा जाता है। समस्या में "उत्पाद" को एक चर के रूप में लाकर इस दूसरे प्रकार की प्रतियोगिता के तथ्य को कम से कम प्रकाश में तो लाया जाना चाहिए।

एक सम्पूर्ण चित्र के लिए "उत्पाद" के प्रत्येक तत्व को, वस्तुतः, एक पृथक् चर समझा जाना चाहिए। उदाहरणार्थ, जब "उत्पाद" की कीमत और उसके अन्य पक्ष दिए हुए हों, तो स्थिति के सम्बन्ध में क्या समायोजन किया जाता है? इसी तरह प्रकार, सेवा, इत्यादि को भी अलग-अलग किया जा सकता है।[5] इस प्रकार के विश्लेषण के परिणाम कितने विलक्षण हो सकते हैं इसका कुछ संकेत परिशिष्ट 'ग' में मिलेगा, जिसमें स्थिति के कारक के पृथक्करण का प्रयत्न किया गया है। लेकिन यहां, इसके अतिरिक्त, "उत्पाद" के परिवर्तन पर उसके सबसे व्यापक पहलुओं में विचार किया गया है।

एक-दूसरे के स्थानापन्न पदार्थों के बाजार घनिष्ठ रूप से परस्पर-सम्बन्धित होने के कारण, किसी एक विक्रेता के उत्पाद के मांग वक्र की स्थिति और लोच अधिकांश में प्रतियोगी "उत्पादों" की सुलभता और उनके लिए मांगी गई कीमतों पर निर्भर करती है। इसलिए, जिस अधिक व्यापक परिस्थिति का वह एक भाग है उसके अनपेक्ष एक विक्रेता के सन्तुलन समायोजन की परिभाषा नहीं की जा सकती। लेकिन इस अन्योन्याश्रय की स्वीकृति के विरुद्ध यह नहीं है कि जब हम उसके अपने समायोजन पर अलग से विचार करते है तो उसके प्रतियोगियों के सम्बन्ध मे दशाओं को, जो उसके बाजार को परिभाषित करती है, स्थिर रखते है। एक जटिल समस्या को उसे उसके भागों मे विभाजित करके अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है और एक विक्रेता के सन्तुलन की समस्याए एक अधिक विस्तृत क्षेत्र मे समायोजन की अधिक जटिल समस्याओं के लिए सहायक सिद्ध होंगी।

इस प्रयोजन के अतिरिक्त, जिसे पूर्णतः प्रतिपादनात्मक समझा जा सकता है, एक उद्यम के सन्तुलन समायोजन के हल का एक अन्य औचित्य यह है कि बहुधा यह तथ्यो पर प्रत्यक्षतः लागू किया जा सकता है। जहाँ व्यवसायी वास्तव में बाजारों के अन्योन्याश्रय की उपेक्षा करते है, सिद्धान्त द्वारा उसकी उपेक्षा करना ठीक है। उन बहुसरूपक स्थितियों में यह सच है : यथा, (1) तब भी जब किसी एक विक्रेता द्वारा आरम्भ किए गए परिवर्तन के प्रभाव प्रतियोगियो की इतनी बड़ी सख्या में फैले रहते है कि वे प्रत्येक के लिए नगण्य है। और यह तब भी सच है, (2) जब उत्पाद के कोई बहुत प्रत्यक्ष स्थानापन्न नहीं होते, जिससे उत्पाद की बिक्री मे होने वाली वृद्धि, जो मान लो कीमत कम करने से होती है, निकट से प्रतियोगी उत्पाद या उत्पाद-समूह के बदले मे प्रधानतः नही होती, बल्कि सब प्रकार के पदार्थों के बदले मे होती है। यहा हम एकाधिकार के पारम्परिक सिद्धान्त में अन्तर्निहित "विसम्पर्क" की अव्यक्त कल्पना को स्वीकार करते

हैं। वस्तुतः, समस्या की जिस अवस्था पर यहाँ विचार किया गया है उसे एकाधिकार के सिद्धान्त का एक विस्तार समझा जा सकता है जो "उत्पाद" एवं कीमत के समायोजन का समावेश करता है। संक्षेप में, वैयक्तिक सन्तुलन का सिद्धान्त (1) अपने-आप में महत्वपूर्ण है, और (2) एक अधिक व्यापक क्षेत्र में, सन्तुलन की समस्या के परिचय के रूप में, महत्वपूर्ण है। यह व्यापक क्षेत्र जिसे प्रायः "अपूर्णतः प्रतियोगी" बाजार के रूप में अस्पष्टतः समझा जाता है उसे समाविष्ट करता है।

2. वैयक्तिक सन्तुलन

आइये, सब स्थानापन्नों के सम्बन्ध में, उनके स्वरूप के बारे में और उनकी कीमतों के बारे में, दशाओं को दिया हुआ मान कर, हम कीमत और "उत्पाद" के समायोजन का वर्णन करें जो विचाराधीन विक्रेता के लाभ को अधिकतम बना देता है।

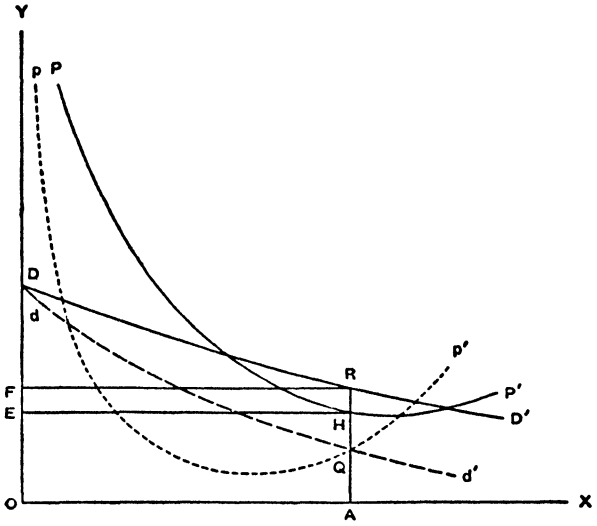

चित्र 9

वास्तव में, परिस्थितियों के अनुसार, हो सकता है कि विक्रेता दोनों का एक-साथ या एक-एक करके अलग-अलग समायोजन कर। यदि उसकी कीमत प्रथा द्वारा नियत है या व्यापार व्यवहार द्वारा या (यदि खुदरा विक्रेता है तो) विनिर्माता द्वारा आरोपित है, तो वह केवल "उत्पाद" में परिवर्तन करने के लिए स्वतन्त्र है। दूसरी ओर, यदि उत्पाद अपने स्वरूप के या किसी पहले निर्णय के कारण से नियत है, तो केवल कीमत वस्तुतः चर है। यदि ये दोनों बदले जा सकते है तो सन्तुलन समायोजन मे दोनों सन्निहित अवश्य होने चाहिए। हम जिस रीति को अपनाएंगे उसमें प्रत्येक पर बारी-

बारी से विचार किया जाएगा और अन्त में उन्हें मिला दिया जाएगा। पुनः, हो सकता है कि प्रत्येक पृथक्कृत समस्या अपने-आपमें महत्व रखती हो, जैसे ऊपर बताया गया है, या उसे अन्तिम हल की ओर एक कदम माना जा सकता है जिसमें इन भागों को फिर से मिला दिया जाता है।

पहले "उत्पाद" को स्थिर रखा जाएगा और कीमत-समायोजन पर ध्यान दिया जाएगा। चित्र 9 में, DD' मांग वक्र है, जो **सब** उत्पादों और **अन्य सब** कीमतों की स्थिरता के कारण अपरिवर्तनीय रूप से परिभाषित है। PP' उत्पादन लागत वक्र है। स्मरण रहे कि यह बड़े पैमाने की किफायतों का अनुरेखण करता है, एक निम्नतम बिन्दु तक गिर कर फिर उठता है।[6] (थोड़ी देर के लिए बिन्दु-रेखा की उपेक्षा कर दो।) एक-दूसरे के सापेक्ष इन वक्रों की स्थिति समस्या के स्थिर तत्वों द्वारा ग्रहण की गई स्थिति पर निर्भर करेगी। या तो PP' को DD' दो स्थानों में काटेगा, जैसे चित्र 9 में, या उसकी स्पर्शरेखा होगा, जैसे चित्र 10 में। (DD' सब बिन्दुओं पर लागत वक्र के नीचे नहीं हो सकता, अन्यथा किसी भी दशा मे पदार्थ का उत्पादन नहीं होगा।) उसका PP' को निर्देशित रीति से काटना निश्चित है, अर्थात्, इन वक्रों के

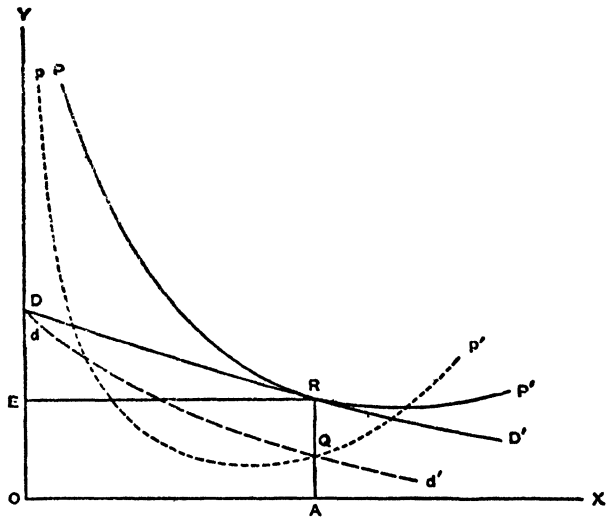

चित्र 10

स्वरूप के कारण, प्रत्येक छोर पर वह PP' के नीचे होगा। वह बायीं ओर PP' के नीचे रहता है क्योंकि जब कि मांग एक परिमित कीमत पर स्वभावतया शून्य हो जाती है, बंधी या अनुपूरक लागत को (जिसमें उद्यमी का न्यूनतम लाभ भी सम्मिलित है) सूलने की आवश्यकता, उत्पादन चाहे कितना ही कम क्यों न हो, लागत वक्र को इस प्रकार परिभाषित करती है कि वह y-अक्ष से अनन्त पर मिले। दायीं ओर

DD' फिर PP' के नीचे होता है क्योंकि मांग वक्र धीरे-धीरे शून्य की ओर गिरेगा (यह मान कर कि पदार्थ के इतना प्रचुर होने की कल्पना की जा सकती है कि वह निर्मूल्य हो जाए), जब कि लागत वक्र शून्य तक कभी नही गिर सकता, और उत्पादन का दक्ष पैमाना प्राप्त हो जाने के बाद वह फिर ऊपर की ओर अवश्य मुड़ेगा।

अब, मांग की और लागत की दशाओं को दिया हुआ मानने पर, निर्धारित कीमत AR अवश्य होनी चाहिए, जिसके लिए लाभ $EHRF$ अधिकतम है। (लागत वक्र PP' अपने सब बिन्दुओं पर उद्यमी की सेवाओं को प्राप्त करने के लिए आवश्यक **न्यूनतम** लाभ को सम्मिलित करता है; इसलिए उसके **कुल** लाभ तब अधिकतम होंगे यदि PP' वक्र के ऊपर प्रति इकाई आधिक्य, HR, गुणा इकाइयों की संख्या, OA, अधिकतम है।) बेची गई राशि OA है। यदि PP' की स्पर्श-रेखा DD' हो, जैसे चित्र 10 में, तो केवल एक कीमत ऐसी है जिसके होने पर वास्तविक हानि नहीं होगी, और वह है, OA उत्पत्ति के लिए, AR।[7] यहां सन्तुलन में न्यूनतम आवश्यक लाभ से अधिक लाभ नही मिलता। फिर भी, चूकि वह मिलता है, इसलिए समायोजन पूर्णतः स्थायी है, और लाभ उतने ही यथार्थतः अधिकतम किए जाते है जितने चित्र 9 में, जहा आधिक्य विद्यमान है।

अधिकतम लाभ के बिन्दु की परिभाषा सीमान्त लागत और सीमान्त आय वक्रों के सदर्भ मे भी की जा सकती है। इन वक्रों के स्वभाव की व्याख्या पहले ही की जा चुकी है।[8] ये औसत लागत और औसत आय (कीमत) वक्रों से व्युत्पन्न किए जाते है, और क्रमशः pp' और dd' बिन्दु-रेखाओं से दिखाए गए है। जैसे-जैसे उत्पादन इनके प्रतिच्छेद-बिन्दु Q तक बढता है, लाभ निरन्तर बढते है, क्योंकि प्रत्येक अतिरिक्त इकाई लागत की अपेक्षा आय मे अधिक वृद्धि करती है। Q के बाद इसका विलोम सच है, और तदनुसार कुल लाभ तब अधिकतम होगे जब उत्पत्ति OA पर रखी जाएगी। लेकिन, जिस कीमत पर यह राशि बेची जाएगी वह AQ नही बल्कि AR होगी, जैसा कि मांग वक्र DD' (औसत आय वक्र) द्वारा प्रकट किया जाता है।

अब यह देखा जा सकता है कि विक्रेता के समायोजन में एकाधिकार तत्वों का (विज्ञापन की सभावनाओं को छोड़कर, जिस पर बाद में विचार किया जाएगा) प्रभाव, शुद्ध प्रतियोगिता की अपेक्षा, उसकी कीमत को उच्चतर और उसके उत्पादन के पैमाने को निम्नतर बना देना स्वभावतया है। यह शुद्ध प्रतियोगिता के पूर्णतः क्षैतिज मांग वक्र की तुलना में ढालू मांग वक्र होने का परिणाम है। मांग वक्र चाहे किसी भी स्थिति मे खीचा जाए, उसका ऋणात्मक ढलान अधिकतम लाभ को ऐसे बिन्दु पर निर्धारित करेगा जो उसके क्षैतिज होने पर, जैसा शुद्ध प्रतियोगिता मे होता है, मिलने वाले बिन्दु के बायें होता है। इसका अर्थ है, सामान्यतया, उच्चतर उत्पादन लागतें और उच्चतर कीमतें।[9] तर्क के आगे बढ़ने के साथ इस विषय का और अधिक विकास किया जाएगा।

दूसरे, जब हम "उत्पाद" समायोजन की परीक्षा करते है तो मान लो कि कीमत स्थिर रखी जाती है। यह समझा जा सकता है कि उद्यमकर्ता सामान्यतः प्रचलित कीमत को स्वीकार करता है। यह कीमत परम्परा द्वारा या व्यवसाय-व्यवहार के द्वारा नियत होती है या ऐसी है जो पहले लिए गए निर्णय द्वारा निर्धारित हुई है और उसके ग्राहक जिसके आदी हो गए हैं। अब वह अपने "उत्पाद" को — अथवा उसकी जिस किसी अवस्था में परिवर्तन किया जा सकता है उसे — चुनता है। यदि वह अपना उद्यम पहले-पहल शुरू कर रहा है, तो वह उत्पाद की सब अवस्थाओं को चुनने के लिए स्वतन्त्र है। वह उत्पाद के न्यूनाधिक स्थायी ऐसे गुणों को तक चुन सकता है जैसे, यदि वह खुदरा व्यापारी है तो, उसका व्यापार करने का स्थान या, यदि वह निर्माता है तो, उसका व्यापार-चिह्न। बाद में चुनाव का क्षेत्र अधिक सीमित होता है, फिर भी वह शायद ही कभी शून्य होता है। खुदरा व्यापार में, सेवा और बिक्री की अन्य परिस्थितियाँ सब बदली जा सकती है; विनिर्माण मे या तो उत्पाद में या, यदि हो तो, उसके आधान (container) में तकनीकी और गुणात्मक परिवर्तन सदा संभव हैं। कुछ उत्पाद अपनी सहज प्रवृत्ति (essence) के कारण स्थिर रहने मे अक्षम होते हैं। उदाहरणार्थ, समाचारपत्र के, या पत्रिका के, प्रकाशन में इस बारे मे निरंतर चयन सन्निहित है कि पाठकों के लिए क्या प्रस्तुत किया जाएगा। इस विशेष स्थिति में, यह देखा जा सकता है कि हमारी कल्पनाएं और भी सटीक है क्योंकि ऐसे निर्णय लेते समय कीमत में परिवर्तन नही होता।

कीमत मे परिवर्तन के असदृश, "उत्पाद" मे परिवर्तन की एक विशेषता यह है कि उसमे उत्पादन लागत वक्र मे परिवर्तन सन्निहित हो सकते है, और साधारणतया

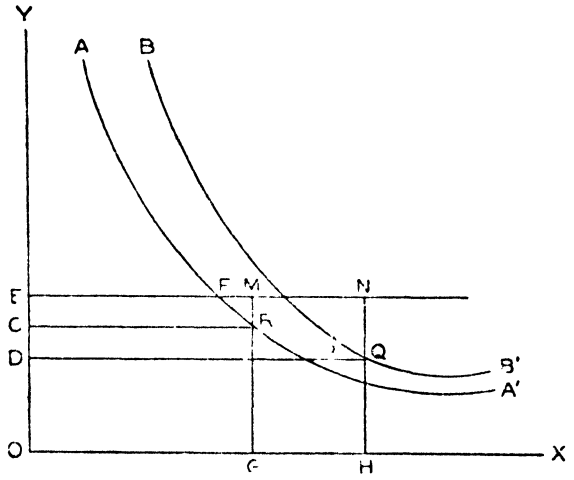

चित्र 11

होते हैं। उत्पाद में गुणात्मक परिवर्तन उसके उत्पादन की लागत बदल देते है।

स्वभावतः, वे उसकी मांग भी बदल देते है। समस्या ऐसे "उत्पाद" को छांटने की हो जाती है जिसकी लागत और जिसका बाजार, कीमत के दिए हुए होने पर, बृहत्तम कुल लाभ की गुजाइश रखता है।

दूसरी विशेषता यह है कि "उत्पाद" में परिवर्तन बहुधा, मात्रात्मक की अपेक्षा, गुणात्मक होते है, और इस स्थिति में किसी अक्ष मे नही नापे जा सकते और केवल एक चित्र मे नही दिखाए जा सकते।[10] इसलिए, इसके स्थान पर, "उत्पाद" के प्रत्येक प्रकार के लिए एक चित्र के हिसाब से चित्रों की एक श्रेणी की कल्पना करने की किंचित् बेढगी युक्ति का सहारा लेना पड़ता है। चित्र 11 में, मान लो OE स्थिर कीमत है। सरलता के लिए उत्पाद के केवल दो प्रकारों को, एक ही चित्र में एक को दूसरे के ऊपर रख कर, दिखाया गया है। इन प्रकारों को हम "A" और "B" कहेगे। उत्पाद "A" का लागत वक्र AA' है और (स्थिर कीमत OE पर) उसकी मांग OG है। कुल लाभ $CRME$ हैं और कुल लागत $OGRC$। उत्पाद "B" का लागत वक्र BB' है और उसकी मांग OH है। कुल लाभ $DQNE$ है, कुल लागत $OHQD$। यह स्मरणीय है कि EN रेखा यह दिखाने वाली माग रेखा नही है कि OE कीमत पर अनिश्चित रूप से बृहत् माग है। उत्पाद के प्रत्येक प्रकार की मांग सीमाबद्ध है, और स्थानापन्न "उत्पादो" के स्वरूप और कीमत के सम्बन्ध मे स्थिर दशाओं द्वारा और उस प्रकार की कीमत द्वारा निर्धारित होती है। इसलिए, बाजार में प्रस्तुत करने के लिए सब से लाभप्रद पूर्ति को निकालने के लिए, एक ही लागत वक्र, मान लो AA' पर आगे-पीछे हटना सभव नही है; बल्कि, "उत्पाद" के बदलने के साथ, एक वक्र से दूसरे पर जाना होता है, और प्रत्येक स्थिति मे बेची जा सकने वाली राशि अपरिवर्तनीय रूप से निर्धारित होती है। चित्र मे दिखाई गई दो सभावनाओं की तुलना करने पर, यह सुस्पष्ट है कि "A" पर "B" को अधिमान दिया जाना चाहिए। सब सभव प्रकारों की लागतों और मांगों की इसी प्रकार से तुलना करके, विक्रेता उस प्रकार को चुन सकता है जो उसे सब से लाभप्रद प्रतीत होता है।

यहाँ यह उल्लेख्य है कि चुना गया "उत्पाद" आवश्यक रूप से वह नही है जिसकी उत्पादन की लागत निम्नतम है। (BB' से AA' निम्नतर है, फिर भी पहले से अधिक लाभ मिलता है); न ही यह आवश्यक है कि वह बृहत्तम माग वाला हो, क्योकि उत्पादन की लागत पर भी विचार करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, उत्पत्ति का उत्पादन के दक्षतम पैमाने से, जो उत्पादन लागत वक्र के निम्नतम बिन्दु द्वारा दिखाया जाता है, कोई सम्बन्ध नहीं है।

सुस्पष्ट है कि, समस्या के स्थिर तत्वों के सम्बन्ध में जैसे-जैसे भिन्न दशाओं की कल्पना की जाती है, मांग बदलती है, और वक्रों की और कीमत रेखा की स्थितियाँ बदलती हैं। जैसे-जैसे प्रतियोगिता का दबाव अधिक होता है, अतिरिक्त लाभ की संभावनाएं अधिकाधिक सीमित होती हैं। अधिक अच्छे, अधिक सस्ते (या अधिक व्यापक रूप से विज्ञापित) स्थानापन्नों का मतलब शायद निम्नतर कीमत रेखा हो,

"उत्पाद" में सुधार की आवश्यकता के कारण से शायद उच्चतर लागत वक्र हो, शायद मांग में कमी हो, या शायद ये तीनों एक साथ हों। यदि उत्पाद "A" की मांग केवल EF हो, और यदि किसी अधिक अच्छे "उत्पाद" के चुनाव की संभावना न हो, तो न्यूनतम लागतें केवल पूरी होंगी; यदि मांग इससे कम हो, तो उत्पादन बन्द करना पड़ेगा। इसी प्रकार, यदि लागत वक्र उच्चतर हो, या कीमत रेखा निम्नतर हो, तो लाभ के अवसर अधिक सीमित होंगे, और यदि प्रत्येक संभव प्रकार का लागत वक्र कीमत रेखा के ऊपर हो तो लाभप्रद उत्पादन असंभव हो जाएगा।

अब हमने कीमत और "उत्पाद" दोनों के समायोजनों पर अलग-अलग विचार कर लिया है, और सामान्य स्थिति का वर्णन करने के लिए, जहाँ विक्रेता उन दोनों में परिवर्तन करने के लिए स्वतन्त्र है, इन्हें मिलाना बाकी रह जाता है। यह सीधा-सादा जोड का मामला है। यदि "उत्पाद" के प्रत्येक सभव प्रकार के लिए चित्र 9 और 10 जैसी रचनाएं की जाएं तो "उत्पाद" और कीमत का वह सयोजन आसानी से चुना जा सकता है जो सब से अधिक कुल लाभ प्रदान करता है। या, यदि "उत्पाद" और कीमत के सब सभव सयोजनों के लिए चित्र 11 जैसी रचनाए की जाए, तो इन दोनों का इष्टतम सयोजन पुन: प्रकट हो जाएगा। "उत्पाद" परिवर्तन का लेखाचित्रीय रूप से निरूपण करने की अनगढ़ता सम्पूर्ण समायोजन को मात्र एक चित्र में संक्षेप से दिखाना असभव कर देती है। लेकिन, यदि चित्र 9 या चित्र 10 इष्टतम "उत्पाद" के सम्बन्ध मे खीचे जाएं तो यह समझ लिया जा सकता है कि वे ऐसे सक्षेप को साकार करते है। तब, परिभाषानुसार, इस सम्बन्ध मे कोई अधिक अच्छा विकल्प संभव नहीं होगा, और चित्र से सुस्पष्ट है कि AR से अधिक लाभप्रद कीमत नही हो सकती है।

3. समूह सन्तुलन

अब हम उस समस्या पर विचार करें जिसे समूह समस्या कहा जा सकता है, अथवा काफी निकट के स्थानापन्न पदार्थो के कई उत्पादकों का कीमतों और "उत्पादों" में समायोजन। आरम्भ में, एक ऐसे समूह की कल्पना की गई है जिसे **साधारणतया** एक अपूर्णत: प्रतियोगी बाजार बनाने वाला समझा जाता है, जैसे काफी सख्या में ऑटोमोबाइल विनिर्माता, बर्तनों के उत्पादक, पत्रिका-प्रकाशक, या जूतों के खुदरा व्यापारी।[11] हमारे दृष्टिकोण से, किसी समूह का प्रत्येक उत्पादक एकाधिकारी है, फिर भी उसका बाजार उसके प्रतियोगियों के बाजारों से गुँथा हुआ है, और वह उनसे विसम्पर्कित नहीं होता। अब यह प्रश्न उठता है कि उत्पादकों के एक-दूसरे पर प्रभाव के परिणामस्वरूप सम्बन्धों की जिस पद्धति में आने की समूह की प्रवृत्ति होती है उसके लक्षण क्या हैं? इन निष्कर्षों पर जब शुद्ध प्रतियोगिता के सिद्धान्त से, जिसका प्रयोग इन्हीं तथ्यो पर साधारणतया किया जाता है, प्राप्त हुए निष्कर्षों के साथ

विचार किया जाता है तो वे विशेष रूप से स्पष्टकारी होते हैं ।

समूह सन्तुलन के वर्णन में इस कठिनाई का सामना करना होता है कि समूह की विभिन्न संघटक फर्मों में सब दृष्टियों से अधिकतम विभिन्नताएं (variations) हो सकती हैं । प्रत्येक "उत्पाद" के विशिष्ट लक्षण होते है, और जो उसे खरीदते है उनकी रुचियों और आवश्यकताओं के अनुकूल उसे बनाया जाता है । गुणात्मक भिन्नताओं के परिणामस्वरूप उत्पादन लागत वक्रों में बड़े अन्तर हो जाते है, और क्रेताओं के अधिमान, आकृति (लोच) और स्थिति (x और y अक्षों से दूरियों) के बारे में, माँग वक्रों की तदनुरूपी विविधता के लिए उत्तरदायी है । इसका परिणाम होता है : कीमतों की विविधता, और उत्पत्तियों (उत्पादन के पैमानों) में और लाभों में बहुत बड़े विचरण । कई ऐसे विचरण स्वभावतया अल्पकालिक होते है, और निरंतर विलोपन के प्रक्रम में रहते है । लेकिन, हमारी मुख्य रूप से उनमें दिलचस्पी है जो दीर्घ काल तक बने रहते है । काफी बड़ी सीमा तक कीमतों की पद्धति प्रत्येक उत्पाद की और उसके बाजार की अद्वितीय दशाओं का परिणाम है जो, व्याख्या में एकाधिकारिक शक्तियों को उनका पूरा महत्व दिए जाने पर भी, "समूह" समस्या के रूप में कीमत-पद्धति के व्यापक वर्णन को चुनौती देती है ।

इस विषय को दूसरे ढग से यों कह सकते हैं कि प्रतियोगिता की 'अपूर्णता" एकसमान नही है । अपूर्णता इस प्रकार नही है जैसे कि निर्घर्ष के कुछ तत्व, जैसे अपूर्ण ज्ञान या अधिक लाभ के प्रति आशिक उदासीनता, सब को अस्पष्ट-सा कर देते हों; न ही ऐसी है जैसे कि साधनों की निश्चलता "प्रसामान्य" परिणामों का निष्पादन मन्द कर देती हो । ये कारक इस क्षेत्र के सब भागों पर समान शक्ति से लागू होगे, कम से कम इतनी दीर्घ अवधि में कि यदृच्छ अल्पकालिक अनियमितताएं बराबर हो जाएंगी । परन्तु उत्पाद का विशिष्टीकरण ऐसा नही है कि उत्पादों के अन्तर समान हों : वह समूह में एक साथ रखे गए सब उत्पादों में सम रूप से बटा हुआ नही है । प्रत्येक उत्पाद की अपनी विशिष्टता होती है, और उसके बाजार का आकार इस पर निर्भर करता है कि अन्य प्रकारों पर उसको दिए जाने वाले अधिमान कितने समर्थ है । पुनः, यदि उच्च औसत लाभ के कारण इस सामान्य क्षेत्र में नये प्रतियोगी घुस आते है, तो विभिन्न सुस्थापित उत्पादकों के बाजार उनसे समान सुविधा के साथ नहीं छीने जा सकते । कुछ उत्पादक पीछे हटने के लिए विवश हो जाएंगे, परन्तु इतना पीछे नहीं कि उनके लाभ उन्हें व्यापार में बने रहने देने के लिए आवश्यक न्यूनतम लाभ से कम हो जाएं । अन्य के लाभ इस न्यूनतम राशि तक कम हो जाएं, और कुछ दूसरे व्यवसाय छोड़ने के लिए बाध्य हो जाएं क्योंकि उनके विशिष्ट उत्पाद की बहुत कम माँग है या बहुत कम माँग पैदा की जा सकती है । हो सकता है कि सामान्य क्षेत्र मे उत्पादकों के आने का अन्य पर वस्तुतः कोई प्रभाव न पड़े क्योंकि वे अपने उत्पाद के प्रकार द्वारा संरक्षित हैं—उनके एकाधिकार लाभ प्रतियोगिता की पहुंच के परे हैं ।

ये विविधताएं अन्त में कोई वास्तविक कठिनाई पैदा नही करतीं । लेकिन,

सम्प्रति उनकी उपेक्षा करने से समूह सिद्धान्त का प्रतिपादन सुगम हो जाता है। इसलिए हम यह हिम्मतभरी (heroic) कल्पना करके आगे बढ़ते है कि समूह में सर्वत्र सब "उत्पादों" के माँग और लागत वक्र एकरूप है। बाद में[12] हम उनकी विविधता को मान्यता देंगे और इस पर विचार करेंगे कि इसके लिए किस प्रकार गुजाइश निकाली जाती है। इस बीच में, यह उल्लेखनीय है कि इस कल्पना में "उत्पाद" की विविधता पूर्णतः विलुप्त नही की गई है। केवल यह अपेक्षा की गई है कि विभिन्न प्रकारों में उपभोक्ताओं के अधिमान समान रूप से बंटे हुए हों, और यह कि उनके अंतर ऐसे न हों कि लागत में भेद पैदा कर दें। उस स्थिति में यह लगभग सच हो सकता है जिसमें बहुत समरूप उत्पाद व्यापार-चिह्नों के द्वारा विशिष्ट किए जाते है। किसी शहर से दूरस्थ इलाकों में छोटी फुटकर सिब्बदियों के काफी समान भौगोलिक वितरण की स्थिति में भी यह स्थिति लगभग प्राप्त होती है।[13]

समूह समस्या में एक अन्य जटिलता समूह मे सम्मिलित किए गए प्रतियोगियों की संख्या के और जिस रीति से उनके बाजार एक-दूसरे को "परस्परव्याप्त" करते है इसके बारे में उत्पन्न होती है। यदि प्रतियोगियों की सख्या अल्प हो तो अध्याय 3 में वर्णित जटिलताओं से मिलती-जुलती जटिलताएं महत्वपूर्ण हो जाती है। पहले बहुत बड़ी संख्या वाली स्थिति पर और तब अल्प संख्या वाली स्थिति पर विचार करके इस जटिलता को यथेष्ट मान्यता दी जा सकती है। विशेष रूप से, **सम्प्रति** हम कल्पना करते है कि अकेले किसी उत्पादक द्वारा कीमत के या "उत्पाद" के किसी समायोजन का प्रभाव उसके इतने अधिक प्रतियोगियों पर पड़ता है कि किसी एक के द्वारा महसूस किया गया उसका असर नगण्य होता है, और उसके कारण वह अपनी स्थिति मे कोई समायोजन करने को प्रवृत्त नही होता है। उदाहरणार्थ, कीमत में कटौती करने वाले की बिक्री में हुई वृद्धि उसके कई प्रतियोगियों के बाजारों मे से प्रत्येक के बाजार से नगण्य राशि आकर्षित करती है। इससे कटौती करने वाले को काफी हासिल हो जाता है, परन्तु किसी एक प्रतियोगी के बाजार पर इतना बड़ा प्रभाव नहीं पड़ता कि वह कोई ऐसा कदम उठाए जो अन्यथा न उठाता।

वैयक्तिक सन्तुलन की स्थिति की भांति, पहले हम "उत्पादों" को स्थायी मान कर कीमत समायोजनों पर ध्यान केन्द्रित करेंगे; फिर इसके प्रतिलोम पर विचार करेंगे; और अन्त में इन दो परिणामों को मिला देंगे।

मान लो कि समूह के **प्रत्येक** प्रतियोगी एकाधिकारी के माँग और लागत वक्र क्रमशः DD' और PP' है (चित्र 12)। प्रत्येक विक्रेता तुरन्त अपनी कीमत AR नियत करेगा, क्योंकि इस बिन्दु पर उसका लाभ, $GHRE$, अधिकतम है। सब को अतिरिक्त लाभ मिलने के बावजूद, ऐसा कोई कारण नही है कि उनमें से कोई अपनी कीमत को इससे कम करे, क्योंकि व्यापार में होने वाली लब्धि कीमत की कमी को पूरा नहीं करेगी। लेकिन, अतिरिक्त लाभ इस क्षेत्र में नये प्रतियोगियों को आकर्षित करेगा, जिसके परिणामस्वरूप माँग वक्र और संभवतः लागत वक्र विवर्तन

करेंगे। प्रत्येक विक्रेता के "उत्पाद" का माँग वक्र बायीं ओर को हट जाएगा, क्योंकि अब कुल खरीद को विक्रेताओं की बृहत्तर संख्या में बाँटना होगा। थोड़ी देर के

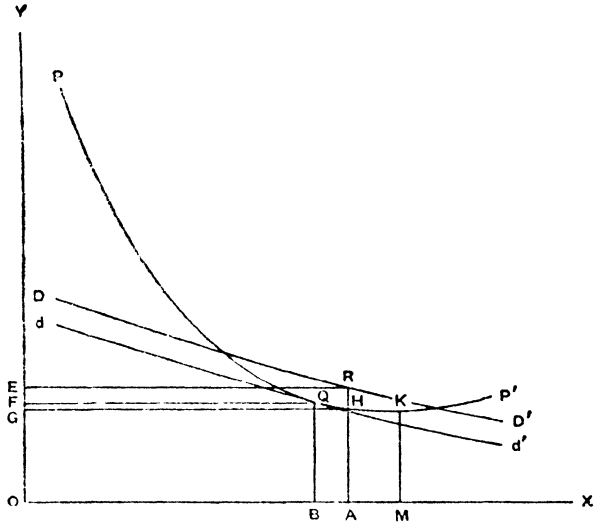

चित्र 12

लिए हम कल्पना करेंगे कि लागत वक्र अप्रभावित रहते है। माँग वक्र के प्रत्येक विवर्तन के साथ कीमत का पुनः समायोजन किया जाएगा जो *GHRE* के संगत क्षेत्रफल को अधिकतम बनाता है। यह प्रक्रिया तब तक जारी रहेगी जब तक प्रत्येक "उत्पाद" का माँग वक्र उसके लागत वक्र की स्पर्शरेखा नही हो जाता, और अतिरिक्त लाभ का क्षेत्रफल मिट नही जाता। अब कीमत *BQ* है, और अन्तिम माँग वक्र *dd'* है। यदि माँग वक्र *dd'* की बायी ओर और उसके नीचे होता, तो अतिम समायोजन यही हुआ होता। इस स्थिति मे, सामान्य हानि के कारण फर्मो का निर्गमन होता और कुल बिक्री के प्रतियोगियों की अल्पतर संख्या मे बट जाने के कारण माँग वक्र दाहिनी ओर और ऊपर को हट जाता ; और ऐसा तब तक होता जब तक कि वह *dd'* की स्थिति में न आ जाता। यह सन्तुलन की स्थिति है। कीमत और उत्पादन लागत बराबर है और कीमत को घटाने या बढ़ाने पर किसी भी विक्रेता को हानि होती है; इसलिए कीमत स्थायी है। अब आगे न तो इस क्षेत्र में साधन आएंगे और न ही इससे बाहर जाएंगे, क्योंकि इस स्थिति में निवेशित राशि को बनाए रखने के लिए लाभ बस यथेष्ट है।

अब हम समायोजन में लागत वक्रों के प्रश्न पर विचार करें। जब इस क्षेत्र मे नये साधन आते है, तो हो सकता है कि (नियोजित उत्पादक कारकों की कीमत में वृद्धि होने के कारण) ये वक्र ऊपर उठ जाएं ; (सम्पूर्ण समूह के संगठन मे सुधारो

के कारण—"बाहरी किफायतें") नीचे गिर जाएं; या (इन दो प्रवृत्तियों के अभाव के या उनके द्वारा एक-दूसरे को काट देने के कारण) वही बने रहें। ये तीन सम्भावनाएं प्रतियोगिता सिद्धान्त की तीन सुपरिचित स्थितियों—वर्धमान, ह्रासमान, और स्थिर लागत—के क्रमशः अनुरूप हैं। अभी-अभी दिए गए सरल दृष्टान्त में इन वक्रों के विवर्तन की गुंजाइश नहीं रखी गई थी। दूसरे शब्दों, में अव्यक्त रूप से कल्पना कर ली गई थी कि सम्पूर्ण समूह की दृष्टि से स्थिर लागत की दशाएं विद्यमान थी। यह कल्पना आद्योपान्त की जाएगी। ऐसा करने के दो कारण है : (1) इस रूप मे सिद्धान्त को व्यापक रूप से तथ्यों पर लागू किया जा सकता है, और (2) जहाँ वह लागू नहीं किया जा सकता, वहाँ समूह में वर्धमान और ह्रासमान लागत की स्थितियों को समाविष्ट करने के लिए उसका विस्तार आसानी से हो जाता है।

आइए, पहले प्रयोज्यता पर विचार कर लें। इसकी व्याख्या पहले ही की जा चुकी है (देखिए, पृष्ठ 17) कि किसी एक विक्रेता द्वारा उत्पत्ति मे किए गए परिवर्तनों का, यदि वह कई उत्पादकों में एक है तो, सब की कुल उत्पत्ति पर और अतः समस्त उत्पाद की लागत की प्रवृत्तियों पर नगण्य प्रभाव क्यों पडता है। इसी प्रकार, जब कभी उत्पादन के किसी एक क्षेत्र में नियोजित साधनों की राशि सामान्यतया नियोजित राशि के सापेक्ष अल्प होती है, तब इस क्षेत्र के भीतर उत्पत्ति के बढने या घटने का नियोजित उत्पादक कारकों की कीमतों पर और इसलिए लागत पर नगण्य प्रभाव पड़ेगा। कैंचियों के निर्माण मे वृद्धि का इस्पात की कीमत पर कोई परिमेय प्रभाव नहीं पड़ेगा और न ही रबर के जूतों की उत्पत्ति में वृद्धि रबर की कीमत को बढ़ा देगी। किसी विशेष स्थिति में क्या दशाए पाई जाती है यह, स्वभावतया, तथ्य का प्रश्न है। यहाँ इसका प्रयोजन केवल यह निर्देश करना है कि विशेष प्रकार के साधनों या उत्पादन के कारकों के सम्बन्ध में वर्धमान (या ह्रासमान) लागत की और प्रवृत्तियाँ तैयार माल तक पहुँचते-पहुँचते लगभग सदा क्षीण हो जाती है, और बहुधा उनकी सामर्थ्य नगण्य हो जाती है।[14] इसके साथ-साथ यह तथ्य भी है कि हो सकता है कि साधन स्वयं बहुत-कुछ स्थिर कीमत (लागत) पर सुलभ हों। यदि सीमेंट, बालू और बजरी की अधिक राशियाँ आसानी से उपलब्ध है तो, जहाँ तक ये सामान कारक हैं, भवन-निर्माण उद्योग का प्रसार स्थिर लागत पर सम्भव होगा। संक्षेप में, जहाँ तक साधनों की कीमतों का सम्बन्ध है, यह सम्भाव्य है कि उत्पादन के कई क्षेत्र लगभग स्थिर लागत की दशाओं के अन्तर्गत होते है।

क्या बृहत्तर उत्पत्ति होने पर साधनों के संगठन में सुधारों का परिणाम—"बाहरी किफायतें"—सामान्यतया ह्रासमान लागत की प्रवृत्ति होता है? जिस स्थिति में वे पर्याप्त होते हैं, उत्तर है, हाँ। परन्तु यह अवश्य समझ लेना चाहिए कि ऐसी किफायतों में केवल वे किफायतें सम्मिलित होती हैं जो इस विशेष क्षेत्र के प्रसार के कारण सम्भव हुई हैं। इनमें वे किफायतें शामिल नहीं है (क) जो उसके भीतर लघुतर क्षेत्रों (एकैक सिब्बंदी) के प्रसार के कारण उत्पन्न होती हैं—"भीतरी

किफायतें"—और (ख) जो जिस बृहत्तर क्षेत्र का यह क्षेत्र एक भाग है, उसके प्रसार के कारण उत्पन्न होती हैं—उनमे बृहत्तम क्षेत्र सामान्य रूप से उद्योग है। इनमें से पहली को छोड़ दिया जाता है, क्योकि वे समूह की उत्पत्ति से स्वतन्त्र रूप से हासिल की जा सकती है (देखिए, पृष्ठ 17); समरूप कारण से, दूसरे को छोड़ दिया जाता है क्योंकि विचाराधीन समूह, जिस बृहत्तर क्षेत्र का वह एक भाग है, उसके सापेक्ष छोटा होने के कारण, बृहत्तर क्षेत्र मे किफायतों पर उसके आकुचन या प्रसरण का नगण्य प्रभाव होता है।[15] उदाहरणार्थ, खुदरा किराने में प्रसार एकैक पंसारी को अपनी दुकान के भीतर उत्पादन की सबसे प्रभावकारी दशाओं के कोई अधिक निकट आने में समर्थ नही करता; न ही यह ऐसी किफायतों में परिमेय अंशदान करता है जो सामान्यतया खुदरा व्यापार के बृहत् परिमाण के कारण संभव होती है। इसलिए समूह समस्या में उत्पत्ति की वृद्धि के साथ लागत वक्रों को नीचे गिराने वाली जिन किफायतों को स्वीकार किया जा सकता है वे केवल वे है जो स्वयं समूह के प्रसार के कारण होती है। किसी विशेष स्थिति में ऐसी किफायते मिलती है या नही यह, पुनः, तथ्य का मामला है। जहाँ कहीं वे नही मिलती या जहाँ उनका महत्व नगण्य है, वहाँ परिणाम होता है समूह में स्थिर लागत की प्रवृत्ति।

स्थिर लागत की स्थिति के लिए विकसित किए गए सिद्धान्त का प्रयोग तब भी किया जा सकता है यदि वर्धमान और ह्रासमान लागत की विरोधी प्रवृत्तियाँ हों जो एक-दूसरे को लगभग बराबर कर देती है। इस प्रकार, ऑटोमोबाइल उद्योग के प्रसार के परिणामस्वरूप हो सकता है कि (1) सामग्री की बढी हुई माँग के कारण उच्चतर लागत हो जाए, और (2) उद्योग के भीतर सुधरे हुए संगठन के कारण निम्नतर लागत हो जाए, और ये दो एक-दूसरे को लगभग बराबर कर दें और निवल परिणाम स्थिर लागत हो जाए।

दूसरे, सिद्धान्त का विकास इस प्रकार नही किया गया है कि उसमें समूह में वर्धमान और ह्रासमान लागत की स्थितियाँ भी सम्मिलित हों क्योंकि विस्तार मे ऐसा करना आवश्यक नही है। जहाँ वर्धमान लागत पाई जाती है, उस क्षेत्र में नियोजित साधनो के बढ़ने पर सब उत्पादको के वक्र ऊपर उठ जाएगे, और उनके घटने पर नीचे गिर जाएंगे; और स्थिति के अनुसार सन्तुलन उच्चतर या निम्नतर बिन्दु पर प्राप्त होगा। (अधिशेष उसी प्रकार प्रभावित होंगे जैसे शुद्ध प्रतियोगिता के सिद्धान्त में, और यहाँ वे एक-एक उत्पादक के लागत वक्र में शामिल किए जाने चाहिए।) इसी प्रकार ह्रासमान लागत की स्थिति में साधनो को बढ़ाने पर सब उत्पादकों के लागत वक्र नीचे गिर जाएगे, और घटाने पर ऊपर उठ जाएंगे, और तदनुसार सन्तुलन निम्नतर या उच्चतर बिन्दु पर स्थापित होगा। तर्क की प्रत्येक अवस्था मे इन टिप्पणियों को दुहराना आवश्यक नहीं है। समूह के लिए लागत की प्रवृत्ति के अनपेक्ष, सन्तुलन की परिभाषा एक एक वक्र के सम्बन्ध में सदा एक ही प्रकार से होती है, और शुद्ध प्रतियोगिता सिद्धान्त के मानक से विचलन (diversions) सदा एक ही प्रकार के होते हैं। हमारी

दिलचस्पी मूलतः इन्हीं मामलों में है, और ये स्थिर लागत की सरल स्थिति में सबसे स्पष्ट रूप से प्रकट होते हैं, और आगे हम अपना ध्यान उसी तक सीमित रखेंगे।

और अधिक जटिलताओं को समाविष्ट करने के पहले हम एकाधिकारिक प्रतियोगिता के बारे में कुछ सामान्य निष्कर्षों को देख लें, जो मामले को पहले बहुत सरल ढंग से प्रस्तुत करने पर निकलते है। प्रथमतः, हम प्रतियोगी कीमतों और प्रतियोगी लाभों में सावधानीपूर्वक भेद करने की आवश्यकता देखते हैं। यदि एकाधिकार का कोई तत्व न होता, तो कीमतें दक्षतम दशाओं के अन्तर्गत उत्पादन की लागत के अनुरूप होती, जो चित्र में MK है। किसी एक विक्रेता के उत्पाद का माँग वक्र एक क्षैतिज रेखा होता, और प्रतियोगिता के कारण यह तब तक नीचे गिरता जाता जब तक वह K पर PP' की स्पर्शरेखा न हो जाता। एकाधिकार तत्व उसे अपरिहार्य रूप से ऊपर ले जाते हैं, यद्यपि किसी एक उत्पादक को मिलने वाले लाभ कोई अधिक नहीं होते; दानां स्थितियों में लागत ठीक-ठीक वसूल हो जाती है। प्रतियोगिता, जिस सीमा तक

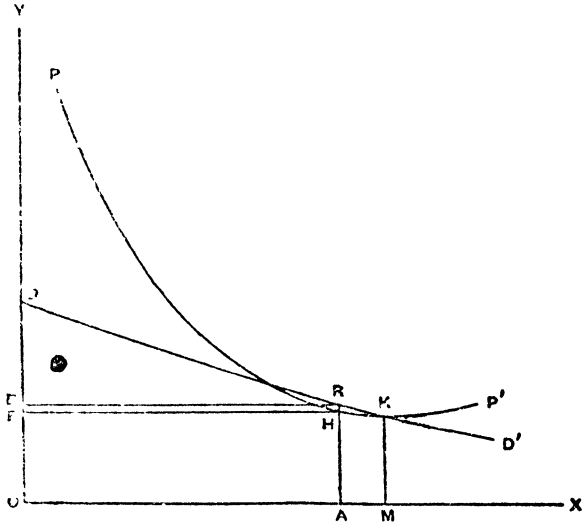

चित्र 13

वह क्षेत्र में साधनों के प्रवाह (movement) को समाविष्ट करती है, लाभ को प्रतियोगी तल तक गिरा देती है, परन्तु कीमतों को उस मात्रा तक ऊचा कर देता है, जो एकाधिकार तत्वों की शक्ति (strength) पर निर्भर करती है। इसलिए, एकाधिकारिक प्रतियोगिता में प्रतियोगी लाभ का तात्पर्य प्रतियोगी कीमत कभी नही होता, क्योंकि माँग वक्र लागत वक्र की उसके निम्नतम बिन्दु पर स्पर्शरेखा कभी नहीं होता।

द्वितीयतः, शुद्ध प्रतियोगिता की अपेक्षा एकाधिकारिक प्रतियोगिता में कीमत अनिवार्य रूप से उच्चतर होती है, और उत्पादन का पैमाना अनिवार्य रूप से लघुतर[16]

होता है। यह तर्क किया जाए कि यह कल्पनीय है कि किसी विक्रेता द्वारा कीमत में कमी, यद्यपि उसकी बिक्री को केवल कुछ सीमा तक बढ़ाती है, बिक्री को OM तक बढा दे, और सब के द्वारा की गई अनुक्रमिक कार्रवाइयाँ कीमत को MK कर देंगी; परन्तु यह असम्भव है। यह सच है कि DD' की चित्र 13 मे दिखाई गई स्थिति में यदि कीमत मे कमी की जाती है तो वास्तव में कीमत MK होगी और उत्पादन का पैमाना OM होगा जो दक्षतम है। परन्तु कीमत में ऐसी कमी नहीं की जाएगी, क्योंकि कोई भी विक्रेता कीमत को बढ़ाके AR करके अपने लाभ को बढा सकता है। इस कीमत पर लाभ, $FHRE$, अधिकतम है। जैसा पहले बताया जा चुका है, जब DD' बायीं ओर हट कर PP' की स्पर्शरेखा हो जाता है तो सन्तुलन स्थापित हो जाएगा। इस बिन्दु पर कीमत MK की अपेक्षा ऊंची है और उत्पादन का पैमाना OM से लघुतर है।

तीसरा निष्कर्ष यह है कि एकाधिकार तत्वों से प्रतियोगिता की मुक्ति के बारे में कीमतों की सामान्य एकरूपता कुछ भी सिद्ध नही करती। वास्तविक स्थिति में एकरूप कीमत की ओर जो प्रवृत्ति विद्यमान हो उसकी सामान्य व्याख्या यह है कि प्रत्येक विक्रेता के माँग वक्र की लोच लगभग समान है, जिसके कारण प्रत्येक एक ही बिन्दु पर अधिकतम लाभ पाता है। उदाहरणार्थ, खुदरा व्यापार मे, यदि प्रत्येक विक्रेता का बाजार सम्पूर्ण जनसख्या का यदृच्छ प्रतिदर्श (random sample) हो तो, सम्पूर्ण प्रदेश मे कीमते बहुत-कुछ एकरूप होंगी, और संभाविता के नियम के अनुसार, बहुलक (अथवा सर्वाधिक प्रचलित) कीमत के इर्द-गिर्द समूहित होंगी। स्वभावतया, क्रेताओ को गमनागमन की जितनी स्वतन्त्रता होगी उसका योगदान इस परिणाम मे होगा, क्योकि सारणी जितना ही लोचदार होगी बहुलक के उतने ही आस-पास कीमतो के विचलन समूहित होंगे।[17] किन्तु गमनागमन की ऐसी स्वतन्त्रता (माँग की लोच) के अलावा, प्रत्येक प्रतिदर्श का गठन सम्पूर्ण के गठन से जितना ही मिलता-जुलता होगा, कीमतें बहुलक के इर्द-गिर्द उतने ही घने रूप से समूहित होंगी। यदि प्रत्येक व्यापारी के बाजार मे धनी और निर्धनो का और भिन्न रुचि और अधिमान वालों का अनुपात एक ही हो, तो कीमतें सर्वत्र समान होंगी, भले ही प्रत्येक विक्रेता का प्रदेश एक दीवार से घिरा हो जो उसके बाजार को उसके प्रतियोगियों के बाजार से पृथक् कर देती है। इसलिए कीमतों की सामान्य एकरूपता प्रतियोगिता की शुद्धता के बारे में, अथवा हम कह सकते है कि, सम्मिश्रण मे एकाधिकार और प्रतियोगिता के आपेक्षिक अनुपातों के बारे मे कुछ भी प्रमाणित नही करती।

अब हम तर्क के मुख्य सूत्र पर आएं। चित्र 12 में चित्रित सन्तुलन समायोजन का स्वरूप अधिक अच्छी तरह समझ में आएगा, यदि हम एक अन्य मार्ग का वर्णन करें, जिससे वह स्थापित होता है। सन्तुलन की ओर गति के द्वारा जो कुसमायोजन सुधारा गया था वह फर्मों की असाधारण रूप से कम सख्या के कारण हुआ था, जिससे प्रत्येक को बृहत्तर बाजार मिल गया था और न्यूनतम तल से अधिक लाभ की संभावना मिली थी। बाजारों के घटते जाने और अतिरिक्त लाभ के विलुप्त हो जाने तक नयी

फर्मों के आगम से वह दुरुस्त हो गया। अब मान लो कि फर्मों की संख्या उतनी ही है जो सन्तुलन समायोजन के अनुरूप है, और जिस बीच में सन्तुलन कीमत से उच्चतर प्रचलित कीमत सुधारी जाती है, उनकी संख्या अपरिवर्तित रहती है। इस स्थिति के लेखाचित्रीय निरूपण के लिए एक नये प्रकार का माँग वक्र अपेक्षित है।

वक्र DD', जैसा वह इसके पहले खीचा गया है, **सब** "उत्पादों" **और अन्य सब** कीमतों के दिए हुए होने पर, किसी एक विक्रेता के "उत्पाद" के बाजार का वर्णन करता है। वह बताता है कि कीमत में कटौती करके विक्रेता अपनी बिक्री कितनी बढ़ा सकता है, **बशर्ते कि** अन्य विक्रेता भी अपनी कीमतें कम न करें; और विलोमतः, वह कीमत में वृद्धि के कारण बिक्री में होने वाली गिरावट दिखाता है, **बशर्ते कि** अन्य कीमतें भी नहीं बढ़ जातीं। अब एक अन्य वक्र खींचा जा सकता है, जो विभिन्न कीमतों पर किसी एक विक्रेता के उत्पाद की माँग को इस कल्पना के अन्तर्गत दिखाता है कि उसके प्रतियोगियों की कीमतें सदा उसकी कीमत से अभिन्न है। स्पष्टतः, यह दूसरा वक्र पहले वक्र से कहीं कम लोचदार होगा, क्योंकि सब कीमतों की समवर्ती गति

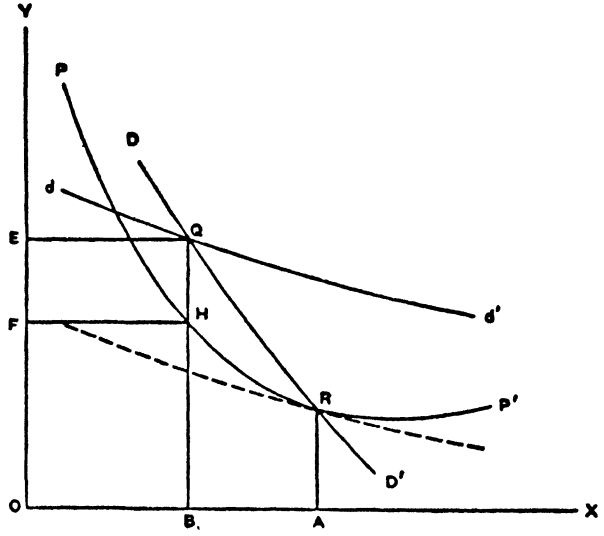

चित्र 14

एक विक्रेता द्वारा कीमत घटाकर दूसरों के बाजार में दखल करने का संभावना हटा देती है। वास्तव में, ऐसा वक्र उत्पाद के सामान्य वर्ग के माँग वक्र का एक प्रभाजित भाग होगा, और उसकी लोच वही होगी। यदि 100 विक्रेता हों तो, प्रत्येक कीमत पर यह जो माँग दिखाएगा वह उस कीमत पर कुल माँग का ठाक 1/100 होगी (क्योंकि हमने कल्पना कर रखी है कि प्रत्येक बाजार का आकार समान है)। चित्र 14 में मान लो कि DD' एक ऐसा वक्र है, और मान लो कि सब उत्पादकों द्वारा

माँगी गई कीमत, क्षण भर के लिए, BQ है। प्रत्येक की बिक्री OB है, और प्रत्येक का लाभ (जो लागत वक्रों में अन्तर्विष्ट न्यूनतम लाभ के ऊपर है) $FHQE$ है। अब Q से हो कर dd' खीचो, जो बताता है कि कोई एक उत्पादक कीमत को घटा कर अपनी बिक्री में कितनी वृद्धि कर सकता है बशर्ते कि अन्य अपनी कीमतें BQ बनाए रखें।[18] स्पष्टत., किसी एक विक्रेता के लाभ dd' पर दाहिनी ओर हटने पर बढ़ाए जा सकते हैं; और वह ऐसा इस आशंका के बिना कर सकता है कि अन्य विक्रेताओं को अपना अनुसरण करने के लिए विवश करके[19] वह अपने लाभ को अन्ततः घटा लेगा, क्योंकि उसके प्रतियोगी इतने बहुसख्य हैं कि उसकी चाल का प्रत्येक के बाजार पर नगण्य प्रभाव पडता है। (प्रत्येक की क्षति कीमत घटाने वाले की प्राप्ति का मात्र 1/99 है।) बृहत्तर लाभ की यह प्रेरणा जो एक विक्रेता को अपनी कीमत घटाने के लिए प्रोत्साहित करती है, अन्य को भी ऐसा ही करने के लिए प्रवृत्त करती है। इसलिए, वक्र dd' इसकी व्याख्या करता है कि प्रत्येक विक्रेता अपनी कीमत घटाने के लिए क्यों प्रवृत्त होता है; और वक्र DD' बताता है कि

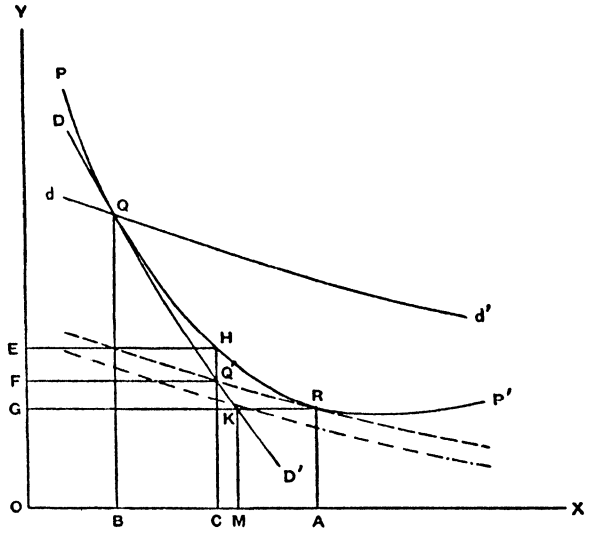

चित्र 15

सामान्य अधोमुखी गति की दशा में उसकी वास्तविक बिक्री क्या है। कीमत को घटाने पर पहला वक्र दूसरे वक्र पर नीचे को "फिसलता" है, और AR कीमत पर यह गति रुक जाती है।[20] स्पष्टतः इस बिन्दु के आगे कीमत घटाना किसी के लिए लाभप्रद नही होगा, क्योंकि उसकी बृहत्तर राशि की उत्पादन लागत जिस कीमत पर वह बेची जा सकती है, उससे अधिक होगी।

DD' की स्थिति इस क्षेत्र में विक्रेताओं की संख्या पर निर्भर करती है। यदि उनकी संख्या और अधिक हो तो वह और बायें होता है, क्योंकि तब कुल में प्रत्येक

का हिस्सा अल्पतर होता है; यदि उनकी संख्या न्यूनतर हो तो और दाहिनी ओर होता है, क्योंकि तब कुल में प्रत्येक का हिस्सा अधिक बड़ा होता है। अभी-अभी दिए गए उदाहरण में, DD' वक्र R से होकर खींचा गया था, जो dd' और PP' का स्पर्श-बिन्दु है, क्योंकि यह कल्पना की गई थी कि विक्रेताओं की संख्या अन्तिम सन्तुलन समायोजन में उनकी सख्या के समनुरूप है। अब मान लो कि, अल्पकालिक रूप से प्रचलित, कीमत BQ के सामीप्य की कीमतों पर उच्च लाभ के कारण अतिरिक्त विक्रेता आकर्षित होते है और कीमत काट कर सुधार करने वाली प्रक्रिया के पहले अपने को इस क्षेत्र में जमा लेते है। यह कल्पनीय है कि साधनों का ऐसा अन्त प्रवाह तब तक होता रहेगा जब तक DD' बायी ओर खिसक कर PP' की स्पर्शरेखा होने की स्थिति में नही आ जाता, जैसे चित्र 15 मे। यहाँ कीमत BQ होगी, और प्रति फर्म उत्पत्ति OB। यहाँ लागत कीमत के ठीक बराबर है, क्योंकि जिस अकिफायती पैमाने पर प्रत्येक उत्पादन कर रहा है उसने लागत को बढा दिया है, जिससे वह कीमत के बराबर हो गई है। लेकिन, यह स्थिति अस्थायी है क्योंकि बढ़े हुए लाभ की संभावना है। किसी उत्पादक के लिए यह सभावना Q से होकर खींचे गए वक्र dd' द्वारा दिखाई गई है। dd' से प्रत्यक्ष है कि प्रत्येक, और इसलिए सब, कीमत को घटाएगे; और DD' से, जो सबकी कीमत के गिरने पर प्रत्येक की बिक्री दिखाता है, प्रत्यक्ष है कि प्रत्येक, और इसलिए सब, निरन्तर बढ़ती हुई हानि मे फसते जाएगे। उदाहरणार्थ, जब कीमत CQ' तक गिर जाती है, तो प्रत्येक की बिक्री OC है, और हानि $FQ'HE$ है। लेकिन, जैसा कि Q' से गुजरने वाली बिन्दुरेखा से प्रकट होता है, किसी भी विक्रेता के पास कीमत को और घटा कर बेचने का रास्ता है। कोई विक्रेता, कीमत को घटा कर AR करके, हानि से बच जाएगा, और अपनी लागत को ठीक-ठीक वसूल लेगा। ऐसा प्रतीत हो कि इस बिन्दु पर सन्तुलन प्राप्त हो गया है, क्योंकि dd' अब PP' की स्पर्शरेखा है, जैसा कि अपेक्षित है। लेकिन विक्रेताओं की सख्या इतनी बडी है कि जब सब कीमत घटा कर AR करते है, जैसा उन्हें अवश्य करना है, तो प्रत्येक की बिक्री OA नही होती बल्कि, जैसा DD' दिखाता है, OM होती है, और हानि किसी भी स्थिति से अधिक होती है। सन्तुलन फर्मो के विलोपन से ही केवल प्राप्त हो सकता है।

लेकिन, ऐसा होने के पहले कीमत घटाने की प्रक्रिया और आगे तक चलती रह सकती है। यद्यपि dd' की बिन्दुरेखा वाली स्थिति के नीचे किसी न किसी परिमाण मे हानि अवश्य होगी, फिर भी हानि को घटाना अभी सभव है। प्रत्यक्ष है कि, यदि R से गुजरने वाली रेखा से dd' किंचित् नीचे हो तो यह सच होगा। लेकिन, शीघ्र ही, चित्र मे बिन्दु-रेखिका रेखा द्वारा निरूपित, वह निम्न सीमा आ जाएगी, जहाँ DD' पर दिखाए गए सबके समायोजन से किसी एक का विचलन उसकी हानि को और कम नही करेगा, और यहाँ गति रुक जाएगी।

जब वक्र dd' किसी ऐसी स्थिति पर पहुँच जाता है, जो उसकी स्पर्शरेखा

होने की स्थिति के नीचे है, तो जब तक फर्मों की संख्या घटाई नहीं जाती, हानि से बचाव का कोई रास्ता नही है। जब ऐसा होता है तो DD' दाहिनी ओर हटेगा, और यह प्रक्रिया तब तक अवश्य चलनी चाहिए जब तक वह R से नहीं गुजरने लगता—दूसरे शब्दों मे, जब तक सब के द्वारा एक ही कीमत लिए जाने पर प्रत्येक उत्पादक की उत्पत्ति OA नही हो जाती। तब सन्तुलन का निर्धारण दो प्रतिबन्धों (शर्तों) से होता है : (क) dd' को PP' की स्पर्शरेखा अवश्य होना चाहिए, और (ख) स्पर्शबिन्दु पर DD' को dd' और PP' दोनों को अवश्य काटना चाहिए।

हम dd' की लोच को एक विक्रेता के "उत्पाद" पर दूसरे के "उत्पाद" को क्रेताओं द्वारा दिए जाने वाले अधिमान का स्थूल सूचक समझ सकते है। तब, सन्तुलन समायोजन एक प्रकार का आदर्श हो जाता है। अल्पतर मिश्रदियों, उत्पादन के बृहत्तर पैमानों, और निम्नतर कीमतों के होने पर यह सदा सच होगा कि उत्पाद की अधिक विविधता के लिए क्रेता जो कीमत देने को तैयार होंगे, उससे कम लागत पर विविधता को सुलभ किया जाएगा;[21] और विलोमतः, अधिक उत्पादकों और उत्पादन के लघुतर पैमानों के होने पर, जो उच्चतर कीमतें वे देते वे ऐसी विविधता के मोल से अधिक होती। चित्र 14 में, यह पहली स्थिति में R की दाहिनी ओर और दूसरी स्थिति मे R की बायी ओर PP' के किसी बिन्दु से dd' की लोच वाला वक्र खींचकर प्रत्यक्ष हो जाता है। इन दो मे से किसी भी स्थिति में R की ओर समायोजन से क्रेता लागत से अधिक जो कीमत देने को तैयार हैं उस अतिरेक में वृद्धि होगी, क्योंकि उस दिशा में dd' वक्र PP' से ऊंचाई पर होगा।

अब हम दूसरे चर, "उत्पाद", पर विचार करेगे। उत्पाद विचरण के अर्थ का वर्णन हम पहले ही कर चुके है, और उसके मात्रात्मक निरूपण की कठिनाइयों को यहाँ अवश्य याद रखना चाहिए। विवरण की परिशुद्धता केवल तब सभव है यदि सब प्रतियोगी विक्रेताओं के बाजार एक-से हों। उसे बनाए रखने के हेतु हमें कल्पना करनी पड़ती है कि ऐसा उत्पाद विचरण सभव है जो सबके लिए एकरूप हो, ताकि प्रत्येक के समायोजनों का, जैसा कीमत विश्लेषण मे किया गया था, अकेले एक लेखा-चित्र द्वारा निरूपण किया जा सके। यह कल्पना सब विक्रेताओं के "उत्पादों" में सतत भेदों के अविरुद्ध है। यह सब उतना कठिन नही है जितना लगता है। वास्तविक उदाहरण के रूप में हम खुदरा व्यापार में क्षेत्रीय विशिष्टीकरण को ले सकते हैं, जिसमें प्रत्येक विक्रेता भौगोलिक रूप से निकटतम स्थित क्रेताओं को स्थिति की सुविधा के द्वारा अनुकूलित "उत्पाद" प्रस्तुत करता है; किन्तु प्रत्येक के लिए स्थिति बदलने की संभावनाए खुली है, और सामान्य क्षेत्र में साधनों का अन्तर्वाह या बहिर्वाह दुकानों के बीच औसत दूरी को, और इसलिए प्रत्येक के बाजार के आकार को, घटा या बढ़ा देगा। पुनः, जिस समय मे सेवा पर या अन्य प्रकारात्मक कारकों पर आधारित प्रतियोगिता के कारण "उत्पादों" में परिवर्तन होते है, स्थिति सम्बन्धी विशिष्टीकरण बहुधा अपरिवर्तित रहता है। विनिर्माण के क्षेत्र से भी हम उदाहरण ले सकते है।

जब कि उत्पादों में प्रकारात्मक परिवर्तन किए जाते रहते हैं, उनमें व्यापार-चिह्नों के द्वारा निरन्तर भेद किया जाता है।

जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, सब "उत्पादों" की कीमत को स्थिर रखने की युक्ति के द्वारा उत्पाद विचरण को पृथक् किया जा सकता है। मान लो कि यह कीमत चित्र 16 में *OE* है, जो किसी एक विक्रेता के समायोजनों को दिखाता है। इस ऊंचाई पर एक क्षैतिज रेखा *EZ* खीचो। जैसा पहले ही बताया जा चुका है,

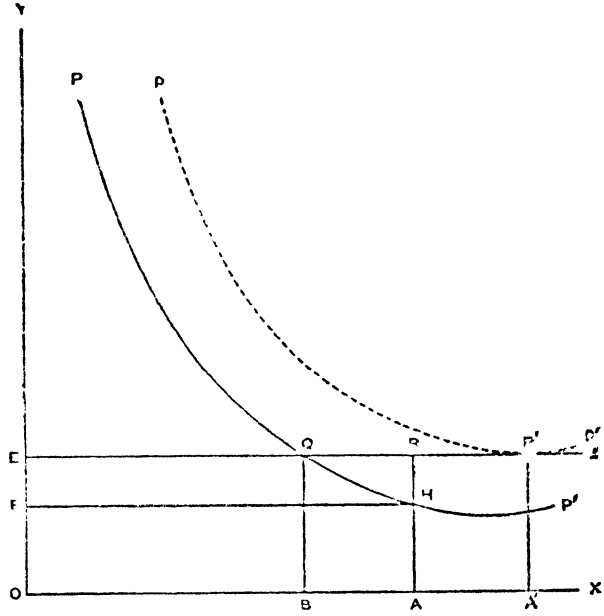

चित्र 16

यह रेखा इस कीमत पर अनिश्चित माँग नही दिखाती, बल्कि एक ऐसी रेखा का काम करती है, जिस पर "उत्पाद" के प्रत्येक विचरण (प्रकारान्तर) की माँग नापी जा सकती है। अब किसी विक्रेता के "उत्पाद" के विभिन्न प्रकारान्तरों के उत्पादन लागत वक्र खीचे जा सकते है, जैसे हमने "उत्पाद" विचरण की पहली स्थिति में किया था जिसमें वैयक्तिक सन्तुलन का निर्धारण किया गया था। पहले की भाति, प्रत्येक विक्रेता उस प्रकार को चुनेगा जो अधिकतम कुल लाभ देता है। मान लो कि "उत्पाद" के ऐसे इष्टतम प्रकार की उत्पादन लागत *PP'* द्वारा दिखाई (निरूपित की) जाती है। हम मान लेते है कि उसकी माँग *OA* है। इस राशि के उत्पादन की कुल लागत *OAHF* है, और (*PP'* में समाविष्ट न्यूनतम लाभ के उपर) कुल लाभ *FHRE* है। सन्तुलन समायोजन के लिए आवश्यक इस लाभ का विलोपन अनेक रीतियों से होता है और उनमें से किसी एक या सब के द्वारा हो सकता है। चूंकि,

परिभाषानुसार यह प्रत्येक विक्रेता का इष्टतम प्रकार है, इसलिए आगे "उत्पाद समायोजन" नही किया जाएगा। लेकिन, अतिरिक्त लाभ नये प्रतियोगियों को इस क्षेत्र की ओर आकर्षित करेंगे, और प्रत्येक की बिक्री को तब तक कम करते जाएंगे जब तक बिक्री OB नहीं हो जाती। इस बिक्री के लिए लागत और कीमत बराबर है, और आगे कोई गति नहीं होगी। इसी प्रकार, यदि प्रतियोगियों की संख्या इतनी बड़ी हो कि प्रत्येक का बाजार OB से कम हो जाए तो हानि के कारण वे तब तक इस क्षेत्र को छोड़ेंगे जब तक बचे हुए विक्रेताओं का बाजार OB नही हो जाता और वे अपनी लागत को पूरा नही कर लेते।

क्षेत्र में साधनों के अन्तर्वाह और बहिर्वाह के साथ-साथ, किसी समय जो लोग क्षेत्र में है, उनमें कीमत कम करने से मिलती-जुलती चीज हो सकती है। यदि कोई विक्रेता अपने "उत्पाद" को सुधार कर अपने लाभ बढ़ा सकता है (जो कीमत घटाने के सदृश है), जबकि उसके प्रतियोगियों के उत्पाद अपरिवर्तित बने रहते हैं, तो वह ऐसा करेगा। ऐसा सुधार EZ पर माँग को बढ़ा देगा, और लागत को भी बढ़ा देगा, जिससे PP' ऊपर को और दाहिनी ओर हट जाएगा। परिणामस्वरूप "उत्पाद" के लाभ का नया क्षेत्रफल बृहत्तर हो जाएगा। परन्तु जब, उसी उद्देश्य से, उसके प्रतियोगी वही चाल चलेंगे, तो प्रत्येक की बिक्री मे हुई वृद्धि केवल उस राशि के बराबर होगी जो सामान्य सुधार के कारण उत्पाद के सामान्य वर्ग के लिए हुई कुल वृद्धि मे उसका आनुपातिक हिस्सा होती (यह जब सब उत्पादक कीमत घटाते है तो उत्पाद के किसी दिए हुए वर्ग की माँग में वृद्धि के सदृश है)। लेकिन उच्चतर लागत बनी रहती है (ठीक वैसे ही जैसे सबके द्वारा कीमत घटाने पर घटी हुई कीमत बनी रहती है), और सामान्य गतिविधि के कारण प्रत्येक का लाभ घट जाता है। उक्त प्रक्रिया फिर दोहराई जा सकती है, और (जैसा कीमत घटाने में हुआ था) वास्तव मे तब तक जारी रहेगी, जब तक कि किसी विक्रेता के लिए इस प्रकार अपनी प्राप्ति बढ़ाना संभव है। जब चरम सीमा आ जाती है तो PP' की स्थिति क्या होगी? स्पष्ट है कि वह चित्र 16 मे बिन्दु-वक्र pp' के ऊपर नही होगा, क्योंकि यदि वह है, तो उत्पाद का उत्पादन किसी भी दशा मे नही किया जा सकता। वस्तुतः, वह उससे नीचे हो सकता है; क्योकि यह नही भूलना चाहिए कि EZ माँग रेखा नही है (जो OE कीमत पर अनिश्चित माँग बताती है), और मात्र यह तथ्य कि लागत वक्र उसके नीचे आ जाता है, यह नही बताता कि न्यूनतम लागत की प्राप्ति के लिए उत्पत्ति का समायोजन करने से बृहत्तर लाभ संभव है। "उत्पाद" के किसी एक प्रकारान्तर की माँग निश्चित रूप से सीमित है; (वर्तमान परिकल्पना के अन्तर्गत) वह कीमत घटाकर नहीं बढ़ाई जा सकती, और "उत्पाद" में सुधार करके उसकी वृद्धि करना बदली हुई लागत की दशाओं को सन्निहित करता है। यह मानने का कोई कारण नही है (विशेषकर के तब जब प्रत्येक का लागत वक्र इतना ऊंचा उठ गया कि वह pp' से बहुत कम नीचे है) कि किसी एक विक्रेता के "उत्पाद" में और सुधार (जो उसके

लागत वक्र को pp' की स्थिति तक हटा देगा) के परिमाणस्वरूप उसकी माँग OA' हो जाएगी।[22] "उत्पाद" के विचरण के लेखाचित्रीय निरूपण की कठिनाइयाँ सन्तुलन के यथार्थ बिन्दु का परिशुद्धता से निर्धारण करने के प्रयत्न को जोखिमपूर्ण बना देती हैं। ऐसा प्रतीत होगा कि इस बारे में ज्यादा से ज्यादा यह कहा जा सकता है कि उसके लक्षणों का वर्णन (1) लागत और कीमत के समीकरण, और (2) किसी के द्वारा अपने लाभ को बढाने वाले "उत्पाद" समायोजन की असंभावना के द्वारा किया जाएगा। उसमें या तो कीमत रेखा और उत्पादन लागत वक्र का प्रतिच्छेद या उनका एक-दूसरे की स्पर्शरेखा होना सन्निहित होगा।

लेकिन, यदि "उत्पाद" और कीमत दोनों चर हों तो यह आसानी से प्रमाणित किया जा सकता है कि लागत वक्र को सन्तुलन कीमत की ऊँचाई पर खीची गई क्षैतिज रेखा के नीचे अवश्य कटना चाहिए। चित्र 16 में, R' बिन्दु से गुजरने वाले ढालू माँग वक्र की कल्पना करके यह तुरन्त देखा जा सकता है। ऐसा वक्र, प्रत्यक्ष है कि, R' की आसन्न बायी ओर pp' के ऊपर होगा, क्योंकि जब वह R' से हो कर जाता है तो ढाल ऋणात्मक होगा, जब कि pp' का ढाल शून्य है। कीमत में किंचित् वृद्धि करके और बिक्री को घटा कर लाभ बढाए जा सकते है। (देखिए चित्र 13, पृष्ठ 70, जिसमें MK कीमत पर शून्य लाभ है; कीमत को AR तक बढ़ाने पर लाभ बढ़ कर $FHRE$ हो जाते है, और बिक्री OM से घट कर OA हो जाती है।) तब, नये प्रतियोगियों के आगमन (influx) से प्रत्येक के उत्पाद का माँग वक्र तब तक बायी ओर हटाया जाएगा, जब तक कि सन्तुलन प्राप्त नही हो जाता, जब वह pp' की स्पर्शरेखा होगा। निष्कर्ष यह है कि, यद्यपि जब कीमत **वस्तुतः** नियत की जाती है (जैसे, रिवाज से, या खुदरा व्यापारी के लिए विनिर्माता द्वारा) तो "उत्पाद" मे सुधार उस बिन्दु तक **किए जा सकते हैं** जहाँ उत्पादन की दक्षतम दशाएँ प्राप्त होती है, और जब कीमत वस्तुतः नियत नहीं की जाती है (और केवल विसम्पर्कन के तार्किक प्रयोजन के लिए नियत मान ली जाती है) तो "उत्पाद" में सुधार वहाँ तक नहीं किया जाएगा। जब विक्रेता "उत्पाद" को या कीमत को या दोनों को बदलने के लिए स्वतन्त्र है, तो उसके समायोजन तब तक नहीं रुकेंगे जब तक लाभ को बढ़ाने की सब संभावनाएँ निश्शेष नहीं हो जाती। माँग वक्र की आकृति सदा के लिए यह तय कर देती है कि दक्षतम दशाओं के अन्तर्गत उत्पादन असंभव है।

जब "उत्पाद" और कीमत दोनों चर होते हैं, तो दोनों के लिए जो संतुलन समायोजन प्राप्त होगा वह प्रत्येक के लिए पृथक्-पृथक् प्राप्त हुए सन्तुलन समायोजन का संयोग होगा। अपने प्रतियोगियों के "उत्पादों" और उनकी कीमतों के सम्बन्ध में दी हुई दशाओं के अन्तर्गत प्रत्येक विक्रेता अपने लिए कीमत और "उत्पाद" के उस संयोजन को चुनेगा जो उसके लाभ को अधिकतम कर देता है। उसके लिए संभव "उत्पाद" के प्रत्येक प्रकार के लिए एक ऐसी कीमत होगी जो उस "उत्पाद" के **सापेक्ष** उसके लाभ को अधिकतम बना देगी। इन सापेक्ष अधिकतमों में से वह सबसे

बृहत्तम को चुन लेगा। चूकि उसके प्रतियोगी भी यही करते हैं, इसलिए पुनः समायोजन तब तक आवश्यक होंगे जब तक अन्त में ऐसा बिन्दु नहीं आ जाता जहाँ कोई भी किसी अगला चाल से अपनी स्थिति को बेहतर नही कर सकता। यह वैसा ही है जैसा प्रत्येक चर पर अलग-अलग विचार करते समय हुआ था। साथ ही साथ, प्रतियोगिता की दशा में मिलने वाले न्यूनतम से ऊंचे लाभों को घटाने के हेतु इस क्षेत्र में साधनों का अन्तर्वाह होगा, या लाभों के इस न्यूनतम से कम होने पर उन्हें बढ़ाने के हेतु साधनों का बहिर्वाह होगा, जिससे इस क्षेत्र में अन्त में रह जाने वाले उत्पादकों की संख्या ऐसी होगी कि प्रत्येक की लागत ठीक-ठीक पूरी हो जाएगी।

इस व्यापक (बहुसमावेशी) सन्तुलन का संक्षेप देने का प्रयत्न चित्र 17 में किया गया है, यद्यपि लेखाचित्रीय रूप में "उत्पाद" विचरण को प्रस्तुत करने की कठिनाइयों के कारण, यह वास्तव में चित्र 12 के कीमत सन्तुलन से अधिक बहुत कम बताता है। चित्र में इष्टतम "उत्पाद" का लागत वक्र PP' है और उसका माँग वक्र dd' है। (कुछ समय के लिए बिन्दु-रेखा pp' की उपेक्षा कर दीजिए।) सन्तुलन कीमत AR है; क्योकि dd' और PP' का स्पर्शबिन्दु R है, इसलिए यह स्पष्ट है कि इससे उच्चतर या निम्नतर कीमत होने पर प्रति इकाई लागत कीमत से अधिक होगी। चूकि, परिभाषानुसार, यह इष्टतम "उत्पाद" है, इसलिए इससे बढ़िया या घटिया "उत्पाद" की जो राशि बेची जा सकती है उसकी प्रति इकाई लागत, पहले की भाँति, कीमत OE से अधिक होगी। बेहतर "उत्पाद" लागत वक्र को ऊंचा उठा देगा, और वह जितना (EZ पर नापी गई) माँग को बढाएगा, उसके आगे वह EZ को काटेगा। इसी प्रकार उससे घटिया "उत्पाद" लागत वक्र को नीचे गिरा देगा, और EZ और लागत वक्र के प्रतिच्छेद बिन्दु को जितना बायीं ओर हटाएगा, उससे अधिक (EZ पर नापी गई) माँग को घटाएगा। सन्तुलन की इन दशाओ के अन्तर्गत इस क्षेत्र की कुल उत्पत्ति OA गुणा उत्पादकों की सख्या होगी।

यह निष्कर्ष उचित प्रतीत होता है कि जिस प्रकार, शुद्ध प्रतियोगिता की अपेक्षा एकाधिकारिक प्रतियोगिता में, एक दिए हुए "उत्पाद" की कीमत अनिवार्य रूप से ऊंची होती है, ठीक उसी प्रकार, किसी दी हुई कीमत पर "उत्पाद" अनिवार्य रूप से किंचित् घटिया होता है। आखिर, ये दो स्थापनाए (propositions) एक ही स्थापना के दो पहलू मात्र हैं। यदि कोई विक्रेता उत्पादन के बृहत्तर पैमाने के कारण, जो एकाधिकारिक प्रतियोगिता की तुलना मे शुद्ध प्रतियोगिता की विशेषता है, उसी "उत्पाद" को कम कीमत पर दे सकता है, तो समरूपतः वह बेहतर "उत्पाद" को उसी कीमत पर दे सकता है। यह चित्र 17 में दिखाया गया है। यदि प्रतियोगिता शुद्ध होती तो dd' क्षैतिज होता और प्रतियोगिता का दबाव उसे PP' के स्पर्शबिन्दु Q तक गिरा देता, और कीमत BQ होती जो AR से कम है। परन्तु अब यदि कीमत AR पर स्थिर रखी जाती और इस कीमत पर कोई विक्रेता जितना चाहता उतना बेच सकता (जैसा शुद्ध प्रतियोगिता में होता है), तो प्रत्येक अपनी उत्पत्ति को

लगभग OB तक बढ़ा देता। यहाँ मिलने वाले अतिरिक्त लाभ कीमत के गिरने के कारण नहीं (क्योंकि यह परिकल्पना से असंभव है) बल्कि "उत्पाद" के सामान्य सुधार

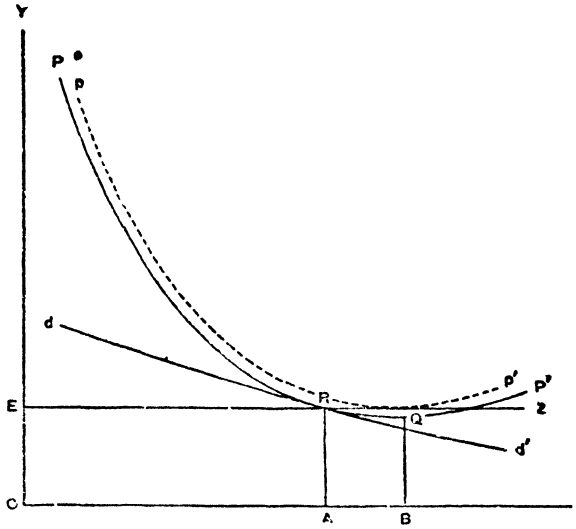

चित्र 17

के कारण घटेंगे। इस सुधार के फलस्वरूप लागत वक्र ऊपर उठकर बिन्दु-रेखा pp' की स्थिति ले लेंगे, जिसका निम्नतम बिन्दु AR के बराबर है। इससे यह परिणाम निकलता है कि चालू कीमत पर वह जितना बेचना चाहे उतना बेचने की असंभावना न केवल उच्चतर कीमत की ओर बल्कि घटिया उत्पाद की ओर भी प्रवृत्ति का सृजन करती है। स्वभावतया, इन शक्तियों के विरुद्ध अधिक प्रकारों और चुनने की स्वतन्त्रता से मिलने वाले फायदे को अवश्य रखा जाना चाहिए।

4. छोटा समूह : अल्पाधिकार एवं उत्पाद विशिष्टीकरण

वैयक्तिक सन्तुलन के और इतने बड़ समूह के, जो अन्य सदस्यों पर किसी एक सदस्य के प्रभाव को नगण्य बना देता है, सन्तुलन की समस्याओं पर विचार कर लेने के बाद हम जिस समस्या पर विचार करेंगे उसे मध्यवर्ती स्थिति समझा जा सकता है। यह है अपेक्षाकृत बहुत कम—सम्भवतः केवल दो—विक्रेताओं की समस्या। इस समस्या के स्वरूप और मुख्य कार्यरत शक्तियों की व्याख्या पहले ही अध्याय 3 में की जा चुकी है। परन्तु अन्तर यह है कि पहली स्थिति में उत्पाद मानकित था और इस स्थिति में मानकित नहीं है। अध्याय 3 में एकाधिकार का केवल एक तत्व था—

विक्रेताओं की कमी। अभी-अभी जिस समूह समस्या पर विचार किया गया है, उसमें भी केवल एक तत्व था—उत्पाद का विशिष्टीकरण। अब इन दोनों को संयुक्त करना है—विक्रेताओं की सख्या अपेक्षाकृत कम है, और प्रत्येक का बाजार अन्य के बाजार से किसी मात्रा तक सुरक्षित है। यहां मिलने वाला परिणाम दो प्रकार के एकाधिकार तत्वों के अलग-अलग परिणामों का सम्मिश्रण है।

चित्र 14 पर फिर विचार करिए। हम इसकी व्याख्या पहले की भांति करेंगे, लेकिन यह मान कर कि यह अपेक्षाकृत कम संख्या में विक्रेताओं में से प्रत्येक पर लागू होता है। यदि प्रत्येक विक्रेता, स्थिति पर अपने कुल प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रभाव को ध्यान में रखते हुए (देखिए अध्याय 3), अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयत्न करता है तो वह कीमत BQ नियत करेगा, जो अधिकतम लाभ देती है। यह चित्र 5 (पृष्ठ 26) में AP के अनुरूप है। इसमें सन्देह नहीं कि कोई एक विक्रेता अपनी कीमत को इससे नीचे गिरा कर मांग वक्र dd' द्वारा सूचित बृहत्तर लाभ प्राप्त कर सकता है, **बशर्ते** कि अन्य विक्रेता उसका अनुसरण नही करते। परन्तु चूंकि उसके इस कार्य से उनकी पर्याप्त हानि होगी, इसलिए यह शर्त पूरी नही होती। इसलिए प्रत्येक अपनी कीमत BQ रखेगा, क्योकि उसके कुछ और करने के **अन्तिम** परिणाम कम लाभदायक होंगे।

यदि विक्रेतागण कीमत पर अपने परोक्ष प्रभाव की उपेक्षा कर दें, और प्रत्येक यह मान ले कि अन्य पर उसकी क्रियाओं का प्रभाव नहीं पड़ता, तो कीमत BQ से कम होगी। यदि वे मान लेते है कि उनके प्रतिद्वन्द्वियों की **कीमतें** स्थिर हैं, तो उनके प्रतियोगी बोली बोलने के कारण वह कीमत गिर कर AR हो जाएगी और (केवल दो या बहुत कम विक्रेताओं की स्थिति मे) जैसा पहले बताया गया है शायद मध्यवर्ती बिन्दुओं के बीच दोलन करे। यदि वे अपने प्रतिद्वन्द्वियों की **राशियों** को स्थिर मानते है, तो कीमत BQ और AR के बीच किसी निर्धारणीय बिन्दु पर नियत होगी : जैसे-जैसे उनकी संख्या मे वृद्धि होगी, यह बिन्दु नीचे गिरेगा, और यदि उनकी संख्या बहुत बडी हो जाए तो (जैसा पहले ही विचारित समूह समस्या में हुआ था) वह AR के साथ हो जाएगा। वह सदा इस दशा के द्वारा निर्धारित होगा कि अन्य की पूर्ति स्थिर रहने पर कोई विक्रेता अपनी पूर्ति को लाभ प्राप्त करते हुए घटा या बढ़ा नही सकता। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि जिसके नीचे कीमत कभी नहीं घट सकती वह चरम सीमा, AR, मानकित उत्पाद के लिए चरम सीमा से उच्चतर है। यह दूसरी चरम सीमा लागत वक्र PP' के निम्नतम बिन्दु की संपाती होती है। इसके कारण की व्याख्या पहले ही की जा चुकी है।

ये परिणाम इसलिए मिलते हैं क्योंकि परोक्ष प्रभाव की उपेक्षा की गई है। पहले की भांति इसका कारण बाजार में स्थाया या दीर्घकालिक दिलचस्पी का अभाव, ऐसी दिलचस्पी होने पर भी अदूरदर्शिता, या प्रतियोगियों की अनुचारिता के बारे में संशय होता है (इस अन्तिम कारण का परिणाम यह नहीं होगा कि वह आवश्यक रूप

मे अनुचारिता की उपेक्षा कर दे, बल्कि वह उसे इस बारे में संशयग्रस्त कर देगा कि परोक्ष प्रभाव का विचार करना चाहिए या नहीं)। इस अन्तिम कारण के बारे में यह भी कहना है कि यहाँ संशय के वे ही तत्व विद्यमान हैं जो मानकित उत्पाद की सरल परिकल्पना में थे (देखिए ऊपर पृष्ठ 40)। हो सकता है कि प्रत्येक विक्रेता अपने प्रतिद्वन्द्वी की नीति के बारे में, और इसलिए अपनी नीति के बारे में सन्दिग्ध हो, क्योंकि वह नहीं जानता कि (क) यदि उसके प्रतिद्वन्द्वी की वर्तमान नीति जारी रहती है तो, वह उसकी कीमत के सम्बन्ध में जारी रहेगी या उसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में, (ख) उसका प्रतिद्वन्द्वी कितना बुद्धिमान और दूरदर्शी है, और (ग) उसके द्वारा अपनी कीमत घटाने पर उसके प्रतिद्वन्द्वी के बाजार में कितनी बडी कमी आएगी। यह अन्तिम कारक एक नये अज्ञात के कारण और बड़ा हो जाता है—अन्य के उत्पादों की तुलना में उसके अपने उत्पाद के लिए क्रेताओं के अधिमान की मात्रा, जो एक-एक "उत्पाद" के मांग वक्र की आकृति द्वारा व्यक्त की जाती है।

पूर्ण ज्ञान की कल्पना के अन्तर्गत, जो हमने विज्ञापन का अपवर्जन करने के हेतु की है, प्रतियोगितामूलक समायोजन तत्क्षण हो जाएगे, जिससे बाजार के कार्यकरण में समय-पश्चता का प्रश्न ही नहीं उठता। यदि कोई विक्रेता अपनी कीमत घटाता है तो सब क्रेता यह तुरन्त जान जाएंगे, और उसका लाभ उठाने में कोई विलम्ब नहीं होगा। लेकिन, इन कल्पनाओं की कुछ समय के लिए उपेक्षा की जा सकती है ताकि यह बताया जा सके कि क्रेताओं को निम्नतर कीमत की जानकारी धीरे-धीरे मिले और यह कि जैसे-जैसे उनकी खरीदने की स्थापित आदतें धीरे-धीरे टूटें उनकी प्रति-चारिता का विकास धीरे-धीरे हो। जहाँ तक स्थिति होती है, तात्कालिक और अन्तिम परिणामों के बीच किया गया भेद अस्पष्ट हो जाता है, और संशय के नये तत्व आ जाते हैं।

अपेक्षाकृत कम विक्रेताओं और विशिष्टीकृत उत्पाद की दशाओं में कीमत कहाँ स्थापित होगी, इसके बारे में किसी एक स्थिति के लिए निष्कर्ष केवल ऊपर गिनाए गए विभिन्न तत्वों के सापेक्ष महत्व के शब्दों में दिए जा सकते है। सामान्यतया, कीमत BQ और AR सीमाओं के बाहर नहीं हो सकती, और परिस्थितियों के अनुसार वह इनमें से किसी एक चरम स्थिति पर या उनके बीच में निर्धारित हो सकती है।[23] जब प्रत्येक उत्पाद का बाजार अधिक अलग होता जाता है, अर्थात् जब dd' का ढाल DD' के ढाल के निकटतर होता जाता है, तो ये सीमाएँ निकटतर आती जाती हैं, और संभव विचरण का परिसर घटता जाता है।[24]

जब समूह में विक्रेताओं की संख्या बहुत बड़ी होती है तो परोक्ष प्रभाव के सम्बन्ध में सब संशय मिट जाते हैं। इसलिए इस स्थान पर यह प्रश्न उठाना उचित है कि "बड़े समूह" की संकल्पना का क्या अर्थ किया जाना चाहिए। यद्यपि, एकाधिकार तत्वों को मान्यता देकर, पदार्थों के किसी स्थूल (broad) वर्ग के सब विक्रेताओं को एक ही बाजार के सदस्य समझने की और शुद्ध प्रतियोगिता के सिद्धान्त द्वारा उनकी

कीमतों की व्याख्या करने की गलती का परिहार कर लिया जाता है, परन्तु एक दूसरी गलती करना आसान है—यह कि बिना समालोचन के यह समझना कि वे एक बड़ा समूह बनाते है, जिससे इस अध्याय में ऐसी स्थिति के लिए प्रस्तुत किए गए निष्कर्ष मान्य हैं। उत्पाद का लगभग कोई भी सामान्य वर्ग उपवर्गों में बँट जाता है। उदाहरणार्थ, किसी ऑलिमोबाइल विनिर्माता द्वारा कीमत घटाने का प्रभाव उन अन्य विनिर्माताओं पर विशेष कर के पड़ता है जिनका उत्पाद लगभग उसी कीमत-वर्ग में है, और संभवत: इन सीमाओं (परिबंधों) के बाहर कहीं कम हलचल (disturbance) पैदा करता है। इसी प्रकार, खुदरा पदार्थों के अधिकांश प्रकार निश्चित प्रकार के या कीमत के वर्गों में आते हैं, और ये उपवर्गों में बँट जाते है, और उपभोक्ताओं के विभिन्न वर्गों को उनकी आय या रुचियों के अनुसार भाते हैं। स्पष्ट है कि, वर्गीकरण को प्रदान की गई व्यापकता के अनुसार एक समूह बड़ा या छोटा हो सकता है, परन्तु यदि वह बड़ा है तब भी, यदि उपवर्गों का अस्तित्व है तो, इस तथ्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती। किसी समूह के बड़े होने का आवश्यक रूप से अर्थ यह नही है कि उसके प्रत्येक विक्रेता का बाजार अन्य **सब** के बाजारों को इस प्रकार अतिव्याप्त करता है कि कीमत घटाने पर उसे मिलने वाली प्राप्ति सम्पूर्ण क्षेत्र से समान रूप से व्युत्पन्न होती है। परन्तु एक बड़े समूह के सम्बन्ध मे यह निष्कर्ष निकालने के लिए कि कीमत अपने न्यूनतम बिन्दु, AR, तक आवश्यक रूप से गिरती है, यह शर्त आवश्यक है। अधिक लाक्षणिक रूप से, कोई एक विक्रेता समूह के केवल कुछ सदस्यों का **निकट से** प्रतियोगी होता है, और वह, कम संख्या में विक्रेताओं पर लागू होने वाले कारण से, हो सकता है कि कीमत-प्रतियोगिता का परिहार करे—और कारण यह है कि उसके द्वारा कीमत की कटौती उसके **निकटतम** प्रतियोगियों को उसका अनुसरण करने के लिए बाध्य कर देगी।

यदि बड़ा समूह सरलता से स्पष्ट उपविभागों में न बाँटा जा सके तब भी हो सकता है कि इस प्रकार के विचार सच हों। किसी नगरीय क्षेत्र में सर्वत्र बिखरी हुई खुदरा दुकानें जिसे बाजारों का "लड़ी"-सम्बन्ध (chain-linking) कहा जा सकता है, उसका एक उदाहरण है। पैट्रोल पम्प दूसरा उदाहरण है। इन दोनों स्थितियों मे प्रत्येक विक्रेता का बाजार अपने निकटतम विक्रेता के बाजार से घनिष्ठतम रूप से जुड़ा हुआ है (यदि केवल क्षेत्रीय (स्थान विषयक) कारक पर विचार किया जाए), और दूरी के बढ़ने के साथ सम्पर्क की मात्रा शीघ्रता से घटती जाती है, और अन्त में शून्य हो जाती है। इस परिस्थिति में उपविभागों में भेद नही किया जा सकता। यदि कोई क्षेत्र मनमाने रूप से सीमाबद्ध किया जाए तो उसकी सीमा पर स्थित दुकानें, जिस क्षेत्र में वे रखी गई हैं उसके अन्य भागों में स्थित दुकानों की अपेक्षा, आसन्न क्षेत्र के किनारे पर स्थित दुकानों से अधिक प्रतियोगिता करेंगी। गाहकी के वर्ग बहुधा अस्पष्ट होते हैं, और इसी प्रकार एक-दूसरे में क्रमश: बदल जाते हैं। पुन:, विभिन्न प्रकार के विशिष्टीकरण एक से दूसरे में धीरे-धीरे बदल जाते हैं। इसके उदाहरण के रूप में

हम उन बाजारों को ले सकते हैं जो क्षेत्रीय रूप से तो एक-दूसरे को परस्परव्याप्त करते हैं, परन्तु अन्य रूप से नहीं; या इसके विलोमतः। परिणाम यह होता है कि बाजारों का एक ऐसा जाल बन जाता है जो इतने पेचीदा रूप से परस्पर गुंथे होते हैं कि, यद्यपि यह निश्चित है कि वह एक नहीं हैं, फिर भी वह किसी ऐसे उपविभाजन की अवज्ञा करता है जिसमें एकैक विक्रेता एक उपविभाग नहीं है। जहाँ यह स्थिति हो, वहाँ अल्प संख्या सम्बन्धी विचार ठीक उतरते हैं, भले ही "समूह" बड़ा हो, क्योंकि प्रत्येक विक्रेता केवल कुछ अन्य से निकट प्रतियोगिता करता है। यहाँ कीमत AR और BQ के बीच में कहीं भी तय हो सकती है।

यह लड़ी-सम्बन्ध दो नयी संभावनाएं सुझाता है। किसी विक्रेता द्वारा कीमत घटाने के परिणामस्वरूप उसका आसन्न विक्रेता अपनी कीमत में अपेक्षाकृत कम कटौती करेगा, और कटौती के इस सिलसिले का, दूर तक फैले बिना, क्षय हो जाता है। या, अन्य परिस्थितियों में, हो सकता है कि एक के द्वारा की गई कटौती उसके समीपस्थ विक्रेताओं को उतनी ही कटौती करने के लिए बाध्य कर दे, और फिर ये विक्रेता अपने समीपस्थ विक्रेताओं को वैसा ही करने के लिए बाध्य कर दें और इसी प्रकार अनिश्चित रूप से होता जाए (जैसे एक पंक्ति में रखी गई गोटियों मे यदि पहली लुढ़क जाए तो बाकी भी लुढ़क जाएंगी)। इस दूसरी स्थिति मे, **लड़ी-सम्बन्धों के माध्यम से**, एक अकेला विक्रेता सामान्य गति शुरू कर सकता है, भले ही वह सम्पूर्ण समूह का नगण्य रूप से छोटा भाग हो। यहाँ, भले ही विक्रेताओं की संख्या बहुत बड़ी हो, परोक्ष प्रभाव का विचार आ जाता है, और इसके परिणाम वे ही होते हैं जिनका वर्णन कम संख्या के सम्बन्ध में पहले ही किया जा चुका है।

इससे यह सामान्य निष्कर्ष अवश्य निकलना चाहिए कि कम संख्या में विक्रेताओं के बीच प्रतियोगिता से सम्बद्ध विचार, जितना प्रारम्भ में समझा जाएगा उससे, कहीं अधिक व्यापक रूप से लागू किए जा सकते हैं। निस्सन्देह आर्थिक क्रिया के काफी विस्तृत क्षेत्र में, विशिष्टीकृत उत्पाद के कारण से, कीमत शुद्धतः प्रतियोगी कीमत की अपेक्षा कम से कम उस राशि के बराबर अधिक **अवश्य** होनी चाहिए, जो उसके अनुरूप है जिसे "एक प्रकार का आदर्श"[25] कहा गया है; और **हो सकता है** कि वह उससे किसी उच्चतर बिन्दु पर ऐसी हो जो सम्बन्धित बाजारों वाले विक्रेताओं के संयुक्त लाभों को अधिकतम करेगी। अर्थव्यवस्था में जिस सीमा तक ऐसी उच्च कीमतें प्रचलित होती है, वह इस तथ्य के कारण छिप जाती है कि वे लाभ के साधारण प्रतियोगी तल के बिल्कुल संगत है जैसा कि अब सिद्ध किया जाएगा।

5. अतिरिक्त क्षमता के साथ सन्तुलन[26]

हम चरम स्थिति पर विचार करेंगे, जिसमें कीमत अपनी ऊपरी सीमा पर, चित्र 14 में BQ, नियत होती है, क्योंकि, जैसा पहले ही बताया जा चुका है, प्रत्येक

विक्रेता इस बिन्दु को सबसे लाभदायक पाता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि, अस्थायी रूप से प्राप्त, लाभ $FHQE$ बने रहेंगे, बशर्ते कि सामान्य क्षेत्र में नये प्रतियोगी प्रवेश कर सकें। नये उद्यमों की स्थापना इस कीमत पर उपलब्ध व्यापार को शीघ्र ही विक्रेताओं की बृहत्तर सख्या में बाँट देगी, और DD' को बायीं ओर तब तक हटाएगी जब तक कि उसकी स्थिति चित्र 15 में चित्रित-सी न हो जाए, जहाँ BQ कीमत पर लागत और कीमत बराबर हैं, और अतिरिक्त लाभ विलुप्त हो जाते हैं, तथा प्रत्येक की बिक्री OB होती है। ऐसा समायोजन पूर्णतः स्थायी है। इसके आगे साधनों का न तो क्षेत्र में अन्तर्वाह होगा और न बहिर्वाह, और कीमत को बढ़ाना या घटाना किसी के हित में नहीं है। यदि कीमत AR और BQ के बीच में होती तो कीमत और लागत का समीकरण साधनो की "आदर्श" राशि के ऊपर निवेश में समरूप, परन्तु अल्पतर, वृद्धि के द्वारा किया जाता।

इस परिणाम पर—जिसका कारण यहाँ यह तथ्य बताया गया है कि प्रत्येक विक्रेता केवल अपेक्षाकृत कम संख्या में विक्रेताओं से निकट से प्रतियोगिता करता है—टिप्पणी करने के पहले हम यही परिणाम देने वाली अन्य परिस्थितियों का उल्लेख करके इस परिणाम को पूरा महत्व दे दें। कीमत कटौती की अनुपस्थिति का एकमात्र कारण यह अभिज्ञान ही नहीं है कि प्रतियोगी भी अनुसरण करेंगे, जो कम संख्या से उत्पन्न होता है। प्रथमतः, हो सकता है कि व्यापारी कीमत को माँग नहीं बल्कि लागत के सम्बन्ध में नियत करें, और अपना लक्ष्य अधिकतम लाभ न रख कर साधारण लाभ रखें, और तथ्य रूप में मान लें कि वे कुल व्यापार का अपना लगभग सामान्य हिस्सा पाते रहेंगे।[27] उनकी दिशा मे जो भी व्यापार आता है उसे स्वीकार कर लेते हैं, और आशा करते हैं कि अन्य भी ऐसा ही करेंगे—जीओ और जीने दो। इस स्थिति मे, चूँकि सबकी कीमतें लगभग साथ-साथ घटती-बढ़ती है, इसलिए क्रेताओं को एक व्यापारी के बदले दूसरे से व्यापार करने पर कोई लाभ नही है, और वक्र dd' की कोई सार्थकता नही है। कीमत AR और BQ के बीच कुछ भी हो सकती है, और वह क्षेत्र मे विक्रेताओं की संख्या पर निर्भर करेगी। हो सकता है कि पहले वह AR हो। परन्तु मान लो कि तब क्षेत्र में नये साधन आते है, शायद गलत अनुमान लगाने के कारण या केवल इसलिए कि अन्य लोग व्यवसाय में स्थान पाने के लिए निरन्तर प्रयत्न करते है। माँग वक्र DD' बायीं ओर हटा दिया जाएगा, और AR कीमत पर लागत पूरी नही होगी। निम्नतर कीमतों से मामला और भी बिगड़ जाएगा; और व्यापारी सामान्यतया पाएगे कि कीमत को लागत के बराबर करने के लिए उन्हें उच्चतर "गुजाइश" (margin) निकालनी पड़ती है; इसलिए वे उसे बढ़ाएंगे, और कीमत फिर उत्पादन लागत के बराबर हो जाएगी। ऐसी स्थिति में बढ़ी हुई पूर्ति की निम्नतर नहीं बल्कि उच्चतर कीमत होती है।[28] इस प्रक्रिया की सीमा BQ है, और इस कीमत को लाने के लिए एक बार क्षेत्र में पर्याप्त व्यापारियों के स्थापित हो जाने के बाद, यह कीमत पूर्णतः स्थायी होती है, क्योंकि इससे ऊँची या नीची कीमत होने

पर लागत विक्रय कीमत से अधिक हो जाएगी। इससे कम, *AR* तक, कोई भी कीमत स्थायी होगी (विक्रेताओं की संख्या तदनुसार कम होने पर), क्योंकि कीमत सदा लागत को मात्र पूरा करती है, और अपने को जिन सिब्बदियों की लागतों को अवश्य पूरा करना है उनकी संख्या के अनुकूल कर लेती है। लेकिन, जब कीमतें *BQ* से कम होती है तो क्षेत्र में अधिक विक्रेताओं के जीविकोपार्जन की संभावना मात्र, अधिकतम संतुलन कीमत के नियत होने की प्रवृत्ति को सुदृढ़ बना देती है।

ऊपर वर्णित परिणाम विक्रेताओं में किसी प्रकार के संयोजन को—मौन समझौते (सहमति) तक को—सन्निहित नही करता। यह प्रत्येक द्वारा अपने "साधारण" लाभ को स्वतन्त्र रूप से प्राप्त करने का परिणाम है। जो अपने ग्राहकों से व्यापार करना और अच्छा लाभ प्राप्त करने के लिए यथेष्ट कीमत लेना स्वाभाविक बात मानता है, उसके दिमाग में अपने प्रतिद्वन्द्वियों के साथ साँठ-गाँठ करने की बात ("मौन रूप से" भी) आ ही नही सकती। परन्तु वास्तविकता में वह निम्नलिखित के कारण अधिक सुदृढ हो जाती है : मौन या औपचारिक करारों, खुले कीमत संयोजनों, संघ-भाव का निर्माण करने वाली व्यापार सघो की क्रियाओं, "कीमत कायम रखना", विनिर्माताओं द्वारा व्यापारियों के लिए एकरूप कीमतें नियत करना, और कीमत से ध्यान हटाने के प्रयत्न मे उत्पाद का अत्यधिक विशिष्टीकरण करना। व्यापारिक या व्यावसायिक "नैतिकता" एक अन्य कारण है। व्यवसायों में कीमत के आधार पर प्रतियोगिता करना बहुत पहले से अनैतिक समझा जाता रहा है। इसलिए कोई भी कारण नही है कि डाक्टरों और वकीलों की संख्या (पूर्ति) किसी आर्थिक क्षति के भय के बिना तब तक क्यो न बढ़े जब तक कि *BQ* के अनुरूप ऊँची कीमते नही हो जातीं। जिस मात्रा तक व्यवसायी निम्नतर कीमतों पर पूर्ति करने को विस्तृत क्षेत्र में "अनैतिक" बनाने में सफल होते हैं, वे अल्पावधि में अपने लाभो का निस्सदेह संरक्षण करते है, परन्तु दीर्घतर अवधियों में वे अपनी संख्या का संरक्षण करते है, क्योंकि जब कीमत नहीं गिरती तो लागत बढ़ जाती है, और इन दो का समीकरण अतिरिक्त उत्पादन क्षमता के विकास से होता है।

कीमत में कटौती रोकने वाला एक अन्य कारक यह है कि कही उपभोक्ता यह अनुमान न कर लें कि क्योंकि कीमत कम है इसलिए उत्पाद घटिया किस्म का है। यद्यपि पूर्ण ज्ञान की हमारी वर्तमान परिकल्पना के द्वारा, सही अर्थों में, यह कारक वर्जित है, फिर भी यह इतना महत्वपूर्ण है कि इस स्थान पर प्रासंगिक रूप से इसका उल्लेख अवश्य कर देना चाहिए। जिस सीमा तक, अपने विवेक की अप्रवीणता के बारे में सचेत उपभोक्ता पदार्थ के गुणों को बिना विचारे कीमत से संबंधित करता है, माँग का साधारण नियम उलट जाता है—कीमत के घटने पर माँग घट जाती है और, विलोमतः, उच्चतर कीमत पर बढ़ जाती है।[29] इस कारक के साथ-साथ, हो सकता है कि कीमत घटाने वाले को ग्राहकों के स्वरूप में अवांछनीय परिवर्तन गवारा करना पड़े,

क्योंकि किसी सिब्बंदी के "वातावरण" को संवारने में कीमत बहुधा एक महत्वपूर्ण कारक होती है।

इसके अतिरिक्त, हो सकता है कि कीमत में कटौती प्रच्छन्न हो या गुप्त—इस विचार से कि प्रतियोगियों द्वारा अनुसरण करने की संभाव्यता कम हो जाए। इस प्रकार, न्यू इंग्लैंड में पैट्रोल की एक प्रमुख खुदरा व्यापारी संस्था नियमित रूप से वही प्रति गैलन कीमत प्रदर्शित करती थी जो उसके प्रतियोगी करते थे, और उसी नियमितता से प्रत्येक ग्राहक को मुफ्त कूपन की किताब देने की युक्ति के द्वारा दो सैंट कम कीमत पर बेचती थी। कीमत मे कटौती को खुले आम प्रचारित करने पर हो सकता था कि प्रतियोगी प्रतिकार करते। एक अन्य उदाहरण ऐसे गैराज का है जो रात-भर गाड़ी रखने का 50 सैंट लेता था, जो सामान्य कीमत थी, परन्तु गाडी में एक गैलन पैट्रोल भी भर देता था। इस प्रकार के सब अतिरिक्त प्रतिफल, बढ़ौती (नजराना), कूपन, और बहुत कुछ, कीमत मे प्रच्छन्न कटौतियाँ समझे जा सकते है। इसका प्रभाव यह होता है कि प्रच्छन्न कटौती करने वाले के व्यापार में वृद्धि होती है। यद्यपि वह dd' द्वारा दिखाई गई वृद्धि से किंचित् कम होती है (चित्र 14 या 15), फिर भी यह वृद्धि अधिक विश्वसनीय होती है, क्योकि अन्य द्वारा उसका अनुसरण करने की सभावना कम होती है, और इस कारण से वह कीमत को कृत्रिम रूप से ऊँचा रखता है।

अन्त मे, हो सकता है कि कीमतें बिल्कुल घट-बढ़ न सकें। वे रिवाज या परम्परा द्वारा नियत हों। हो सकता है कि किसी उत्पाद के साथ कोई विशेष कीमत जुड जाए, जिससे उसे अनर्थ लाए बिना बदला ही न जा सके। आजकल छाप और व्यापार-चिह्न को अधिकाधिक महत्व दिए जाने से, खुदरा विक्रेताओं पर विनिर्माताओं द्वारा अधिकाधिक मात्रा मे कीमतें, विशिष्ट करार द्वारा, या अनुनय द्वारा या सुझाव द्वारा, आरोपित की जाती है। न केवल कीमतें बल्कि क्रय कीमतों मे प्रतिशत वृद्धि करने की प्रथा (mark-up percentages) भी, व्यापार के दस्तूर (practice) के द्वारा, स्थायी रूप ले लेती है। ऐसी स्थितियों में, पूर्ति और उत्पादन का पैमाना अपने को कीमत से समायोजित कर लेते है। कीमत AQ से कम नही हो सकती (चित्र 18), अन्यथा कोई विक्रेता पदार्थ को नही बेचेगा। बहुत संभव है कि वह इससे ऊँची हो, विशेष कर के विनिर्माता द्वारा नियत किए जाने पर, क्योंकि ग्राहक के लिए कम कीमत रखने की अपेक्षा व्यापारियों के लाभ की गुजाइश (trade margin) उदार रखना प्रायः अधिक महत्वपूर्ण होता है। मान लो कि कीमत AR है। इस कीमत पर उपभोक्ता जिस कुल राशि को खरीदते है, वह क्षेत्र के खुदरा व्यापारियों में बँट जाएगी। यदि उनकी संख्या ऐसी है कि प्रत्येक की बिक्री OA है, तो प्रत्येक को $NQRM$ के बराबर अतिरिक्त लाभ मिलेगा। इसका परिणाम अधिकाधिक विक्रेता और उच्चतर प्रति इकाई लागत होगा, जब तक कि प्रत्येक की बिक्री का घटा हुआ परिमाण प्रत्येक के लाभ को न्यूनतम तल तक गिरा देता है; यहाँ कीमत सदा वही बनी रहती है, और अन्त में उत्पादन का पैमाना OB हो जाता है।[30]

कारकों के इस समुच्चय का सामान्य परिणाम होता है अतिरिक्त उत्पादन क्षमता, जिसे दुरुस्त करने वाली कोई स्वचेष्ट प्रक्रिया नहीं है। ऐसी अतिरिक्त क्षमता शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत भी, उत्पादकों द्वारा गलत अनुमान लगाने या माँग या लागत की दशाओं में आकस्मिक परिवर्तनों के कारण, निस्संदेह पैदा हो सकती है। परन्तु

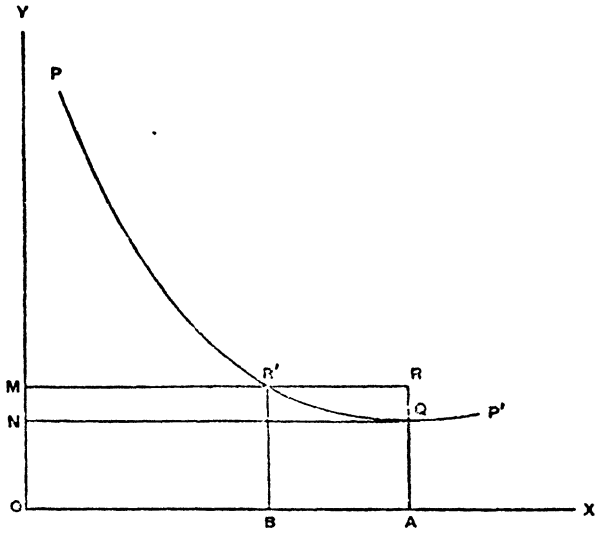

चित्र 18

यह एकाधिकारिक प्रतियोगिता की विशेषता है कि वह दीर्घ अवधियों के दौरान मे, **क्षति के भय के बिना,** विकसित हो सकती है, और कीमत सदा लागत को पूरा करती है, और वस्तुतः कीमत-प्रतियोगिता के कार्य न करने के कारण हो सकता है कि वह स्थायी और प्रसामान्य हो जाए। यह अतिरिक्त क्षमता कभी दूर नही की जाती, और परिणाम ऊँची कीमतें और अपव्यय (waste) होता है। यह सिद्धान्त अर्थव्यवस्था मे अपव्यय की व्याख्या करता है—ऐसे अपव्यय जिन्हें प्रायः "प्रतियोगिता के अपव्यय" कहा जाता है। वास्तव में, वे शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत कभी उत्पन्न नही हो सकते, और इसी कारण से शुद्ध प्रतियोगिता के सिद्धान्त को उनके बारे में चुप रहना पड़ता है; और यदि कभी उनका उल्लेख किया भी गया तो सिद्धान्त के भाग के रूप में नहीं, बल्कि उसकी "मर्यादा" के रूप में। वे एकाधिकार के कारण—एकाधिकारिक प्रतियोगिता में एकाधिकार तत्वों के कारण—होने वाले अपव्यय हैं।[31]

6. प्रत्येक उत्पादक की परिवेशी दशाओं की विविधता

"समूह" सिद्धान्त के अब तक के विकास में प्रत्येक विक्रेता के बाजार को एक

ही आकार और लोच का मानने और प्रत्येक की लागत दशाओं को एकसम मानने की युक्ति का उपयोग किया गया है।[32] वास्तविकता में, स्वभावतया, उनमें बहुत बड़े अन्तर होते हैं। उपभोक्ताओं के अधिमानों की अस्थिरताओं, उत्पाद के गुण, उपलब्ध स्थानापन्नों की संख्या और पूर्णता की मात्रा, ग्राहकों के जिस वर्ग को आकर्षित किया जाता है उसके, और कई अन्य कारकों के अनुसार उत्पादों के माँग वक्रों की x और y अक्षों के सापेक्ष स्थितियाँ और लोचें बदलती हैं। इसी प्रकार, लागत वक्र भी स्थिति और आकृति दोनों के सम्बन्ध में बदलते हैं, इस सीधे कारण से कि उत्पाद स्वयं एक दूसरे से भिन्न है। अन्त में, ये दो वक्र एक-दूसरे के सापेक्ष अपनी स्थिति में बदलते है। अब इस विविधता को व्यक्त रूप से स्वीकार किया जाना चाहिए, और एक-समानता की सरलतर परिकल्पना के अन्तर्गत प्रतिपादित निष्कर्षों से सम्बन्धित अवश्य किया जाना चाहिए।

आरम्भ में हम अन्तिम कारक—वक्रों की एक-दूसरे के सापेक्ष स्थिति में परिवर्तन—की उपेक्षा करेंगे, और यह कल्पना करेंगे कि स्पर्शता की स्थिति की ओर समायोजन सदा होता है, जिसका वर्णन पहले ही किया जा चुका है।[33] तब हमारा ध्यान किसी समूह में (क) x और y अक्षों के सापेक्ष वक्रों की स्थिति के बारे में, और (ख) उनकी आकृति के बारे में विविधता पर केन्द्रित हो जाता है।

(क) प्रकार, आकार, भौतिक लक्षणों, आदि, के बारे में समूह के विभिन्न उत्पादों में भेद के परिणामस्वरूप जिस स्तर पर समायोजन होते है, उनमें बहुत अधिक विविधता होती है। स्थिति का यथेष्ट रूप से चित्रण करने के लिए, प्रत्येक उत्पाद के लिए या शायद एक कीमत के या प्रकार के वर्ग मे आने वाले उत्पादों के प्रत्येक उपवर्ग के लिए एक पृथक् चित्र अवश्य खीचा जाना चाहिए। तब उत्पादकों के किसी वर्ग का निरूपण विभिन्न आकारों के चित्रों के एक समूह द्वारा किया जाएगा। प्रतियोगिता की शक्तियाँ, जिनकी रूपरेखा पहले ही दी जा चुकी है, यह सुनिश्चित करेगी कि माँग वक्र लागत वक्रों की सर्वत्र स्पर्शरेखाएँ होंगे, और कही भी लाभ प्रतियोगी स्तर से उच्चतर नहीं होंगे। तिस पर भी, उत्पाद के प्रकार, आकार, आदि, के परिसर के अनुरूप, कीमतें और उत्पादन के पैमाने बदलेगे। समस्या की इस अवस्था पर विचार करने के हेतु सिद्धान्त में कोई आपरिवर्तन करने की आवश्यकता नही है—पहले के चित्रों का, प्रतिपादन के सक्षिप्त उपायों के रूप में, केवल निर्वचन करना आवश्यक है। मान लो कि यह चित्र जैसे खीचा गया है, उस रूप में किसी विशेष उत्पादक के लिए सदा यथार्थ है। तब यह, प्रत्येक के लिए समुचित स्तर पर, जो समूह में प्रत्येक के लिए सच है उसके **उदाहरणस्वरूप** समझा जा सकता है।

(ख) इसी प्रकार आकृति का प्रश्न भी केवल प्रतिपादन की समस्या है। जहाँ माँग वक्र कम लोचदार हैं, वहाँ स्पर्श-बिन्दु तदनुसार उच्चतर होगा, और इसके विलोमतः भी। इसी प्रकार लागत वक्र के विभिन्न बिन्दुओं पर ढाल में परिवर्तनों का प्रभाव उस बिन्दु पर पड़ेगा जिस पर माँग वक्र उसकी स्पर्शरेखा है। लेकिन, वक्रों

की सामान्य आकृति वैसी ही होती है, जिसका वर्णन पहले ही किया जा चुका है,[34] और प्रत्येक वैयक्तिक स्थिति में समायोजन का रूप एक ही होता है। समूह के उदाहरणस्वरूप वक्रों के केवल एक युगल पर विचार करना पर्याप्त है, यह समझते हुए कि, स्थिति के बारे में और आकृति के बारे में, विविधता के कारण कीमतों, लागतों और उत्पत्तियों में (परन्तु, अब तक, लाभों में नही) तदनुरूप विविधता सर्वत्र मिलती है।

अब हम अन्तिम कारक—वक्रों की एक-दूसरे के सापेक्ष स्थिति में अन्तर—पर आते हैं। एकरूप वक्रों की कल्पना के अन्तर्गत, यह तर्क किया गया है कि जहाँ लाभ प्रतियोगी स्तर से अधिक है, वहाँ उत्पादकों की संख्या में वृद्धि उसे घटा देगी, जिससे, यद्यपि एकाधिकार कीमतें बनी रहती है, लाभ प्रत्येक के लिए प्रतियोगी और एक-समान होते है।[35] यह तर्क इस अव्यक्त कल्पना पर आधारित था कि इस परिणाम को लाने के लिए सामान्य क्षेत्र मे और उसके किसी भाग में स्थानापन्नों का उत्पादन पर्याप्त रूप से संभव है। लेकिन, जिस सीमा तक प्रभावकारिता की इस मात्रा वाले स्थानापन्नों का उत्पादन नही किया जा सकता, निष्कर्ष भिन्न होते है—माँग वक्र लागत वक्रों के अपने स्पर्श-बिन्दुओं की दाहिनी ओर होंगे, और लाभ तदनुसार उच्चतर होंगे। यह सब एकाधिकार लाभों की—चाहे वे किसी प्रकार के हों—व्याख्या है।[36] सामान्य सिद्धान्त से ऐसे लाभों का सम्बन्ध दिखाने के लिए कुछ प्रकारों पर विचार किया जा सकता है।

पहला उदाहरण पेटेन्ट, कापीराइट, व्यापार-चिह्नों, आदि, का है। यद्यपि प्रतियोगी उत्पादों के आविर्भाव के कारण असाधारण रूप से ऊँचे प्रतिफल हो सकता है कि घट जाएँ, इसकी सभावनाएं बहुधा सीमित होती है। एकैक पेटेन्ट और व्यापार-चिह्न सामान्य क्षेत्र के भागों को, क्योंकि प्रभावी स्थानापन्नों का उत्पादन नही किया जा सकता या क्योंकि स्थापित उपभोक्ता-अधिमान सुदृढ है, पहले ही हथिया लेते है। प्रतियोगिता, जिस सीमा तक वह इस क्षेत्र में किसी भी मात्रा में प्रवेश करती है, माँग वक्र को असमान मात्रा में बायी ओर हटा देती है, और क्षेत्र मे एकाधिकार लाभों को सर्वत्र विकीर्ण कर देती है।

किसी सिब्बदी की वे विशेषताएँ जिनकी नकल न की जा सके (जैसे, उदाहरणार्थ, स्वामी का व्यक्तित्व) जिन लाभों को उत्पन्न करती है, वे इसी श्रेणी में आते हैं; इसी प्रकार व्यवसायों में ख्याति, निपुणता और विशेष योग्यता। इन सब की व्याख्या एकाधिकार प्रतिफलों के रूप मे हो जाती है। निपुण चिकित्सक अपनी सेवाओं को ठीक उसी बाजार में नहीं बेचता जिसमें एक साधारण चिकित्सक बेचता है; उनकी सेवाएँ एक-दूसरे से बदली नही जा सकती, और एक ही कीमत पर नही बिकतीं (जैसे कि गेहूँ के लिए अच्छी या खराब जमीन की उपज एक ही कीमत पर बिकती है)। यह सच है कि, उत्कृष्ट शारीरिक सामर्थ्य या फुर्ती के कारण, कोई व्यक्ति दूसरे की अपेक्षा समय की प्रति इकाई अधिक उत्पादन करने में समर्थ

हो। जिस मात्रा तक ऐसे स्रोतों से आय में अन्तर उत्पन्न होते हैं, उनकी व्याख्या अधिशेष के प्रतियोगिता-सिद्धान्त द्वारा हो जाती है। किन्तु और आगे के अन्तरों का कारण केवल एकाधिकार के सिद्धान्त द्वारा ही बताया जा सकता है। **उसी** बाजार में **उसी** पदार्थ का उत्पादन करने वालों की अड़चनें किसी एक व्यक्ति के उत्पाद या सेवा के माँग वक्र को बहुत दायीं ओर रख देती हैं। परिणामस्वरूप, बृहत्तर लाभ मिलते है, जिनका कारण विचाराधीन अद्वितीयता का तत्व है। व्यावसायिक सेवाओं की स्थिति में, परिणाम, लाक्षणिक रूप से, उच्चतर कीमतें होता है; पेटेन्ट या व्यापार-चिह्नित उत्पाद की स्थिति में, वह बहुधा बृहत्तर बिक्री होता है। लेकिन इन दोनों स्थितियों मे व्याख्या एक ही है। क्षेत्र के किसी भाग में स्थानापन्नों की लाभ को घटाने की प्रभावकारिता परिसीमित है।

इस प्रकार की आय का तीसरा उदाहरण नगरीय किराये (urban rent) मे मिलता है। यदि खुदरा व्यापार-क्षेत्र के प्रत्येक भाग में अड़चन के बिना प्रवेश किया जाता, तो किरायों में कही भी कोई अन्तर न होता। जिन जगहों में ग्राहक सबसे बहुसंख्यक है, और इसलिए लाभ के अवसर सबसे अधिक है, भूमि की दुर्लभता की अड़चन के कारण कुछ स्थानों में अन्य की तुलना में बृहत्तर प्रतिफल मिलते है—ये प्रतिफल ऐसे है कि उनमे हिस्सा बँटाने के लिए अन्य विक्रेताओं के आने से वे घटाए नही जा सकते। दूर से प्रतियोगिता बिना प्रभाव के नही होती, परन्तु विभिन्न स्थितियों के कारण मिलने वाले बाजार पर्याप्त रूप से भिन्न है और किराये में बहुत बड़ी विविधता रहती है। उत्कृष्ट बाजार वाली स्थितियों के किराये उचित रूप से एकाधिकार प्रतिफल समझ जाने चाहिए, और उनकी सैद्धान्तिक व्याख्या कृषि-लगान की व्याख्या से बिल्कुल भिन्न है। इस विषय का और अधिक विकास परिशिष्ट 'घ' में किया गया है।

विषय की इस अवस्था का संक्षेप यह है कि समूह समस्या के हमारे विवरण में इसे मान्यता देकर आपरिवर्तन अवश्य किया जाना चाहिए कि माँग वक्रों का एक-रूप से समायोजन ऐसे स्थान पर नही होता जहाँ वे लागत वक्रों की स्पर्शरेखाएँ हों। जिस सीमा तक सम्पूर्ण क्षेत्र में या उसके किसी भाग में लाभ सामान्य प्रतियोगी स्तर से उच्चतर होते है, तो, **यदि संभव हो**, नये प्रतियोगी क्षेत्र में घुस जाएंगे। यदि ऐसा सदा संभव होता, जैसा अब तक माना गया है, तो वक्र सदा एक-दूसरे की स्पर्शरेखाएँ होंगे और एकाधिकार लाभ विलुप्त हो जाएगे। वास्तव में यह केवल अंशतः संभव है। परिणामस्वरूप, कुछ (या सब) माँग वक्र स्पर्श-बिन्दु की दाहिनी ओर विभिन्न दूरियों पर स्थित हो सकते हैं, और समूह में—और कीमत-प्रणाली में—सर्वत्र एकाधिकार लाभ विकीर्ण रहते हैं।[37]

हमारे सिद्धान्त ने अब उसकी व्याख्या कर दी है जिसे शुद्ध प्रतियोगिता छोड़ देती है—अर्थात् प्रत्येक विक्रता के बाजार में कार्यरत विशेष शक्तियाँ। मूल्य सिद्धान्त में जैसे उत्पादों के प्रत्येक सामान्य **वर्ग** को प्रभावित करने वाली विशेष

शक्तियों के अस्तित्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती है, उसी प्रकार उत्पाद के प्रत्येक **प्रकार** को प्रभावित करने वाले कारकों के अस्तित्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। पहले की उपेक्षा करना केवल सामान्य कीमत स्तर की व्याख्या करने वाले सिद्धान्त को कीमतों के एक संपूर्ण सिद्धान्त के रूप में स्वीकार करना है। ऐसा करना बेतुका होगा, परन्तु यह उत्पादों के सामान्य वर्गों पर एकाएक रुक जाने और इन वर्गों के भीतर कार्यरत आर्थिक शक्तियों की सब विविधताओं की उपेक्षा करने से केवल मात्रा में भिन्न है। इस प्रकार प्रतियोगिता को कठिनाइयों से मुक्त करना और पूर्ण बनाना न केवल परिणामों को **सामान्य** पूर्वग्रह प्रदान करता है, बल्कि एक ही बार में विभेदक तत्वों के सम्पूर्ण वर्ग को बराबर कर देता है और उन्हें हटा देता है, जो कीमत संरचना का एक सारवान भाग बनाते हैं।

7. शुद्ध प्रतियोगिता और एकाधिकारिक प्रतियोगिता की तुलना

शुद्ध प्रतियोगिता के सिद्धान्त के विवरण में यह दिखाया गया था कि संतुलन कीमत वह है जो माँग और पूर्ति का समीकरण करती है, **इस कारण से कि केवल यही कीमत ऐसी है जो प्रत्येक उत्पादक के अधिकतम लाभ के अविरुद्ध है।**[38] शुद्ध प्रतियोगिता के लिए किए गए तर्क का उपयोग करके इस अध्याय के केन्द्रीय प्रतिपाद्य विषय का पुनः विवरण देने से एकाधिकारिक और शुद्ध प्रतियोगिता की तुलना करना आसान हो जाता है। जहाँ एकाधिकार तत्व विद्यमान हों वहाँ, **इसी कारण से**, संतुलन कीमत प्रतियोगी माँग और लागत वक्रों के प्रतिच्छेद द्वारा बताए जाने वाली कीमत से अनिवार्य रूप से ऊँची होती है।

शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत बेचे जाने वाले एक पदार्थ के माँग और लागत वक्र क्रमशः DD' और PP' हैं (चित्र 19a)।[39] क्रेताओं और विक्रेताओं की संख्या बहुत है, और पदार्थ पूर्णतः एकरूप है। संतुलन कीमत AR है। चित्र 19b में एक उत्पादक के सम्बन्ध में दशाएँ दिखाई गई है, और (अध्याय 2 पृष्ठ 16, में इसी प्रकार के दो चित्रों की भाँति) क्षैतिज पैमाना चित्र 19a के पैमाना भागा विक्रेताओं की संख्या के बराबर है। (यदि पचास विक्रेता हों तो oa, OA का 1/50 है।) दोनों चित्रों में ऊर्ध्व पैमाना एक ही है। एक विक्रेता के उत्पाद के लिए माँग और लागत वक्र क्रमशः ee' और pp' है। वह अपनी उत्पत्ति का समायोजन, उत्पादन के दक्षतम पैमाने, oa के साथ करता है, और कीमत ar उसकी लागत को ठीक-ठीक पूरा करती है। उसका लाभ अधिकतम है, क्योंकि कोई अन्य समायोजन उसे लागत वक्र में समाविष्ट आवश्यक न्यूनतम लाभ से कम कर देगा।

अब मान लीजिए कि उत्पाद विशिष्टीकृत है, और मान लो कि विशिष्टीकरण का स्वरूप ऐसा है कि उत्पादन लागत के वक्रों पर सारवान प्रभाव नहीं पड़ता। हम

यह भी कल्पना कर लें कि सामान्य बाजार का माँग वक्र, DD', विशिष्टीकरण के तथ्य के कारण बदलता नहीं है।[40] लेकिन, किसी एक उत्पादक के पदार्थ का माँग वक्र अपरिवर्तित नहीं रहता। विशिष्टीकरण का तथ्य उसे किंचित् झुका देता है, जिससे उसका निरूपण r से हो कर जाने वाली अखंडित रेखा dd' से किया जा सकता है (चित्र 19b)। अब पहले ही विस्तार से बताई गई प्रतिक्रियाओं का शीघ्रता से

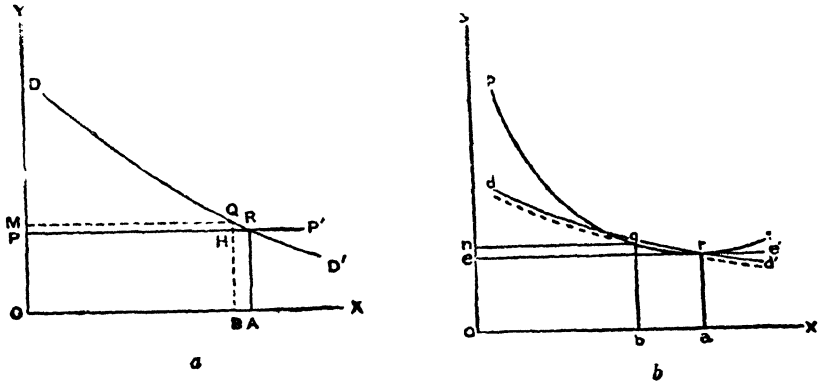

चित्र 19

संक्षेप में वर्णन किया जा सकता है। प्रत्येक उत्पादक का लाभ अपनी कीमत को बढ़ाने पर बढ़ जाता है, और यह वृद्धि क्षेत्र में नये प्रतियोगियों को आकर्षित करेगी। वक्र dd' बायीं ओर को हट कर बिन्दु-रेखा की स्थिति पर आ जाएगा, और सबके लिए कीमत bq नियत होगी, जिसके लिए यह रेखा उत्पादन लागत वक्र pp' की स्पर्शरेखा है।[41] प्रत्येक की उत्पत्ति ob है, और सबके लिए कुल राशि जानने के लिए इसे विक्रेताओं की संख्या से गुणा करना पड़ेगा। अब चित्र 19a में देखने पर, हम देखते है कि कुल राशि OB अवश्य होनी चाहिए, जिसे BQ कीमत पर खरीदा जाएगा। यद्यपि इस राशि का उत्पादन शुद्धतः प्रतियोगी दशाओं में विद्यमान सिब्बंदियों की संख्या से अधिक सिब्बंदियों ने किया है, तथापि यह राशि प्रतियोगी उत्पत्ति से (BA) कम है, जिसका कारण यह है कि प्रत्येक उत्पादक घटे हुए पैमाने पर उत्पादन कर रहा है। इस परिमाण की कुल लागत $OBHP$ नहीं है, जैसा कि प्रतियोगितामूलक लागत वक्र बताता है, बल्कि $OBQM$ है, जो पहली से अधिक है। यद्यपि एकाधिकारिक प्रतियोगिता में कीमत शुद्ध प्रतियोगिता में कीमत से ऊँची है, परन्तु, इसलिए (जैसी आशा की जा सकती थी), उसका परिणाम लागत और कीमत में अन्तर नहीं है।

चित्र 19a मे BQ कीमत पूर्णतः स्थायी है, यद्यपि वह माँग और लागत के प्रतिच्छेद से ऊँची है। शुद्ध प्रतियोगिता के सिद्धान्त में जो स्थिति थी वैसे ही यहाँ भी इसका कारण एकैक विक्रेता से सम्बद्ध दशाओं में ढूंढ़ा जाना

चाहिए। कारण यह है कि केवल BQ ऐसी कीमत है जो उनके अधिकतम लाभ के संगत है। संन्तुलन कीमत और शुद्धतः प्रतियोगी कीमत में सावधानी से भेद करने की आवश्यकता पुनः सामने आ जाती है। जब भी उत्पाद विशिष्टीकृत होता है, ये दो सदा भिन्न होती हैं। वस्तुतः, इस इस स्थिति में, कीमत समस्या का उत्तर शुद्धतः प्रतियोगितामूलक कल्पनाओं या लेखाचित्रीय निरूपणों से नहीं पाया जाता है। चित्र 19*a* से यह बताना असंभव है कि कीमत क्या होगी, क्योंकि बिन्दु Q चित्र 19*b* से निकाला गया है, जो एक विक्रेता से सम्बद्ध है।

हो सकता है कि यह प्रतीत हो कि इस कठिनाई का निवारण लागत वक्र को प्रतियोगितामूलक लागत से ऊपर और उसके समान्तर खीच कर किया जाएगा, जिसके द्वारा उस लागत का निरूपण किया जाएगा जिसे एकाधिकारिक प्रतियोगिता की दशाओं में अवश्य पूरा किया जाना चाहिए, न कि शुद्ध प्रतियोगिता की दशाओं की लागत को। ऐसा लागत वक्र Q से गुजरेगा, और स्थिर लागत की स्थिति मे, चित्र 19*a* के MQ का विस्तरण (extension) होने के कारण, क्षैतिज होगा। परन्तु ऐसा वक्र लागत वक्र नहीं है, क्योंकि वह यह नही बताता कि पदार्थ की विभिन्न राशियों का उत्पादन किस लागत पर किया जा सकता है; वह BQ कीमत के निर्धारण मे कोई भाग नही ले सकता। उसे एकैक उत्पाद के माँग और लागत वक्रों के द्वारा BQ के निर्धारण के बाद ही खींचा जा सकता है, और, उत्पाद के विभिन्न कुल परिमाणो के लिए इन (एकैक) संतुलनों का बिन्दु-पथ होने के कारण, यह जितना लागत का वक्र है उतना ही माँग का वक्र है। उसका निर्धारण संतुलन कीमत द्वारा होता है और वह उसकी व्याख्या में कोई अंशदान नहीं कर सकता। यह बात एक सच्चे लागत वक्र के बारे में—PP' या pp' के बारे मे—नहीं कही जा सकती है।

जहाँ एकाधिकार तत्व उपस्थित हों वहाँ प्रतियोगिता सिद्धान्त का प्रयोग किसी भी दशा में किया जाना चाहिए या नही यह प्रश्न समुचित रूप से प्रस्तुत किया गया है। हम स्वीकार कर सकते हैं कि आर्थिक सिद्धान्त केवल स्थूल रूप से काम करते है, और हो सकता है कि वास्तविक कीमत न तो AR हो, न BQ; तिस पर भी, वह BQ, न कि AR, की ओर प्रवृत्त या उसके सन्निकट होती है। विशिष्टीकृत उत्पाद की कीमत समस्या, निष्कर्षों मे निश्चित गलतियों के बिना, प्रतियोगितामूलक माँग और लागत वक्रों के साँचे में जबरदस्ती नही ढाली जा सकती। ये गलतियाँ हैं—कीमत सदा बहुत ही नीची होती है, उत्पादन की लागत बहुत ही नीची है, उत्पादन का पैमाना बहुत ही बड़ा है, और उत्पादकों की सख्या बहुत ही कम है। इसके साथ-साथ, प्रतियोगिता की दो अतिरिक्त अवस्थाएं, उत्पाद विचरण की और विक्रय लागत की, बिल्कुल छोड़ दी जाती हैं।

अध्याय 6

विक्रय लागत बनाम उत्पादन लागत[1]

पिछले अध्याय के आरंभ में तीन कारकों का वर्णन किया गया था, जो एकाधिकारिक प्रतियोगिता में किसी विक्रेता-विशेष के उत्पाद के बाजार को परिसीमित और निर्धारित करते हैं : (1) उसकी कीमत, (2) उसके उत्पाद का स्वरूप, और (3) उसका विक्रयण व्यय। प्रतिपादन को सरल करने के हेतु, वहाँ इनमें से तीसरे को यह कल्पना करके अस्थायी रूप से हटा दिया गया था कि क्रेताओं की आवश्यकताएँ (क) दी हुई है और (ख) क्रेताओं को उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए उपलब्ध साधनों के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान है। केवल कीमत और उत्पाद के समायोजनों तक ध्यान सीमित रखा गया था। फलतः, अब तक लागत वक्रों में सम्मिलित व्यय केवल वे है जो माँग को पूरा करने के लिए पदार्थों के उत्पादन में लगते है, वे नही जो माँग का सृजन करने या उसे बढ़ाने के लिए किए जाते हैं। अब इस तथ्य को मान्यता देकर सिद्धान्त को सम्पूर्ण कर दिया जाना चाहिए कि माँग को विज्ञापन के द्वारा बदला जाता है, और यह कि व्यवसायियों की गणना के एक महत्वपूर्ण भाग का सम्बन्ध इस प्रयोजन से किए गए व्यय के सबसे लाभदायक समायोजन से है।

किसी उत्पाद के माँग वक्र की स्थिति या आकृति को बदलने के उद्देश्य से लगाई गई लागत को विक्रय लागत कहते है। बाद में ऐसी लागत और उत्पादन की लागत में सूक्ष्म भेद करने का प्रयत्न किया जाएगा। सम्प्रति, केवल उदाहरण देने की आवश्यकता है। सब प्रकार के विज्ञापन, सेलस्मैन का वेतन और बिक्री विभाग पर व्यय, विशेष पदार्थों के पक्ष में (फुटकर और थोक) व्यापारियों के प्रयास को बढ़ाने के उद्देश्य से उन्हें मिलने वाली लाभ की गुजाइश, दुकान में वस्तु विन्यास, नये पदार्थो का प्रदर्शन, इत्यादि, ये सब इस प्रकार की लागते है। दी हुई आवश्यकताओं (अर्थात्, "वे स्थिर है") की और क्रेताओं के पूर्ण ज्ञान की कल्पना के अन्तर्गत इनमें किसी का कोई प्रयोजन न होता। परन्तु इन कल्पनाओं को हटाते ही वे बिक्री के परिमाण पर और इसलिए कीमतों और लाभों पर कार्य करने वाली प्रभावशाली शक्तियाँ हो जाती हैं।

1. विक्रय लागत मांग को कैसे प्रभावित करती है

हम इन व्ययों के प्रतिरूप के रूप में विज्ञापन को लेंगे और देखेंगे कि उसके परिणाम किस प्रकार आते हैं। इस व्याख्या को निम्नलिखित दो कारकों से सम्बन्धित किया जा सकता है : (क) अपूर्ण ज्ञान, और (ख) विज्ञापन या विक्रयण के आकर्षण द्वारा लोगों की आवश्यकताओं को बदलने की संभावनाएँ।

विज्ञापन की समस्या के लिए क्रेताओं के विशेष सम्बन्ध में अपूर्ण ज्ञान महत्वपूर्ण है।[2] इसके विभिन्न पहलू हैं। जिन विक्रेताओं के साथ व्यापार करने के वे आदी हो गए हैं या जिन पदार्थों का उपभोग वे आदतन करते है, उन्हें छोड़कर अन्य विक्रेताओं या अन्य पदार्थों के अस्तित्व के बारे में क्रेताओं को बहुधा कोई ज्ञान नहीं होता या अस्पष्ट भान होता है। वे विभिन्न दुकानदारों द्वारा बेची गई एक ही चीज की तुलनात्मक कीमतों के बारे में अच्छी तरह अवगत नहीं होते। वे पदार्थों के स्वयं अपने गुणों के, अन्य पदार्थों की तुलना में उनके गुणों के, और माँगी गई कीमत की तुलना में उनके गुणों के बारे में अनभिज्ञ होते हैं। विज्ञापन जानकारी (या गलत जानकारी) फैलाकर विक्रेता के बाजार को बढ़ाता है, जिसके आधार पर आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने वाले साधनों के बारे में विक्रेताओं के चुनावों में परिवर्तन किया जाता है। स्वभावतया, यह उनके उत्पादों के माँग वक्रों की आकृति में या उनकी स्थिति में परिवर्तन के समतुल्य है।[3]

वक्र की आकृति मुख्यतया तब प्रभावित होगी, जब समस्या कीमत प्रतियोगिता की होती है। विक्रेता द्वारा निम्नतर कीमत पर पदार्थ प्रस्तुत किए जाने की सूचना संभाव्य क्रेताओं की जितनी बड़ी सख्या तक पहुँचती है, वह अपनी बिक्री को उसी अनुपात में बढाने मे सफल होगा। इस जानकारी को फैलाकर विज्ञापन उसके उत्पाद की माँग को अधिक लोचदार बना देता है—निम्नतर कीमत पर माँग न केवल उस संभव सीमित राशि से बढती है जो तब बढती यदि केवल नियमित और चन्द अनियमित खरीदार उसके बारे में जानते, बल्कि बृहत्तर राशि से बढ़ती है जो विज्ञापन व्यय के आकार और उसके विनियोग की निपुणता पर निर्भर करती है। (कीमतों के बारे में) अपूर्ण ज्ञान उत्पादों के माँग वक्रों को कम लोचदार बना देता है; विज्ञापन, उसे दुरुस्त करके, उन्हें अधिक लोचदार बना देता है। वह कीमत प्रतियोगिता के अधिक अवसर प्रस्तुत करता है, परन्तु अतिरिक्त लागत लगाने पर; और यह लागत कीमत द्वारा अवश्य पूरी की जानी चाहिए।

वक्र की स्थिति मुख्यतया तब प्रभावित होगी जब प्रतियोगिता स्वयं उत्पाद के आधार पर होती है। विज्ञापन का प्रभाव यह होता है कि विज्ञापित पदार्थ के अस्तित्व के बारे में जानकारी फैलाकर, उसका वर्णन करके, और खरीदारों को उसके उपयोग सुझाकर, उसके माँग वक्र को दायी ओर हटा देता है। निश्चित है कि इस प्रकार का विक्रयण व्यय किए बिना नये उत्पादों और पुराने उत्पादों के नये प्रकारों का प्रभावतः कोई बाजार नहीं होगा। इसी प्रकार यदि विक्रयण पर कुछ खर्च न किया जाए—अर्थात् यदि उत्पादक बैठे रहें और आर्डरों के आने की प्रतीक्षा करते रहें—तो पुराने और प्रतिष्ठित उत्पादों के बाजारों को बढ़ाया जा सकता है, परन्तु धीरे-धीरे और संकीर्ण सीमाओं के भीतर। अपने नये और अधिक सक्रिय प्रतियोगियों की आक्रामक विक्रयण रीतियों के मुकाबले में वे, अपने उत्पादों की उत्कृष्टता के बावजूद, तुरन्त मात खा जाएंगे। कीमत प्रतियोगिता की भांति, प्रकार प्रतियोगिता

भी बहुत बड़ी संख्या में संभावी क्रेताओं को गुण में परिवर्तनों के बारे में या पदार्थ की ऐसी विशेषताओं के बारे में जिनसे वे अवगत नहीं थे, सूचना देने की संभावना से प्रोत्साहित होती है। यदि सूचना सच्ची है तो आवश्यकताएँ अधिक प्रभावी रूप से सन्तुष्ट होती हैं; यदि नहीं है तो कम प्रभावी रूप से सन्तुष्ट होती हैं। किसी भी स्थिति में प्रयत्न यह किया जाता है कि, जिन साधनों के द्वारा आवश्यकताओं को सन्तुष्ट किया जा सकता है उनके बारे में, क्रेता को प्राप्त भिन्न सूचना के द्वारा **विद्यमान** आवश्यकताओं की सन्तुष्टि की जाए। इसका परिणाम माँग वक्रों की एक परिवर्तित प्रणाली होता है, और लोच पर अपूर्वानुमेय प्रभाव पड़ता है।

द्वितीयतः, विज्ञापन स्वयं आवश्यकताओं को बदल कर माँग को प्रभावित करता है। इसमें और जिस माध्यम से विद्यमान आवश्यकताएँ सन्तुष्ट की जाती है उसमें परिवर्तन करने में जो भेद है, वह वैश्लेषिक रूप से स्पष्ट प्रतीत होता है, यद्यपि व्यावहारिक अनुप्रयोग में यह भेद इस तथ्य के कारण अस्पष्ट हो जाता है कि ये दो बहुधा मिश्रित होते हैं। किसी विशेष व्यापार-चिह्न या विनिर्माता के **नाम** का प्रदर्शन करने वाला विज्ञापन हो सकता है कि कोई सूचना न दे; फिर भी यदि इस नाम से क्रेताओं को अधिक परिचित कराया जाता है तो उनकी प्रवृत्ति अविज्ञापित, अपरिचित छापों की अपेक्षा उसे अधिमान दे कर उसकी माँग करने की होती है। इसी प्रकार, वे विक्रयण रीतियाँ जो क्रेताओं की सुप्रभाव्यता का उपयोग करती है, जो उसके विरुद्ध मनोविज्ञान के नियमों का उपयोग करती है जिनसे वह अपरिचित है और इसलिए जिनसे वह अपनी रक्षा नहीं कर सकता है, जो उसे सहमा (डरा) देती हैं, या चढ़ा देती हैं, या उसे निहत्था कर देती हैं—इस सबका उसके ज्ञान से कोई सम्बन्ध नहीं है। वे ज्ञानवर्धक नहीं है; वे छलयुक्त है। उसके प्रयोजनों का नये सिरे से विन्यास करके वे आवश्यकताओं की एक नयी पद्धति का सृजन करती है।[4] परिणामस्वरूप, विज्ञापित उत्पाद की माँग बढ़ जाती है, और अन्य उत्पादों की माँग तदनुरूप घट जाती है।

विक्रयण लागत उपभोक्ता को सदा प्रत्यक्षतः प्रभावित नही करती, और हमारे उपर्युक्त वर्णन के प्रवर्धन की आवश्यकता है, ताकि क्रेता और विनिर्माता के बीच मे आने वाले व्यापारियों की शृंखला के कारण पैदा होने वाली जटिलताओं को सम्मिलित किया जा सके। खुदरा व्यापारी का सम्बन्ध केवल अन्तिम उपभोक्ता की माँग से है, और उसकी विक्रय लागत जिन उत्पादों का वह व्यापार करता है उनके अपने बाजार का प्रसार करने के प्रयत्न को बताता है। लेकिन, विनिर्माता के लिए आवश्यक है कि वह अपने प्रयास को उपभोक्ता और व्यापारी के बीच बाँटे, और बहुधा वह अपना पूरा या अधिकांश प्रयास व्यापारी पर लगा दे। उसके लिए यह अनर्थकारी होगा कि वह उपभोक्ताओं की माँग का सृजन करे और भरोसा रखे कि यह माँग उस तक मध्यवर्ती बिचौलियों के मार्फत स्वतः पहुँच जाएगी। यदि वह या थोक विक्रेता खुदरा व्यापारी को माल रखने के लिए मनवा कर उससे सम्बन्ध स्थापित न करे, तो

उसके विज्ञापन से प्रेरित होकर क्रेता पदार्थ के बारे में पूछताछ करेंगे तो पाएंगे कि माल नही है। तब यह व्यय व्यर्थ गया, क्योंकि खरीदने का आवेग या तो बिखर जाता है या उत्पाद के दूसरे प्रकार की ओर मुड जाता है।

खुदरा व्यापारी और थोक विक्रेता से विनिर्माता के सम्बन्ध आप से आप पैदा नही होते। यह सच है कि यदि कोई खुदरा व्यापारी देखता है कि उसके ग्राहक एक निश्चित उत्पाद की माँग बार-बार करते हैं और उसे "ठीक उतनी ही अच्छी" किसी अन्य चीज को, जो उसके पास है, बेचने में कठिनाई होती है, तो वह यह जानने का प्रयास कर सकता है कि उस पदार्थ को कहाँ और कैसे प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु ऐसा बिरले ही होता है। जो विनिर्माता मध्यवर्ती सम्बन्धों को इस प्रकार उन्हीं पर छोड़ देता है वह पाएगा कि माँग का केवल एक छोटा भाग छनकर उस तक पहुँचता है। स्पष्टत: यह उसके हित में है कि वह खुदरा व्यापारी और आढ़तिये के लिए अपने माल को प्राप्त करना आसान बनाए, न कि कठिन। आवश्यक है कि व्यापारियों को न केवल माल रखने के लिए बल्कि उसकी ओर से बिक्री का प्रयास करने के लिए ढूँढ़ा जाना चाहिए, सूचित किया जाना चाहिए और मनवाया जाना चाहिए।

तथाकथित "सुविधा" पदार्थों[5] की स्थिति में, जो अधिकतम संख्या मे फुटकर (खुदरा) निकासों की अपेक्षा करते है, आढ़तिये का सेल्समैन विनिर्माता के लिए एक अपरिहार्य काम करता है। उसे इलाके (प्रदेश) का प्रत्यक्ष ज्ञान है और उसके बिना कई व्यापारी छूट जाते। इन व्यापारियों से केवल सम्पर्क करने की लागत जिस माँग पर उनका नियंत्रण है, उसे प्राप्त करने की लागत है।

आढ़तिये, थोक विक्रेता और खुदरा विक्रेता को माल रखने के लिए मनवाने के हेतु और लागत लगानी पड़ती है। उन्हें चारों ओर से प्रस्ताव छेंके रहते है, और उन्हें चुनना पड़ता है। व्यापारी सब चीजें नही भर (रख) सकता, और जिस प्रकार उपभोक्ता अपनी आय से सर्वाधिक तुष्टि पाने के लिए उसका अनुभाजन करने की कोशिश करता है, ठीक वैसे ही, अधिकतम लाभ प्राप्त करने के हेतु, अपनी पूँजी फँसाने में और अपनी सुविधाए बेचने में वह विवेचन करने की कोशिश करता है। उसे माल को लाभकारी कीमत पर बेचने का जोखिम उठाना पड़ता है। उपभोक्ता के लिए किया गया विज्ञापन अभियान या उसका वादा खुदरा व्यापारी के लिए शक्तिशाली कारण है; खुदरा व्यापारी के लिए किया गया सक्रिय विक्रयण प्रयास आढ़तिये को अपनी ओर करने में सहायक होता है। दोनों को यकीन दिलाना आवश्यक है कि उत्पाद सफल होने वाला है, और यह निपुण चित्ताकर्षण की सम्पूर्ण तकनीक की अपेक्षा कर सकता है जो उपभोक्ता के लिए इतनी आवश्यक है। लाभ की गुजाइश एक महत्वपूर्ण तथ्य है। वह कम से कम उतना तो होना ही चाहिए, संभवत: उससे किंचित् अधिक होना चाहिए, जितना समरूप उत्पादों में मिलता है।

व्यापारी को इसके लिए भी अवश्य मनाना चाहिए कि वह पदार्थ को बेचने में प्रयास करे। उपभोक्ता की माँग को दिशा देने में खुदरा व्यापारी का स्थान, उस

के प्रत्यक्ष सम्पर्क और व्यक्तिगत प्रभाव के कारण से, घातनीतिक (strategic) महत्व का है जो विज्ञापन के माध्यम से विनिर्माता को प्राप्त स्थान से कहीं उत्कृष्ट है। वह पर्याप्त मात्रा में अपने बाजार या इलाके के व्यापार को नियन्त्रित करता है। यही बात आढ़तिये और थोक विक्रेता के बारे में कही जा सकती है। विशेष प्रलोभन के न होने पर इनमें से कोई किसी विशेष छाप को केवल तभी बेचता है जब उसका आग्रह किया जाता है, और बाकी माँग को अन्य छापों की ओर मोड़ देता है, जिन पर उसके लाभ की गुजाइश अधिक है या जिन्हें वह उत्कृष्ट समझता है। इसे "प्रतिस्थापन" कहा जाता है। हो सकता है कि वह अन्य छापों को केवल तब अधिमान दे जब किसी को निर्दिष्ट न किया गया हो या जब उसकी राय माँगी गई हो। दूसरे छोर पर, हो सकता है कि वह, जब कभी संभव हो, अन्य छापों का विचाराधीन छाप से "प्रतिस्थापन" कर दे। "प्रतिस्थापन" के प्रश्न के अलावा, व्यापारी उत्पाद को बेचने में किसी भी मात्रा में प्रयास कर सकते है, जो उदासीनता की निम्नतम मात्रा से निपुण और आक्रामक विक्रयकारिता की उच्चतम मात्रा तक हो सकता है। विनिर्माता को उन्हें अपने पक्ष में करने के बारे में उतना ही मतर्क रहना पड़ता है जितना, प्रत्यक्ष विज्ञापन द्वारा, उपभोक्ताओं को। उत्पाद की कीमत को विशेष करके इतना ऊँचा अवश्य होना चाहिए कि वितरण के निकासों पर नियन्त्रण करने वालों को यथेष्ट रूप से, बल्कि उदारता से, पारितोषिक दे। इन "गुजाइशों" का एक बड़ा भाग माँग सुनिश्चित करने की लागत (वित्रयण की लागत) समझा जाना चाहिए, न कि उसे सतुष्ट करने की (उत्पादन की लागत)। बहुधा किंचित् उच्च "गुजाइश" प्रदान करना सर्वाधिक प्रभावकारी प्रकार का विज्ञापन होता है।

कुछ प्रकार के पदार्थो के लिए, आढ़तियों या खुदरा व्यापारियों को "अनन्य एजेसियो" के रूप मे स्वीकार करके कीमतो और पण्यन (marketing) नीतियों पर वांछित नियन्त्रण सबसे अच्छी तरह प्राप्त किया जा सकता है। "विशेषताओं" के क्षेत्र में यह कार्यप्रणाली बहुत प्रचलित है—जैसे मोटरगाडियाँ, टायर, ग्रामॉफोन, पुरुषों के वस्त्र और जूते, गहने, ट्रैक्टर और खेती की मशीनें, पियानो, वैक्यूम क्लीनर, उच्च कोटि की कैडी, आदि। विनिर्माता अपने उत्पाद का एकाधिकार शहर के किसी एक विक्रेता को या बड़े शहर के विभिन्न भागों मे अनेक विक्रेताओं के दे देता है। यह व्यापारी को अन्य की प्रतियोगिता से, जो कीमत मे कटौती करते है, संपूर्णतया सरक्षित कर देता है, और उसे आश्वासन दिलाता है कि इलाके में जो भी विक्रय प्रयास वह करेगा वह सब उसी के हित मे परिणत होगा, और उसमें किसी दूसरे का हिस्सा नही होगा। कीमत विनिर्माता द्वारा स्थिर की जाती है, और वह एजेन्ट को उसके द्वारा किए गए विक्रय प्रयास के लिए उदार आढ़त सम्मिलित करती है।

वाछित आक्रामकता और नियन्त्रण प्राप्त करने की एक अन्य रीति है : विनिर्माता स्वयं अपने वितरण निकासों का संचालन करे। बिक्री एजेंसियाँ या शाखाएँ प्रत्येक इलाके मे खुदरा व्यापारियों से सम्पर्क स्थापित करती है और मोटे तौर पर आढ़तिये

के कार्य करती हैं। जब इसका विस्तार खुदरा व्यापार में किया जाता है, तो दुकानों की शृंखलाएँ एक विस्तृत संगठन बनाती है, जो केवल विनिर्माता के उत्पादों को रखती हैं, और जो बाजार पर पूर्वाधिकार करने और उसे प्रतियोगियों के लिए बन्द करने की प्रभावकारी युक्ति के द्वारा उसे बाजार का आश्वासन दिलाती हैं। विपणन में इस प्रकार के एकीकरण का विकास विपरीत दिशा से भी हुआ है। खुदरा व्यापारी अपनी क्रियाओं को निर्माण के क्षेत्र तक बढ़ा लेते है। बहुधा ऐसा अपने लिए उत्पादन कराने के लिए विनिर्माता प्राप्त कर के और माल पर आदेशानुसार छाप लगवा कर किया जाता है। ये सब एकीकरण प्रतियोगियों द्वारा वितरण पर अधिकार प्राप्त करने के रास्ते में रुकावटें खड़ी कर देते हैं, यदि वे भी अपने को समेकित नहीं कर लेते। परिणाम-स्वरूप, वितरण संगठन की बहुत द्विरावृत्ति होती है, और लाभ की उच्चतर गुंजाइश रखी जाती है जो क्षेत्र में अधिक व्यक्तियों को आकर्षित करती है : इससे और अधिक अपव्यय होता है, जो इस तथ्य के कारण बारीकी से सदा छिपा रहता है कि, संख्याओं में वृद्धि के कारण, प्रति व्यवसायी या प्रति व्यवसाय-इकाई औसत लाभ जैसे के तैसे बने रहते हैं। अन्तिम विश्लेषण में, उपभोक्ताओं द्वारा उठाई जाने वाली ये लागतें विक्रय लागत (उसकी माँग में **परिवर्तन** करने की लागत) में अवश्य गिनी जानी चाहिए, न कि उत्पादन लागत (उसकी माँग को सन्तुष्ट करने की लागत) मे।

2. विक्रय लागत और उत्पादन लागत में भेद

अब हम इन दो प्रकार की लागतों में अधिक सूक्ष्म भेद करेंगे। उत्पादन लागत में वे सब व्यय सम्मिलित हैं जो पण्य या सेवा को प्रस्तुत करने, उसे क्रेता तक पहुँचाने, और उसकी आवश्यकता को सन्तुष्ट करने के लिए तैयार करके उसके हाथ में देने के हेतु अवश्य किए जाने चाहिए। विक्रयण की लागत मे वे व्यय सम्मिलित है जो उत्पाद के लिए माँग को, या बाजार को, सुनिश्चित करने के हेतु किए जाते है। पहले प्रकार की लागतें माँग की सन्तुष्टि के हेतु तुष्टिगुणों का सृजन करती है; दूसरे प्रकार की लागतें स्वयं माँग का सृजन और विवर्तन करती है। एक सरल कसौटी यह है कि किसी दिए हुए उत्पाद के विनिर्माण और विक्रय पर लगाई गई सब लागतों में वे जो उसके माँग वक्र को बदल देती है, विक्रय लागत हैं; और वे जो उसे नही बदलती, उत्पादन लागत है।

उत्पादन लागत वही नही है जो विनिर्माता की कीमत है, न ही विक्रय लागत वही है जो इसमें और अन्तिम फुटकर भाव में अन्तर है। पण्य के फैक्टरी से निकलने के बाद लगाई कई लागतें उत्पादन लागतें हैं—जैसे परिवहन, चढ़ाने उतारने, संग्रहण और वितरण (सुपुर्दगी) की लागतें, जो पदार्थ के तुष्टिगुण में वृद्धि करती है, अर्थात् उसे आवश्यकताओ को तुष्ट करने मे अधिक समर्थ बनाती है।[6] इसी प्रकार, थोक विक्रेता के लिए विनिर्माता की कीमत मे वे खर्चे सम्मिलित किए जाते हैं जिन्हें वह

"सम्बन्ध" बनाने और निकास प्राप्त करने के लिए करता है एवं इसी प्रकार के वे खर्चे भी जो उसे कच्चा माल और सामान बेचने वाले उत्पादकों ने किए थे, और जिनके विक्रयण व्यय को वह वसूल लेता है। ये दो प्रकार की लागतें कीमत प्रणाली में सर्वत्र परस्पर गुँथी हुई रहती है, जिसके कारण किसी भी बिन्दु पर, जैसे विनिर्माण के पूरा होने पर, यह नही कहा जा सकता कि एक समाप्त हो गई है और दूसरी शुरू होती है।

लेकिन, पदार्थ के खुदरा व्यापारी या सेल्समैन से लेकर उसकी अस्पष्ट उत्पत्ति (मूल) तक, उसके उत्पादन या विक्रयण से जिन का कोई भी सम्बन्ध रहा है उन सब के खर्च पर अनुक्रमिक रूप से विचार कर के उपभोक्ता के लिए पदार्थ की सम्पूर्ण लागत का उसके दो भागों में विश्लेषण किया जा सकता है। कई लागतें पूर्णतया एक या दूसरे वर्ग में तुरन्त रखी जा सकती है। इस प्रकार की विक्रय लागतें निम्नलिखित है : अपने अनेक रूपों मे विज्ञापन, सेल्समैन के वेतन और विक्रय विभागों और विक्रय एजेसियों के खर्चे (उन स्थितियों को छोड़कर जहाँ वे वास्तव मे माल का क्रय-विक्रय करती है), दुकान में सजावट (विन्यास), और सब प्रकार के प्रदर्शन और सजावट। अन्य स्थितियों में व्यय मे दोनों सम्मिलित रहती है, और जिस मात्रा तक वह एक कार्य से या दूसरे से सरोकार रखता है, उसके अनुसार कुल लागत अवश्य विभाजित की जानी चाहिए। उत्पाद के "वितरण" में लगे हुए लोगों पर खर्चे का अधिकांश इस प्रकार का है, और अधिकांश लाभ मिली-जुली आय है। जिस मात्रा तक व्यवसायी अपने संयंत्र के कुशल संचालन से सम्बन्ध रखता है, वह जिस न्यूनतम लाभ की अपेक्षा करता है, वह उत्पादन लागत है; जिस मात्रा तक वह अपना समय और शक्ति अपने "सम्बन्धो" को बनाने मे लगाता है, वह विक्रयण की लागत है।

एक या दो प्रकार की लागतें **प्रतीयमानतः** माँग बढ़ाती है, परन्तु वस्तुतः उत्पादन की लागतें है। एक उदाहरण परिवहन है, क्योंकि यदि माल बाजार तक नहीं पहुँचाया जाए तो कुछ भी नही बेचा जा सकता। इस व्यय पर माँग प्राप्त करने वाले व्यय के रूप में सोचा जा सकता है, क्योंकि **फैक्टरी पर** माँग शून्य है। लेकिन, यह दृष्टिकोण मिथ्या लगता है, यदि हम मान लें कि उपभोक्ता सीधे विनिर्माता को माल भेजने का आदेश देता है और भाड़ा खुद अदा करता है, जैसा कि डाक-व्यापार में होता है। फैक्टरी पर माँग शून्य नहीं है—वह उस कीमत पर है जो सुपुर्दगी कीमत ऋण परिवहन लागत के बराबर है। चाहे क्रेता परिवहन व्यय को प्रत्यक्षतः अदा करे या उसे पदार्थ की कीमत में परोक्ष रूप से अदा करे, यह सदा सच है। प्रत्येक स्थिति में माँग सदा विद्यमान थी, बाजार में भी और फैक्टरी पर भी। यह तथ्य कि यदि यह लागत न लगाई जाती तो वह सन्तुष्ट नहीं हो पाती, यह अर्थ नहीं रखता कि इस लागत ने माँग पैदा की। यही बात उत्पाद बनाने वाले सामान और श्रम के बारे में—और सामान्यतया उत्पादन लागत के बारे में—भी कही जा सकती है।

दूसरी पेचीदा स्थिति स्थान-अधिशेष की है। ऐसा प्रतीत होता है किसी बड़ी दुकान द्वारा दिया गया किराया अधिक परिमाण में लेन-देन करने के हेतु दिया जाता

है जो मुख्य बाजार में स्थिति के कारण होता है, और इसलिए उसी प्रकार का व्यय है जैसा विज्ञापन पर व्यय, जो इसी अभिप्राय से किया जाता है। तिस पर भी, माँग को अधिक ठीक-ठीक पूरा करने की दिशा में किया गया कोई व्यय, जैसे पदार्थ के गुण को सुधारने के लिए किया गया व्यय, यदि वह सफल होता है तो, बिक्री को बढा देगा। स्थिति के लिए कीमत देने में, दुकानदार अधिक सहूलियत प्रदान करके माँग को केवल अधिक ठीक-ठीक पूरा कर रहा है।[7] वह अपने माल को माँग के अनुकूल कर रहा है, और उसे बदलने की कोशिश किसी प्रकार से नहीं कर रहा है। इसके विपरीत, शहर के छोर में स्थित विक्रेता, जो लोगों से अपनी दूकान से सामान खरीदने का आग्रह करने वाला विज्ञापन देता है, क्योकि वह "ऊँचे किराये वाले इलाके के बाहर" है, अपने को नहीं बल्कि अपने ग्राहकों को अनुकूल कर रहा है। वह उन्हे, अधिक नहीं, कम सहूलियत दे रहा है, और उनका ध्यान इससे पलटने की कोशिश कर रहा है। हम इन दो प्रकार की लागतों में भेद को बताने के एक अन्य ढग पर पहुँच जाते है : वे लागतें जो उत्पाद को माँग के अनुकूल करने के लिए लगाई जाती है, उत्पादन लागतें है; वे जो माँग को उत्पाद के अनुकूल करने के लिए लगाई जाती है, विक्रय लागतें है।

3. उक्त भेद की सार्थकता

मूल्य सिद्धान्त के लिए इन दो प्रकार की लागतों का भेद उतना ही मूलभूत है जितना माँग और पूर्ति का भेद, और वह इससे आवश्यक रूप से उत्पन्न होता है। जिस उत्पाद पर विक्रय की लागत खर्च की जाती है, उसकी माँग को वह बढा देती है; उत्पादन की लागत पूर्ति बढ़ाती है। ऐसा प्रतीत होगा कि इन दोनों को मिलाने से अधिक आसान और सुस्पष्ट गलती नहीं हो सकती, परन्तु अर्थ-सिद्धान्त ने यही किया है; उसने उद्यमकर्ता के सब व्यय "उत्पादन की लागत" में गिने है। शायद यह न कहना अधिक यथार्थ होगा कि वे मिला दिये गए है (क्योंकि उनमें कभी भेद नही किया गया), बल्कि यह कहे कि विक्रय लागत की पूर्णतः उपेक्षा की गई है। माँग को सदा ऐसी चीज माना गया है जो पहले से ही विद्यमान है, और जो लागतें लगाई जाती है वे उसे पूरा करने के लिए उत्पादन की है। पर इसे निस्सन्देह स्वीकार किया जाता है कि आवश्यकताए बदल सकती है, और यह कि यह माँग वक्र मे परिवर्तन सन्निहित करता है। परन्तु प्रतीत होता है कि जो व्यय उन्हें बदलता है उसकी समस्या पर सैद्धान्तिक रूप से विचार करने की कल्पना तक कभी नही की गई, उसका समाधान करना तो दूर रहा।[8]

एकाधिकार और प्रतियोगिता सिद्धान्त का संश्लेषण करने में विफलता इसकी आंशिक व्याख्या है। प्रतियोगिता सिद्धान्त में विक्रय लागतों की उपेक्षा करना बहुत स्वाभाविक है, क्योंकि वे शुद्ध प्रतियोगिता की कल्पना के विरुद्ध है; इसी प्रकार,

प्रतीत होता है कि एकाधिकार सिद्धान्त में भी उनका कोई स्थान नही है, क्योंकि एकाधिकारी का सम्पूर्ण बाजार पर अधिकार है, और प्रकट है कि कोई ऐसा नही है जिस पर वह अतिक्रमण कर सके। इसकी व्याख्या इस तथ्य से भी होती है कि आर्थिक सिद्धान्त ने अपने को हाल के वर्षो में हुए परिवर्तनों के अनुकूल अभी नहीं किया है। माँग का सृजन करके लाभार्जन की विशाल संभावनाओ का अधिकाधिक अनुभव किया गया है, उनका लाभ उठाने की तकनीकी रीतियों को सुधारा गया है, और व्यावसायिक कार्य के रूप में विक्रयण प्रमुख भाग लेने लगा है, और उत्पादन के समकक्ष हो गया है। वस्तुतः, आज का प्रतिरूपी व्यवसायी उत्पादन से अधिक विक्रयण के बारे में चिन्तित रहता है। इस बीच, सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र में उसे केवल उत्पादक समझा जाता रहा है, जो पहले से ही विद्यमान माँग का लाभ उठाता है जिसकी लागत कुछ नही है। शुद्ध प्रतियोगिता का सिद्धान्त मौन रूप से कल्पना कर लेता है कि सब लागतें पदार्थो की पूर्ति बढाने के उद्देश्य से लगाई जाती है, और यह कि पदार्थ बिना किसी प्रयास या व्यय के बेचे जाते है। विक्रय लागत की उपेक्षा करने के कारण प्रतियोगिता सिद्धान्त आर्थिक जीवन के तथ्यों की व्याख्या करने के लिए स्पष्टतः अपर्याप्त हो जाता है।

विक्रयण व्यय शुद्ध प्रतियोगिता की कल्पना के असगत क्यों है, इसको व्याख्या मे शुद्ध प्रतियोगिता की दोनों अपेक्षाएँ—मानकित उत्पाद और बहुत बड़ी सख्या में प्रतियोगी—भाग लेती है। उत्पाद के मानकित होने के कारण, एक विक्रेता के माल को दूसरे से भिन्न करने का कोई आधार नही है। इसलिए कोई भी विक्रेता विज्ञापन द्वारा अपने प्रतियोगियों के व्यापार को नही छीन सकता; प्रत्युत, उसके और अन्य के माल मे कोई भेद न होने के कारण, वह अपने माल की बिक्री बढाने या घटाने के साथ-साथ उनकी बिक्री को भी समान मात्रा मे बढ़ाने या घटाने को बाध्य होगा। अब, चूंकि प्रतियोगियों की सख्या बहुत बड़ी है, कोई एक विक्रेता सम्पूर्ण स्थिति में तदनुरूप अत्यल्प कारक है। उसके लिए बहुत बड़े विज्ञापन व्यय का कुल माँग पर बहुत कम प्रभाव पडेगा, और उसकी माँग मे वृद्धि कुल वृद्धि का नगण्य हिस्सा होगी। जहाँ भी शुद्ध प्रतियोगिता की दशाएँ मिलती है, तथ्य इस तर्क का स्पष्टत. समर्थन करते है। अकेला गेहूँ उत्पादक या सन्तरा उत्पादक अपने उत्पाद का उपभोग बढवाने के उद्देश्य से विज्ञापन नही करता। यदि यहाँ कोई भी विज्ञापन होता है तो केवल सब उत्पादको के सहयोग से, और यह सहयोग एकाधिकारिक प्रतियोगिता की दशाएँ ले आता है, जिसमें विक्रेताओं का पूरा समूह एक होकर दूसरे पदार्थों के विक्रेताओं से बाजार के लिए प्रतियोगिता करता है।[9] इसी बात को दूसरे ढंग से यों कह सकते है कि शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत, क्योकि किसी एक विक्रेता का बाजार अपरिमित रूप से बडा है, उसके द्वारा विज्ञापन का कोई प्रयोजन नही है, क्योंकि वह उसके बिना भी जितना चाहता है बेच सकता है।[10]

शुद्ध प्रतियोगिता के सिद्धान्त को उसके उचित क्षेत्र से बाहर लागू करने में विक्रय लागत को निबटाना एक पेचीदा समस्या है। सिद्धान्त को सुसंगत बनाने के लिए,

उन्हें वर्जित अवश्य किया जाना चाहिए। फिर भी, इसके विरुद्ध दो आपत्तियाँ हैं। पहली, इससे निष्कर्ष निकलता है कि, विक्रयण के लिए कोई छूट दिए बिना कीमतें उत्पादन लागतों की ओर प्रवृत्त होती है, जो वे स्पष्टतः नही होती, क्योंकि यदि उद्यमकर्ता को व्यवसाय में रहना है तो विक्रय लागत भी अवश्य पूरी होनी चाहिए। दूसरी, इससे निष्कर्ष निकलता है कि कीमतों मे उत्पादन के दक्षतम पैमाने पर लागत के सन्निकट होने की प्रवृत्ति होती है, क्योंकि इस पैमाने की प्राप्ति के मार्ग में जो भी रुकावटें है वे विक्रयण की कठिनाइयों के न होने के कारण दूर हो जाती हैं। इस प्रकार शुद्ध प्रतियोगिता का सिद्धान्त एक ऐसा मानक देता है जो एकाधिकारिक प्रतियोगिता द्वारा निर्धारित मानक से **दो कदम** नीचे है—विक्रयण की लागत छोड़ दी जाती है, और उत्पादन की लागत कम बतलाई जाती है।

दूसरी ओर (यदि शुद्ध प्रतियोगिया के सिद्धान्त को सामान्यतया लागू करना है तो), सिद्धान्त की आन्तरिक सुसंगति का तथ्यों से सुसंगति के पक्ष में त्याग किया जा सकता है, और उत्पादन लागत के साथ-साथ विक्रय लागत को भी वक्रों में सम्मिलित किया जा सकता है। विक्रय लागत के इस निपटारे के पक्ष मे तर्क किया जा सकता है कि (1) क्योंकि सब लागतें एक समष्टि बनाती है, और यदि उद्यमकर्ता को व्यवसाय में रहना है तो उन्हें अवश्य पूरा होना चाहिए, इसलिए वे सब एक-सी है, और यह कि (2) यद्यपि विक्रयण की लागत पदार्थ नही बल्कि माँग पैदा करती है, वह अन्य उत्पादकों की माँग घटाकर एक उत्पादक के लिए ऐसा करती है, जिसके परिणामस्वरूप कुल माँग, जो कीमत के निर्धारण में एक महत्वपूर्ण शक्ति है, वही रहती है। यदि शुद्ध प्रतियोगिता के विशेष ढंग से सोचा जाए तो बहुत स्वाभाविक है कि इस दूसरे निष्कर्ष पर पहुँचा जाएगा। परन्तु विज्ञापन को स्वीकृति न देने वाले सिद्धान्त पर उसके परिणामों का वर्णन करने के बारे में भरोसा करना कठिन है। सच्चाई तो यह है कि विज्ञापन का प्रभाव केवल उन्ही उपभोक्ताओं तक सीमित नही रहता जो उसी सामान्य वर्ग के पदार्थ के अन्य प्रकारों का उपभोग करते हैं। यह बिल्कुल सच नही है कि उत्पाद के उसी सामान्य वर्ग के अन्य प्रकारों का उपभोग करने वाले उपभोक्ताओं की ओर विज्ञापन को उन्मुख करने पर कम प्रतिरोध तोड़ना पड़ता है। बहुधा, जिस छाप का वह उपयोग कर रहा है उससे भली भाँति सन्तुष्ट उपभोक्ता को उसे छोड़ देने और किसी नयी चीज का उपयोग करने के लिए फुसलाना आसान नही होता। जिसके पास दूसरे प्रकार की कार हो उसकी अपेक्षा जिसके पास कभी कार न रही हो उसके हाथ शैवरलैट या फोर्ड गाड़ी बेचना हो सकता है अधिक आसान हो। इसके अतिरिक्त, किसी उत्पाद के नये उपयोग सुझाए जा सकते हैं जो सामान्यतया अधिक उपभोग को प्रोत्साहित करेंगे, और युक्तिशील सुझाव के द्वारा वृद्धि के बड़े भाग को विज्ञापित प्रकार की ओर आकर्षित किया जा सकता है। सर्वोत्तम नीति "संभाव्य" बाजार के स्वरूप पर निर्भर करेगी। वस्तुतः, यह कल्पनीय है कि विज्ञापक का बाजार उसके निकटतम प्रतियोगियों को क्षति पहुँचाकर पूर्णतया बढ़ाया जाए।

परन्तु यह कही अधिक संभाव्य है कि उनको बिल्कुल क्षति न पहुँचाकर या अंशत: पहुँचाकर वृद्धि हो। यह एक सुपरिचित परिणाम है कि विक्रेताओं को उनके निकटतम प्रतिद्वन्द्वियों के विज्ञापन से **लाभ मिलता है**। ये बातें दूसरे तर्क को बहुत कुछ शक्तिहीन कर देती है।

अब हम पहले तर्क पर विचार करेंगे। यह सच है कि, यदि उत्पादक को व्यवसाय में रहना है तो, उसकी विक्रय एवं उत्पादन लागत, दीर्घ काल में, अवश्य पूरी होनी चाहिए। लागत वक्र में दोनों अवश्य सम्मिलित की जानी चाहिए, और अगले अध्याय में दोनों इस प्रकार सम्मिलित की गई है, जहाँ विक्रय लागत को सम्मिलित करने के लिए हमने अपने सिद्धान्त को और विस्तृत किया है। शुद्ध प्रतियोगिता के सिद्धान्त के अन्तर्गत ऐसा न किए जा सकने का कारण यह है कि जिस विक्रय लागत को सम्मिलित किया जाना चाहिए उसकी राशि के बारे में कोई कसौटी नहीं है (अर्थात्, सिवाय इस व्यक्त कसौटी के जो बताती है कि वह शून्य होनी चाहिए)। यह सिद्धान्त इस प्रश्न का सुस्पष्ट उत्तर देता है कि किस मात्रा तक कोई एक विक्रेता और किस मात्रा तक सब विक्रेता साथ-साथ **उत्पादन** पर खर्च बढाएंगे। परन्तु किस मात्रा तक कोई एक विक्रेता और किस मात्रा तक वे सब साथ-साथ अपने **विक्रयण** पर व्यय को बढ़ाएगे ? शुद्ध प्रतियोगिता के सिद्धान्त मे विक्रय लागत के बाहरी होने के कारण, वह इन प्रश्नों का उत्तर देने की कोई तकनीक नही देता। अगले अध्याय में इन प्रश्नों को एकाधिकारिक प्रतियोगिता की दशाओं के साथ सम्बन्धित करके उनका उत्तर देने का प्रयत्न किया गया है।

अध्याय 7

विक्रय लागत और मूल्य का सिद्धान्त

1. विक्रय लागत का वक्र

विज्ञापन[1] उत्पाद की "माँग बढाता है," अर्थात्, विक्रेता जो कीमत तय करता है उस पर जितना विज्ञापन के बिना बेच सकता उससे अधिक बेचता है। लेखाचित्रीय रूप में, इसका तात्पर्य यह है कि उसके उत्पाद का माँग वक्र ऊपर को और दाहिनी ओर हट जाता है। प्रत्येक कीमत पर पण्य की अधिक राशि बेची जा सकती है, प्रत्येक राशि की सीमान्त माँग कीमत (वह कीमत जिस पर ठीक यह राशि बाजार से उठा ली जाएगी) उच्चतर होती है।[2]

परिणाम का परिमाण खर्च की गई राशि पर निर्भर करता है और यह प्रश्न तुरन्त उठता है कि क्या विज्ञापन व्यय वर्धमान, स्थिर, या ह्रासमान प्रतिफल के अधीन है या नही। व्यय के बढने पर बिक्री मे होने वाली आनुपातिक वृद्धि विज्ञापन-व्यय की आनुपातिक वृद्धि से अधिक है, या उसके बराबर है, या उससे कम है? स्पष्ट है कि इस प्रकार की समस्या को प्रस्तुत करना विक्रयण व्यय मे परिवर्तन के समय कीमत को सर्वत्र स्थिर रखना सन्निहित करता है। बिक्री कीमत और विज्ञापन दोनों का फलन है, और दूसरे मे परिवर्तन होने पर उसमे परिवर्तन के स्वरूप को पहले को स्थिर रखकर ही केवल जाना जा सकता है। लेखाचित्रीय रूप मे, इसका अर्थ यह है कि, यद्यपि विज्ञापन **सब** कीमतों पर माँग बढाता है (पूरा वक्र दाहिनी ओर हट जाता है), मात्रात्मक रूप से उसके प्रभावों को केवल एक कीमत चुनकर और उस कीमत पर माँग में वृद्धि को नाप कर ही नापा जा सकता है। ऐसा प्रतीत हो सकता है कि यदि सब कीमतों पर विज्ञापन का समान आनुपातिक प्रभाव नही होता (यदि माँग वक्र के सब बिन्दुओं पर व्यय की एक निश्चित राशि माँग की राशि को उसी अंश से, मान लो कि दसवें हिस्से से, नही बढाती), तो किसी सीमा तक यह महत्वपूर्ण है कि विचाराधीन समस्या में क्या कीमत चुनी जाती है। उदाहरणार्थ, हो सकता है कि किसी निश्चित राशि का व्यय करने पर एक कीमत पर वर्धमान प्रतिफल मिलें और दूसरी पर ह्रासमान। बहरहाल, इस तर्क के सत्य के तत्व को, कार्यप्रणाली को अधिक जटिल बनाए बिना, ध्यान में रखा जा सकता है। मान लो कि यह पाया गया कि, एक विशेष कीमत पर, विज्ञापन पर बढ़ा हुआ व्यय कुछ समय तक वर्धमान प्रतिफल देता है और उसके बाद अनिश्चित काल तक ह्रासमान प्रतिफल देता है। यह मानने के पक्ष में सब कारण है कि उत्पाद के माँग वक्र पर किसी अन्य कीमत को लेने पर इन्ही अवस्थाओं से गुजरना होगा, यद्यपि वृद्धि या ह्रास की दर और जिस बिन्दु से

ह्रासमान प्रतिफल शुरू होता है, वे विभिन्न कीमतों पर भिन्न हो सकते है। स्मरण रहे, हमारी वर्तमान समस्या किसी दी हुई कीमत पर प्रतिफल का व्यवहार है, और इस प्रयोजन के लिए यह महत्वहीन प्रतीत होता है कि क्या कीमत चुनी जाती है। अन्त मे, यह याद रखना चाहिए कि, सम्प्रति, हमारा सम्बन्ध बिक्री के परिमाण से है, न कि मौद्रिक आय से, और न ही लाभ से।

उत्पादन लागत की भाँति, विक्रय लागत का भी अनेक आर्थिक कारकों पर व्यय में अन्ततः विश्लेषण किया जा सकता है, जैसे भूमि, श्रम, और पूँजी। ये कारक विक्रयण के उद्देश्य से विभिन्न अनुपातों मे स्पष्टतः संयुक्त किए जा सकते है। उदाहरणार्थ, पत्रिका-विज्ञापन के लिए अलग रखी गई राशि को खर्च करने में हो सकता है कि विज्ञापन-लेखक या कलाकार की विशेषज्ञता (प्रवीणता) पर अधिक और पत्रिका मे स्थान पर कम खर्च किया जाए, या इसका उलटा किया जाए। खिड़की की सजावट में खिड़कियो को गहरा बनाकर स्थान (भूमि) की मात्रा बदली जा सकती है; और तकनीकी विशेषज्ञों के वेतनों पर, सामग्री पर, और साज-सामान पर व्यय को विस्तृत परिसर मे बदला जा सकता है। यदि नमूने बँटवाने हों, तो वे बड़े भी हो सकते है और छोटे भी, या वे विभिन्न दक्षता के साथ बँटवाए जा सकते है, जो इस पर निर्भर करती है कि अभियान के आयोजन और कार्यान्वयन मे लगाए गए परिश्रम पर कितना खर्च किया गया है। किसी दिए हुए कुल व्यय के लिए कारको का दक्षतम सयोजन सदा ढूँढा जाएगा, और उसके निर्धारण को नियत्रित करने वाले सामान्य नियम बिक्री-सगठन के लिए वैसे ही होगे, जैसे उत्पादन-सगठन के लिए।[3] प्रत्येक (विभाज्य) कारक का उपयोग सामान्यतया उस कारक के लिए ह्रासमान प्रतिफल की अवस्था में किया जाएगा; अर्थात्, ऐसी दशाओं के अन्तर्गत कि (अन्य कारकों की मात्रा स्थिर रखते हुए) केवल उस पर व्यय बढ़ाने पर बिक्री मे होने वाली आनुपातिक वृद्धि व्यय मे आनुपातिक वृद्धि से कम हो। इस अवस्था के भीतर, कम खर्चीले कारकों की अपेक्षा अधिक खर्चीले कारकों का मितोपयोजन किया जाएगा; और, कारको की सापेक्ष कीमते दी हुई होने पर, एक सयोजन ऐसा होगा जो एक दिए गए कुल व्यय का सर्वाधिक प्रभावकारी नियोजन बताएगा। जहाँ तक आदर्श अनुपात का सम्बन्ध है, व्यवसायी की गणनाओं का लक्ष्य इस सयोजन को खोजना होगा।

सर्वाधिक प्रभावकारी सयोजन कोई निरपेक्ष स्थिति (thing) नही है। प्रथमतः, वह बदलता है क्योंकि उत्पाद का और उसके सभाव्य बाजार का स्वरूप विज्ञापन के अपेक्षित रूप को नियत करता है। इस प्रकार हो सकता है कि छोटा खुदरा व्यापारी खिड़की की सजावट, दुकान के भीतर माल के आकर्षक विन्यास, और जो उसकी दुकान मे आते है उन पर व्यक्तिगत विक्रय प्रयास का प्रयोग करने तक सीमित रहे। एक बड़ी दुकान भिन्न प्रकार की खिडकी-सजावट करेगी, और अपने सेल्समैनों से भिन्न रीतियों की माँग करेगी। वह बड़े पैमाने पर नये माध्यमों का भी उपयोग करेगी, जैसे समाचारपत्रों में स्थान और विशेष सस्ती बिक्री की युक्ति।

पुनः, कुछ प्रकार के घरेलू सामान के लिए प्रदर्शन की आवश्यकता होती है, जो घर-घर अनुयाचन करके शायद अधिक अच्छी तरह होता है। जिन विनिर्मित पदार्थों के लिए "राष्ट्रीय बाजार" का सृजन किया जा सकता है वे प्रायः पत्रिका विज्ञापन और वितरक एजेंसियों तथा बिक्रीकारों के सुविस्तृत संगठन की अपेक्षा करती हैं। इनमें से प्रत्येक की और विक्रयण व्यय के अन्य तरीकों की तकनीकी अपेक्षाए बडी मात्रा में नियत करती है कि कारकों के किस प्रकार का और किस अनुपात में उपयोग किया जाएगा।

द्वितीयतः, कारकों का सर्वाधिक प्रभावकारी संयोजन कुल व्यय के परिमाण के अनुसार बदलता है। यह अंशतः इसलिए सच है कि क्योंकि विज्ञापन के काम में लाए जाने वाले माध्यम या माध्यमों का स्वरूप खर्च की जाने वाली राशि पर, अर्थात् सम्भाव्य बाजार के आकार पर, निर्भर करता है। हम देख चुके हैं कि बड़ी दुकान की अपेक्षा छोटे खुदरा व्यापारी की सीमाएं अधिक होती है। इसी प्रकार, छोटे विनिर्माता को, जो राष्ट्रीय वितरण कर पाने की आशा नही कर सकता, जिस भौगोलिक क्षेत्र या सामाजिक स्तर से वह लाभ उठाना चाहता है उसके अनुकूल बिक्री की रीतियों और माध्यमों का उपयोग अवश्य करना चाहिए। पुनः, यह इसलिए सच है क्योकि सामान्य प्रकार से एक ही विक्रयण प्रयास जिस पैमाने पर वह किया जाता है उसके अनुसार गुणात्मक रूप से बदल जाता है। इस प्रकार, समाचारपत्र या पत्रिका में विज्ञापन का परिमाण जितना ही बड़ा होगा, दक्षतम विज्ञापन-लेखकों को नियुक्त करना उतना ही लाभदायक होगा। पुनः, दुकान की छोटे पैमाने पर सजावट और बड़े पैमाने पर सजावट विभिन्न सुविधाओं का और इसलिए आर्थिक कारकों के विभिन्न संयोजनों का उपयोग करती है। संक्षेप में, माध्यम या माध्यमों के संयोजन का चुनाव और काम में लाए जाने वाले आर्थिक कारकों के अनुपात का चुनाव उत्पाद के और उसके बाजार के स्वरूप पर, और कुल व्यय के परिमाण पर, निर्भर करता है। अब जब हम इस प्रश्न पर आते है कि क्या बढा हुआ कुल व्यय (जो विशेष कारकों पर बढ़े हुए व्यय से भिन्न है) वधमान प्रतिफल देगा या ह्रासमान, और इस पर कि कुल व्यय कहाँ तक किया जाएगा, तो याद रखना चाहिए कि यह कल्पना की जाती है कि एक दिए हुए व्यय का इनके सम्बन्ध में हमेशा सबसे प्रभावकारी रूप से उपयोग होता है।

विज्ञापन पर बढ़े हुए व्यय के निवल परिणाम अनेक प्रवृत्तियों के सम्मिश्रण हैं, जिन पर अलग-अलग विचार अवश्य किया जाना चाहिए। पहली, पुनरावृत्ति होने के कारण से परिणाम प्रायः संचयी होते हैं, और जहाँ तक यह सच है, अतिरिक्त व्यय से वर्धमान प्रतिफल मिलते है। विज्ञापन से सम्बन्धित लोगों में यह मामूली बात है कि अल्प व्यय बरबाद जाता है, जिसकी व्याख्या आदत के मनोवैज्ञानिक नियमों से हो जाती है। आय को खर्च करने के सम्बन्ध में किसी की प्रवृत्तियों को केवल एक प्रहार से नही तोड़ा जा सकता। ये प्रवृत्तियाँ पुनरावृत्ति के कारण पुष्ट हो गई हैं, और विकल्प का बार-बार सुझाव देकर ही उन्हें अभिभूत किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में विज्ञापन की कला सम्मोहनकर्ता की कला के सदृश है। क्रेता की चेतना पर नियंत्रण

अवश्य प्राप्त किया जाना चाहिए, और जिस बीच वह प्राप्त किया जा रहा है अतिरिक्त व्यय वर्धमान प्रतिफल देता है।

वर्धमान प्रतिफल देने वाला एक अन्य कारण यह है कि व्यय की कुल राशि में वृद्धि होने के साथ व्यय के संगठन में सुधार होता है। बड़े पैमाने की कार्रवाई की किफायतें विक्रयण संगठन पर एवं उत्पादन पर लागू होती है : अधिक साधनों के नियोजन का अर्थ है उनके उपयोग में अधिक विशेषीकरण। इस सुपरिचित विचार का विस्तृत विवरण देने की आवश्यकता नही है। यह विक्रयण क्रिया की प्रत्येक अवस्था पर लागू होता है—प्रशासनिक कर्मचारी-वर्ग पर, विज्ञापन-लेखकों और कलाकारों पर, सेल्समैनों पर, साधारण श्रमिकों पर।[4] न केवल कारकों के दिए हुए समूह में श्रम-विभाजन आगे बढ़ाया जा सकता है, बल्कि नये और अधिक प्रभावकारी कारकों को चुना जा सकता है। यह भेद मुख्यतया दृष्टिकोण का भेद है। छोटी फर्म के लिए विज्ञापन-विशेषज्ञ की नियुक्ति करना असंभव है, परन्तु बड़ी फर्म के लिए यह श्रम-विभाजन का विस्तार समझा जा सकता है, क्योकि वह व्यक्ति एक ऐसे कार्य का विशेषज्ञ है जो छोटे उद्यम के स्वामी के द्वारा, कई अन्य कार्यो के साथ-साथ, किया जा रहा है। अथवा, इसे बड़ी फर्म के द्वारा एक नये और भिन्न कारक का समावेशन समझा जा सकता है, क्योकि विशेषज्ञ छोटी फर्म मे अपने प्रतिरूप से गुणात्मक रूप से भिन्न है। बृहत्तर व्यय के कारण जिन अधिक प्रभावकारी कारकों का उपयोग संभव होता है उनमे अधिक प्रभावकारी माध्यम भी है। हम पहले ही देख चुके है कि प्रयुक्त माध्यम अंशतः व्यय की राशि द्वारा प्रतिबद्ध होता है। हो सकता है कि सर्वाधिक प्रभावकारी माध्यम वे हों जिनका उपयोग बड़े खर्च की अपेक्षा करता है। इसलिए, जब व्यय बढता है तो हो सकता है कि अधिक प्रभावकारी माध्यमों की ओर निरन्तर विवर्तन हो, जिससे लागत वक्र को वर्धमान प्रतिफल की प्रवृत्ति प्रदान की जाती है। माध्यमों के सर्वाधिक प्रभावकारी चुनाव में संयुक्त रूप से अनेक माध्यमों का उपयोग सन्निहित हो सकता है जैसे नये खाद्य पदार्थ के नमूने बाँटने के साथ समाचारपत्रों में स्थान लिया जाए और खुदरा व्यापारियों द्वारा जोर भी डलवाया जाए। अन्य दशाओं में, अनेक माध्यमों का उपयोग करके, पुनरावृत्ति के कारण, वर्धमान प्रतिफल प्राप्त किए जा सकते है या तीव्र किए जा सकते है।

इन शक्तियों के विरुद्ध, ह्रासमान प्रतिफल की दिशा में कार्य करने वाली अन्य शक्तियाँ है, जो, यद्यपि आरंभिक अवस्थाओं मे शायद दबी रहती है, व्यय के बढ़ते जाने पर बलवान होती जाती हैं, और देर-सबेर परिणाम पर छा जाती है।

पहली, क्रेता समान रूप से सुलभ नहीं होते : कुछ को पण्य की संभाव्य आवश्यकता दूसरो से अधिक होती है ; और कुछ विज्ञापन और विक्रयण-अपील के प्रति अन्य की अपेक्षा अधिक ग्रहणशील होते है। पण्य की इच्छा सर्वत्र समान आसानी से नहीं जगाई जाती ; विभिन्न क्रेताओं के और विभिन्न क्रेता-समूहों के "बिक्री प्रतिरोध" में, जिसे तोड़ना है, बहुत विविधता होती है। इन परिस्थितियों में, पहले

सबसे समृद्ध संभाव्य बाजारों का—वे जो सबसे समीप हैं और जो सबसे कम प्रतिरोध करते है—लाभ उठाया जाएगा ; और जैसे-जैसे अधिकाधिक घटिया बाजारों में प्रयास किया जाएगा, प्रति इकाई विक्रय लागत बढ़ती जाएगी । स्वभावतया, यह पहले ही विचारित इस प्रतिबन्ध के अधीन है कि सर्वोत्तम बाजारों का लाभ उठाना (अर्थात्, सर्वोत्तम माध्यमो का उपयोग) काफी बड़े व्यय पर निर्भर हो सकता है, और यह कि इस बिन्दु तक वर्धमान प्रतिफल प्राप्त हो सकते हैं । इस बिन्दु के बाद ह्रासमान प्रतिफल अवश्यम्भावी है, क्योंकि पहले ही हाथ में लिए गए बाजारों की तुलना में बचे हुए संभाव्य बाजार अल्पतर सभावनाएँ प्रस्तुत करते है ।

दूसरे, किसी दिए हुए बाजार, या क्रेता-समूह, का अधिक गहन उपयोग करने पर ह्रासमान प्रतिफल मिलते हैं । केवल एक व्यक्ति की स्थिति पर विचार करें। उसे किसी पण्य की अधिक राशि का उपभोग करने के लिए केवल दूसरी चीजों के उपभोग में तदनुकूल कमी करके फुसलाया जा सकता है ।[5] यदि इस पदार्थ द्वारा प्रदान की गई तुष्टि ऐसी नहीं है कि शारीरिक या मनोवैज्ञानिक कारक पदार्थ के उपभोग की वृद्धि पर शीघ्र ही रोक लगा देते है, तब भी जब उस पर अधिक विक्रयण प्रयास किया जाएगा तो कम से कम अन्य निरन्तर अधिक महत्वपूर्ण आवश्यकताओ का त्याग उसके प्रतिरोध को बढ़ा देगा । सामान्यतया (पुनः, स्यात् वर्धमान प्रतिफल की आरम्भिक अवस्था के बाद), उसे पण्य की प्रत्येक अनुक्रमिक इकाई का उपभोग करने के लिए फुलसाने के लिए अधिक लागत लगेगी । एक व्यक्ति के लिए सच होने के कारण, यह व्यक्तियों के किसी समूह के लिए, जिसे बाजार माना जाता है, और भी सच है; और यह विज्ञापन के किसी अकेले माध्यम के लिए भी सच है क्योकि वह क्रेताओ के समूह-विशेष तक पहुँचने का साधन मात्र है ।

अतः, ह्रासमान प्रतिफल दो कारणो से मिलते है : पहला, क्योकि, सामान्यतया, सर्वोत्तम संभाव्य बाजारों का लाभ पहले उठाया जाता है, और जैसे-जैसे उत्तरोत्तर घटिया बाजार हाथ में लिए जाते है, अतिरिक्त व्यय निरन्तर अल्पतर परिणाम देता है; और दूसरा, किसी एक बाजार (अर्थात्, संभाव्य क्रेताओं के किसी समूह) पर किया गया अतिरिक्त विक्रयण प्रयास निरन्तर अधिक महत्वपूर्ण वैकल्पिक आवश्यकताओं का त्याग प्रेरित कर के ही सफल हो सकता है । यदि इन शक्तियों को वर्धमान प्रतिफल देने वाली शक्तियों के साथ रखा जाए तो यह तुरन्त सुस्पष्ट हो जाएगा कि ये दूसरी शक्तियाँ पहली के सामने झुक जाती है । पुनरावृत्ति से या सुधरे हुए सगठन से मिलने वाले वर्धमान प्रतिफल देर-सबेर समाप्त हो जाते है, जबकि जैसे-जैसे बिक्री पर व्यय बढ़ाया जाता है, ह्रासमान प्रतिफल के लिए जिम्मेदार प्रतिरोधों की शक्ति निरन्तर बढ़ती जाती है । उत्पाद की प्रति इकाई (औसत) विक्रय लागत का वक्र जो इन सब शक्तियों के संग्रथन से बनता है, वर्धमान प्रतिफल मिलने पर स्पष्टतः गिरेगा, एक न्यूनतम बिन्दु पर पहुँचेगा, और फिर ह्रासमान प्रतिफल मिलने पर उठेगा । चित्र 20 में, वक्र SS' इस प्रवृत्ति को लेखाचित्रीय रूप से दिखाता है ।

केवल विक्रय की लागत पर विचार किया गया है (उत्पादन की लागत छोड़ दी गई है)। उत्पाद की इकाइयाँ क्षैतिज अक्ष पर और लागत शीर्षाक्ष पर दिखाई गई है। इस प्रकार *OA* राशि बेचने की औसत लागत *AP* है (कुल लागत *OAPC* है), और *OB* राशि बेचने की औसत लागत *BQ* है (कुल लागत *OBQD*

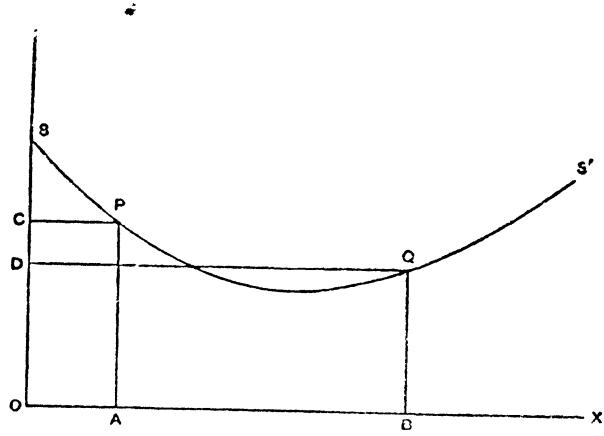

चित्र 20

है।) वक्र की स्थिति और ठीक जिस बिन्दु पर वह ऊपर को मुड़ता है, ये "उत्पाद" के स्वरूप पर, उसकी कीमत पर, और उसके बाजार को सीमित करने वाले प्रतियोगी स्थानापन्नों पर निर्भर करेंगे। स्वभावतया, किसी उत्पाद के लिए यह वक्र केवल इस कल्पना के अन्तर्गत खीचा जा सकता है कि जब केवल विक्रय लागत मे और केवल इस उत्पाद की विक्रय लागत मे परिवर्तन किया जाता है तो अन्य सब शक्तियाँ स्थिर रहती है। स्पष्ट है कि, इन अन्य कारकों के सापेक्ष दशाओं के प्रत्येक समूह के लिए यह वक्र भिन्न-भिन्न प्रकार से निर्धारित किया जाएगा। जब स्वय उत्पाद में सुधार किया जाता है (या किसी रीति से अधिक विक्रेय बनाया जाता है, जैसे नाम के कुशल चुनाव द्वारा) तो उसकी बिक्री के प्रति प्रतिरोध घट जाएगा; विक्रय लागत का वक्र सर्वत्र नीचे हो जाएगा, और उसका न्यूनतम बिन्दु, शायद, किंचित् दाहिनी ओर हट जाएगा। इसके विपरीत, उत्पाद के प्रकार के बिगड़ने पर, यह वक्र ऊपर उठ जाएगा, और उसका न्यूनतम बिन्दु और बायीं ओर हट जाएगा, क्योंकि उसकी बिक्री में विक्रेता को ह्रासमान प्रतिफल का सामना जल्दी करना पड़ेगा। सामान्यतया, उसकी कीमत घटने पर विक्रय लागत का वक्र नीचे गिर जाएगा, और बढने पर ऊपर उठ जाएगा। जैसे-जैसे स्थानापन्न पदार्थ, संख्या बढ़ने, गुणों में सुधार, कीमतों में कमी, विज्ञापन में वृद्धि के कारण, उसके बाजार को अधिकाधिक दबाएंगे, इस उत्पाद की विक्रय-लागत का वक्र ऊपर उठ जाएगा और पीछे को मुड़ जाएगा, क्योंकि ह्रासमान प्रतिफल जल्दी मिलने

लगेंगे, और न्यूनतम बिन्दु बायीं ओर हट जाएगा। इस वक्र की आकृति दी हुई नहीं है जिसके अन्तर्गत आर्थिक शक्तियों का संतुलन निष्पन्न किया जाता है, बल्कि स्वयं संतुलन की समस्या का एक भाग है। दी हुई दशाओं की कल्पना करने पर भी, ताकि इस वक्र को दृढ़ता से निर्धारित किया जाए, जब तक उत्पादन की लागत पर भी विचार नहीं किया जाता तब तक इस बारे में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि विक्रय लागत कहाँ तक लगाई जाएगी। इसलिए, अगला कदम विक्रय लागत के वक्र और उत्पादन लागत के वक्र को संयुक्त करने का है।

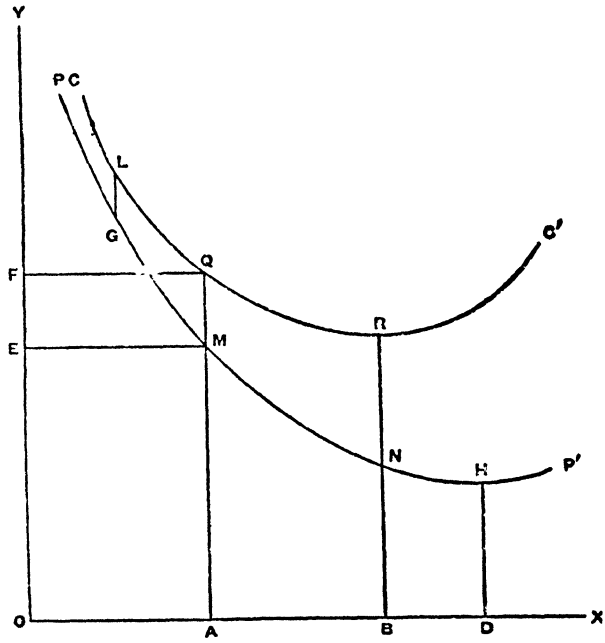

चित्र 21

यह जोड़ की सरल प्रक्रिया है।[6] चित्र 21 में, PP' प्रति इकाई उत्पादन की लागत है, जैसी उसकी इसके पहले परिभाषा की गई है और जैसा उसका उपयोग किया गया है। अब प्रत्येक निश्चित राशि का उत्पादन करने की लागत में उसी राशि को बेचने की लागत को जोड़ो, ताकि उत्पादन और बिक्री की लागत CC' द्वारा बताई जाती है। केवल विक्रय की लागत इन दो वक्रों, PP' और CC', के अन्तर द्वारा बताई जाएगी। इस प्रकार, OA राशि के लिए प्रति इकाई उत्पादन लागत AM है, प्रति इकाई विक्रय लागत MQ है,[7] और प्रति इकाई संयुक्त लागत AQ है। सब इकाइयों के लिए कुल उत्पादन लागत $OAME$ है; कुल विक्रय लागत $EMQF$ है; और दोनों की कुल लागत $OAQF$ है। स्पष्ट है कि, सामान्यतया, उत्पादन और

विक्रय की संयुक्त लागत का न्यूनतम केवल उत्पादन की या केवल विक्रय की लागत के न्यूनतम का संपाती नहीं होगा। चित्र 21 में, न्यूनतम संयुक्त लागत BR है जो OB उत्पत्ति पर मिलती है; न्यूनतम उत्पादन लागत DH है जो उत्पादन के दक्षतम पैमाने, OD, पर मिलती है; और प्रति इकाई बिक्री की लागत GL राशि के लिए न्यूनतम है।[8]

अब (संयुक्त) सीमान्त लागत का वक्र, MM', खींचा जा सकता है, और यह चित्र 22 (पृष्ठ 116) में किया गया है। यह वक्र प्रत्येक अनुक्रमिक इकाई के कारण कुल लागत में हुई वृद्धि को बताता है, और इसका CC' वक्र से सरल सम्बन्ध है। उत्पाद की किसी निर्दिष्ट राशि के लिए MM' वक्र के अन्तर्गत परिवेष्टित (enclosed) क्षेत्रफल CC' के अन्तर्गत आयत के बराबर अवश्य होना चाहिए। OD राशि के लिए, क्षेत्रफल $ODTM$ और क्षेत्रफल $ODQS$ बराबर है, क्योंकि प्रत्येक अनुक्रमिक इकाई द्वारा जोड़ी गई लागतों का योग स्पष्टतः कुल लागत के बराबर होगा, और औसत गुणा इकाइयों की संख्या भी कुल लागत के बराबर होगा। तो, OD राशि के लिए उत्पादन और विक्रय की सीमान्त संयुक्त लागत DT है, और उत्पादन और विक्रय की संयुक्त प्रति इकाई, या औसत, लागत DQ है। सीमान्त लागत वक्र औसत लागत वक्र को L बिन्दु पर अवश्य काटेगा, जो उसका न्यूनतम बिन्दु है, क्योंकि उत्पत्ति के बढ़ने पर औसत लागत केवल तब तक गिरती है, जब तक एक और इकाई द्वारा जोड़ी गई लागत औसत लागत से कम होती है, और जैसे ही एक और इकाई द्वारा जोड़ी गई लागत औसत लागत से अधिक होती है, वह बढ़ने लगती है। केवल उत्पादन की सीमान्त लागत का वक्र और केवल विक्रय की सीमान्त लागत का वक्र भी इसी प्रकार निकाले जा सकते हैं, और अपने-अपने औसत लागत वक्रों से उनका यही सम्बन्ध रहता है। उन्हें जोड़ने पर वे संयुक्त सीमान्त लागत वक्र MM' देंगे। चित्र में उन्हें नहीं दिखाया गया है।

विक्रय लागत का वक्र समयावधि के और अल्पावधि या दीर्घावधि परिणामों के भेद के अनपेक्ष निर्धारित किया गया है। ऐसा जानबूझकर किया गया है, क्योंकि एकाधिकारिक और प्रतियोगी शक्तियों की परस्पर-क्रिया अल्पकालीन और दीर्घकालीन दोनों प्रकार की बाजार स्थितियों में उपस्थित रहती है। उत्पादन लागत के वक्र की भाँति, विक्रय लागत के वक्र में समयावधि के संगत उन व्ययों और परिणामों को अवश्य सम्मिलित करना चाहिए जिन्हें अपनी नीतियाँ निश्चित करते समय व्यवसायी ध्यान में रखता है, और उसका निर्वचन ऐसी अवधि के संदर्भ में अवश्य किया जाना चाहिए। सस्ती बिक्री (bargain sale) चालू करने वाला दूकानदार अपनी कीमत और विज्ञापन नीतियों को इस बिक्री के सम्बन्ध में निर्धारित करेगा, जबकि वर्ष भर के लिए विज्ञापन बजट का निर्धारण करने वाला विक्रेता अपने व्यवसाय के संगठन का दीर्घतर काल की, शायद "सामान्य", दशाओं से समायोजन करने पर विचार करता है। निस्सन्देह, ये दो समस्याएं स्वतन्त्र नहीं हैं। जो सस्ती बिक्री से

आकर्षित होते हैं, हो सकता है कि वे स्थायी ग्राहक बन जाएँ, और इस प्रकार भावी बिक्री को बढ़ा दें; दूसरी ओर, जो लोग किसी भी स्थिति में खरीदते उन्हें सस्ती बिक्री के दौरान खरीदारी करने के लिए फुसलाने से हो सकता है कि भावी बिक्री घट जाए—दीर्घतरकालीन बाजार "बिगड़" जाए। पुनः, कुछ प्रकार के व्यापार में, हो सकता है कि दीर्घकालीन बाजार बहुतांश में अल्पकालीन सस्ती बिक्रियों की श्रेणी से बना हो। ऐसी समस्याओं पर विचार करने पर, पेचीदा समस्याओं का जंजाल प्रस्तुत हो जाता है, जिन पर विस्तृत रूप से विचार करना अर्थप्रणाली पर एकाधिकार के सामान्य प्रभाव का संकेत करने वाले इस प्रारंभिक प्रयत्न के परे है। यद्यपि यहाँ विकसित तकनीक के अधिकांश का ऐसी समस्याओं में अनुप्रयोग किया जा सकता है, आगे दिए गए विश्लेषण में जिस स्थिति पर हमने विचार किया है, वह दीर्घकालीन, या "सामान्य", समस्या है। वक्रों का सर्वोत्तम निर्वचन यह है कि वे समय की प्रति इकाई, मान लो एक वर्ष, व्यय की दरें बताते है; ताकि (चित्र 21) वक्र CC' पर, उदाहरणार्थ, BR (एक दी हुई कीमत पर) प्रतिवर्ष OB इकाइयों के उत्पादन और विक्रय की प्रति इकाई लागत बताता है।

2. वैयक्तिक सन्तुलन

अध्याय 5 की रीति का अनुसरण करते हुए, पहले हम वैयक्तिक सन्तुलन की समस्या पर विचार करेंगे, और बाद में समूह सन्तुलन की समस्या पर। पहले में सब प्रतियोगियों की कीमतों, उत्पादों, और विक्रयण नीतियों के सम्बन्ध में दी हुई और अपरिवर्ती दशाओं के अन्तर्गत, एक उत्पादक के लिए सर्वाधिक लाभप्रद समायोजन पर विचार किया जाएगा। इसमें स्थानापन्न पदार्थों के बाजारों के वास्तविक अन्योन्याश्रय की उपेक्षा की जाएगी—इस तथ्य की कि एक विक्रेता द्वारा कीमत घटाने या विज्ञापन व्यय बढ़ाने पर उसके प्रतिद्वन्द्वियों के ग्राहकों को घटाकर उसके ग्राहकों में वृद्धि होती है, जो उनके उत्पादों के माँग वक्रों को बदल देती है, और इसलिए सामान्य समायोजन में परिवर्तन ला देती है। दूसरी समस्या का सम्बन्ध एक-दूसरे के बहुत निकट के स्थानापन्न उत्पादों के समूह के भीतर ठीक इन्हीं परस्पर सम्बन्धों से है। समूह के भीतर लाभ के सामान्यतया ऊँचे या नीचे होने पर साधनों के समूह में अन्तर्वाह या समूह से बहिर्वाह पर भी हम विचार करेंगे।

हम कल्पना करते हैं कि स्थानापन्नों का स्वरूप और उनकी कीमतें दी हुई हैं और उन पर लगाई गई विक्रय लागत बदलती नहीं है,[1] और तब हम एक अकेले उत्पादक के सम्बन्ध में विचार करते हैं। वह अपने लाभ को अधिकतम करना चाहता है, और इस साध्य के हेतु अपने उत्पाद, कीमत, और विक्रयण व्यय का समायोजन करता है। व्यापक स्थिति में, वह इन तीनों का समायोजन करने के लिए स्वतन्त्र है, और वह ऐसा एक ही समय में कर सकता है। लेकिन, प्रायः इन कारकों में से एक या

दो बाहरी परिस्थितियों, रिवाज, या उसी के पहले के निर्णय द्वारा नियत हो सकते हैं, और हो सकता है कि उसका उद्देश्य बचे हुए कारकों का सर्वोतम समायोजन करना मात्र हो। इन "आंशिक" समस्याओं पर पहले विचार करना उपयोगी होगा। हम जिस क्रियाविधि को अपनाएंगे वह यह है कि इन तीन चरों में से प्रत्येक के समायोजन की बारी-बारी से परीक्षा की जाएगी, और प्रत्येक स्थिति में अन्य दो को स्थिर रखा जाएगा; और तब, अन्त में, उनमें से दो या तीनों को एक साथ बदलने दिया जाएगा। इनमें से प्रत्येक हल का, जिन आर्थिक स्थितियों से उसकी कल्पनाएं मेल खाती है उनमें उसकी प्रत्यक्ष अनुप्रयोज्यता के कारण से, निजी महत्व है। इसके अलावा, प्रत्येक का मूल्य इसलिए भी है क्योंकि वह, कुल समस्या के एक भाग को अलग करके, कुल समस्या को समझने में सहायक होता है।

पहले हम उत्पाद और कीमत को दिया हुआ मानेंगे। हम कल्पना करते हैं कि उत्पाद न तो स्वयं बदलता है, और न ही उसकी बिक्री की परिस्थिति में परिवर्तन होता है; कीमत, मान लो कि, पहले के निर्णय द्वारा या रिवाज द्वारा नियत होती है, या विनिर्माता द्वारा ऊपर से थोपी जाती है, या व्यवसायियों द्वारा मौन रूप से स्वीकृत की गई होती है। प्रश्न यह है कि इन दशाओं के अन्तर्गत विज्ञापन पर व्यय कहाँ तक किया जाएगा? चित्र 22 में, मान लो कि उत्पादन लागत वक्र PP' है, और मान लो कि **दी हुई कीमत** पर उत्पादन और विक्रय की (औसत) लागतों का संयुक्त वक्र CC' है। (कुछ समय के लिए MM' पर विचार नही किया जाएगा।) यह कल्पनीय है कि यह कीमत न्यूनतम संयुक्त लागत, AL, से ऊंची हो, या नीची हो, या उसके बराबर हो। पहले उस स्थिति पर विचार करो जिसमें वह ऊंची है। मान लो कि कीमत OF है। अब आधार रेखा के समान्तर FZ खींचो।[10] उत्पाद की जिस किसी राशि के लिए संयुक्त लागत वक्र CC' इस क्षैतिज रेखा के नीचे होगा, उसके लिए प्रति इकाई लाभ इन दो के अन्तर के बराबर है, और जिस कुल लाभ को उद्यमकर्ता अधिकतम करने का यत्न करता है, वह इस अन्तर और उत्पत्ति की राशि का गुणनफल है। देखा जाता है कि सर्वाधिक लाभदायक उत्पत्ति OB है, जिसके लिए कुल लाभ-क्षेत्रफल $ENRF$, निर्दिष्ट रीति के अनुसार CC' और क्षैतिज रेखा FZ के बीच खीचे जा सकने वाले किसी भी अन्य आयताकार क्षेत्र से, बड़ा है। इस राशि के लिए कुल विक्रय लागत $HGNE$ है, और कुल उत्पादन लागत $OBGH$ है। उद्यमकर्ता इस राशि को, तत्क्षण नही बल्कि, अपने विक्रयण व्यय के समायोजन के द्वारा "चुनता" है। अपने उत्पाद की परिवेशी बाजार दशाओं को दृष्टि मे रखते हुए, वह विज्ञापन के लिए $HGNE$ राशि का निर्धारण करता है, क्योंकि इससे बड़ा या छोटा कोई भी विनियोग (appropriation) कम लाभदायक होगा।[11]

अधिकतम लाभ के बिन्दु का निर्धारण सीमान्त लागत को निर्दिष्ट करके भी किया जा सकता है। MM' (संयुक्त) सीमान्त लागत का वक्र है; इसके स्वरूप और लागत वक्र CC' से इसके सम्बन्ध का वर्णन पहले ही किया जा चुका है।[12] सर्वाधिक

लाभदायक उत्पत्ति इस वक्र और FZ के प्रतिच्छेद बिन्दु, R, के द्वारा बताई जाएगी, अर्थात्, वह ऐसी होगी कि सीमान्त लागत और विक्रय कीमत बराबर होंगे। पहले की भाँति वह स्वभावतया OB है, और कुल लाभ $OBRF-OBRKM$ $(=ENRF)$ है। जब उत्पत्ति शून्य से बढ़ती हुई MM' और FZ के पहले कटान बिन्दु, J, तक

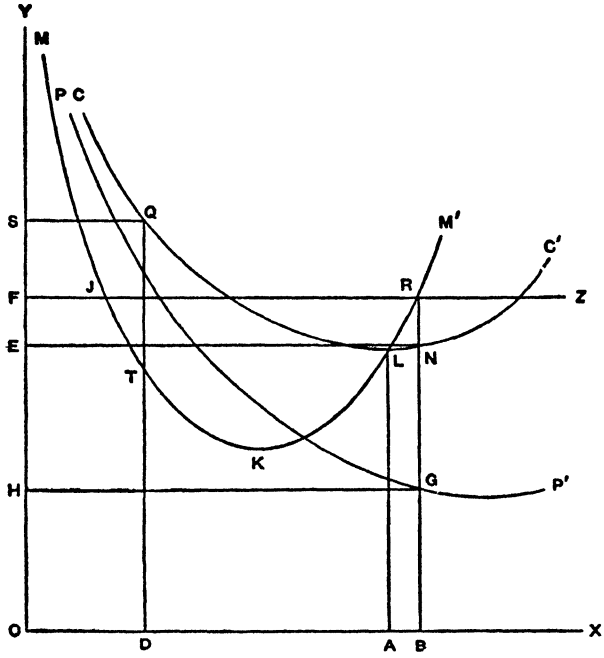

चित्र 22

पहुँचती है, हानि बढ़ती जाती है, क्योंकि प्रत्येक नयी इकाई के कारण बढ़ी हुई लागत उसकी विक्रय कीमत से अधिक है। J के बाद हानि घटती जाती है और अन्त में मिट जाती है, और लाभ बढ़ते हुए R पर अधिकतम हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि J और R के बीच प्रत्येक नयी इकाई के कारण जुड़ने वाली लागत उसकी विक्रय लागत से कम है। R के बाद लाभ फिर घटने लगते हैं।

यदि हम मान लें कि जिस कीमत को निर्दिष्ट करके CC' खींचा गया है वह उत्पादन और विक्रय की संयुक्त लागत के न्यूनतम, AL, के ठीक बराबर है तो OA राशि को बेचने के लिए ठीक पर्याप्त विक्रय व्यय लगाए जाएंगे। यह कीमत और उत्पत्ति होने पर अतिरिक्त लाभ मिट जाते हैं, परन्तु लाभ की वह न्यूनतम राशि रहती है जो उत्पादन सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है, और यह राशि लागत वक्र में सदा सम्मिलित रहती है। यदि कीमत AL से कम होती तो हानि उठाई जाती

और सामान्यतः उत्पादन जारी नहीं रखा जाएगा (बशर्ते कि "उत्पाद" या कीमत में कोई परिवर्तन करना संभव न हो, जो हानि को मिटाने वाले नये वक्र प्रदान करे)।

द्वितीयतः, हम मान लेते हैं कि उत्पाद और विक्रय व्यय दिए हुए हैं, और कीमत समायोजन पर विचार करते हैं। दिए हुए उत्पाद की कल्पना अभी-अभी विचारित स्थिति के बाद भी बनाए रखी जाती है, परन्तु नियत कीमत की कल्पना, जिसके कारण विक्रय लागत के परिवर्तनों की अलग से परीक्षा करना संभव हुआ था, त्याग दी जाती है। अब विक्रय लागत को स्थिर रखा जाता है, ताकि कीमत के समायोजन का पृथक् रूप से अध्ययन किया जा सके। ऐसी आर्थिक स्थितियां बहुधा मिलती हैं, जिनमें विक्रय लागत नहीं बदलती, और जिनमें ये कल्पनाएं तथ्यों से मेल खाती हैं। हो सकता है कि विक्रय व्यय वार्षिक बजट के बारे में पहले के निर्णय के द्वारा, या उद्यमकर्ता की आदत या निष्क्रियता के कारण, या सामान्यतः स्वीकृत व्यवसाय व्यवहार के द्वारा निर्धारित हो। ऐसे व्यवसाय और उद्योग है जिनमें "सम्बन्ध" बनाए रखने पर और विज्ञापन पर व्यय बहुत-कुछ नियत होता है—एक निश्चित वार्षिक राशि और उसे खर्च करने की निश्चित रीतियाँ "सामान्य" समझी जाने लगती हैं। यह राशि आकस्मिक नहीं होती—वस्तुतः, यह वह राशि होती है जो लम्बे अनुभव के आधार पर सर्वाधिक लाभप्रद या उत्पाद का विपणन करने के लिए सामान्यतया अपेक्षित प्रतीत होती है। इस प्रकार की स्थिति में सिद्धान्त को सीधे लागू किया जा सकता है; और जिनमें विक्रय व्यय वास्तव में स्थिर नहीं है उनमें उन्हें स्थिर मानना, एक जटिल समस्या के पृथक्कृत अध्ययन के लिए उसे उसके भागों में विभाजित करने का साधन है।

विक्रयण व्यय को स्थिर मान लेने पर, उत्पाद की प्रति इकाई विक्रय लागत के वक्र की लोच सर्वत्र इकाई होगी, जो इस स्थिर राशि का सब संभव उत्पत्तियों के लिए वितरण बताती है। यह तुरन्त देखा जा सकता है कि जब यह वक्र उत्पादन लागत वक्र में जोड़ा जाता है, तो **संयुक्त** लागत के परिणामी वक्र की सामान्य आकृति वही होती है जो उत्पादन लागत वक्र की—वह एक न्यूनतम बिन्दु तक गिरता है और फिर उठने लगता है। लेकिन संयुक्त लागत वक्र का न्यूनतम बिन्दु उत्पादन लागत वक्र के न्यूनतम बिन्दु की दाहिनी ओर होता है। जैसा आगे दिखाया जाएगा, इसका पर्याप्त महत्व है।

उत्पाद और विक्रयण व्यय के नियत होने पर, उद्यमकर्ता का ध्यान सर्वाधिक लाभदायक कीमत को चुनने में लगता है। उसके उत्पाद का माँग वक्र, DD' (चित्र 23), खींचा जा सकता है, जो विभिन्न कीमतों पर माँग बताता है। जैसा पहले ही बताया जा चुका है, इस वक्र की स्थिति और ढाल अंशतः सामान्य क्षेत्र में एकाधिकार तत्वों की शक्ति पर निर्भर करेगा, अर्थात्, प्रतियोगियों की संख्या पर और उनके द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले स्थानापन्नों की पूर्णता की मात्रा पर। वह "उत्पाद" के स्वरूप और विक्रय व्यय की राशि पर भी निर्भर करेगा। चूंकि ये सब दिए हुए माने गए

हैं, इसलिए वक्र निर्धारित है। FF' उत्पादन और विक्रयण की संयुक्त लागत का वक्र है।[13] कीमत ऐसी होगी जो अधिकतम लाभ देगी—मान लो कि AQ। तब बिक्री का परिमाण OA है, कुल लाभ $HGQE$ है, और कुल संयुक्त लागत $OAGH$ है। एकाधिकार मूल्य की सरल समस्या के सुपरिचित हल से यह केवल इस बात में भिन्न है

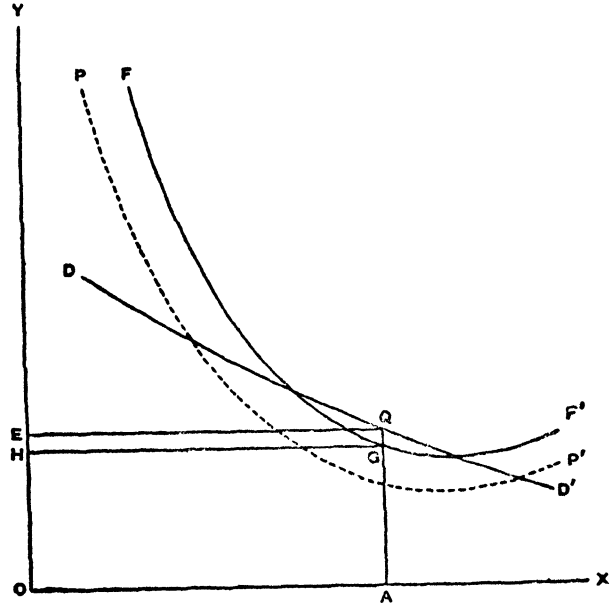

चित्र 23

कि लागत वक्र FF' दी हुई राशि के बराबर विक्रय लागत को सम्मिलित करता है, जो माँग वक्र की स्थिति के निर्धारण में एक महत्वपूर्ण कारक है।

स्थिर रखे गए कारकों के सम्बन्ध में कल्पित दशाओं के अनुसार, माँग वक्र को, निस्सन्देह, विभिन्न रूप से निर्धारित किया जा सकता है। वह चित्र 23 मे दिखाई गई स्थिति की बायीं ओर या दाहिनी ओर हो सकता है। तदनुसार, इष्टतम कीमत उच्चतर या निम्नतर हो सकती है, और लाभ दिखाने वाला क्षेत्रफल बड़ा या छोटा हो सकता है। यदि माँग वक्र लागत वक्र FF' की स्पर्शरेखा हो, तो स्पर्श-बिन्दु से खींचा गया लम्ब कीमत बताएगा, और लागत वक्र में सम्मिलित न्यूनतम लाभ के ऊपर लाभ नहीं मिलेगा। लेकिन, उत्पादन जारी रहेगा, क्योंकि आवश्यक लागतें पूरी हो रही है। यदि वह और बायीं ओर हो तो आवश्यक लागतें वसूल नहीं हो पाएंगी, और उत्पादन सामान्यतया जारी नहीं रखा जाएगा।

तीसरा संभव चर "उत्पाद" है और, समस्या की इस अवस्था पर ध्यान केन्द्रित

करने के हेतु, विक्रय व्यय और कीमत को दिया हुआ मान लेना चाहिए। अब हम मानते हैं कि उद्यमकर्ता ने अपनी कीमत और विक्रय नीति पहले ही तय कर ली है, या हम मानते हैं कि वह प्रचलित कीमत लेगा और विज्ञापन पर "सामान्य" राशि खर्च करेगा। विशेष स्थितियों में यह कल्पना तथ्यों के अनुरूप हो सकती है, या इसे, पुनः, सम्पूर्ण समस्या की पूर्ण व्याख्या की दिशा में एक तर्कसम्मत कदम समझा जा सकता है। विक्रय लागत की उपेक्षा करके मिलने वाली सरलतर स्थिति के सम्बन्ध में "उत्पाद" विचरण का वर्णन और विश्लेषण हम पहले ही कर चुके हैं।[14] स्थिर विक्रयण व्यय का समावेशन पहले के विश्लेषण का, यहाँ जिसे विस्तारपूर्वक प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है, स्वरूप नहीं बदलता, क्योंकि स्थिर विक्रयण व्यय लागत वक्र की सामान्य आकृति में परिवर्तन नहीं करता। पहले की स्थिति मे लागत वक्र में (चित्र 11, पृष्ठ 62) केवल उत्पादन की लागत सम्मिलित थी। अब उसका निर्वचन स्थिर विक्रय व्यय को सम्मिलित करने वाले सयुक्त लागत वक्र के रूप में किया जाना चाहिए (जैसा अभी-अभी विचारित कीमत परिवर्तन की स्थिति मे किया गया)। सामान्यतया, यह वक्र "उत्पाद" के प्रत्येक प्रकार के लिए भिन्न होगा, और प्रत्येक प्रकार की माँग स्थिति में स्थिर माने गए तत्वों द्वारा निर्धारित होगी (ये स्थिर तत्व है : इस पदार्थ और इसके प्रतियोगी सब पदार्थों के लिए, उत्पाद, कीमत, और विक्रयण व्यय)। सब "उत्पाद" संभावनाओं मे से वह चुनी जाएगी जो अधिकतम लाभ देगी।

जिस प्रकार पहले के दृष्टान्त में छाँटा गया उत्पाद आवश्यक रूप से वह नही है जिसकी उत्पादन की लागत न्यूनतम है, ठीक उसी प्रकार यहाँ छाँटा गया उत्पाद आवश्यक रूप से वह नहीं है, जिसकी संयुक्त लागत का वक्र निम्नतम है, न वह है जिसकी माँग सबसे अधिक है। पुनः, उत्पत्ति का न तो उत्पादन के सबसे प्रभावकारी पैमाने से कोई सम्बन्ध है, न उत्पादन और विक्रयण के सबसे प्रभावकारी पैमाने से।

समस्या के स्थिर तत्वों के सम्बन्ध मे जैसी विभिन्न कल्पनाएं की जाती है, लागत वक्र, कीमत-रेखा, और माँगी गई राशि में तदनुरूप परिवर्तन होंगे। अधिक अच्छे, अधिक सस्ते, या अधिक विस्तृत रूप से विज्ञापित स्थानापन्न, कीमत-रेखा को नीचे करके, माँगी गई राशि को घटाकर के, अधिक अच्छे प्रकार के उत्पाद को चुनने की आवश्यकता के कारण लागत वक्र को उठाकर *, या शायद इन तीनों रीतियों से, लाभ की सभावना को सीमित कर देंगे। स्पष्ट है कि, उत्पादन के किसी भी तरह होते रहने के लिए, इन कारकों के सम्बन्ध मे प्रतियोगी दशाएं ऐसी अवश्य नही होनी चाहिए कि किसी ऐसे उत्पाद को चुनने की सम्भावना को न रहने दें जिसके लिए, न्यूनतम लाभ समेत, आवश्यक लागतें पूरी होती हैं। लेकिन, यह नहीं भूलना चाहिए कि यद्यपि कीमत और विक्रयण व्यय के सम्बन्ध में किसी विशेष कल्पना के अन्तर्गत ऐसे उत्पाद का चयन असम्भव हो, परन्तु अन्य के लिए चयन सम्भव हो सकता है।

एक-एक करके प्रत्येक चर का—उत्पाद, कीमत, और विक्रयण व्यय का—विश्लेषण अब पूरा हो गया है। यह दावा बार-बार किया गया है कि इन सरलीकृत

स्थितियों में से हो सकता है कि प्रत्येक का प्रत्यक्षतः व्यवहार में प्रयोग किया जाए, परन्तु उसे उन स्थितियों की व्याख्या की दिशा में पहला कदम माना जाना चाहिए जिनमें दो या तीनों कारक एकसाथ बदल सकते हैं। ऐसी स्थितियों की व्याख्या इन भागों को केवल साथ-साथ रखने का मामला है। उदाहरणार्थ, मान लो कि उत्पाद और कीमत दोनों बदल सकती हैं, और केवल विक्रयण व्यय स्थिर रखा जाता है। अब हमें, चित्र 11 (पृ० 62) में, उत्पाद A की स्थिर माँगी गई राशि OG के स्थान पर एक माँग वक्र मिलेगा, जो विभिन्न कीमतों पर माँग दिखाएगा। प्रत्येक "उत्पाद" के लिए एक ऐसी कीमत होगी जिस पर कुल लाभ अधिकतम होंगे, और उत्पाद तथा कीमत के उस संयोजन को चुना जाएगा जो सबसे अधिक लाभ प्रदान करता है।

दूसरे दृष्टान्त के रूप में, मान लो कि उत्पाद नियत रहता है, और कीमत तथा विक्रयण व्यय में परिवर्तन किए जा सकते हैं। प्रत्येक संभव कीमत के लिए चित्र 22 के समरूप रचना उस कीमत के लिए सबसे लाभदायी विक्रय व्यय दिखाएगी, और इस श्रेणी मे एक सर्वोत्तम होगी, जो इष्टतम व्यय और इष्टतम कीमत, दोनों, को प्रकट करेगी। इन दो चरों पर विचार करने के क्रम को उलटने पर वही परिणाम मिलता है। चित्र 23 के समरूप रचनाओं की श्रेणी प्रत्येक संभव विक्रय व्यय के लिए सबसे लाभदायी कीमत दिखाएगी। इनमें से एक सर्वोत्तम होगी, और पुनः इष्टतम विक्रय व्यय और इष्टतम कीमत, दोनों, को बताएगी।[15]

अन्त में, जब उत्पाद, कीमत, और विक्रय व्यय, तीनों, परिवर्तनशील है, तो हल इसी रीति के विस्तार से पाया जा सकता है। पिछली स्थिति की क्रियाविधि को, जो एक दिए हुए "उत्पाद" के लिए सबसे लाभदायी कीमत और विक्रय लागत बताती है, सब संभव "उत्पादों" के लिए दुहराइए, और उस "उत्पाद" को चुनिए जो सबमें बृहत्तम लाभ देता है। अथवा, उत्पाद और कीमत के सर्वोत्तम संयोजन को ढूँढने की क्रियाविधि को सब सभव विक्रय व्ययों के लिए दुहराइए। इससे कोई अन्तर नहीं आता कि ये भाग किस क्रम में जोड़े जाते है। मिलजुलकर वे इस सामान्य प्रस्थापना का प्रणयन और निदर्शन करते है कि (प्रतियोगी स्थानापन्नों के सम्बन्ध में सब परिस्थितियों के दिए होने पर) उद्यमकर्ता उत्पाद, कीमत, और विक्रय व्यय के उस संयोजन को चुनेगा जिसके लिए उसके कुल लाभ अधिकतम है।

"उत्पाद" में परिवर्तनों को छोड़ देने पर, इस इष्टतम समायोजन के लक्षणों का लेखाचित्रीय संक्षेप देना संभव है, जो चित्र 24 में प्रस्तुत किया गया है। हम देख चुके हैं[16] कि आवश्यक न्यूनतम लाभ के ऊपर अतिरिक्त लाभ मिल सकते है, और नहीं भी। निदर्शन के लिए हमने उस स्थिति को लिया है जिसमें वे नहीं मिलते। यह समझा जाना चाहिए कि चित्र उस "उत्पाद" से सम्बन्ध रखता है जो सम्पूर्ण हल के सम्बन्ध में सबसे लाभदायक है। उत्पादन लागत का वक्र PP' है, और CC' इस कल्पना के अन्तर्गत उत्पादन और विक्रयण की संयुक्त लागत का वक्र है कि कीमत OM पर स्थिर है। उत्पत्ति OA है क्योंकि वह CC' और कीमत-रेखा MD के स्पर्श-बिन्दु

द्वारा निर्दिष्ट की जाती है । FF' इस कल्पना के अन्तर्गत उत्पादन और विक्रयण की संयुक्त लागत का वक्र है कि विक्रय लागत स्थिर है, और dd' माँग वक्र है जो उस स्थिति में कीमत के बदलने पर माँग के परिवर्तन दिखाता है जब विक्रय लागत FF' को निर्धारित करने वाली राशि पर स्थिर रखी जाती है । ये दो वक्र भी उसी प्रकार Q

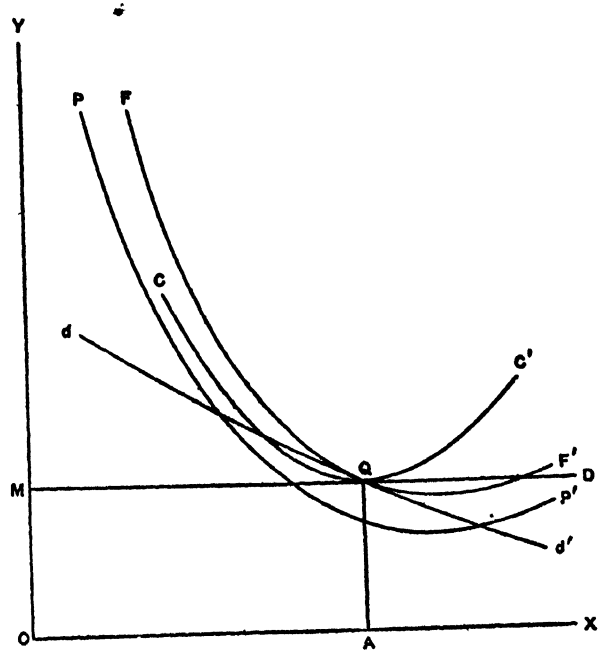

चित्र 24

पर एक-दूसरे की स्पर्शरेखाएँ है। चित्र का निरीक्षण करने पर प्रकट होगा कि हानि उठाए बिना विक्रय व्यय में या कीमत में कोई परिवर्तन करना असम्भव है । कीमत के समान बने रहने पर, विक्रय व्यय में कोई वृद्धि या कमी करने पर हानि होगी क्योंकि Q के दोनों ओर MD के ऊपर CC' है; और विक्रय व्यय समान रहने पर कीमत में कोई वृद्धि या कमी करने पर हानि होगी, क्योंकि Q के दोनों ओर dd' के ऊपर FF' है । और क्योंकि ये वक्र "उत्पाद" के सर्वोत्तम वरण को निर्दिष्ट करके खीचे गए हैं, इसलिए इस सम्बन्ध में कोई परिवर्तन सम्भव नहीं है । जिस स्थिति में लागत वक्र में सम्मिलित न्यूनतम लाभ के ऊपर लाभ मिलते हैं, उसका भी समरूपतः निरूपण किया जा सकता है । इस स्थिति में इष्टतम हल से विचरण करने पर हानि नहीं होगी, बल्कि लाभ में कमी आ जाएगी ।

3. समूह सन्तुलन

अब हम समूह समस्या पर विचार करेंगे। उत्पादकों की दशाओं की विविधता का वर्णन पहले ही अध्याय 5 में किया जा चुका है।[17] संक्षेप में, एक-एक उत्पाद के प्रभेदक लक्षण होते हैं, और उनके आकार और प्रकार में बहुत बड़े अन्तर होते हैं। परिणाम यह होता है कि समूह के भीतर विविध प्रकार के उत्पादन लागत वक्र होते हैं। विभिन्न बाजारों मे क्रेताओं की आयों और रुचियों मे विविधता और उनके अधिमानों की अस्थिरता के साथ इन कारकों को मिलाने पर माँग वक्रों में भी समरूप विविधता आ जाती है; और अब हम कह सकते है कि विक्रय लागत के वक्रों में भी। दी हुई निपुणता से आयोजित और कार्यान्वित किया हुआ विक्रय व्यय जिन उत्पादों पर किया जाता है, उनके अनुसार परिवर्ती विभिन्न परिणाम दे सकता है, क्योंकि उत्पाद भिन्न है और जिस सभाव्य बाजार में अपील की गई है वह भी भिन्न है। इसी प्रकार, बिक्री में जो भी वृद्धि हो, वह समूह के अन्य सदस्यों के या समूह के बाहर के विक्रेताओं के बाजारों से असमान रूप से मिली हुई हो सकती है।

अध्याय 5 में इन कठिनाइयों को दूर करने की एक रीति का भी विकास किया गया था। पहले हम उनकी उपेक्षा करते है, और यह कठोर कल्पना करते है कि समूह के उत्पादों के लिए माँग वक्र, उत्पादन लागत वक्र, और विक्रय लागत वक्र एकसमान हैं। उनकी वास्तविक विविधता पर बाद मे विचार किया जाएगा। इस बीच में हम इस कल्पना के कठोर स्वभाव को बढ़ाएँ-चढ़ाएँ नही। बहुधा बाजारों की संरचना बहुत-कुछ एकसमान होती है, उपभोक्ताओं के अधिमान बहुत-कुछ समान रूप से वितरित होते है, उत्पादों में भेद ऐसे होते है कि लागत मे अधिक भिन्नताएँ नही होती, और विक्रय रीतियाँ स्थायी और अनुत्तेजक होती है। जहाँ ये बातें सच है, हमारी कल्पनाएँ पर्याप्त रूप से वास्तविक है और परिणामों में कुछ प्रत्यक्ष प्रयोज्यता रहती है।

समूह मे सम्मिलित विक्रेताओं की सख्या का और जिस रीति से उनके बाजार एक-दूसरे को परस्परव्याप्त करते है, उसका प्रश्न पुनः महत्वपूर्ण है। यदि संख्या कम है, तो अध्याय 3 मे वर्णित जटिलताओं के सदृश जटिलताएँ उत्पन्न होती है। हो सकता है कि प्रत्येक विक्रेता इस तथ्य पर गौर करे कि, उसके प्रतिद्वन्द्वियों की अल्प संख्या होने के कारण, उसके द्वारा विज्ञापन उनके बाजारों में इतना अतिक्रमण करेगा कि **उसकी कार्यवाही के कारण** वे अपना संरक्षण करने और उसका अनुसरण करने के लिए बाध्य होगे। चूँकि यह पलट कर उसके लिए हानिप्रद होगा, वह पहले से ही ऐसी नीति के विरुद्ध निर्णय ले सकता है जो, तात्कालिक दृष्टि से, उसके लिए लाभप्रद होती। सम्प्रति, हम इस कठिनाई को अलग रख देते है, और कल्पना करते हैं कि अन्य के बाजारों मे उसके विज्ञापन के कारण होने वाला अतिक्रमण इस प्रकार बँटा हुआ है कि वह किसी एक विक्रेता के लिए नगण्य है। तब उसका कोई भी प्रतिद्वन्द्वी उसकी कार्यवाही के कारण ऐसा कोई काम नही करेगा जो वह अन्यथा न करता; इस प्रकार

"परोक्ष प्रभावों" की जटिलताओं से निबटा जाता है। आगे प्रस्तुत किए जाने वाले कारणों से, यह देखा जाएगा कि, जहाँ तक विज्ञापन का सम्बन्ध है, यह शर्त तब भी ठीक उतर सकती है जब समूह के सदस्यों की संख्या काफी अल्प है।

जिन प्रतियोगी एकाधिकारियों को अब हम एक समूह में रखते हैं, जैसा हम पहले ही देख चुके हैं, हो सकता है कि वे या तो अपनी कीमतों का समायोजन करें, या अपने "उत्पादो" का, या अपने विक्रय व्ययों का, या इनमें से किन्ही के संचय का। जैसा कि वैयक्तिक सन्तुलन मे किया गया था, हम इन तीनों चरों में से प्रत्येक पर बारी-बारी से विचार करेंगे। पहले, मान लो कि सब विक्रेताओं के लिए कीमते और उत्पाद दिए हुए है, और बाजारो के लिए प्रतियोगिता केवल विज्ञापन के द्वारा की जाती है। पहले की स्थितियो की भाँति, सन्तुलन समायोजन का स्वभाव सन्तुलन से भिन्न दशाओ की कल्पना करके और दुरुस्त करने वाली गति का वर्णन करके प्रकट किया जा सकता है। तो, मान लो कि विक्रेताओं की संख्या और बाजारों का वितरण अध्याय 5 मे बताई गई दशाओ के अन्तर्गत सम्पन्न हो चुका है। अब विज्ञापन द्वारा बिक्री बढाने की सभावना का समावेशन कीजिए। जो समायोजन सरलतर दशाओं के अन्तर्गत हुआ होता वह किस प्रकार बदल जाता है ?

समूह के भीतर विज्ञापन के प्रभावों को समझ सकने के पहले, एक ओर तो समूह के सदस्यो के बीच और दूसरी ओर समूह के बाहर उसके परिणामों के वितरण का वर्णन अवश्य किया जाना चाहिए। समस्या की इस अवस्था का उल्लेख न करने और विज्ञापन के परिणामो को समूह तक परिसीमित करने की प्रवृत्ति प्रबल है, क्योंकि शुद्ध प्रतियोगिता के सिद्धान्त के शब्दो मे इस समस्या का आम निर्वचन इसी परिणाम का सकेत करेगा। यदि, मोटरगाड़ियो के माँग वक्र के अनुसार 1,000 डालर प्रति गाड़ी कीमत पर बाजार से 1,00,000 गाड़ियाँ खरीदी जाती है, तो इसका आवश्यक परिणाम प्रत्यक्षतः यह प्रतीत होता है कि समूह में एक विक्रेता जो बेचता है उसे अन्य नही बेचते। यह तर्क दो बातों को अनदेखा कर देता है : (1) मोटरगाड़ी के किसी एक प्रकार के अन्य प्रकार केवल **अपूर्ण** स्थानापन्न है, और (2) मोटरगाड़ियों के अतिरिक्त कई अन्य स्थानापन्न है। किसी एक उत्पादक के बाजार मे वृद्धि न केवल उसके उत्पाद के निकटतम स्थानापन्नो के बाजारों मे कमी से होती है, बल्कि **सब** स्थानापन्नों के बाजारों में कमी से होती है (अर्थात्, अन्य सब उत्पादो के बाजारो से)। इसलिए, जिस मात्रा तक विज्ञापन लोगों को मकान या रेल का किराया न देकर मोटरगाड़ी खरीदने की ओर ले जाता है, विज्ञापन के बाद 1,000 डालर पर कुल बिक्री 1,00,000 गाड़ियों से अधिक होगी। जिस प्रकार किसी एक उत्पादक द्वारा बेची गई राशि न केवल उसकी कीमत पर बल्कि उसके विक्रय व्यय पर भी निर्भर करती है, ठीक उसी प्रकार उत्पादको के किसी समूह द्वारा बेची गई राशि उनके कुल विज्ञापन व्यय पर भी अंशतः निर्भर करती है। ये व्यय समूह के भीतर अपने को पूर्णतया काट नहीं देते।

हमारे लिए एक विक्रेता द्वारा विज्ञापन के प्रभावों की और एक विक्रेता द्वारा कीमत घटाने के प्रभावों की तुलना करना उपयोगी होगा। दूसरी स्थिति में हो सकता है कि वह अपने प्रतियोगियों के ग्राहक छीनकर अपने बाजार में बहुतांश में वृद्धि करे। परन्तु यह निश्चित है कि वह अन्य लोगों को भी आकर्षित करेगा, जो पहली बार खरीदने को अभिप्रेरित होते है या जो केवल निम्नतर कीमत के कारण अधिक खरीदते हैं। अन्यथा, माँग वक्र सदा एक लम्ब रेखा होता। इसी प्रकार, जब वह विज्ञापन करता है तो हो सकता है कि उसकी प्राप्ति अंशतः उसके आसन्न प्रतियोगियों को क्षति पहुँचा कर हो, परन्तु यह निश्चित है कि वह माँग मे "नयी" संवृद्धि को भी आकर्षित करेगा। जब सब या अधिकांश विक्रेता विज्ञापन करते हैं, तो उत्पाद के सामान्य वर्ग की बिक्री, निस्संदेह, कहीं अधिक बढ़ती है और उस ढंग से बढ़ती है जो सब के द्वारा कीमतों को घटाने के कारण बिक्री में हुई वृद्धि के तुल्य है।

इसमें संदेह नहीं कि विज्ञापन के परिणामों का वितरण बहुतांश में अपील के स्वभाव पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ, यदि कोई मोटरकार-निर्माता अपनी अपील को पहले ही से "बाजार में" विद्यमान लोगो की ओर विशिष्ट रूप से लक्षित करता है, और उनसे अनुनय करता है कि वे प्रतियोगी उत्पादों के स्थान पर उसके उत्पाद को खरीदें, तो हो सकता है कि उसका अधिकांश प्रभाव इस प्रकार बिखर जाए। लेकिन, इस चरम स्थिति में भी "नयी" माँग के सृजन में उसका विरले ही कोई प्रभाव नहीं होगा। यदि सब या अधिकांश विनिर्माता इस प्रकार की संकीर्ण प्रतियोगिता में लगे हुए हों, तो उनके प्रयास, यद्यपि शायद एक-दूसरे को अधिकांशतः काट देंगे, फिर भी, यह कठिन है कि उत्पाद के सामान्य वर्ग की ओर ध्यान आकर्षित करने में और उसकी बिक्री बढ़ाने में विफल होंगे। दूसरी ओर, विज्ञापन इन से भिन्न शब्दों में अधिकाधिक बनाए जाते हैं; पुराने बाजार के लिए संघर्ष को तीव्र करने के स्थान पर "नये" बाजारों में प्रवेश करने के लिए बिक्री का दबाव लगाया जाता है। इसका कारण यह है कि लोग प्रायः इससे अनभिज्ञ होते है कि नयी दिशा में व्यय करने से कैसी तुष्टि मिल सकती है; और जब उन्हें इसकी जानकारी होती है, वे उसकी ओर आसानी से प्रवृत्त हो जाते हैं। इसके विपरीत, यदि वे पदार्थ के सामान्य प्रकार से पहले ही परिचित होते हैं, तो हो सकता है कि वे उसके एक छाप या प्रकार के बदले दूसरे को उतनी आसानी से न अपनाएँ। जब अपील इस प्रकार नये स्रोतों से माँग आकर्षित करने के उद्देश्य से बनाई जाती है, तो परिणाम बृहत्तर मात्रा में मिलेगा—विज्ञापन के कारण उत्पाद के सामान्य वर्ग की माँग में पर्याप्त वृद्धि होना निश्चित है।

अब हम समूह के किसी सदस्य द्वारा विज्ञापन के **समूह के भीतर** प्रभावों पर विचार करेंगे। स्पष्ट है कि विज्ञापन अपने आसन्न प्रतियोगियों से कुछ खसोटेगा अवश्य। समूह की कुल बिक्री का उसके पक्ष में पुनःसमायोजन हो जाएगा। परन्तु इस बिक्री में बाहर हुई "नयी" बिक्री का क्या होगा? सामान्यतया, विज्ञापक के लिए नयी

माँग को पूरी तरह से अपनी ओर खींचना असंभव है; वह उसे अपनी ओर आकर्षित करता है, परन्तु उसका कुछ भाग उसके प्रतियोगियों को मिल जाता है। जब मोटर-कार का विनिर्माता मोटर में आने-जाने से मिलने वाली तुष्टियों का वर्णन करता है, और उन्हें प्राप्त करने के हेतु सुझाता है कि उसकी कार खरीदी जाए, तो प्रभावित लोगों में से अधिकांश हो सकता है कि पहले उसके उत्पाद की जाँच-पड़ताल करें, परन्तु बहुत थोड़े लोग ऐसे होंगे जो अन्य कारों को देखे बिना खरीदेंगे, और कई अन्यत्र खरीदारी कर लेंगे। इस प्रकार उसके उत्पाद एवं उसके प्रतिद्वन्द्वियों के उत्पादों का विज्ञापन हो जाता है। वास्तव में, "नये" स्रोतों से उसके बाजार के प्रसार में दो अवस्थाएँ सन्निहित हैं : पहली, ग्राहक को व्यय की एक नयी सामान्य विधा (mode) के लिए तैयार करना; और दूसरी, उसे विशिष्ट रूप से अपने उत्पाद के लिए प्राप्त करना। इनमें से प्रत्येक जिस सापेक्ष आसानी से प्राप्त किया जाता है, उस पर यह निर्भर करता है कि उसका विज्ञापन उसके प्रतियोगियों को किस मात्रा तक लाभ पहुँचाता है। परन्तु उनके उत्पादों एवं अपने उत्पाद की माँग का सृजन करने की प्रवृत्ति सदा विद्यमान रहती है।

इसलिए, विज्ञापक अपने आसन्न प्रतियोगियों के बाजारों को बढ़ाता भी है और घटाता भी है। निवल नतीजे के बारे में सामान्यीकरण कठिन है। ऐसा प्रतीत होगा कि जब समूह के भीतर विशिष्टीकरण बहुत कम है, तब प्रतिद्वन्द्वियों के ग्राहकों को अधिक आसानी से प्राप्ति किया जाएगा, क्योंकि एक प्रकार की अपेक्षा अन्य को पसंद करने का आधार कम सारवान है। फिर भी, इसी कारण से, भले ही "नयी" मांग का सृजन केवल एक विज्ञापक द्वारा किया गया हो, समूह के अन्य सदस्यों का भी उसमें बड़ी मात्रा में हिस्सा होगा। लेकिन, यदि उत्पाद बहुत विशिष्टीकृत नहीं है तो क्या यह "नयी" माग एक विचारणीय कारक होगी ? इसका उत्तर निश्चित नहीं है। हो सकता है कि प्रतीत हो कि अधिक एकरूप उत्पाद होने के तथ्य ही का परिणाम यह होगा कि प्रत्येक प्रतियोगी के विक्रय के प्रयास अपने आसन्न प्रतिद्वन्द्वियों के बाजारों के विरुद्ध अधिक स्वभावतः लगे हुए होंगे, और इस प्रकार उन पर निवल प्रतिकूल प्रभाव डालेंगे। यदि प्रतियोगियों की संख्या बड़ी हो तो यह विशेषकर सच होगा, क्योंकि तब प्रत्येक का संभाव्य बाजार (अर्थात्, अन्य के वास्तविक बाजार) उसके अपने बाजार की तुलना में बड़ा होगा। परन्तु दूसरी ओर, उसके प्रतिद्वन्द्वी भी इसी प्रकार तर्क करेंगे; और समूह के भीतर संघर्ष का यह तीव्रीकरण, हो सकता है कि विक्रेताओं के ध्यान को उन स्थायी और टिकाऊ परिणामों की ओर फेर दे जो विक्रय प्रयास को अन्यत्र लगाने पर मिल सकते हैं। पावरोटी ऐसा उत्पाद नहीं है जिसमें बहुत विशिष्टी-करण होता है, तिस पर भी प्रतियोगी रोटी बनाने वाली कम्पनियाँ लोगों से "अधिक रोटी खाओ" कहती हैं। स्पष्टतः किसी एक विक्रेता द्वारा विज्ञापन के समूह के भीतर प्रभाव के बारे में विशिष्टीकरण की मात्रा के आधार पर कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। जहां उत्पाद बहुत भिन्न हों, वहां यह आशंसा नहीं की जाएगी कि एक

के विज्ञापन के कारण दूसरे की बिक्री बढ़ जाएगी। परन्तु कहा जाता है कि जब कालीन-अपमार्जकों के बाजार का पहली बार सृजन किया जा रहा था, तब उसके विज्ञापन के प्रभाव से, घर की सफाई में सामान्य दिलचस्पी उत्पन्न करके,[18] ऐसे दूर के स्थानापन्नों की बिक्री बढ़ी जैसे झाड़ू और फर्श-झाड़न। अन्तत, किसी विक्रेता के विज्ञापन के परिणामस्वरूप उसके अधिक निकट के प्रतियोगियों को फायदा होता है या नुकसान, यह प्रत्येक वैयक्तिक स्थिति की विशिष्टताओं पर अवश्य निर्भर होगा।

अब यदि हम मान लेते हैं कि जिन विक्रेताओं को हमने एक समूह में रखा है उनमें विज्ञापन सामान्य है, तो प्रत्येक अपने प्रतिद्वन्द्वियों के अतिक्रमणों से सुरक्षित

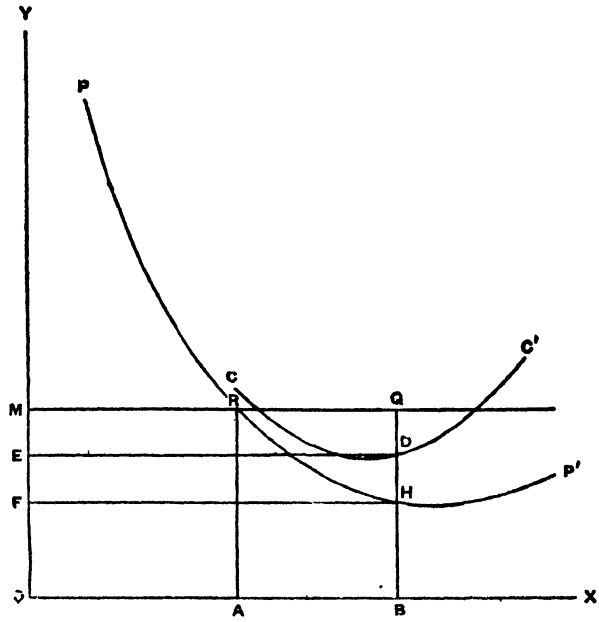

चित्र 25

होगा। वह अपने विज्ञापन के कारण उन ग्राहकों को रोक रखेगा जिन्हें वह उसके बिना खो चुका होता; अन्य को वह अपने प्रतियोगियों को खो देगा; अन्य को उनसे प्राप्त करेगा। समूह में सर्वत्र दशाओं की समरूपता की अपनी कल्पना को याद करने पर, यह निष्कर्ष अवश्य निकलता है कि समूह द्वारा समूह के बाहर के विक्रेताओं के बाजारों का अतिक्रमण करने के कारण **सब** उत्पादकों की बिक्री बढ़ती है, और यह वृद्धि केवल एक या कुछ विक्रताओं द्वारा विज्ञापन करने से होने वाली वृद्धि से कहीं अधिक होती है। अब, यदि **अन्य** उत्पाद समूहों के विक्रेता विज्ञापन करें तो क्या होगा? अनुवर्ती विश्लेषण में हम अकेले समूह के भीतर समायोजनों के परे नहीं जाएंगे। यह

स्पष्ट हो जाएगा कि एक समूह के भीतर व्यक्तियों पर लागू की जाने वाली रीति से मिलती-जुलती रीति का विस्तार अन्योन्याश्रित समूहों की प्रणालियों के लिए और सम्पूर्ण अर्थप्रणाली की सर्व-समावेशी समस्या के लिए भी किया जा सकता है।

चित्र 25 मे, मान लो कि प्रत्येक वैयक्तिक उत्पादक की उत्पादन लागत का वक्र PP' है, उसकी कीमत OM है, और OA व्यापार का परिमाण है। तब सब के व्यापार का कुल परिमाण OA गुणा विक्रेताओं की संख्या होगा। यह देखा जाएगा कि लाभ को उस न्यूनतम राशि के बराबर रखा गया है (यह PP' वक्र में सम्मिलित है) जो पूंजी और व्यावसायिक योग्यता को आकर्षित करने और बनाए रखने के लिए आवश्यक है। किसी एक उत्पादक के लिए $OM=AR$ कीमत पर उत्पादन और विक्रय की संयुक्त लागतों का वक्र CC' है। अनुवर्ती विश्लेषण में वह सदा इस सामान्य कल्पना के अन्तर्गत खीचा जाएगा कि विज्ञापन करने वाले अकेले विक्रेता के अलावा अन्य सब के विक्रय व्यय स्थिर रखे जाते है। विचाराधीन विशिष्ट स्थिति में वे शून्य रखे जाते हैं—अन्य उत्पादक विज्ञापन करते ही नहीं।[19] चित्र से स्पष्ट है कि यह उसके हित में है कि वह कुल विक्रय व्यय को $FHDE$ कर दे, जो उसकी बिक्री को OA से बढ़ाकर OB कर देगा, उसकी प्रति इकाई उत्पादन की लागत को AR से घटाकर BH कर देगा, और उसे अतिरिक्त लाभ $EDQM$ प्रदान करेगा। अकेले एक विक्रेता की इस चाल का उसके प्रतियोगियों के बाजारों पर विभिन्न संभव प्रभावों का विवरण पहले ही दिया जा चुका है—वे कम हो जाते हैं, वैसे ही रहें, अथवा बढ़ जाते है। यदि प्रतियोगियों के बाजारों पर हुआ प्रत्यक्ष अतिक्रमण उत्पाद के सामान्य वर्ग के बढ़े हुए उपभोग के कारण उनकी प्राप्ति से अधिक है, तो वे घट जाएंगे। यदि ये दो एक-दूसरे को बराबर कर देते है, तो वे अप्रभावित रहेंगे; और यदि उत्पाद के सामान्य वर्ग के उपभोग मे वृद्धि विज्ञापित प्रकार के उपभोग में वृद्धि से अधिक है तो वे बढ जाएंगे। यदि प्रतियोगियों के बाजार घट जाते है तो विज्ञापन करने का प्रोत्साहन, जो जैसे विचाराधीन उत्पादक में पहले ही से था ठीक वैसे ही अन्य में भी विद्यमान था, विज्ञापन न करने पर होने वाली हानियों के कारण से अधिक तीव्र हो जाएगा। यदि बाजार बढ़ जाते हैं, तो विज्ञापन के बिना होने वाली प्राप्ति के कारण विज्ञापन की प्रेरणा क्षीण हो जाएगी। लेकिन, किसी विक्रेता के अपने व्यय के द्वारा ऐसी प्राप्तियाँ सदा बढ़ाई जा सकती हैं, इसलिए सब के लिए प्रेरणा सदा विद्यमान रहती है। यह सच है, अतः अब हम विज्ञापन के सामान्य होने के परिणाम का निरीक्षण करेंगे।

वक्र CC' को इस प्रकार निर्धारित किया गया है कि लाभ $EDQM$ केवल एक विक्रेता के लिए संभव है, और कल्पना यह है कि केवल वही विज्ञापन करता है। यह वक्र इस बात का स्पष्टीकरण करता है कि समूह का प्रत्येक विक्रेता ऐसा व्यय करने के लिए क्यों प्रेरित होता है। लेकिन, जिस मात्रा तक समूह के अन्य विक्रेताओं के बाजारों को घटा कर कोई विक्रेता अपने बाजार में वृद्धि करता है, उस मात्रा तक

केवल स्थानान्तरण होता है, निवल प्राप्ति नहीं; जब सब विज्ञापन करते हैं तो प्रत्येक फर्म की बिक्री OA पर स्थिर बनी रहती है। पहले हम उस चरम और सीमान्त स्थिति में परिणाम का अनुसंधान करेंगे जहां समूह के भीतर सब विक्रय प्रयास इस रीति से एक-दूसरे को रद्द कर देते हैं।

हम प्रत्येक उत्पादक के विक्रय व्यय को एक निश्चित राशि तक आगे बढ़ाएंगे, और परिणामों पर गौर करेंगे। मान लो कि प्रत्येक का कुल व्यय (चित्र 26 में)

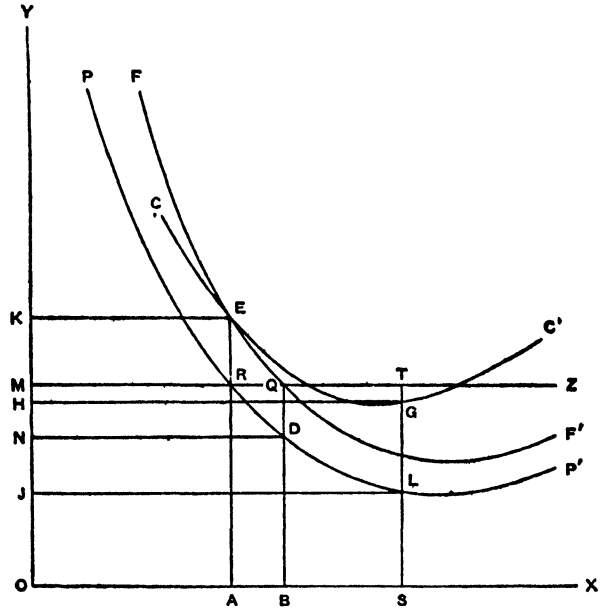

चित्र 26

$MREK$ है, जिसमें PP' चित्र 25 से लिया गया है, और FF' इस प्रकार खींचा गया है कि वह PP' में कुल विक्रय व्यय को परिमाण के अनपेक्ष जोड़ देता है। इस प्रकार $NDQM = MREK = PP'$ और FF' के बीच समरूपतः खींचे गए किसी अन्य आयत के।[20] FF' (चित्र 26) और CC' (चित्र 25) के प्रभेद को सावधानी से अवश्य समझना चाहिए। आधार रेखा से अपनी दूरी के द्वारा CC' **इस कल्पना के अन्तर्गत एक फर्म के लिए** विभिन्न परिमाणों के उत्पादन और विक्रय की लागत बताता है कि **अन्य के विक्रय व्यय स्थिर बने रहते हैं** (जैसा इसे मूलतः खींचा गया था, क्योंकि तब तक कोई विज्ञापन नहीं कर रहा था, विक्रय व्यय शून्य पर स्थिर थे)। आधार रेखा से अपनी दूरी के द्वारा FF' **इस कल्पना के अन्तर्गत** उत्पाद के विभिन्न परिमाणों के उत्पादन और विक्रय की संयुक्त लागत बताता है **कि समूह के सब उत्पादक एक दी**

हुई कुल राशि तक अपने विक्रय व्ययों को लगाते हैं। क्षेत्र $MREK$ न केवल प्रत्येक विक्रेता के कुल विज्ञापन व्यय का निरूपण करता है, बल्कि, जब तक समूह में विक्रेताओं की संख्या अक्षुण्ण बनी रहती है, वह उसकी हानि की ठीक राशि भी बताता है; प्रत्येक की कुल लागत $OAEK$ है और कुल आय $OARM$। कुछ समय के लिए मान लो कि उनकी संख्या अक्षुण्ण रहती है। इस पर भी और विज्ञापन करके इन हानियों से बचने की संभावना है।

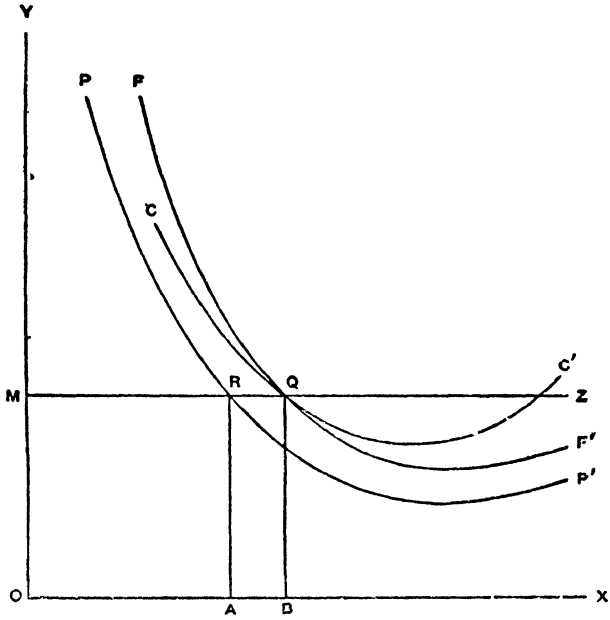

चित्र 27

मान लो कि किसी एक उत्पादक के उत्पादन और विक्रय की संयुक्त लागतों का वक्र CC', इस कल्पना के अन्तर्गत कि अन्य की विक्रय लागतें स्थिर बनी रहती हैं, फिर खींचा जाता है; किन्तु इस नयी शर्त को निर्दिष्ट करके कि अन्य सब उत्पादक FF' द्वारा इंगित कुल विक्रय व्यय ($MREK$) कर रहे है। वह (CC') E से होकर जाएगा, क्योंकि अब OA राशि बेचने के लिए $MREK$ का व्यय आवश्यक है; और उसे E की बायीं ओर FF' के नीचे और E की दायीं ओर FF' के ऊपर अवश्य रहना चाहिए, क्योंकि अपने प्रतिद्वन्द्वियों के व्यय से कम व्यय OA से कम राशि को बेचने के लिए पर्याप्त होगा और प्रतिद्वन्द्वियों के व्यय से अधिक व्यय OA से अधिक राशि को बेचने के लिए आवश्यक होगा। CC' वक्र क्षैतिज कीमत-रेखा MZ के नीचे जा सकता है, और नही भी जा सकता। यदि वह MZ के नीचे नहीं जाता तो हानि को लाभ में नही बदला जा सकता, यद्यपि और विज्ञापन करके वह कम की जा सकती है।

यदि वह MZ के नीचे जाता है (जैसे चित्र 26 में) तो $JLGH$ विक्रय व्यय करके $HGTM$ लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं; उत्पत्ति OS होगी, प्रति इकाई उत्पादन लागत SL, प्रति इकाई विक्रय लागत LG, और प्रति इकाई लाभ GT। परन्तु चूंकि अन्य उत्पादक भी ऐसा ही करते हैं इसलिए एकमात्र परिणाम यह होता है कि FF', और उसके साथ CC', और दाहिनी ओर और ऊपर को खिसक जाता है। जब वैयक्तिक विक्रेता CC' पर दाहिनी ओर चल कर अपनी स्थिति को बेहतर नहीं कर सकता, तो आगे विक्रय व्यय नहीं किया जाएगा।[21]

लेकिन, यह परिणाम स्थायी नहीं है; वास्तव में, उपर्युक्त को तर्क के मुख्य सूत्र से विषयान्तर समझना चाहिए। हमारा उत्पादक अब हानि उठा रहा है, जिसका प्रतिरूप $MREK$ है (चित्र 26), परन्तु वस्तुतः हानि इससे कहीं अधिक है क्योंकि अब FF' और ऊपर एवं दाहिनी ओर है। इस हानि से बचने का कोई स्थायी उपाय नहीं है सिवाय इसके कि कुछ विक्रेता इस क्षेत्र को छोड़ दें और अपने बाजारों को बचे हुए विक्रेताओं को समर्पित कर दें।[22] अस्तु, कुछ देर के लिए हम मान लेते हैं कि विक्रय लागत FF' द्वारा निरूपित रहती है, और हम इसकी परीक्षा करते हैं कि अपनी हानियों से हतोत्साहित होकर, जिनका प्रतिनिधि $MREK$ है, जब विक्रेता समूह छोड़ते हैं तो नतीजा क्या होता है। जैसे-जैसे समायोजन होता है, बचे हुए विक्रेताओं के बाजार परिवर्धित हो जाते हैं, और उत्पादन और विक्रय के संयुक्त लागत वक्र FF' पर आगे की ओर गिरते जाते हैं। शीघ्र ही लागत फिर कीमत के बराबर हो जाएगी, और जब इतने काफी विक्रेता समूह को छोड़ चुकते हैं कि बचे हुए लोगों की उत्पत्ति बढ़ कर OB हो जाती है तो हानि लुप्त हो जाएगी। लेकिन, लागत और कीमत का यह सन्तुलन केवल अस्थायी है। चूंकि विक्रेताओं की संख्या कम हो गई है, इसलिए CC' फिर खींचा जा सकता है, और अब वह Q से होकर जाता है, जैसे चित्र 27 में। यह इंगित करता है कि नये विक्रय व्यय के द्वारा किसी उत्पादक को कितना लाभ उपलब्ध है। लेकिन, जब विक्रय व्यय सामान्य हो जाते हैं तो, पहले की भाँति, FF' के और भी दायीं ओर खिसक जाने के कारण आशंसित लाभ हानि में बदल जाते हैं। ये हानियाँ फर्मों द्वारा समूह को छोड़ने पर फिर लुप्त हो जाती है, और समायोजनों का सिलसिला फिर दुहराया जाता है। जैसे-जैसे विक्रय व्यय बढ़ते हैं और प्रतियोगिता से फर्मों का बहिर्गमन होता रहता है, FF' और CC' साथ-साथ दायीं ओर खिसकते हैं, परन्तु एक-दूसरे को सदा कीमत-रेखा MZ पर काटते हैं। यह गति तब रुकेगी और सन्तुलन तब स्थापित होगा जब CC' कीमत-रेखा MZ की स्पर्शरेखा हो जाती है, और सन्तुलन की यह शर्त CC' और FF' के प्रतिच्छेद बिन्दु पर आवश्यक रूप से घटित होती है। यह परिणाम चित्र 28 में दर्शाया गया है। यहाँ OA राशि के लिए लागत कीमत के बराबर है; इसलिए क्षेत्र में साधनों के अन्तर्वाह या बहिर्वाह की कोई प्रवृत्ति नहीं है। यह सन्तुलन और विज्ञापन से विपर्यस्त नहीं होगा क्योंकि इस बिन्दु के आगे किसी के द्वारा व्यय करने पर उसे

वर्धमान (औसत) लागत और परिणामी हानि मिलती है, जो इससे स्वतन्त्र है कि अन्य उत्पादक उसका अनुसरण करते हैं या नहीं।

देर-सबेर ऐसे बिन्दु पर पहुँचा जाएगा, यह सन्निहित शक्तियों के स्वभाव से सुस्पष्ट है। जैसे-जैसे सब उत्पादकों के विक्रय व्यय बढ़ते है, संघर्ष का तीव्रीकरण प्रत्येक के लिए अपने बाजार का परिवर्धन अधिकाधिक कठिन बना देगा। इस कारण से, जब Q दायीं ओर खिसकता है तो Q के बाद प्रति इकाई विक्रय व्यय (जो CC' और PP' के अन्तर द्वारा दिखाया जाता है) निरन्तर बृहत्तर होता जाता है। दूसरी

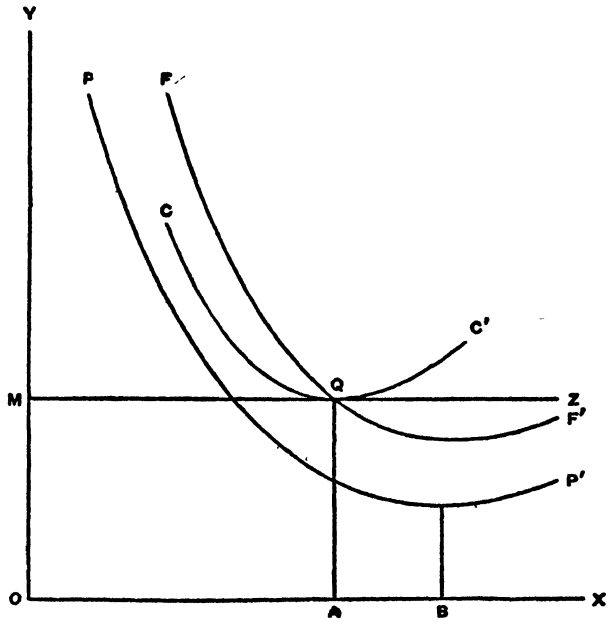

चित्र 28

ओर, उत्पत्ति की वृद्धि के साथ (अर्थात्, Q के दायीं ओर खिसकने पर) प्रति इकाई उत्पादन की लागत (जो PP' द्वारा बताई जाती है) कम तेजी से गिरती है, और अन्ततः बढ़ना शुरू हो जाती है। ये दोनों शक्तियाँ इस प्रकार कार्य करती हैं कि Q के बाद उत्पादन और विक्रय की संयुक्त लागत बढ़ती है; दूसरे शब्दों में, इस प्रकार कि Q के दायीं ओर खिसकने में, जब तक CC' और MZ स्पर्श-स्थिति में नहीं आ जाते, CC' बिन्दु Q पर घूर्णन करता है। इस परिणाम की ओर कार्य करने वाला एक अन्य और अधिक मौलिक प्रभाव है। चूंकि उत्पादन लागत का वक्र PP' न्यूनतम तक गिरकर फिर उठने लगता है, इसलिए प्रत्यक्ष है कि उसके ऊपर स्थित FF' को ऐसा ही अवश्य करना चाहिए। जब समूह के सब उत्पादों का विक्रय व्यय बढ़ता है,

तो आवश्यक है कि PP' से दूर हटता हुआ FF' अन्ततः कीमत-रेखा MZ की स्पर्शरेखा हो जाना चाहिए। जब वह इस ढंग से हटता है तो, जब तक स्पर्शिता की स्थिति नहीं आ जाती, वह MZ से अपने गतिमान प्रतिच्छेद बिन्दु Q पर घूर्णन करता है।[23] परन्तु CC' भी Q पर घूर्णन करता है, और Q की दायीं ओर FF' के ऊपर आवश्यक रूप से होता है। यदि FF' और MZ की अन्तिम स्पर्शिता अवश्यंभावी है, तो CC' और MZ की स्पर्शिता, सुतरां, अवश्यंभावी है, क्योंकि FF' के खिसकने के कारण CC' का घूर्णन अनिवार्य हो उठता है। (चूंकि सन्तुलन का निर्धारण CC' की स्पर्शिता द्वारा होता है, जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, इसलिए उस बिन्दु के आगे कभी गति नहीं होगी—FF' और MZ की स्पर्शिता वास्तविकता में कभी प्राप्त नहीं होगी।)

साथ ही, यह द्रष्टव्य है कि उत्पादन का पैमाना OB के पैमाने से (चित्र 28), जो शुद्ध प्रतियोगिता में स्थापित होता, बड़ा या छोटा हो सकता है। लेकिन, उसकी निश्चित सीमाएँ हैं। वह CC' वक्र के न्यूनतम बिन्दु से अभिन्न है, जो, जैसा कि दिखाया जा चुका है, अवश्यंभावी रूप से FF' के न्यूनतम बिन्दु की बायीं ओर होता है। FF' के स्वरूप से,[24] उसका न्यूनतम बिन्दु PP' के न्यूनतम बिन्दु B की दायीं ओर सदा अवश्य होना चाहिए। इस प्रकार, यह अपेक्षा कि CC' का न्यूनतम बिन्दु FF' के न्यूनतम बिन्दु की बायीं ओर होता है, इस संभावना का प्रतिषेध नहीं करती कि वह B की बायीं ओर, जैसा चित्र 28 में, होने के स्थान पर उसकी दायीं ओर हो। परिणाम इन वक्रों के ढलानों पर, और विशेष कर के Q पर CC' और FF' के बीच कोण के परिमाण पर निर्भर करेगा।

इस दृष्टान्त में, जैसा उसका अब तक विकास किया गया है, सन्तुलन की ओर समायोजन विक्रेताओं की संख्या में कमी के द्वारा होता है, जिसके फलस्वरूप बचे रहने वाले प्रत्येक विक्रेता की बिक्री के परिमाण में वृद्धि होती है। यह इस कल्पना के कारण आवश्यक हो गया था कि उत्पाद के सामान्य वर्ग की कुल बिक्री विक्रय लागत से अप्रभावित रहती है, उनका निवल प्रभाव केवल यह होता है कि विचाराधीन क्षेत्र के भीतर वे एक-दूसरे को काट देते हैं। इस अधिक वास्तविक कल्पना के अन्तर्गत कि विज्ञापन द्वारा उत्पाद के सामान्य वर्ग की कुल बिक्री बढ़ाई जाती है, तक में परिवर्तन करना कठिन नहीं है। हम फिर चित्र 26 पर विचार करते हैं, जिसमें विक्रय व्यय में सामान्य वृद्धि के कारण उठाई गई पहली हानियां $MREK$ द्वारा दिखाई गई हैं। स्मरण रहे कि ये हानियां फर्मों द्वारा तब तक समूह छोड़ते चले जाने के कारण घटी थीं जब तक कि बचे हुए लोगों के बाजार OA से बढ़कर OB नहीं हो जाते। अब मान लो कि वही व्यय समूह की कुल बिक्री को बढ़ा देता है, जिससे प्रत्येक उत्पादक की बिक्री OA से कुछ अधिक हो जाती है। यदि वह OA से अधिक और OB से कम है, तो लागत का कीमत से समायोजन सम्पूर्ण करने के लिए अल्पतर संख्या में विक्रेताओं को क्षेत्र छोड़ना पड़ेगा। यदि वह OB के बराबर है तो विक्रेताओं की संख्या में कोई

परिवर्तन होना आवश्यक नहीं है, क्योंकि इस उत्पत्ति पर विक्रय लागत वसूल हो जाएगी। यदि वह OB से अधिक है, तो अतिरिक्त लाभ मिलेंगे, और इस क्षेत्र की ओर नये उत्पादक तब तक आकर्षित होंगे जब तक कि प्रत्येक का बाजार फिर से घट नहीं जाता। जैसे-जैसे विक्रय व्यय और आगे बढ़ाया जाता है, लागत इसी प्रकार से, विक्रय कीमत के बराबर रखी जाएगी, और अन्तिम समायोजन में एक फम के लक्षण वही होंगे, जिनका वर्णन पहले ही किया जा चुका है (चित्र 28)। लेकिन, इन दो स्थितियों में वह एकरूप नहीं होगा, क्योंकि नयी दशाओं के कारण CC' का ढलान प्रभावित होता है। इनके अनुसार, एक-एक उत्पादक के विक्रय व्यय न केवल उसके आसन्न प्रतिद्वन्द्वियों से (जो समूह के भीतर है) बल्कि अधिक दूरस्थ स्रोतों से भी ग्राहकों को आकर्षित करते है। बढ़े हुए व्यय, इस प्रकार अधिक विस्तृत क्षेत्र में कार्य करके, बड़े परिणाम देते हैं; दूसरे शब्दों में, उत्पत्ति के बढने पर प्रति इकाई विक्रय लागत पहले की अपेक्षा अब अधिक तेजी से गिरेगी। लेखाचित्रीय रूप से, इसका अर्थ यह है कि CC' का न्यूनतम बिन्दु जहां वह पुरानी दशाओं के अन्तर्गत था उससे और दायी ओर होगा। इससे तुरन्त यह परिणाम निकलता है कि उत्पादन का परिणामी पैमाना पहले के अधिक प्रतिबंधित हल के अन्तर्गत पैमाने से बृहत्तर होगा। लेकिन, इसमें ऐसी कोई बात नहीं है जो इस निष्कर्ष को बदले कि वह शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत पैमाने से बड़ा या छोटा हो सकता है।

अब हम समूह समस्या की दूसरी अवस्था पर विचार करते है। हमने कल्पना की है कि प्रतियोगिता केवल विज्ञापन के माध्यम से की जाती है, और कीमतें तथा "उत्पाद" अपरिवर्तित बने रहते है। अब हम विक्रय व्यय और "उत्पादो" को स्थिर रखेंगे, और सम्पूर्ण प्रतियोगिता-प्रक्रिया के उस भाग पर विचार करेगे जो कीमत के आधार पर की जाती है। स्मरण रहे कि इस विश्लेषण को दो दृष्टियों से देखा जा सकता है। यह एक जटिल सम्पूर्ण प्रणाली के एक भाग की अकेले मे परीक्षा है। यह उन आर्थिक स्थितियों में सीधे प्रयोज्य भी है जहां कल्पित दशाओं की सन्निकट दशाएं पाई जाती है। विज्ञापन और विक्रय क्रियाओं का क्षेत्र व्यावसायिक व्यवहार (आचार) या व्यावसायिक नैतिकता द्वारा हो सकता है कि संकीर्ण रूप से विहित हो; या वार्षिक विक्रय व्यय रिवाज या जड़ता के कारण हो सकता है कि बहुत-कुछ नियत हो जाए। इसके साथ-साथ यदि "उत्पाद" पर्याप्त रूप से निर्धारित हो तो ये दशाएं पूरी हो जाती हैं।[25]

लागत वक्रों पर स्थिर विक्रय व्ययों के प्रभाव पर पहले ही विचार किया जा चुका है;[26] और हम एक उत्पादक के लिए उत्पादन लागत वक्र, PP', और उसके ऊपर उत्पादन और विक्रय की संयुक्त लागत का वक्र, FF', तुरन्त खींच सकते हैं (चित्र 29)। इस विश्लेषण में इन वक्रों की स्थिति आद्योपान्त अपरिवर्तित बनी रहती है। इस सम्बन्ध में, विशेषतया संयुक्त लागत के वक्र के स्वभाव को स्पष्ट और निश्चित रूप से समझ लेना चाहिए। वह विक्रय व्ययों—पदार्थ की प्रत्येक राशि का उत्पादन और विक्रयण करने के लिए आवश्यक व्यय—में परिवर्तन के साथ बिक्री के परिमाण

में परिवर्तनों को नहीं दिखाता। किसी बिन्दु की कोटि (ordinate) उत्पादन के तदनुरूप परिमाण की प्रति इकाई उत्पादन लागत, धन उसकी स्थिर विक्रय लागत का आनुपातिक हिस्सा बताती है। बिक्री का परिमाण यहां विक्रय व्यय पर नहीं (न ही "उत्पाद" पर) बल्कि कीमत पर निर्भर करता है। वह मांग वक्र, dd', द्वारा दिखाया जाता है जिसके स्वभाव का वर्णन पहले के विश्लेषण में किया जा चुका है।

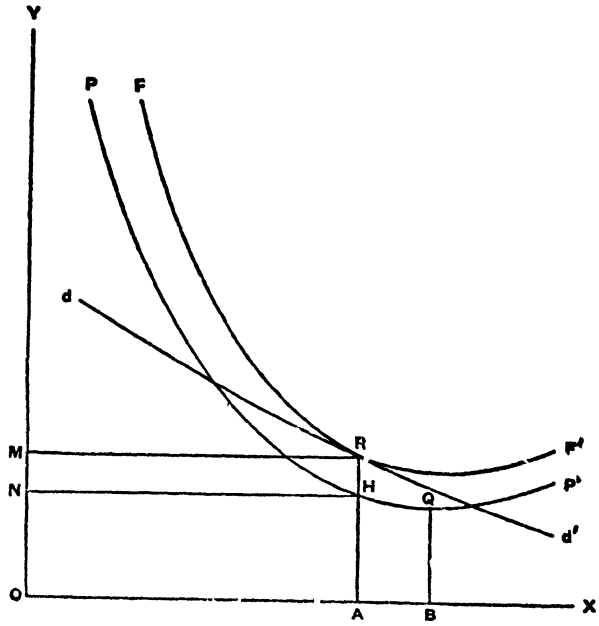

चित्र 29

इस परिस्थिति में प्रस्तुत की गई कीमत-प्रतियोगिता की समस्या को सक्षेप में निबटाया जा सकता है, क्योंकि यह अध्याय 5 में विक्रय लागत के पूर्ण अभाव को सन्निहित करने वाली अधिक सरलीकृत दशाओं के अन्तर्गत विचारित समस्या से किसी सारवान दृष्टि में भिन्न नही है; परन्तु एकमात्र शर्त यह है कि पहले के विश्लेषण के उत्पादन लागत वक्र PP' की जगह यहां संयुक्त लागत का वक्र FF' ले लेता है। वैश्लेषिक रूप से, ये दो स्थितियां एकरूप हैं। इन दोनों में यह आधारभूत कल्पना सन्निहित है कि विक्रय लागत (और "उत्पाद") स्थिर रखे जाते हैं जबकि कीमतों में परिवर्तन होने दिया जाता है। अध्याय 5 में विक्रय लागत शून्य पर स्थिर रखी गई है, जिससे FF' (चित्र 29) और PP' का संपतन होता है। वर्तमान स्थिति में वह शून्य से बड़ी किसी राशि पर स्थिर रखी जाती है, जिससे FF' और PP' भिन्न हो जाते हैं, और पूरी की जाने वाली आवश्यक लागतें FF' के द्वारा प्रकट की जाती हैं। जैसे-

जैसे कीमतें बदली जाती हैं, और जैसे-जैसे सामान्य क्षेत्र में साधनों का आना और जाना होता है, मांग वक्र dd' अब FF' के इर्द-गिर्द उसी प्रकार आचरण करता है जैसे पहले वह PP' के इर्द-गिर्द करता था (PP' को FF' की एक विशेष स्थिति समझा जा सकता है, वह स्थिति जिसमें विक्रय लागत शून्य पर स्थिर है)। केवल इस अन्तर को ध्यान में रखते हुए, समूह समस्या का अध्याय 5 में दिया गया पूरा विश्लेषण अब प्रसंगोचित हो जाता है। यहां भी दो प्रकार के मांग वक्र खीचे जाने चाहिए;[27] और हलों की वही विविधता सामने आती है, जो इस पर निर्भर करती है कि विक्रेता अल्प संख्या में हैं या बहुत है।

इस स्थान पर बड़ी संख्या में विक्रेताओं वाले "सामान्य" हल को दुहराया जाएगा, ताकि यह दिखाया जा सके कि रूप मे परिवर्तन किए बिना पिछले विश्लेषण को विक्रय लागत का समावेश करके किस प्रकार पूर्ण किया जा सकता है। नतीजा यह होता है कि जहां FF' की dd' स्पर्शरेखा है वहा सन्तुलन होता है; यहां dd' इस कल्पना के अन्तर्गत एक विक्रेता का मांग वक्र है कि अन्य विक्रेताओं की कीमतें स्थिर रहती हैं। यह चित्र 29 में दर्शाया गया है, जिसमें उत्पत्ति OA है, और कीमत AR है; प्रति इकाई उत्पादन लागत, AH, धन प्रति इकाई विक्रय लागत, HR, से प्रति इकाई संयुक्त लागत मिलती है, जो कीमत के बराबर है। सब इकाइयों की कुल उत्पादन लागत $OAHN$ है; कुल विक्रय लागत $NHRM$ है, और कुल सयुक्त लागत $OARM$ है जो कुल आय के बराबर है, और पूंजी तथा व्यवसाय योग्यता को आकर्षित करने और बनाए रखने के लिए आवश्यक न्यूनतम लाभ के ऊपर कोई अतिरिक्त लाभ नही मिलता।

यह आसानी से दिखाया जा सकता है कि इसके अलावा कोई दूसरा समायोजन टिक नहीं सकता। यदि फर्मों की संख्या अल्पतर होती, जिससे प्रत्येक वैयक्तिक फर्म का dd' उसकी सन्तुलन स्थिति की दायीं ओर और ऊपर होता, तो अतिरिक्त लाभ की संभावनाएं होतीं। अल्पकालिक रूप से, प्रतिनिधि उत्पादक की इष्टतम कीमत किंचित् उच्चतर होगी, और उसकी उत्पत्ति बृहत्तर होगी। लेकिन, अतिरिक्त लाभ नये विक्रेताओं को आकर्षित करेंगे, और समूह की कुल उत्पत्ति के पुनर्वितरण के साथ एक-एक फर्म के उत्पाद का मांग वक्र बायी ओर खिसक जाएगा। यह गति तब तक जारी रहेगी जब तक अतिरिक्त लाभ पूर्णतया समाप्त नही हो जाते, और, चित्र 29 की भांति, FF' की dd' स्पर्शरेखा नहीं हो जाता। यदि अल्पकालिक रूप से मांग वक्र अपनी सन्तुलन स्थिति के नीचे और बायी ओर हो तो दुरुस्त करने वाले विपरीत समायोजन होगे। उत्पादक हानि उठाएंगे, समूह को छोड़ देगें, और जब तक मांग वक्र FF' की स्पर्श-रेखा फिर नहीं हो जाता वह दायी ओर और ऊपर को खिसकेगा।

अब कीमतों पर और बड़े पैमाने के उत्पादन की किफायतों पर विज्ञापन के प्रभाव के बारे में कुछ प्रश्नों का, जिन पर बहुत विवाद हुआ है, उत्तर दिया जा सकता है। एक ओर तो यह कहा गया है कि विज्ञापन अपव्यय है—और यह कि वह अतिरिक्ति लागत के कारण कीमतों को ऊंचा उठा देता है, जिसे अवश्य पूरा करना

होता है। दूसरी ओर यह कहा गया है कि वह उचित है, क्योंकि वह बाजार को विस्तृत करता है, बड़े पैमाने के उत्पादन को प्रोत्साहन देता है, और इस प्रकार लागतों और कीमतों को गिराता है।

आइए, पहले हम एकाधिकारिक प्रतियोगिता के (जिसमे विज्ञापन सम्मिलित है) परिणामों की शुद्ध प्रतियोगिता के परिणामों से तुलना करें। यह पहले तर्क के उस भाग में जहां विक्रय व्यय अलग रखे गए थे, देखा जा चुका है[28] कि उत्पादन का पैमाना शुद्ध प्रतियोगिता के पैमाने से बड़ा या छोटा हो सकता है। जिस स्थिति में कीमत समायोजन अलग किए गए हैं वहां भी यह निष्कर्ष सच होता है (जैसा कि सम्पूर्ण सिद्धान्त के तर्कसंगत होने पर, अवश्य होना चाहिए)। हम देख चुके है कि FF' का न्यूनतम बिन्दु B की दायी ओर है। यदि dd' बहुत लोचदार हो (उसे यथार्थतः क्षैतिज होना चाहिए), तो यह कल्पनीय है कि वह B की दायी ओर किसी बिन्दु पर FF' की स्पर्शरेखा हो, जिस स्थिति मे एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत उत्पादन का पैमाना शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत पैमाने से बड़ा होगा। लेकिन, ऐसी अत्यधिक लोच अवश्य ही बहुत असाधारण होगी, और यद्यपि सामान्य निष्कर्ष यह है कि उत्पादन का पैमाना शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत पैमाने से, **हो सकता है कि**, बड़ा हो या छोटा हो, उसके छोटे होने की संभाव्यता कही अधिक प्रतीत होती है। जहां तक कीमतो का सम्बन्ध है, वे अवश्यंभावी रूप से ऊंची होती है, क्योंकि शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक-एक फर्म सर्वाधिक प्रभावकारी रूप से और विक्रय लागत लगाए बिना BQ कीमत पर OB राशि का उत्पादन कर रही है (चित्र 29), और सयुक्त लागत का वक्र इतना नीचे तक कभी नही गिरता। वास्तव मे, यह कहा जा सकता है कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमतें शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमतों से दो कदम ऊँची है। पहले, वे ऊंची हैं क्योंकि विक्रय लागत अवश्य जोड़ी जानी चाहिए; और दूसरे, क्योंकि मांग वक्र क्षैतिज न हो कर तिरछा होता है, और इस प्रकार FF' से स्पर्श-बिन्दु वक्र पर न्यूनतम बिन्दु की बायी ओर और ऊपर को खिसक जाता है।

लेकिन, जब तुलना शुद्ध प्रतियोगिता से नहीं बल्कि उन दशाओं से की जाती है जो विज्ञापन के बिना होतीं, तो भिन्न निष्कर्ष मिलते है। अब यह देखा जाता है कि यद्यपि, समरूपतः, विक्रय लागत लगाने पर उत्पादन का पैमाना विक्रय लागत न लगाने पर उत्पादन के पैमाने से **हो सकता है कि** बड़ा या छोटा हो, फिर भी विक्रय लागत लगाने पर उसके बड़े होने की सभाव्यता कहीं अधिक है। यदि मांग वक्र dd' का ढलान[29] विक्रय व्यय से अप्रभावित रहता है, तो निश्चित है कि FF' से उसका स्पर्श-बिन्दु PP' से उसके स्पर्श-बिन्दु की दाहिनी ओर होगा (क्योंकि किसी संभव उत्पत्ति के लिए FF' का ढलान PP' के ढलान से अधिक है)। यदि मांग वक्र का ढलान घट जाता है तो स्पर्श-बिन्दु, सुतरां, और भी दाहिनी ओर होगा और उत्पादन का पैमाना और भी बड़ा होगा। यदि विक्रय व्यय, विशेष "उत्पादों" के साथ क्रेताओं के लगाव

को और दृढ़ कर के, मांग वक्र को अधिक ढालू बना देता है, केवल तभी यह संभावना विद्यमान होगी कि FF' से स्पर्श का बिन्दु PP' से स्पर्श के बिन्दु की बायीं ओर रहे। यह कुछ, संभवतः कई, अकेले उदाहरणों में निश्चित रूप से होता है। परन्तु जो अधिमान बनाए जा सकते है वे बिगाड़े भी जा सकते है, और यह बहुत असंभाव्य प्रतीत होता है कि यह एक सामान्य परिणाम हो सकेगा। कीमतें (यद्यपि वे शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमतों से अवश्यंभावी रूप से ऊंची होती हैं) जो वे विज्ञापन के बिना होतीं उससे ऊंची या नीची हो सकती है। यदि (सन्तुलन पर) मांग वक्रों का ढलान लगभग एक-सा रहता है, तो कीमत उच्चतर होगी, क्योंकि तब FF' से स्पर्श का बिन्दु PP' से स्पर्श के बिन्दु के ऊपर रहेगा। परन्तु यदि विक्रय लागत बड़ी नहीं है, जिससे PP' से FF' बहुत ऊपर नही होता, और यदि, विज्ञापन के परिणाम-स्वरूप, मांग वक्रों का ढलान बहुत घट जाता है, तो हो सकता है कि FF' से स्पर्श का बिन्दु PP' से स्पर्श के बिन्दु के नीचे हो, और तब कीमत निम्नतर होगी। सिद्धान्त इससे अधिक निश्चित उत्तर नहीं दे सकता, क्योंकि अधिक निश्चित उत्तर देने को कुछ है भी नही। किसी विशेष स्थिति में विज्ञापन का प्रभाव स्थिति के तथ्यों पर निर्भर करता है।

तीसरे, हम "उत्पाद" के परिवर्तनों पर विचार करेंगे; उस स्थिति में जब कीमत और विज्ञापन व्यय स्थिर रहते है। पहले के कथनों से[30] इस समस्या का स्वरूप पर्याप्त रूप से स्पष्ट है, और इसे कीमत प्रतियोगिता की पूर्वगत स्थिति से भी अधिक सक्षेपतः निबटाया जा सकता है। जो निष्कर्ष मिलते हैं, वे पुनः पहले प्राप्त निष्कर्षों के, जब विक्रय लागत नही थी, एकरूप है, सिवाय इस बात के कि पहले के विश्लेषण मे प्रयुक्त उत्पादन लागत वक्र, PP', के स्थान पर उत्पादन और विक्रय की संयुक्त लागत का वक्र, FF', अवश्य रखा जाना चाहिए। चित्र 30 में, मान लो कि OM नियत कीमत है, किसी एक उत्पाद के किसी रूपान्तरण का उत्पादन लागत वक्र PP' है, और उत्पादन तथा (नियत) विक्रय लागतों का संयुक्त वक्र FF' है। एक-एक उत्पादक के बाजार का आकार उत्पाद के सामान्य वर्ग की कुल मांग पर और उसमें हिस्सा बंटाने वाली फर्मों की संख्या पर निर्भर करता है। स्मरण रहे कि, लेखाचित्रीय रूप से, उत्पाद के प्रत्येक परिवर्तन का अर्थ, सामान्यतः, लागत वक्रों PP' और FF' में[31] और उत्पाद की मांगी गई राशि मे, दोनों में, परिवर्तन होता है। इस प्रकार की प्रतियोगिता की अस्थिरताओं (vagaries) और उसे विश्लेषण और मात्रात्मक विवरण के अन्तर्गत लाने की सीमित संभावनाओं की व्याख्या पहले ही की जा चुकी है। लेकिन, जिस मात्रा तक सन्तुलन का निर्धारण किया जा सकता है, यह आवश्यक है कि "उत्पाद" "स्थिरता प्राप्त कर ले", इस शर्त के अधीन कि सब अतिरिक्त लाभ लुप्त हो जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि उत्पत्ति OA $(=MR)$ होगी जो संयुक्त लागत वक्र FF' और कीमत-रेखा MZ के प्रतिच्छेद से निर्धारित होती है। यदि एक-एक फर्म का बाजार बृहत्तर हो, मान लो कि OB

हो, तो अतिरिक्त लाभ, $GEQM$, नये प्रतियोगियों को आकर्षित करेंगे, और बाजार छोटा हो जाएगा। यदि बाजार OA से छोटा होता, तो कुसमायोजन के दुरुस्त होने तक हानि के कारण विक्रेताओं की संख्या कम होती जाएगी। पहले की जैसी दशाओं के अन्तर्गत, यह संभव है कि MZ की स्पर्शरेखा FF' हो जाए, और उत्पादन का पैमाना स्पर्श-बिन्दु के अनुरूप हो जाए।[32] यह उसी उत्पाद के शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत पैमाने से बड़े उत्पादन के पैमाने की संभावना को पुनः प्रकट करता है, क्योंकि

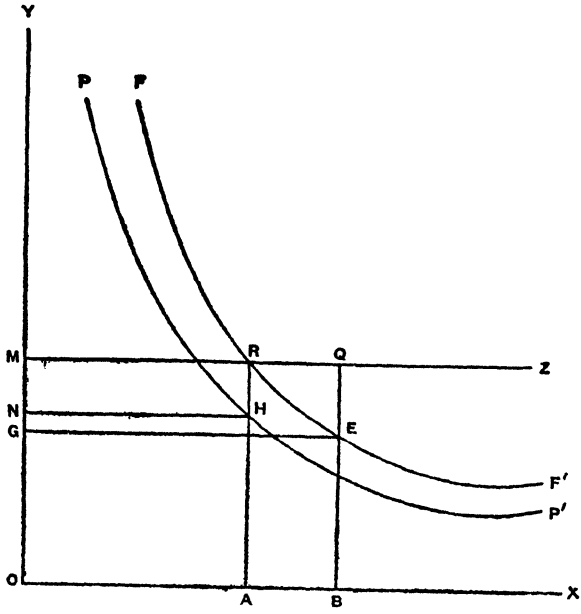

चित्र 30

हो सकता है कि FF' का न्यूनतम बिन्दु PP' के न्यूनतम बिन्दु की दायी ओर हो। सामान्य निष्कर्ष, पुनः, यह है कि उत्पादन का पैमाना बृहत्तर या लघुतर हो सकता है, यद्यपि इसकी संभाव्यता बहुत अधिक प्रतीत होती है कि वह लघुतर होगा।

अब एक-एक करके अभी-अभी विवारित इन तीन स्थितियों का संश्लेषण करना शेष है। जब प्रतियोगी अपने बाजारों को प्रभावित करने वाले तीन कारकों—कीमतों, "उत्पादों", या विक्रय व्ययों—में से किसी को या सब को बदलने के लिए सतर्क रहते हैं, तो समूह सन्तुलन का स्वरूप क्या होता है? प्रत्यक्ष है कि समायोजन ऐसा अवश्य होना चाहिए जो सब चरों के सापेक्ष इष्टतम हो, और यह सीधे योग का विषय है, उसी रीति से जिसका निर्देश वैयक्तिक समस्या के सम्बन्ध में पहले ही किया जा चुका है, जिसमें दृष्टान्त के लिए चुनी गई स्थिति में अनिवार्य न्यूनतम से अधिक

लाभ नहीं मिलते।[33] विद्यमान कल्पनाओं के अन्तर्गत, यह समूह के प्रत्येक उत्पादक के लिए सच होगा। एक-एक फर्म ऐसे कारकों का समायोजन करने की चेष्टा सदा करेगी जो वास्तव में परिवर्तनीय हैं (हो सकता है कि कीमत रिवाज द्वारा नियत हो; या "उत्पाद", अपने स्वरूप के कारण, कठोरता से निश्चित हो) ताकि वह लाभ अधिकतम कर ले। यदि यह समायोजन एक-एक फर्म को क्षेत्र में पूंजी और व्यवसाय योग्यता को बनाए रखने के लिए न्यूनतम आवश्यक लाभ से अधिक देता है, तो परिणाम होगा फर्मों की संख्या में वृद्धि और प्रत्येक के लिए आकुंचित बाजार। मांग वक्र पहले से नीचे और अधिक बायीं ओर होंगे, उत्पादों के प्रकारों मे सुधार किया जाए या उन्हें बदल दिया जाए, और विक्रय लागत के वक्र पहले से ऊपर होंगे और ऊपर को अधिक तेजी से उठेंगे। ये सब कारक लाभ घटा देते है, और गति तब तक जारी रहेगी, जब तक कि लाभ पूर्णतया लुप्त नहीं हो जाते और प्रत्येक फर्म के लिए चित्र 24 (पृष्ठ 121) का सन्तुलन समायोजन प्राप्त नहीं हो जाता। यदि आवश्यक लाभ नही कमाए जा रहे है, तो फर्मो की सख्या में कमी और प्रत्येक के बाजार में परिवर्धन के द्वारा दुरुस्ती विपरीत दिशा में होगी। मांग वक्र उच्चतर और अधिक दायी ओर होगे, उत्पादों के प्रकार घटिया हो जाएंगे, और विक्रय लागत के वक्र पहले से नीचे होंगे और ऊपर को कम तेजी से उठेंगे। जब प्रत्येक फर्म चित्र 24 में निरूपित स्थिति में समायोजित हो जाती है (जो, स्मरणीय है कि, प्रत्येक के लिए इष्टतम "उत्पाद" समायोजन के सम्बन्ध में खीचा गया है), केवल तभी किसी फर्म के लिए किसी प्रकार के परिवर्तन द्वारा अपनी स्थिति में सुधार करना असम्भव होगा। इस समायोजन से किसी विचलन मे जिस रीति से हानि सन्निहित होगी, उसकी व्याख्या ऊपर की जा चुकी है।

4. छोटा समूह और विक्रय लागत

अब हम उन प्रश्नों पर विचार करेंगे जो अल्प संख्या में विक्रेताओं की प्रतियोगिता के कारण उठते है। जिस मात्रा तक वह कीमत या "उत्पाद" के समायोजन को प्रभावित करती है, इस विषय पर अध्याय 5 मे पहले ही विचार किया जा चुका है।[34] अब विक्रय लागत से उसके सम्बन्ध की परीक्षा करना केवल बचा है। चित्र 25 पर फिर विचार करने पर, यदि प्रत्येक विक्रेता की उत्पत्ति OA है, और यदि वे बड़ी संख्या में है, तो कोई भी विक्रय व्यय करने से, जो उसके लाभ को बढ़ाकर $EDQM$ कर देगा, इस विचार के कारण नही रुकता कि उसकी चाल अन्य उत्पादकों द्वारा विज्ञापन का कारण होगी और इस प्रकार उसके क्षणिक लाभों को $MREK$ के बराबर हानि में परिणत कर देगी (चित्र 26)। यदि वह कई उत्पादकों में एक है, तो वह जानता है कि उसकी अपनी चाल सम्पूर्ण स्थिति में एक नगण्य कारक है और यह कि, वह चाहे कुछ करे, अन्य उत्पादकों की नीतियां वही रहेंगी। परिणामस्वरूप, प्रत्येक उत्पादक विज्ञापन करेगा और यह गति, फर्मों के विलोपन के साथ या उसके बिना,

तब तक जारी रहेगी जब तक चित्र 28 में निरूपित सन्तुलन प्राप्त नहीं हो जाता। लेकिन, यदि संख्या अल्प है तो किसी एक विक्रेता द्वारा चली गई चाल का प्रभाव उसके प्रतिद्वन्द्वियों में से प्रत्येक के बाजार पर बृहत्तर मात्रा में केन्द्रित होगा, और इसलिए हो सकता है कि यह उनके द्वारा ऐसी नीतियों के निर्णय में एक कारक हो जिन्हें वे अन्यथा ग्रहण नहीं करते। हम मान लेते हैं कि प्रत्येक विक्रेता इस बात को समझता है। यदि कोई विज्ञापन नहीं कर रहा है, तो हो सकता है कि उसे कोई शुरू न करे, और प्रत्येक यह समझे कि उसकी आक्रामक नीति का उसके प्रत्येक प्रतियोगी पर इतना प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा कि अपने संरक्षण के हेतु वे विज्ञापन करने के लिए बाध्य हो जाएंगे, और यह कि अन्त में सब को क्षति (हानि) पहुँचेगी। यह तर्क कीमत प्रतियोगिता के सम्बन्ध में ऊपर दिए गए तर्क के सदृश है,[35] और समरूप निष्कर्ष की ओर ले जाता है—कि जब विक्रेता अल्प संख्या में होते हैं, हो सकता है कि विज्ञापन द्वारा प्रतियोगिता बीच ही में रुक जाए, भले ही किसी उत्पादक के लिए इस शर्त पर लाभ बढ़ाने की संभावनाए विद्यमान हों कि अन्य के विक्रय व्ययो मे परिवर्तन नही होता।

निस्सन्देह, जहाँ ऐसा परोक्ष प्रभाव विद्यमान हो वहाँ भी, यदि विक्रेता ऐसे प्रभाव की उपेक्षा कर देते है तो, विज्ञापन व्यय किए जाएगे, जिनके परिणाम वैसे ही होंगे, जिनका वर्णन बड़ी संख्या में विक्रेताओं के लिए पहले ही किया जा चुका है। कीमत प्रतियोगिता की स्थिति की भाँति, वे या तो बाजार में किसी स्थायी या दीर्घ-कालिक हित के अभाव के कारण से, या ऐसे हित के होने पर भी अदूरदर्शिता के कारण से, या किसी विक्रेता के इस बारे में संशय के अतिरिक्त और बहुत महत्वपूर्ण कारण से कि उसके प्रतिद्वन्द्वियों के बाजार किस मात्रा तक प्रभावित होगे, और यह कि उसके प्रतिद्वन्द्वियों की नीतियाँ उसी दूरदर्शिता से निर्धारित होंगी या नही जिससे उसकी हुई हैं, उनकी उपेक्षा करने को प्रवृत्त होते है। इनके साथ संशय के और भी तत्वों को अवश्य जोड़ना चाहिए जो इस तथ्य के कारण उत्पन्न होते है (और विशेषकर के विज्ञापन की स्थिति में) कि प्रत्यक्ष और अन्तिम प्रभावों का भेद, अधिक से अधिक, धुँधला होता है। संक्षेप में, जब भी दशाएं ऐसी होती हैं कि किसी एक विक्रेता द्वारा विज्ञापन उसके प्रतियोगियों में से किसी एक के बाजार पर पर्याप्त अतिक्रमण करे, तो उसके विक्रय व्यय की राशि, सामान्यतया, दो सीमाओं के बीच अनिर्धार्य होती है, जिनमें एक सीमा शून्य है और दूसरी वह राशि है जिसका निर्धारण उस रीति के अनुसार होता है जैसे चित्र 28 में विक्रय व्यय निर्धारित किया गया है।

5. विक्रय लागत और अतिरिक्त उत्पादन क्षमता

अध्याय 5 में यह दिखाया गया था[36] कि जब कभी कीमत प्रतियोगिता कार्य में विफल होती है, चाहे इस कारण से कि प्रत्येक विक्रेता केवल कुछ विक्रेताओं से निकट

से प्रतियोगिता करता है या किसी अन्य कारण से, तो परिणाम न केवल उच्चतर कीमतें होता है, बल्कि सन्तुलन समायोजन के स्थायी और प्रसामान्य लक्षण के रूप में अतिरिक्त क्षमता भी होता है। विद्यमान परिकल्पना के, जो विक्रय लागतों को सन्निहित करती है, सम्बन्ध मे इस तर्क की संक्षेप में समीक्षा की जा सकती है। चित्र 29 पर फिर विचार कीजिए (पृ० 134)। वहां खीचा गया मांग वक्र, dd', इस कल्पना के अन्तर्गत विभिन्न कीमतों पर किसी विक्रेता के उत्पाद की मांगों का निरूपण करता है कि जब कीमत समायोजन किए जाते हैं तो उसके प्रतिद्वन्द्वियों की कीमतें (एवं उसके और उसके प्रतिद्वन्द्वियों दोनों के विक्रय व्यय) स्थिर रहती है। यह चित्र 15 में dd' के अनुरूप है, जहां विक्रय व्ययों की उपेक्षा कर दी गई है। अब हम चित्र 29 में चित्र 15 के DD' के अनुरूप वक्र की कल्पना करें, जो इस कल्पना के अन्तर्गत विभिन्न कीमतों पर किसी एक विक्रेता की मांग का निरूपण करता है कि उसके प्रतिद्वन्द्वियों की कीमतें उसकी अपनी कीमतों के साथ बदलती है। यह वक्र dd' से अधिक ढालू होगा और इसलिए FF' से उसका स्पर्श-बिन्दु R की बायीं ओर उससे ऊंचा होगा। उत्पादन का पैमाना OA से कम होगा, और उत्पादकों की संख्या चित्र 29 में चित्रित दशाओं के अन्तर्गत उत्पादकों की संख्या से बड़ी होगी। यदि हम कल्पना कर सकें कि चित्र 29 के DD' की लोच वही है जो चित्र 15 में DD' की है (अर्थात्, यह कि उसकी लोच विज्ञापन से अप्रभावित रहती है), तो PP' के सापेक्ष FF' की स्थिति से सुस्पष्ट है कि उत्पादन का पैमाना उससे, जो विज्ञापन के बिना था, बृहत्तर होगा। उत्पादकों की संख्या बृहत्तर होगी या कमतर यह इस पर निर्भर करेगा कि विक्रय व्यय उत्पाद के सामान्य वर्ग की मांग को किस मात्रा तक बढ़ाते हैं। इसलिए, जहां भी कीमत प्रतियोगिता अपूर्ण रूप से कार्य करती है, वहां यह सम्भाव्य प्रतीत होता कि विज्ञापन उत्पादन के वास्तविक और दक्षतम पैमाने में अन्तर को घटा देता है। परन्तु कुल लागत और कीमतें उच्चतर होती है। प्रति इकाई विक्रय लागत उत्पादन लागत में होने वाली कमी से अधिक होती है। इसलिए इस परिणाम को प्राप्त करने के लिए खर्च किए गए साधनों की मात्रा उसे प्राप्त करके बचाए गए साधनों की मात्रा से अधिक होती है। और, स्वभावतया, अतिरिक्त क्षमता का बकाया बना रहता है।

6. प्रत्येक उत्पादक की परिवेशी दशाओं की विविधता

प्रत्येक उत्पादक की परिवेशी और उसके बाजार को निर्धारित करने वाली दशाओं की विविधता के कारण प्रस्तुत कठिनाइयाँ बहुतांश में प्रतिपादनात्मक हैं। विभिन्न उत्पादकों के मांग वक्र, उत्पादन लागत वक्र, और विक्रय लागत वक्र जिस मात्रा तक स्थिति और आकृति में अलग होते हैं, प्रत्येक के लिए पृथक् चित्र खींचा जाना चाहिए। वे सब एक-से है, इस कल्पना के अन्तर्गत प्रस्तुत किए गए विश्लेषण को प्रत्येक उत्पादक पर, उसके अपने उत्पाद के और उसके अपने बाजार के समुपयुक्त

स्तरों के सम्बन्ध में जो घटित होता है उस पर, लागू होता समझना चाहिए।[37] इस स्थिति में कीमतों, उत्पादन लागतों, विक्रय लागतों, और उत्पत्तियों में बहुत विविधता होगी; परन्तु जब तक स्थानापन्नों का उत्पादन पर्याप्त रूप से संभव है, प्रतियोगी स्तर के ऊपर लाभ नहीं मिलेंगे, क्योंकि उत्पादकों की संख्या की वृद्धि उन्हें घटा देगी।

जब पूरा क्षेत्र या उसके भाग अतिक्रमणों से पर्याप्त रूप से सुरक्षित होते हैं तो जिस ढंग से एकाधिकार लाभ उत्पन्न होते हैं, इसका वर्णन अध्याय 5 में विस्तारपूर्वक किया जा चुका है। मांग वक्र लागत वक्रों से स्पर्श-बिन्दु की दायीं ओर होंगे (लागत वक्रों में अब उत्पादन और (स्थिर) विक्रय लागतें दोनों सम्मिलित हैं) और उन दोनों के अन्तराल (अन्तर) में एकाधिकार लाभ प्रकट होते हैं। इसी परिणाम का वर्णन करने का एक अन्य ढंग यह कहना है कि जैसे चित्र 25 में CC' वक्र MZ के नीचे आ जाता है, वैसे ही विक्रय लागत का वक्र जो इस कल्पना के अन्तर्गत खींचा जाता है कि अन्य उत्पादकों के व्यय स्थिर रहते है, कीमत-रेखा के नीचे तक आ जाएगा, जिससे $EDQM$ के बराबर एकाधिकार लाभ स्थायी रूप से मिलते हैं। इसका कारण यह है कि वक्र को ऊपर उठाने वाली और उसे पीछे को मोड़ने वाली प्रतियोगितामूलक शक्तियाँ अनुपस्थित हैं।

विज्ञापन की उपस्थिति से एकाधिकार लाभ की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। जहां कहीं भी कोई क्षेत्र-विशेष अतिक्रमणों से सुरक्षित होता है, उत्पाद की मांग का सृजन या विद्यमान मांग का संवर्धन किया जा सकता है और एकाधिकार लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं, जो हमारी पहले की कल्पनाओं (अध्याय 5) के अन्तर्गत संभव लाभों से कहीं अधिक होते है। यह व्यावसायिक योग्यता के लिए एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जिसे प्रतियोगिता के सिद्धान्त में स्वल्प मान्यता मिली है, क्योंकि मांग वक्र को प्राय दत्त (datum) समझा जाता है। अपने उत्पाद के मांग वक्र को ऊपर उठाने की चेष्टा में एवं उसके लागत वक्र को नीचे करने की चेष्टा में व्यवसायी अपनी योग्यता के लिए कार्य-क्षेत्र पाता है। प्रतिद्वन्द्वी उत्पादों के लिए जिन मांगों का सृजन किया जा सकता है वे, निस्संदेह, इस प्रक्रिया की सीमा नियत करते हैं, परन्तु यहां हम उस स्थिति पर विचार कर रहे हैं जिसमें सीमा इतनी काफी दूर है कि न्यूनतम स्तर से अधिक लाभ की गुंजाइश रहती है। प्रतिद्वन्द्वी उत्पादकों के सुस्थापित हो सकने की स्थिति में, जैसा ऊपर बताया गया है, सब लाभ इस स्तर तक घट जाएंगे। अन्त में, न्यूनतम स्तर स्वयं विज्ञापन अपील के कारण अन्तरण की संभावना के माध्यम से व्यवसाय में आने वाले जोखिमों से प्रभावित होता है।

7. निष्कर्ष

अध्याय 5 के अन्त में शुद्ध और एकाधिकारिक प्रतियोगिता की तुलना की गई थी, और यह निष्कर्ष निकाला गया था कि "विशिष्टीकृत उत्पाद की कीमत समस्या,

निष्कर्षों में निश्चित गलतियों के बिना, प्रतियोगितामूलक मांग और लागत वक्रों के साँचे में जबरदस्ती नहीं ढाली जा सकती; ये गलतियां हैं : कीमत सदा बहुत ही नीची होती है, उत्पादन की लागत बहुत ही नीची होती है, उत्पादन का पैमाना बहुत ही बड़ा होता है, और उत्पादकों की संख्या बहुत ही कम होती है।"[38] उस तुलना में विक्रय लागत की उपेक्षा कर दी गई थी। अब उस पर भी विचार किया जाना चाहिए, और परिणाम शुद्ध प्रतियोगिता के सिद्धान्त की निन्दा है जो अब केवल मात्रा में गलतियों के शब्दों में व्यक्त नहीं की जाती। जहां कहीं भी विक्रय लागतें लगाई जाती हैं—और वे किसी न किसी मात्रा में लगभग सब पण्यों पर लगाई जाती है—वहां कीमत समस्या को "प्रतियोगितामूलक" मांग और लागत वक्रों के शब्दों में ढालना केवल अशुद्ध नही है; यह असंभव है। ऐसे वक्रों की कल्पना करना और उनके शब्दों में कीमतों की व्याख्या करना एक ऐसे अभ्यास (प्रयोग) को पूरा करना है जिसका समस्या से कोई सरोकार नहीं है।

कठिनाई की जड़ (और शुद्ध प्रतियोगिता का सिद्धान्त तथ्यों से कितना दूर है इसका एक प्रत्यक्ष सूचक) यह है कि शुद्ध प्रतियोगिता की दशाओं के अन्तर्गत विक्रय लागत होती ही नहीं। इसलिए प्रतियोगी उत्पादकों के किसी समूह के उत्पादों के मांग और लागत वक्रों की रचना करने में उन लागतों की उपेक्षा कर दी जानी चाहिए। लेकिन, उनके बिना खींचा गया मांग वक्र यथार्थ मांग वक्र नही है जो कीमत के निर्धारण में भाग लेता है; वह एक बनावटी और विसंगत माग वक्र है जो कुल मांग के एक अश को दिखाता है—वह अंश जिसका अस्तित्व तब होता जब कोई विक्रय व्यय नहीं किए जाते। इसी प्रकार, विक्रय लागत रहित लागत वक्र यथार्थ नही है, जिसमें वे सब लागतें सम्मिलित होनी चाहिए जो पूरी पड़नी चाहिए; वह बनावटी है और विसंगत है जो उनका केवल एक अंश—उत्पादन लागत—दिखाता है। इन दो वक्रो के प्रतिच्छेद के द्वारा बताई गई कीमत का महत्व नहीं है।

विक्रय लागत की उपेक्षा करने का एकमात्र विकल्प यह है कि उन्हें सम्मिलित कर लिया जाए और असंगति की ओर ध्यान न दिया जाए। परन्तु ऐसा करने में यह रुकावट आती है कि यह निर्धारित करना असंभव है कि कितनी सम्मिलित की जानी चाहिए, क्योंकि विक्रय लागत के लिए उत्तरदायी एकाधिकार तत्वों को मान्यता देने वाले सिद्धान्त के बिना विक्रय लागत की राशि का निर्धारण नहीं किया जा सकता है। इस के अतिरिक्त, जैसा अध्याय 5 के अन्त में बताया गया है, एकाधिकारिक प्रतियोगिता के सिद्धान्त के अभाव में, यह जानना भी समान रूप से असंभव है कि उत्पादन की कौन लागतें सम्मिलित की जानी चाहिए, क्योंकि हम लागत वक्र को इस कल्पना के अन्तर्गत, जो शुद्ध प्रतियोगिता में मानी जाती है, कि उपयोग किए गए साधनों का सदा सबसे प्रभावकारी रूप से उपयोग किया जाता है, नही खींच सकते है। इसलिए, एकाधिकारिक प्रतियोगिता का विश्लेषण मूलभूत है, और प्रतियोगितामूलक माने गए अब विचारित मांग और लागत वक्रों को खींचने की प्रारंभिक अवस्था के रूप में उसे पूरा

अवश्य किया जाना चाहिए। परन्तु यदि ऐसा है तो, इन वक्रों को खींचने के पहले ही, समस्या का समाधान किया जा चुका है। "प्रतियोगितामूलक" वक्र विश्लेषण में मध्यवर्ती कदम के अवयव तक नहीं हैं। इसलिए उन्हें खींचने में कोई तुक नहीं है; और अधिक महत्वपूर्ण यह है कि उनका इस प्रकार निरूपण करना कि वे अपने प्रतिच्छेद के द्वारा बताई गई कीमत का **निर्धारण** करते है, मिथ्या है।

ऐसे वक्रों के विरुद्ध और भी आपत्तियां की जा सकती हैं। वे केवल इस कल्पना के अन्तर्गत खीचे जा सकते हैं कि या तो उत्पाद के प्रकारों में गुणात्मक भेद ऐसे हैं कि लागत या कीमत के भेदों मे परिणत नहीं होते, या इस कारण से लागत या कीमत के भेदों को किसी गणितीय युक्ति के द्वारा, जैसे औसत निकाल कर, एक सामान्य राशि में परिणत किया जाता है। वक्रों के आर्थिक विश्लेषण में उपयोग के बारे में किसी को निरुत्साहित करने के लिए अकेली यह कठिनाई पर्याप्त है। परन्तु लागत वक्रों के निर्वचन में एक और जटिलता है। उत्पादन लागत के वक्र के ऊपर जोड़ा गया विक्रय लागत का वक्र समानकोणीय अतिपरवलय अवश्य होना चाहिए, जो मांग वक्र को निर्धारित करने वाली विक्रय लागतों के स्थिर योग को उत्पाद के विभिन्न परिमाणों के लिए बांटता है। यह उत्पाद के विभिन्न परिमाणों की उत्पादन और विक्रय की लागतों को दिखाने वाला वक्र **नहीं** है। इस दूसरे प्रकार के वक्र के लिए कोई अकेला मांग वक्र मान्य नहीं होगा, क्योकि कुल विक्रय व्यय मे प्रत्येक परिवर्तन के साथ मांग वक्र की स्थिति बदल जाती है। संक्षेप में, विक्रय लागत को सम्मिलित करने वाला "प्रतियोगितामूलक" लागत वक्र स्वय अपने में ही असंगत है, वह बेकार है, वह भ्रामक है और वह बहुत सीमित प्रयोजन वाला है। उसे ऐसी विस्तृत आलोचना के लिए इसलिए प्रस्तुत किया गया है क्योंकि, यदि विशिष्टीकृत उत्पादों पर "प्रतियोगितामूलक" तर्कों का प्रयोग करने की चेष्टा की जाए तो, विक्रय लागत की सर्वथा उपेक्षा करने वाले सच्चे प्रतियोगितामूलक लागत वक्र का यही एकमात्र विकल्प प्रतीत होता है।

एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत सन्तुलन समायोजन का निरूपण करने वाले किसी चित्र, मान लो चित्र 24 (पृ० 121), को निर्दिष्ट करके एकाधिकारिक और शुद्ध प्रतियोगिता के परिणामों की कुछ **मात्रात्मक** तुलनाएं करना संभव है। अध्याय 5 के अन्त में दिए गए संक्षेप की, जिसे इस परिच्छेद के आरम्भ मे उद्धृत किया गया है, विक्रय लागत की दृष्टि से पुनःपरीक्षा अवश्य की जानी चाहिए। कीमत और लागत के सम्बन्ध में निष्कर्ष मान्य है, और, वस्तुतः, अधिक सबल हो जाते हैं। यद्यपि, विज्ञापन के होने पर, यह सिद्धान्ततः संभव है कि उत्पादन लागत अपने न्यूनतम पर हो, यह बहुत असंभाव्य है, और, किसी भी स्थिति में, विक्रय लागत अवश्य जोड़नी होगी। इसलिए, हम कह सकते हैं कि शुद्ध प्रतियोगिता का सिद्धान्त कीमत और लागत दोनों को सामान्यतया कम बतलाता है—क्योंकि वह उत्पादन लागत को कम बतलाता है और, दूसरे, विक्रय लागत की सर्वथा उपेक्षा करता है। यह निष्कर्ष कि शुद्ध प्रतियोगिता उत्पादन के पैमाने को अति बड़ा बताती है, अब निश्चित नहीं रह जाता,

परन्तु यह बहुत संभाव्य है। यदि यह सच है तो, **किसी दी हुई मांग के लिए**, विक्रेताओं की सख्या अति कम बताई जाती है। क्योंकि अर्थप्रणाली में विक्रय लागत की उपस्थिति कुछ मांगों को बढ़ा देती है और अन्य को घटा देती है, इसलिए उत्पादकों की संख्या के बारे में कोई और व्यापक निष्कर्ष सम्भव नही है।

लेकिन, शुद्ध प्रतियोगिता से **गुणात्मक** तुलना सर्वाधिक सार्थक है। प्रतियोगिता सिद्धान्त बहुतांश में अवास्तविक है, क्योंकि वह अर्थव्यवस्था में कार्यकारी शक्तियों का सही निरूपण करने में विफल होता है।

इस अध्ययन में एकाधिकारिक प्रतियोगिता के सिद्धान्त को शुरुआत से आगे नहीं ले जाया गया है। मूल्य के सिद्धान्त पर केवल उसके व्यापकतम रूप में विचार किया गया है और वितरण के सिद्धान्त की सर्वथा उपेक्षा कर दी गई है।[39] इसके अतिरिक्त, विशेष आर्थिक समस्याओं पर सिद्धान्त के अनुप्रयोग का न तो कोई प्रयत्न किया गया है न ही सुझाया गया है। आर्थिक चिन्तन पर प्रतियोगिता सिद्धान्त में पूर्ति और मांग के समीकरण के द्वारा निर्धारित सन्तुलन का विचार पूर्णतया छाया रहा है। उसके विभिन्न दिलचस्प क्षेत्रों का, एकाधिकारिक प्रतियोगिता के शब्दों में, फिर से अनुसन्धान करना समुपयुक्त है।

अध्याय 8

एकाधिकारिक प्रतियोगिता और वितरण का उत्पादिता सिद्धान्त[1]

उत्पादिता सिद्धान्त के स्वयं के बारे में विवादास्पद प्रश्न उठाए बिना, हम स्वीकार कर लें कि वह, इस तर्क के प्रयोजन के लिए, शुद्ध प्रतियोगिता की दशाओं के अन्तर्गत मान्य है, जिससे वह अव्यक्त या व्यक्त रूप से सदा (अभी हाल तक) सम्बन्धित रहा है। उसके केन्द्रीय विश्वास (tenet) के, कि उत्पादन के कारकों को उनका "सीमान्त उत्पादिता" के अनुसार भुगतान किया जाता है, विभिन्न निर्वचन किए जा सकते हैं।[2] हमारे प्रयोजन के लिए तीन सम्भव अर्थ महत्वपूर्ण प्रतीत होते हैं। "सीमान्त उत्पादिता" (क) उस पदार्थ उत्पाद का, (ख) पदार्थ उत्पाद के उस मूल्य का, या (ग) उस आय का निर्देश कर सकती है जो, किसी स्थिति में, कारक की सीमान्त इकाई लगाने पर मिलता है।

जहाँ तक पहले का सम्बन्ध है, उच्च मात्रा में श्रम विभाजन वाली अर्थ-व्यवस्थाओं तक में यह कल्पनीय है कि हो सकता है कि उत्पादन के कारकों का भुगतान यथाशब्द उनकी पदार्थ उत्पत्ति में किया जाए। फार्म मजदूर, भोजनालयों के कर्मचारी, और घरेलू नौकर ऐसे श्रमिक हैं जो अपनी मजदूरी का कम से कम कुछ अंश उस उत्पाद के रूप में पाते है जिसका उत्पादन करने में वे सहायता देते हैं; और लगे हाथ उस बड़ी शराब कम्पनी का उल्लेख भी कर दें जिसने हाल में अपने स्टाकधारियों को ह्विस्की में लाभांश दिया था। लेकिन, साधारणतया आय प्राप्ता जिस उद्यम से वे सम्बद्ध होते हैं उसके उत्पाद का बहुत कम उपभोग करते हैं या बिल्कुल नहीं करते, और व्यक्तियों की अपेक्षा उद्यम स्वयं उसका विपणन इतने अधिक प्रभावकारी रूप से कर सकता है कि सुस्पष्ट है कि उत्पाद में आय पाना, और आय प्राप्ताओं पर विनिमय का भार डालना बेतुका होगा (और बहुधा असम्भव होगा, जैसे सेवाओं की स्थिति में)। इस कारण से, यद्यपि "सीमान्त उत्पादिता" का अर्थ साधारणतया पदार्थ उत्पत्ति लगाया गया है तथापि, इस स्थापना का कि कारकों का भुगतान उनकी "सीमान्त उत्पादिता" के अनुसार किया जाता है, यह अर्थ रहा है कि उन्हें उत्पाद का नहीं बल्कि उसकी बिक्री से प्राप्त मुद्रा का भुगतान किया जाता है। इस प्रकार "सीमान्त उत्पादिता" का दूसरा अर्थ, जो पदार्थ उत्पत्ति के मूल्य का निर्देश करता है, विनिमय के तथ्य को केवल मान्यता देता है। वह मुद्रा के रूप में पदार्थ उत्पत्ति के, पदार्थ उत्पत्ति गुणा उसकी विक्रय कीमत के, समतुल्य है। इस अध्याय में आद्योपान्त इसी अर्थ को माना जाएगा।

इसके विपरीत, सीमान्त आय उत्पत्ति (या, जैसा उसे प्रायः कहा जाता है, सीमान्त मूल्य उत्पत्ति) पदार्थ उत्पत्ति या मुद्रा में उसके समतुल्य से, सामान्यतया, बिल्कुल असंबद्ध है। वह बढ़ी हुई आय का निर्देश करती है—अर्थात्, उस आय का जो कारक की अन्तिम इकाई को काम में लगाने पर मिलने वाली कुल आय (प्रति इकाई

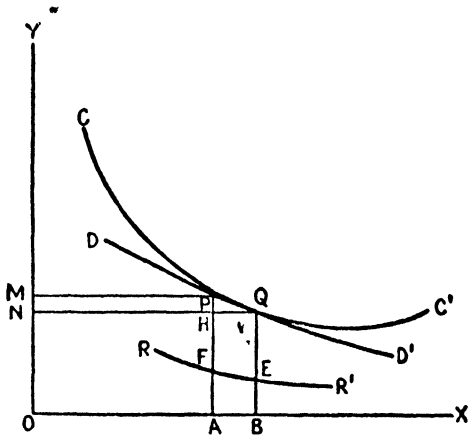

चित्र 32

कीमत गुणा इकाइयों की संख्या) ऋण उसे काम में न लगाने पर मिलने वाली कुल आय के बराबर है। चित्र 32 में, यदि एक मजदूर और लगाने पर उत्पाद की राशि OA से बढ़कर OB हो जाती है, तो सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य $ABQH$ है; सीमान्त आय उत्पत्ति $OBQN - OAPM$ (या $ABQH - NHPM$) है। सीमान्त आय वक्र का उपयोग करके सीमान्त आय उत्पत्ति की परिभाषा सरलतम रूप से की जा सकती है। वह सीमान्त पदार्थ उत्पत्ति गुणा सीमान्त आय है।[3] चित्र 32 में, यदि RR' सीमान्त आय वक्र है तो वह $ABEF$ है।

अब यह प्रत्यक्ष है कि उद्यमकर्ता सदा और सर्वत्र, चाहे शुद्ध प्रतियोगिता हो या एकाधिकारिक प्रतियोगिता, अपने द्वारा नियुक्त कारकों की केवल सीमान्त आय उत्पत्तियों में दिलचस्पी रखता है। परन्तु शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत, चूंकि वह कीमत पर कोई प्रभाव डाले बिना अपनी उत्पत्ति में परिवर्तन कर सकता है, वह सदा सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य के बराबर होगी। दूसरे शब्दों में, शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत, एक-एक उत्पादक के उत्पाद का मांग वक्र क्षैतिज होने के कारण, उसके सीमान्त आय वक्र और मांग वक्र एक ही होते हैं। सीमान्त आय सदा विक्रय कीमत के बराबर होती है। अतः **एक प्रतियोगी के लिए** सीमान्त उत्पत्ति [का मूल्य] और सीमान्त आय उत्पत्ति सदा एकरूप होते हैं। इस प्रकार उद्यमकर्ता, जो कारक की

केवल सीमान्त आय उत्पत्ति मे दिलचस्पी रखता है, फिर भी कारक को उसकी सीमान्त उत्पत्ति का भुगतान करता है।

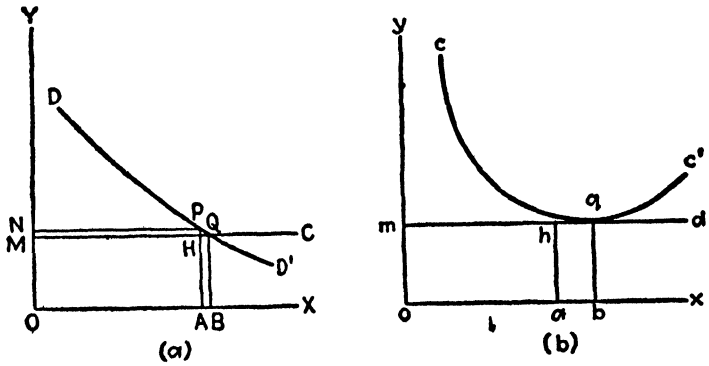

चित्र 33

चित्र 33*a* और 33*b* में यह लेखाचित्रीय रूप से दिखाया गया है। चित्र 33*b* शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उत्पादक के मांग और लागत वक्रों को (जो क्रमशः *md* और *cc'* हैं) दिखाने वाला सुपरिचित चित्र है; चित्र 33*a* **सब** उत्पादकों के मांग और लागत वक्रों को (जो क्रमशः *DD'* और *MC* है—स्थिर लागत मानी गई है) दिखाता है। इस प्रकार ये दो चित्र **समान** तथ्यों को दो भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से दिखाते हैं। चित्र 33*b* से, जैसा कि मैने तर्क किया है, स्पष्ट है कि एक उत्पादक के विचार से सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य (*abqh*) और सीमान्त आय उत्पत्ति (*obqm-oahm*) बराबर है। चित्र 33*a* में इसका आभासी विरोध है, जिसमे सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य *ABQH* है और सीमान्त आय उत्पत्ति इससे कम, *ABQH—MHPN* (बराबर *OBQM—OAPN*) है। परन्तु यह नही भूलना चाहिए कि जिस सीमान्त आय उत्पत्ति में एक-एक विक्रेता की दिलचस्पी है वह उसकी अपनी वाली है, न कि सम्पूर्ण बाजार की। चित्र 33*a* में, यदि हम मान लें कि *P* और *Q* के बीच *DD'* की लोच एक है, तो जब एक विक्रेता अपनी उत्पत्ति को *AB* राशि से बढ़ाता है, वह कुल पूर्ति के मूल्य में कोई वृद्धि नहीं करता, और इसलिए उसकी बिक्री द्वारा एकसाथ सब विक्रेताओं द्वारा प्राप्त आय में भी कोई वृद्धि नहीं होती। परन्तु अपनी उत्पत्ति के मूल्य में वह समानुपाती वृद्धि करता है (चित्र 33*b*), क्योंकि कीमत में कमी (sacrifice) बहुत बड़ी संख्या में उत्पादकों में फैली हुई है, जबकि बृहत्तर राशि का लाभ केवल वही उठाता है। इसी कारण से कीमत *AP* (या किसी अन्य बिन्दु) के स्थान पर *BQ* पर स्थिर होगी (चित्र 33*a*), जिस पर हो सकता है कि पूरी पूर्ति

का मूल्य वही हो। और इसी कारण से शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक कारक को उसकी सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य प्राप्त होगा।

एकाधिकारिक प्रतियोगिता पर विचार करने पर, पहले यह स्मरण कर लिया जाए कि समस्या के चरों की संख्या में वृद्धि हो गई है। अब उत्पत्ति कीमत के द्वारा केवल अंशतः प्रतिबंधित (conditioned) होती है। वह अपनी विभिन्न अवस्थाओं में "उत्पाद" का और विक्रय लागतों का भी फलन है।[4] यहाँ हम उत्पाद विचरण और उत्पादिता सिद्धान्त के सम्बन्ध पर विचार नहीं करेंगे। यह कल्पना की गई है कि कारकों के अनुपातों में परिवर्तनों का परिणाम **उसी** उत्पाद की विभिन्न राशियां होता है, न कि उत्पाद के विभिन्न **प्रकार**। (यदि चाहें तो हम मान सकते है कि इष्टतम "उत्पाद" पा लिया गया है और इसलिए जो निर्णय करने है वे तदनुसार थोड़े रह गए हैं।) जहाँ तक विक्रय लागतो का सम्बन्ध है, वे केवल कुछ समय के लिए अलग रखी जाएगी। उनके द्वारा उठाई गई समस्याएं जटिल है, और बाद मे उनका संक्षेप में निर्देश कर दिया जाएगा।

इसलिए, सम्प्रति, हम एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत-राशि सम्बन्धों पर विचार करें। किसी विक्रेता के उत्पाद के मांग वक्र के ढालू होने के कारण यह तुरन्त स्पष्ट हो जाता है कि उसके लिए किसी कारक की सीमान्त आय उत्पत्ति कारक की सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य से अवश्यम्भावी रूप से कम है। चित्र 32 में, यदि DD' एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक विक्रेता के उत्पाद का मांग वक्र हो, और एक अतिरिक्त मजदूर उत्पत्ति को OA से बढा कर OB कर देता है, तो उसकी सीमान्त उत्पत्ति [का मूल्य] $ABQH$ है, और उसकी सीमान्त आय उत्पत्ति $ABQH - NHPM$ है। चूँकि उद्यमकर्ता द्वारा श्रम में वृद्धि करने का आधार सीमान्त आय उत्पत्ति होता है, न कि सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य, इसलिए यह परिणाम निकलता है कि कारकों में से **किसी** को भी उसकी सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य के बराबर भुगतान करना उसके लिए कभी भी लाभदायक नहीं होगा, और बहुधा असम्भव होगा। यदि प्रतियोगिता के कारण उसका मांग वक्र बायीं ओर हट जाता है ताकि अतिरिक्त लाभ समाप्त हो जाते है, जैसे चित्र 32 में, तो ऐसा करना असम्भव होगा। यदि मांग वक्र और दायीं ओर को हो, तो अतिरिक्त लाभ प्रत्येक कारक को उसकी सीमान्त उत्पत्ति के बराबर भुगतान करवाने के लिए पर्याप्त हो भी सकते है और नहीं भी। परन्तु यदि हम मानें कि उद्यमकर्ता अपने लाभों को अधिकतम करने की चेष्टा करते हैं, तो किसी भी स्थिति में उनका ऐसा उपयोग नहीं किया जाएगा, और अन्य कारकों की स्थिति किसी प्रकार नहीं बदलती। इस निष्कर्ष से छुटकारा नहीं है कि एकाधिकार का किंचित् तत्व भी किसी दी हुई फर्म में नियोजित सब कारकों के पारिश्रमिकों को उनकी सीमान्त उत्पत्तियों के मूल्य से कम अवश्य कर देता है।[5]

इस पर बल दिया जाना चाहिए कि कारकों की सीमान्त उत्पत्तियों से उनके यथाभाग अंशों के विचलन सदा एक ही दिशा में होते हैं—उनका अंश हमेशा अल्पतर

होता है। यह एकाधिकारिक प्रतियोगिता के सामान्य सिद्धान्त में अन्यत्र बल दिए गए निष्कर्षों को पुष्ट करता है कि शुद्ध प्रतियोगिता एक चरम स्थिति है, एक सीमान्त है, न कि एक मानक है। वास्तविक कीमतें, यथाभाग अंश, और उत्पादन की दशाएं, जो वे शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत होतीं उनकी ओर, सामान्यतया, प्रवृत्त नहीं होतीं हैं, न ही उनके इर्दगिर्द दोलन करती हैं। बल्कि, वे ऐसे मानकों की ओर प्रवृत्त होती हैं, जिनके निर्धारण में एकाधिकार तत्वों को पूरी मान्यता अवश्य दी जानी चाहिए। उन स्थितियों को छोड़कर जहां वास्तव में शुद्ध प्रतियोगिता की दशाएं मिलती हैं, प्रतियोगिता सिद्धान्त वास्तविकता की विकृति है, न कि उसका सन्निकटन।

यह ध्यान रहे कि **सब** कारकों (न कि किसी एक कारक, जैसे श्रम) को उनकी सीमान्त उत्पत्तियों से कम प्राप्त होता है; तिस पर भी, चित्र से स्पष्ट है कि यह इसके संगत है कि उनको दी गई राशियों का योग विक्रय कीमत पर मूल्यांकित कुल उत्पत्ति के ठीक बराबर है। लागत वक्र में केवल न्यूनतम लाभ सम्मिलित किए गए हैं। ऐसा कोई अतिरेक नही है जिसका कारण "शोषण" को बताया जा सके।[6] यह अनुसन्धान की अपेक्षा करता है। प्रतीयमानत: प्रत्येक कारक जितना उसे मिलता है उससे अधिक का उत्पादन करता है, तिस पर भी सबका भुगतान कर चुकने पर कुछ नहीं बचता।

इसका उत्तर इस तथ्य से मिलता है कि सीमान्त उत्पत्तियों के आधार पर संगणित आयों का योग कुल उत्पत्ति से अधिक है। ये दो केवल तब बराबर होंगे जब उत्पादिता फलन सम-एकघात हो, अर्थात्, जब **सब** कारकों में एकसाथ अल्प आनुपातिक परिवर्तन से उत्पत्ति में समानुपाती परिवर्तन हो। यह केवल तब सच होगा जब ऐसा परिवर्तन होने पर औसत लागत और औसत आय (कीमत) दोनों स्थिर बने रहते हैं। दूसरे शब्दों में, यह केवल शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत सच होता है, जहां सन्तुलन से (लागत वक्र के न्यूनतम बिन्दु से) अल्प विचलनों के लिए मांग और लागत, दोनों, वक्र लगभग क्षैतिज हैं। इस बिन्दु पर सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य और सीमान्त आय उत्पत्ति बराबर हैं, और इनमें से किसी के रूप में कारकों को किए गए कुल भुगतान वितरित की जाने वाली कुल आय के बराबर होते हैं। एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत, जैसे-जैसे मांग वक्र क्षैतिज स्थिति से तिरछा होता जाता है, जिससे लागत वक्र से उसका स्पर्श-बिन्दु न्यूनतम बिन्दु के अधिकाधिक बायी ओर होता जाता है, सीमान्त उत्पत्तियों और सीमान्त आय उत्पत्तियों का अंतर बढ़ता जाता है। सीमान्त आय उत्पत्तियों का योग कुल उत्पत्ति को निःशेष करता रहता है; सीमान्त उत्पत्तियों का योग कुल उत्पत्ति से अधिकाधिक बड़ा होता जाता है। जिन फर्मों के उत्पादों के मांग वक्र लागत वक्रों से ऊपर होते हैं उनकी स्थिति में, निस्सन्देह, एकाधिकार लाभ मिलते हैं, और यह **पारिश्रमिक पर लगाए गए** कारकों की आयों को कुछ मात्रा तक, शायद उनकी सीमान्त उत्पत्तियों के मूल्य तक, बढ़ाने की संभावना का संकेत करता है। लेकिन, यहां भी **सब** कारकों द्वारा अपनी सीमान्त उत्पत्तियों के बराबर आय प्राप्त

करना असंभव है; पारिश्रमिक पाने वाले कारक लाभ को क्षति पहुँचाकर प्राप्त करेंगे, और अब उद्यम को न केवल, पहले की भांति, अपनी सीमान्त उत्पत्ति से कम मिले बल्कि सीमान्त आय उत्पत्ति से भी कम मिले। (निस्सन्देह, उद्यम, या किसी अन्य कारक, को हो सकता है कि उसकी सीमान्त आय उत्पत्ति से कम मिले जो उसकी पूर्ति कीमत से अधिक मिलने के अविरुद्ध है।) इसके अतिरिक्त, यह सुस्पष्ट प्रतीत होता है कि ऐसी फर्मों के किसी विशेष कारक को, मान लो श्रम को, अधिक भुगतान करना विभिन्न उद्यमों में एक-से काम के लिए वेतन की अनेकरूप दरें स्थापित करना है। स्पष्ट है कि इसका उपचार उपभोक्ता के पक्ष में कीमत का समायोजन करके एकाधिकार लाभों को हटाना है, न कि उनके एक भाग का श्रम को हस्तान्तरण।

प्रत्यक्ष है कि शोषण की पिगु द्वारा दी गई परिभाषा कि उसमें मजदूरी कीमत पर मूल्यांकित सीमान्त पदार्थ उत्पत्ति से कम होती है,[7] केवल शुद्ध प्रतियोगिता की दशाओं के अन्तर्गत समुपयुक्त है, जिसमें, यदि श्रम को उसकी सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य से कम मिलता है, तो नियोजक, वास्तव में, सीमान्त मजदूर के कारण मिलने वाली आय का एक भाग अपनी जेब में रख रहे है, और जिसमें सीमान्त उत्पत्तियों और कुल उत्पत्ति में ऐसा सम्बन्ध है कि श्रम और सब कारकों को, बांटी जाने वाली राशि से अधिक लगाए बिना, उनकी सीमान्त उत्पत्तियों के पूरे मूल्य का भुगतान करना संभव है। वह एकाधिकारिक प्रतियोगिता के लिए समुपयुक्त नहीं है, जहां ये दशाएं सच नहीं होतीं। यहां **सब** कारकों का इस अर्थ में आवश्यक रूप से "शोषण" होता है, जिससे कुल भुगतान भुगतान के लिए उपलब्ध राशि की सीमाओं के भीतर रहें; नियोजकों के लिए, दिवालिया हुए बिना, "शोषण" के आरोप से बचना असंभव होगा। फिर भी श्रीमती रॉबिन्सन इस क्षेत्र के लिए ऐसी प्रतियोगितामूलक परिभाषा स्वीकार करती है; वे इस पर विचार भी करती हैं कि "शोषण" किस प्रकार दूर किया जा सकता है, और, स्वभावतया, पता लगाती है कि, सामान्यतया, वह "पूर्ण" प्रतियोगिता की दशाओं को स्थापित किए बिना दूर नहीं किया जा सकता![8]

अब मैं समस्या की एक अन्य अवस्था पर विचार करूंगा। अब तक मौन रूप से कल्पना कर ली गई थी कि किसी फर्म में एक और श्रमिक द्वारा बढ़ाई गई उत्पत्ति सामाजिक उत्पत्ति में निवल वृद्धि है, जो प्रणाली में अन्यत्र कम उत्पत्ति के कारण बराबर नहीं हो जाती। हो सकता है कि यह सच हो। परन्तु हम संक्षेप में कम से कम एक स्थिति की परीक्षा करें जिसमें यह सच नहीं है। कई ऐसे कारण हैं कि कीमतें उस स्तर से उच्चतर किसी स्तर पर स्थायी रूप से और सामान्यतः स्थिर हों जहां उन्हें निर्बाध कीमत प्रतियोगिता ले जाती।[9] जहां कही भी कोई विक्रेता-विशेष केवल कुछ विक्रेताओं से प्रत्यक्ष प्रतियोगिता करता है, जो एक ऐसी दशा है जो उद्योग के बड़े भाग में पाई जाती है, वहां यह सच हो सकता है। यह तब भी संभव परिणाम हो सकता है, जब कीमत प्रतियोगिता अवरुद्ध होती है—वास्तविक या मौन सहमति, व्यापारिक या व्यावसायिक "नैतिकता" जो "कीमत काटने वाले" की निन्दा करती है,

विनिर्माता, परम्परा या रिवाज के द्वारा नियत कीमतें, और, सामान्यतया, प्रतियोगी शक्ति को कीमत प्रतियोगिता से भिन्न दिशाओं में लगाया जाना। यदि इन कारकों के द्वारा कीमतें ऊंची रखी जाती हैं, तो क्षेत्र में प्रत्येक फर्म द्वारा अर्जित लाभ को घटाए बिना साधनों का बृहत्तर निवेश हो सकता है। जिस मात्रा तक नयी फर्मों के लिए अपने को स्थापित करना और व्यापार का भाग प्राप्त करना संभव है, वे ऐसा करेंगी; और हो सकता है कि व्यापक अतिरिक्त क्षमता की दशा विकसित हो जाए, जो इस तथ्य के कारण छिपी रहती है कि लाभ, सामान्यतया, प्रतियोगी स्तर से ऊंचे नहीं हैं। इन परिस्थितियों में, जब अधिक साधनों को नियोजित किया जाता है तो, उत्पादन के किसी कारक की सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य क्या है ? एक उद्यम को संघटित करने वाले किसी कारक या कारकों के किसी समूह की समाज के लिए उत्पादिता वह राशि अवश्य समझी जानी चाहिए (जो उस राशि के बराबर है) जो उसके द्वारा उत्पादित कुल उत्पत्ति में से उसकी उपस्थिति के कारण अन्य उत्पादकों द्वारा उत्पादित न की जा सकी राशि को घटाने से प्राप्त होती है। मान लो कि किसी नुकड़ पर तीन पैट्रोल पम्प थे, जो चालू कीमत पर पैट्रोल की मांग को यथेष्ट रूप से पूरा कर रहे थे, और अब चौथा पैट्रोल पम्प लगाया जाता है। नया पम्प उत्पत्ति में क्या वृद्धि करता है ? यदि नतीजा केवल यह होता है कि पुरानी कीमतों पर उपलब्ध व्यापार को चारों आपस मे बाट लेते हैं, जैसा कि बहुत सभव है, तो यह समझना कठिन है कि आखिर कोई गणनीय वृद्धि कहां हुई। नवागन्तुक द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं का मूल्य ऋण अन्य तीन के द्वारा अब प्रदान नहीं की जाने वाली सेवाओं का मूल्य लगभग शून्य है। इसमें सन्देह नही कि जिन लोगों के लिए नया पम्प अधिक सुविधाजनक स्थान पर है उन्हें कुछ अतिरिक्त सहूलियत मिलती हो। तब उसकी उत्पत्ति शून्य नहीं होगी, परन्तु वह केवल नयी फर्म पर विचार करने पर निर्दिष्ट उत्पत्ति से कहीं कम होगी। एक और गुत्थी भी रहती है। चूंकि प्रत्येक फर्म की बिक्री का परिमाण घट गया है, औसत लागत उच्चतर हो जाती है। यह बिल्कुल संभव है कि चौथी फर्म के स्थापित होने के पूर्व पहली तीन फर्मों के लाभ पर्याप्त थे, जिससे अब चारों कीमत समायोजन के बिना न्यूनतम लाभ समेत लागत को वसूल सकते है। यह भी संभव है कि, उच्चतर लागत के समक्ष, वे सब कीमतों को बढ़ाना आवश्यक पाएंगे, और ऐसा करना संभव पाएंगे, क्योंकि प्रत्येक का इसमें प्रबल हित है कि कीमत इतनी नीची न होने दे कि, जब वह उपलब्ध व्यापार में सामान्य हिस्सा पा रहा है तो, वह लागत को पूरा न कर सके।[10] इन परिस्थितियों के अन्तर्गत चौथे विक्रेता के प्रकट होने से समूह की उत्पत्ति (उच्चतर कीमतों के माध्यम से) वस्तुत. कम हो गई है। उसके द्वारा नियोजित साधनों की पदार्थ उत्पत्ति ऋणात्मक होने के कारण, प्रचलित कीमतों पर उनका मूल्य भी उसी प्रकार ऋणात्मक होगा। जहां कहीं भी कीमत प्रतियोगिता प्रभावकारी रूप से कार्य करने में विफल होती है, इन जैसी गुत्थियां उत्पन्न हो जाती हैं, और नयी फर्म द्वारा बढ़ाई गई या उसके द्वारा नियोजित किसी कारक की सीमान्त इकाई द्वारा बढाई गई निवल उत्पत्ति

की परिभाषा करने में उन पर विचार अवश्य किया जाना चाहिए। ऐसी स्थितियों में प्रतीत होता है कि किसी कारक की निवल सामाजिक सीमान्त उत्पत्ति, हो सकता है कि, ऋणात्मक हो, और, किसी भी स्थिति में, यह कि वह एक फर्म के लिए उसकी जो सीमान्त उत्पत्ति है उससे कहीं कम होगी। स्पष्ट है कि, उसकी निवल सामाजिक सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य फर्म के लिए उसकी सीमान्त आय उत्पत्ति से, और इसलिए उसकी आय से, कोई भी सम्बन्ध नहीं रखता है।

एकाधिकारिक प्रतियोगिता का, विज्ञापन और विक्रय लागत के सम्बन्ध में, उत्पादिता सिद्धान्त पर शायद सर्वाधिक क्षति पहुँचाने वाला आघात पड़ता है। अब यह सामान्यतया स्वीकार किया जाता है कि ऐसी लागतें शुद्ध प्रतियोगिता के पूर्णतः असंगत है; दूसरी ओर, उत्पादिता सिद्धान्त **केवल** शुद्ध प्रतियोगिता के संगत है। इसलिए, यह आश्चर्यजनक नहीं है कि इस सिद्धान्त मे विक्रय के कार्य में लगे हुए कारकों की आयों की कोई भी व्याख्या नहीं मिलती।

यद्यपि विक्रय लागतें, जैसा कि याद होगा, मांगों में परिवर्तन करने के लिए लगाई जाती है, उन्हें संतुष्ट करने के लिए पदार्थों का उत्पादन करने के लिए नही, फिर भी हो सकता है कि वे उत्पादिता को परोक्ष रूप से प्रभावित करें। ये लागतें चाहे अकेली एक फर्म द्वारा लगाई जाए, या एक "उद्योग" में फर्मों के किसी समूह द्वारा, या सब फर्मो द्वारा, उनका पहला परिणाम यह होता है कि मांग वक्रों की एक नयी प्रणाली अस्तित्व में आ जाती है। इसमे सदेह नही कि, विपरीत दिशाओ मे प्रभाव डालने वाले उत्पादक कुछ सीमा तक एक-दूसरे के प्रयासों को निष्प्रभाव कर देगे, जो उनके उत्पादों की मांगों को अप्रभावित रहने देगा, और उनके लागत वक्रों को विज्ञापन व्यय की राशि के बराबर ऊपर उठा देगा।[11] लेकिन, सामान्यतया कुछ उत्पादक बडी राशियाँ खर्च करते है, कुछ कम राशियाँ खर्च करते है, अन्य खर्च करते ही नही, इसलिए परिणामों की प्रभाविकता भिन्न होगी और उनका अनेकरूप होना निश्चित है। इस प्रकार, यद्यपि एक ओर तो विक्रय लागत, परिभाषानुसार, मांगों के जिस नये कुलक का उसने सृजन किया है, उनकी तुष्टि की दिशा मे कोई अंशदान नही करती; दूसरी ओर, हो सकता है कि वह उत्पादक साधनों के पुनर्वितरण का परोक्ष कारण हो जिसके फलस्वरूप समस्त उत्पत्ति मे वृद्धि या ह्रास हो।

विक्रय लागतों को ऐसा परोक्ष उत्पादिता का कारण ठहराने में यह स्पष्टतया आवश्यक है कि, सबसे पहले, विचाराधीन पदार्थ के **उत्पादन** की लागत घटाई जानी चाहिए। ऐसा कर लेने पर, विक्रयण में लगे हुए कारकों पर अतिरिक्त व्यय की सीमान्त उत्पादिता बराबर है उनके द्वारा उत्पन्न की गई अतिरिक्त उत्पत्ति का मूल्य ऋण उन पदार्थों का मूल्य जिनका अब उत्पादन नही किया जा रहा है क्योंकि मांग उनसे हटा दी गई है।[12] यह कल्पना करने पर कि कुल मौद्रिक आय स्थिर है, ऐसा दिखाई देने लगता है जैसे कि धनात्मक और ऋणात्मक तत्व एक-दूसरे का विलोपन कर देंगे, और निवल सीमान्त उत्पत्ति शून्य रह जाएगी।

लेकिन, अन्य गुत्थियाँ भी हैं। उदाहरणार्थ, विज्ञापन हो सकता है कि मांग वक्रों की लोचों को बदल दे, और सामान्यतया निश्चित है कि वह उन्हें बदल देता है। जिस मात्रा तक वह विशेष उत्पादों के लिए अधिमानों का सृजन करता है या उन्हें दृढ़तर करता है, मांगें कम लोचदार बना दी जाती हैं। फर्मों की संख्या बढ़ जाती है, और उत्पादन की दशाएँ, सामान्यतया, कम दक्ष हो जाती हैं, जिस मात्रा तक उत्पादों, कीमतों, और बाजार दशाओं के बारे में जानकारी अधिक प्रभावकारी रूप से फैलाई जाती है, हो सकता है कि, फर्मों की संख्या घट जाए, और प्रति फर्म उत्पत्ति बढ़ जाए और अनुवर्ती किफायतें मिलने लगें।[13] विक्रयण में लगाए गए कारकों की सीमान्त उत्पादिता की परिभाषा करने में ऐसी सब जानकारी को ध्यान में रखना आवश्यक होगा। जिस निवल उत्पत्ति, धनात्मक या ऋणात्मक, के लिए विक्रय लागत उत्तरदायी है, उसका बाजार-कीमतों पर मूल्य (ऋण उत्पादन लागत, जो विक्रय लागत से भिन्न है) निकालने के लिए इन सब तत्वों को जोड़ना आवश्यक होगा। इस प्रकार प्रकट होता है कि विक्रयण में लगे हुए कारकों की सीमान्त उत्पत्ति की **कल्पना** उत्पादन के क्षेत्र से मिलने वाली परिभाषा के यथार्थतः सदृश शब्दों में करना पूर्णतः संभव है। जो कठिनाइयाँ हैं वे सब सन्निहित तत्वों की खोज और माप के बारे में हैं। लेकिन, हमारे प्रयोजन की बात यह है कि, यह कल्पना करने पर भी कि वे खोजे जा **सकते हैं**, ऐसी सीमान्त उत्पत्ति और फर्म के पक्ष में मांग को बदलने में लगे हुए कारक की फर्म के लिए सीमान्त उत्पत्ति के बीच कोई सम्बन्ध नहीं होगा। यह विश्वास करना कि विक्रय कार्य में नियोजित कारकों का भुगतान उनकी सीमान्त उत्पत्तियों के मूल्य के अनुसार किया जाता है, एक अभिव्यक्त विसंगति होगी।

इस प्रमुख प्रस्थापना को कि एक फर्म का ढालू मांग वक्र किसी कारक के पारिश्रमिक को उसकी सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य से कम कर देता है, अब (1936) कुछ मात्रा तक सामान्य स्वीकृति मिल गई है। इस तथ्य को देखते हुए कि यह इतनी आसानी से प्रमाणित किया जा सकता है और यह कि इसका, मेरी जानकारी में, किसी ने प्रतिवाद नहीं किया है, यह कहना उचित प्रतीत होता है कि हाल में जिन लोगों ने अपना ध्यान एकाधिकारिक और अपूर्ण प्रतियोगिता की समस्याओं की ओर लगाया है, उनमें इसकी स्वीकृति सामान्य है।[14] वस्तुतः, चूंकि श्रीमती रॉबिन्सन ने सीमान्त उत्पत्ति की **परिभाषा** इस प्रकार की है[15] जिसे मैंने सीमान्त आय उत्पत्ति कहा है, और अन्य ने उसका अनुसरण किया है, इसलिए अब खतरा यह प्रतीत होता है कि वह **अति** आसानी से स्वीकार कर ली जाएगी। इससे मेरा तात्पर्य यह है कि जो कायान्तरण हुआ है उसके परिबोध के बिना, कई इसे स्वीकार कर लेंगे। सामान्यतः विश्वास किया जाता था कि शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत कारकों का भुगतान उनकी "सीमान्त उत्पादिता" के अनुसार किया जाता था; अब यह कहा जा रहा है कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत उनका भुगतान उनकी "सीमान्त उत्पादिता"

के अनुसार किया जाता है; और इसलिए ऐसा प्रतीत होगा कि इन दो स्थितियों में अन्तर्निहित सिद्धान्त कम से कम तत्वतः एक ही है—जब कि प्रत्यक्ष है कि वह एक-सा बिल्कुल नहीं है। यह सच है कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता का नियम शुद्ध प्रतियोगिता पर भी लागू होता है, क्योंकि वह सार्विक है।[16] जैसा कि क्षण भर के चिन्तन से प्रकट हो जाता है, वह सार्विक इसलिए है क्योंकि वह, जिस स्वयंतथ्य से आर्थिक विश्लेषण साधारणतया आगे बढ़ता है, अर्थात्, उत्पादक अपने लाभों को अधिकतम करना चाहते हैं, उसका वृद्धियों के शब्दों में पुनःकथन से अधिक कुछ नहीं है। परन्तु प्रतियोगिता के लिए अगला नियम—कि कारकों का भुगतान उनकी सीमान्त उत्पत्तियों के मूल्य के अनुसार किया जाता है—केवल प्रतियोगिता की दशा में लागू होता है। जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है, जब एकाधिकार तत्व विद्यमान होते हैं तो कारकों का इस प्रकार भुगतान किए जाने की कोई भी प्रवृत्ति नहीं होती। फिर भी, जैसे मूल्य सिद्धान्त प्रतियोगितामूलक शब्दों में ढाला गया है, वैसे ही वितरण का सिद्धान्त भी—और वितरण के उत्पादिता सिद्धान्त का अर्थ आम तौर से यह लगाया गया है कि कारकों की आयें उनकी सीमान्त उत्पत्तियों के मूल्य के बराबर होती है।[17]

इस बात को स्पष्ट करने के लिए, कि जब एकाधिकार तत्वों को मान्यता दी जाती है तो पदार्थ उत्पत्ति के मौद्रिक समतुल्य के रूप में सीमान्त उत्पादिता के ये निर्वचन संभव नहीं रह जाते, मैंने इस सम्बन्ध में "सीमान्त आय" शब्द का समावेशन किया है, जिसका श्रीमती रॉबिन्सन ने अन्यत्र इतनी चतुराई से उपयोग किया है। असदृश सकल्पनाओं को एक ही नाम देकर उनके एकरूप समझे जाने की संभावना का परिहार अवश्य ही किया जाना चाहिए। यदि (प्रतियोगितामूलक सिद्धान्त में) "सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य" का और (शुद्ध और एकाधिकारिक प्रतियोगिता को समाविष्ट करने वाले अधिक सामान्य सिद्धान्त में) "सीमान्त मूल्य उत्पत्ति" का कठोरता से अनुसरण किया जाए, तो यह वांछित लक्ष्य की प्राप्ति में बहुत-कुछ करेगा। परन्तु उनका कठोरता से अनुसरण नही किया जाएगा। अवश्यंभावी रूप से, विभिन्न लेखकों द्वारा इनमें एक या दूसरे से "मूल्य" छोड़ दिया जाता है,[18] और संक्षिप्त शब्द "सीमान्त उत्पत्ति" और "सीमान्त उत्पादिता" विवर्ती और अस्थिर अर्थ प्राप्त कर लेते हैं। यदि "मूल्य" शब्द को सदा सम्मिलित किया जाए और उसे ठीक जगह पर रखा जाए, तब भी ये दो वाक्यांश भ्रमोत्पादक रूप से समरूप लगते हैं कि क्योंकि विभिन्न क्रम में एकरूप शब्दों से बने हुए हैं।

फर्म की मौद्रिक आय में वृद्धि को "सीमान्त आय उत्पत्ति" की संज्ञा देने पर इन दो संकल्पनाओं में आवश्यक स्पष्ट भेद हो जाता है। "सीमान्त आय" शब्द का प्रयोग उत्पाद की एक इकाई के लिए जितना उपयुक्त है उतना ही उत्पादन कारक की एक इकाई के लिए है, और पहले के सम्बन्ध में उसका सुस्थापित अर्थ है, जो दूसरे के सम्बन्ध में आसानी से स्थानान्तरित हो जाता है। वर्तमान संदर्भ में "मूल्य" के स्थान पर "आय" के प्रयोग का एक और लाभ यह है कि 'आय" की संकल्पना एक-एक फर्म

के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है; इसलिए वह इस पर बल देने का काम करती है, जो आसानी से भूला जा सकता है कि अन्तर्निहित सिद्धान्त फर्म पर ही रुक जाता है। केवल इस बात का दावा किया गया है कि किसी कारक की आय उसे नियोजित करने वाली फर्म की आय (क्या "लाभ" कहें ?) में उसके सीमान्त अंशदान के बराबर होने की प्रवृत्ति रखती है। फर्म के बाहर किसी योग मे उसके किसी ऐसे अंशदान के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है जिसकी सार्थकता सामाजिक है, न कि वैयक्तिक; उदाहरणार्थ, ऐसे योग जैसे कुल उत्पत्ति या आर्थिक समुदाय को उपलब्ध उत्पत्ति का मूल्य। केवल शुद्ध प्रतियोगिता मान लेने पर ही कारकों की आयों को इन जैसी संकल्पनाओं से सम्बन्धित किया जा सकता है। किसी भी स्थिति में, अब ऐसा ही प्रतीत होता है। विश्लेषण में अगला कदम शायद यह है कि शुद्धतः प्रतियोगितामूलक कसौटियों से भिन्न कसौटियाँ बनाई जाएं, जिन पर एकाधिकारिक प्रतियोगिता के परिणामों को परखा जा सके।[19]

अध्याय 9

एकाधिकारिक और "अपूर्ण" प्रतियोगिता में भेद[1]

इस अध्याय में एकाधिकारिक और "अपूर्ण" प्रतियोगिता के सामान्य क्षेत्र मे कुछ गलत धारणाओं पर आलोचनात्मक रूप से विचार किया गया है। सर्वाधिक गलत धारणा यह है कि ये दो एक ही चीज के केवल दो भिन्न नाम है। बहरहाल, इस अध्याय के पहले भाग में सम्पूर्ण विषय-वस्तु के जिस भाग पर ये दोनों सिद्धान्त उभयनिष्ठ रूप से कार्य करते है, उसमें काम मे लाए गए तकनीकी उपकरण की समरूपता को स्वीकार किया गया है,[2] और सिद्धान्त के इस **सामान्य प्रकार** के बारे में कई मिथ्या धारणाओं की जांच की गई है, जो या तो अस्पष्ट रूप से प्रचलित है या विशिष्ट लेखकों में हैं। दूसरे भाग में असमरूपताओं पर ध्यान दिया गया है। इसका प्रयोजन एकाधिकार और प्रतियोगिता के सम्मिश्र के रूप में एकाधिकारिक प्रतियोगिता के स्वभाव को पुनः पुष्ट करना है, और समस्या की श्रीमती रॉबिन्सन की और मेरी अपनी संकल्पनाओं के भेद की ओर, और उसके कुछ परिणामों की ओर, ध्यान दिलाना है।

1. कुछ व्यापक मिथ्या धारणाए

पहले हम सिद्धान्त के सामान्य प्रकार के सम्बन्ध में मिथ्या धारणाओं को देखे। इनमे से पहली यह है कि "अपूर्ण" और एकाधिकारिक प्रतियोगिता किसी विशेष ढंग से सीमान्त आय वक्र से सम्बन्धित हैं। इस साहचर्य का वर्णन एक ऐतिहासिक संयोग के रूप में किया जा सकता है। सीमान्त आय वक्र के सम्बन्ध में श्रीमती रॉबिन्सन कहती है[3] कि "यह उपकरण मेरी कृति में बहुत काम करता है, और मेरी पुस्तक विभिन्न समस्याओं में उसका प्रयोग करने के प्रयत्न से उत्पन्न हुई है...।" ये अनुप्रयोग वास्तव में विलक्षण हैं, और श्रीमती रॉबिन्सन ने तकनीकी उपस्कर के इस विशेष भाग के महत्व का प्रभावकारी रूप से प्रदर्शन किया है; परन्तु उनमे उसके महत्व को बढ़ा-चढ़ा कर कहने की प्रवृत्ति है। उदाहरणार्थ, पृष्ठ 6 पर कहा गया है कि "जबकि तकनीकी उपकरण के कई भागों में कोई निजी गुण नहीं होता, और उनका उपयोग केवल सहूलियत के लिए किया जाता है, एकाधिकार उत्पत्ति के विश्लेषण में सीमान्त वक्रों का उपयोग अपने में सम्पूर्ण विषय के केन्द्रीय भाग को अन्तर्विष्ट करता है।" यह निश्चित है कि सीमान्त वक्रों का यह एक 'निजी गुण" है कि औसत आय और औसत लागत वक्रों के बीच क्षेत्रों का आसंजन करने की अपेक्षा उनका प्रतिच्छेद एकाधिकार **उत्पत्ति** को अधिक सफाई से प्रकट करता है। साथ ही साथ, यह एक निजी

अवगुण है कि वे कीमत का निर्देश बिल्कुल नहीं करते। एक और निजी अवगुण यह है कि वे, न तो प्रति इकाई न समस्त, लाभ का आसानी से बताते हैं। निस्संदेह इन्हीं कमियों के कारण श्रीमती रॉबिन्सन की पुस्तक के बयासी चित्रों में कोई भी ऐसा नहीं है जिसमें औसत आय वक्र के बिना सीमान्त आय वक्र खींचा गया है।[4] इसके अलावा, जब हम विसम्पर्कित अकेली फर्म के सन्तुलन के आगे बढ़ते हैं, तब, उत्पत्ति के लिए भी, सीमान्त वक्र "सम्पूर्ण विषय के केन्द्रीय भाग" को अन्तर्विष्ट नहीं करते। यह ("अपूर्ण" प्रतियोगिता के अन्तर्गत) "प्रतियोगी सन्तुलन" के श्रीमती रॉबिन्सन के अपने वर्णन से प्रकट हो जाता है, जहाँ हम पाते हैं कि पूर्ण सन्तुलन एक "बुहरी (बल मेरा) शर्त की अपेक्षा करता है, कि सीमान्त आय और सीमान्त लागत बराबर हों, और औसत आय (या कीमत) और औसत लागत बराबर हों।"[5] ऐसा प्रतीत होता है कि, "सम्पूर्ण विषय के केन्द्रीय भाग" को अन्तर्विष्ट करने के स्थान पर, वे बिल्कुल अधीनस्थ हैं। अकेली फर्म की सन्तुलन की समस्या के लिए भी, वे उन परिणामों पर पहुंचने की एक वैकल्पिक तकनीक मात्र हैं जिन पर औसत वक्रों का उपयोग कर के पहुंचा जाता है। श्रीमती रॉबिन्सन स्वयं इसका संकेत करती हैं, जब वे कहती हैं कि "यह स्पष्ट है कि विश्लेषण की सीमान्त रीति ठीक वे ही परिणाम देगी, जो कीमत निर्धारण की मार्शल द्वारा प्रयुक्त रीति, जिसमें कीमत वह होती है जिस पर 'निवल एकाधिकार आय' का निरूपण करने वाला क्षेत्रफल अधिकतम होता है, क्योंकि निवल आय तब अधिकतम होती है जब सीमान्त आय और सीमान्त लागत बराबर होते हैं।"[6]

सीमान्त आय और सीमान्त लागत के शब्दों में अपूर्ण प्रतियोगिता के सिद्धान्त का इतना विकास होने के कारण, यह आश्चर्यजनक नहीं है कि कई लोगों के दिमाग में सीमान्त आय अपूर्ण प्रतियोगिता के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हो। इस प्रकार श्री हैरॉड, अपने लेख "Imperfect Competition and the Trade Cycle" में[7], कहते हैं कि "अपूर्ण प्रतियोगिता के सिद्धान्त का प्रमुख नियम यह है कि उद्यमकर्ताओं की प्रवृत्ति सीमान्त आय और सीमान्त लागत को समीकृत करने की होती है।" परन्तु यह पूर्णतया सुस्पष्ट है कि किन्हीं भी परिस्थितियों के अन्तर्गत एक फर्म के लिए सीमान्त आय और सीमान्त लागत का समीकरण एक व्यापक नियम है, यहां तक कि शुद्धातिशुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत भी। मूलतः, यह इस बात को कहने का केवल दूसरा ढंग है कि उत्पादक अपने लाभों को अधिकतम करने की चेष्टा करते हैं, और यह "अपूर्ण" प्रतियोगिता का शुद्ध प्रतियोगिता और एकाधिकार से भेद दिखाने मे कोई अंशदान नहीं करता।

"वर्धमान प्रतिफल" से अपूर्ण और एकाधिकारिक प्रतियोगिता जो सम्बन्ध रखती है, उसकी अतिशयोक्ति या उसके विरूपण को दूसरी मिथ्या धारणा कहा जा सकता है। उनके बीच ऐतिहासिक साहचर्य केवल इस तथ्य के कारण उत्पन्न हुआ है कि श्रीमती रॉबिन्सन की पुस्तक में सिद्धान्त ने जो रूप धारण किया है, वह प्रोफेसर

नाइट, श्री स्राफा, प्रोफेसर पिगु, श्री शोव्ह, श्री हैरॉड, श्रीमती रॉबिन्सन और अन्य द्वारा वर्धमान प्रतिफल के स्वभाव और प्रतियोगिता से उसकी संगति के विषय पर लिखे गए लेखों की माला से विकसित हुआ प्रतीत हुआ। परन्तु यद्यपि, इस स्थिति में, ऐसा प्रतीत होता है कि "अपूर्ण" प्रतियोगिता **ऐतिहासिक रूप से** वर्धमान प्रतिफल से व्युत्पन्न हुई है, एकाधिकारिक प्रतियोगिता के बारे में यह स्थिति नहीं थी;[8] और **तर्कसंगत** व्युत्पत्ति, जिस मात्रा में उसका अस्तित्व है, बिल्कुल विपरीत प्रकार से होती प्रतीत होती है। श्रीमती रॉबिन्सन और मैंने, दोनों ने, (बड़ी संख्या की स्थिति में) समस्या की परिभाषा **मांग** वक्र की आकृति को प्रभावित करने वाले कारकों के सापेक्ष, और लागत दशाओं के अनपेक्ष, स्पष्ट रूप से की है।[9] यह सच है कि इस प्रकार के सिद्धान्त के अन्तर्गत सन्तुलन एक-एक फर्म के (उत्पादन) लागत वक्र की ह्रासमान लागत की अवस्था में प्रायः (यद्यपि आवश्यक रूप से नहीं) प्राप्त होता है। परन्तु जब हम स्मरण रखते हैं कि, चाहे शुद्ध प्रतियोगिता हो या एकाधिकारिक, लागत वक्र की आकृति U-जैसी होती है, यह तुरन्त प्रकट हो जाता है कि फर्म के सन्तुलन के सामीप्य में 'वर्धमान प्रतिफल" एकाधिकारिक प्रतियोगिता का **परिणाम** है और उसकी परिभाषा का कोई भाग नहीं है।[10] लागत वक्र की आकृति सन्तुलन के निर्धारण में, स्वभावतया, एक कारक है, परन्तु यह बात जहाँ भी लागत वक्र **होता है**, वहाँ मूल्य की समस्या के बारे में कही जा सकती है। यह मांग की आकृति है जो एकाधिकारिक और शुद्ध प्रतियोगिता के वैषम्य को प्रकट करती है।[11]

एक तीसरी मिथ्या धारणा पर संक्षेप में विचार कर लिया जाए। वह यह धारणा है कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता का सम्बन्ध केवल उन स्थितियों से है जिनमें मांग और लागत वक्र स्पर्शरेखाएं होते हैं, अतः जहाँ कोई एकाधिकार लाभ नहीं मिलते, जबकि ऐसी किसी स्थिति को एकाधिकार के अन्तर्गत रखना चाहिए जिसमें ऐसे लाभ मिलते हैं। पल भर विचार करने पर प्रकट हो जाएगा कि यह एक कृत्रिम भेद है। श्रीमती रॉबिन्सन की "अपूर्ण" प्रतियोगिता के सम्बन्ध में यह मामला वास्तव में उठता ही नहीं, जिसका कारण यह है कि, जब "उद्योग" में फर्मों की संख्या में परिवर्तन की कोई प्रवृत्ति नहीं होती, ऐसी स्थिति में अर्जित **सब** लाभों को वे लागत में सम्मिलित कर लेती है, और इस प्रकार **सब** फर्मों के मांग और लागत वक्रों को, परिभाषा से, एक-दूसरे की स्पर्शरेखा बना देती हैं।[12] लेकिन, एकाधिकारिक प्रतियोगिता के सम्बन्ध में यह मामला अवश्य उठता है, और इस विचार का कि लागत और मांग वक्रों की स्पर्शिता सन्निहित केन्द्रीय सिद्धान्त है, मैंने कई बार सामना किया है।[13] हो सकता है कि इसका कारण सिद्धान्त के मेरे अपने कथन में इस हल को दी गई अति-प्रधानता शायद हो। यहाँ ऊपर दिए गए लेखांशों की ओर ध्यान दिलाना पर्याप्त होगा, (पृष्ठ 65 और पृष्ठ 88 ff.) जिनमें यह स्पष्ट किया गया है कि स्पर्शिता वाला हल कुछ हिम्मत-भरी कल्पनाओं का परिणाम है जो बाद में त्याग दी जाती हैं, और उसकी प्रत्यक्ष प्रयोज्यता भी बहुत सीमित समझी जानी चाहिए, क्योंकि वह प्रतिपादन की एक युक्ति

है जो सिद्धान्त के विकास की एक मध्यवर्ती अवस्था का निरूपण करती है।

यहाँ जो सारभूत बात कहनी है वह यह है कि इन दो वक्रों की स्पर्शिता के साथ या उसके बिना, दोनों स्थितियों में, प्रतियोगिता और एकाधिकार का मिश्रण हुआ है। उनमें केवल लाभ के सम्बन्ध में सारभूत भेद है : स्पर्शिता की स्थिति में एकाधिकार लाभ लुप्त हो जाते हैं, परन्तु स्थिति में एकाधिकार तत्वों से उत्पन्न होने वाली अन्य सब घटनाएं बनी रहती हैं। उनमें हैं : एकाधिकार कीमतें और उत्पत्तियाँ, विक्रय व्यय, और सम्भवतः कीमत-भेद। यह समझने पर शायद मामला स्पष्ट हो जाएगा कि एकाधिकार का सम्पूर्ण सिद्धान्त, जैसी उसकी सुपरिचित रूप से कल्पना की जाती है, एकाधिकारिक प्रतियोगिता के सिद्धान्त का, जैसा उसका वर्णन करने की मैंने चेष्टा की है, अनिवार्य अंग है।

बहुधा सामने आने वाले इस तर्क का भी प्रासंगिक रूप से, उल्लेख कर दिया जाए, जो जनोपयोगी सेवाओं और रेलमार्गों के क्षेत्र में विशेष कर के आता है, कि यदि लाभ अत्यधिक नहीं है तो क्षेत्र प्रतियोगी है। इस प्रकार विश्वास किया जाता है कि रेलमार्गों का विनियमन करना अब आवश्यक नहीं रहा, क्योंकि उनके लाभ परिवहन के अन्य प्रकारों से प्रतियोगिता के कारण नियन्त्रण में रहते है; और अन्य जनोपयोगी सेवाओं के सम्बन्ध में समरूप कथन दिए गए है। इसका उत्तर, स्वभावतया, यह है कि लाभ स्थिति का केवल एक तत्व है; दरें, भेदमूलक व्यवहार, अपने सब पक्षों में सेवा, निवेश, और अन्य नीतियों पर एकाधिकार तत्वों का असाधारण प्रभाव पड़ सकता है, भले ही लाभ अत्यधिक न हों।

चौथी मिथ्या धारणा यह है कि उत्पाद का विशिष्टीकरण बाजार में विक्रेताओं की संख्या की समस्या में परिणत किए जाने योग्य है, इस अर्थ में कि बृहत्तर सख्या होने पर एक-एक फर्म का मांग वक्र अधिकाधिक लोचदार होता जाएगा, जब तक कि शुद्ध प्रतियोगिता की दशाए प्राप्त नहीं हो जाती। विवेचनाओं में मैने इस विचार का बार-बार सामना किया है; वस्तुतः प्रतीत होता है कि इसमें हतबुद्धिकर—और घबड़ा देने वाली—जीवनी-शक्ति है। श्रीमती रॉबिन्सन् की पुस्तक मे यह वहाँ सरसरी तौर पर प्रकट होता है जहाँ इस संभावना पर विचार किया गया है कि एकरूप पण्य (उनके द्वारा माना गया) की मांग बढ़ने पर नयी फर्में "पुरानी फर्मों के, मानो, बीच में (या तो भौगोलिक रूप से या उन विशेष गुणों के सम्बन्ध में जो विभिन्न ग्राहकों को विभिन्न मात्राओं में आकर्षित करते हैं) स्थापित की जाती हैं। इस प्रकार, क्रेताओं के दृष्टिकोण से, किसी एक फर्म और उसकी अगली फर्म के बीच का अन्तर कम हो जाएगा, प्रत्येक फर्म के ग्राहक अधिक उदासीन हो जाएंगे, और मांग की लोच बढ़ जाएगी...मांग में इस प्रकार की अनुक्रमिक वृद्धियाँ अन्त में **बाजार की अपूर्णताओं को सर्वथा दूर कर देंगी।**"[14] लेकिन, वे आगे कहती हैं कि वास्तविक दुनिया में ऐसा होने के पहले विज्ञापन और अन्य युक्तियां काम में लाई जाएंगी, और वे बाजार को फिर विभाजित कर देंगी। श्रीमती रॉबिन्सन के अनुसार मांग वक्र का चपटा होना अनेक संभावनाओं में

से केवल एक है। श्री काल्डर[15] ने तर्क को अधिक व्यापक शब्दों मे कहा है, यद्यपि दृष्टान्त अब भी वही है कि संख्या में वृद्धि होने पर नयी फर्में पुरानी फर्मों के "बीच में" स्थापित होती है।

प्रश्न यह है कि क्या बृहत्तर संख्या मांग वक्रों को क्षैतिज स्थिति की ओर, जो शुद्ध प्रतियोगिता का लक्षण है, और अधिक निकटता से पहुँचाती है ? स्पष्ट है कि ऐसी कोई सामान्य प्रकल्पना नहीं है कि वह ऐसा करती है। उदाहरणार्थ, यदि हम किसी क्षेत्र में वितरित दुकानों पर सोचें, तो सभव है कि उनकी सख्या मे वृद्धि क्षेत्र में प्रसार के कारण हो, न कि उसमें अधिक घनी आबादी के कारण। इस स्थिति में, नयी फर्में पुरानी फर्मों के बीच मे बिल्कुल नही है, और "उत्पाद" पहले की तुलना में अधिक निकट रूप से एक-दूसरे के सदृश नही है। अभौगोलिक समस्याओं में उत्पाद के नये प्रकारों को बेचने वाली नयी फर्में, निश्चित है कि, कम से कम कुछ नये क्रेताओं को आकर्षित करेंगी, और इसलिए उनका प्रभाव कुछ मात्रा मे सदा इस भौगोलिक उदाहरण में क्षेत्र के प्रसार के सदृश होता है। इसके अलावा, "बीच में के उत्पादों" की सकल्पना का प्रयोग भौगोलिक समस्याओं के बाहर आसानी से सदा नही किया जा सकता है। क्या गैस-प्रशीतकों (रैफ्रिजरेटर) को किन्ही दो अन्य प्रकारों—जैसे विद्युत्-प्रशीतक और प्राकृतिक बर्फ—के "बीच मे" समझा जा सकता है ? क्या मैंथॉल सिगरेटें किन्ही दो अन्य छापों के 'बीच मे" है ? यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि बड़ी या छोटी संख्या संबधित उत्पादों में प्रतिस्थापनीयता की मात्रा के बारे में **आवश्यक रूप से** कुछ सकेत नही करती। यह इस मूलभूत प्रस्थापना से शायद सर्वाधिक स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष है कि किसी क्षेत्र में उत्पादको की संख्या सर्वप्रथम इस पर निर्भर करती है कि क्षेत्र का सीमांकन कितने विस्तृत रूप से किया गया है।

परन्तु जहाँ यह आसानी से सोचा जा सकता है कि उत्पादकों की बड़ी संख्या होने पर उत्पाद "अधिक निकट" आ जाते हैं, वहाँ भी परिणाम का शुद्ध प्रतियोगिता के निकटतर पहुँचना आवश्यक नही होता। यदि हम मान लें कि उत्पादक और उनके ग्राहक एक रेखा पर एक सिरे से दूसरे तक स्थित है, तो किसी फर्म के उत्पाद का मांग वक्र एक सरल रेखा होगा, जिसका ढाल परिवहन की लागत द्वारा या सहूलियत के तत्व पर लगाए गए दूरी के प्रति इकाई मूल्यन द्वारा निर्धारित होगा।[16] अब यदि ऊँचे लाभों के परिणामस्वरूप विक्रेताओं की सख्या बढ़ जाती है, जिससे वक्र बायीं ओर हट जाता है, तो जब तक जिस दर पर क्रेता सहूलियत का मूल्यन करते है वह नहीं बदलती, वक्र का **ढाल** वही बना रहेगा।[17] जब तक सहूलियत का मूल्यन नहीं बदलता, वक्र में बृहत्तर संख्या के साथ क्षैतिज स्थिति की ओर पहुँचने की कोई प्रवृत्ति प्रकट नहीं होती; और यद्यपि सख्या में परिवर्तन के कारण हो सकता है कि सहूलियत संभवतः प्रभावित हो, यह स्पष्ट प्रतीत नहीं होता कि ऐसा क्यों हो। दूसरी ओर, विपरीत दिशा में एक निश्चित संबंध है। सहूलियत (या, सामान्यतया, उत्पाद में **विविधता**) के मूल्यन में परिवर्तन संख्या को निश्चय ही प्रभावित करेगे। निम्नतर

मूल्यन मांग वक्रों को चपटा कर देगा, और इस प्रकार विक्रेताओं की संख्या को घटा देगा; उच्चतर मूल्यन का परिणाम इसके विपरीत होगा। प्रत्यक्ष है कि संख्या में कोई वास्तविक वृद्धि किसी विशेष स्थिति में वस्तुतः एकाधिकार तत्वों के प्रबल होने से, न कि उनके दुर्बल होने से, संबंधित होगी।[18]

सामान्य निष्कर्ष यह अवश्य होना चाहिए कि विशिष्टीकृत उत्पाद होने पर "उत्पादकों की संख्या" का कोई निश्चित अर्थ नही रह जाता जो उसका किसी विशेष (मानकित) उत्पाद के संबंध में होता है, और यह कि एकैक उत्पादक के मांग वक्र की लोच पर संख्या के प्रभाव के बारे में व्यापक सामान्यीकरण अब संभव नहीं होता।[19]

संख्या के प्रश्न के साथ विभाज्यता का प्रश्न घनिष्ठ रूप से संबंधित है। यदि सब कारक पूर्णतया विभाज्य हों, तो एकाधिकारिक प्रतियोगिता का क्या होगा? उत्तर बहुत स्पष्ट रूप से यह है कि बिल्कुल कुछ नही। परन्तु श्री काल्डर का दावा है कि "जहाँ प्रत्येक चीज पूर्णतया विभाज्य होती है, और फलतः पैमाने की किफायतों का पूर्णतः अभाव रहता है, वहाँ 'पूर्ण प्रतियोगिता' 'आर्थिक शक्तियों के अबाध कार्य-कलाप' के परिणामस्वरूप अपने को आवश्यक रूप से स्थापित अवश्य कर लेगी। 'उत्पाद विशिष्टीकरण' की कोई मात्रा और उत्तरोत्तर 'उत्पाद विचरण' की कोई संभावना इस परिणाम को रोकने के लिए पर्याप्त नही होगी, बशर्ते कि सब प्रकार के 'संस्थानिक एकाधिकारों' और सब प्रकार की अविभाज्यताओं का पूर्ण अभाव हो।"[20] (उनके तर्क में "संस्थानिक एकाधिकार" लाभों को उनके न्यूनतम तक घटने से रोकने का कार्य करते हैं। यहाँ हम मान लेते हैं कि ऐसी शक्तियां अनुपस्थित हैं।) पूर्ण विभाज्यता होने पर एकाधिकारिक प्रतियोगिता का शुद्ध प्रतियोगिता में कल्पित रूपान्तरण इसलिए होता है (1) क्योंकि पैमाने की किफायतें लुप्त हो जाती हैं, जिससे लागत वक्र एक क्षैतिज रेखा हो जाता है, और (2) क्योंकि जब ऐसा लागत वक्र एक ढालू मांग वक्र के साथ संयुक्त किया जाता है, तो उत्पन्न होने वाले लाभ के कारण, जैसे-जैसे नयी फर्में खिंची आती हैं, मांग वक्र स्वयं, ऊपर दिए गए कारणों से, क्षैतिज स्थिति की ओर घूम जाते हैं। परन्तु यदि इन दो में से कोई भी प्रस्थापना मिथ्या हो तो उनका निष्कर्ष समाप्त हो जाता है; और दूसरे का मिथ्यात्व अभी-अभी प्रमाणित किया गया है। पहले का मिथ्यात्व परिशिष्ट 'ख' में विस्तार से सिद्ध किया गया है।

यह देखने में दिलचस्पी हो सकती है कि यदि इसे स्वीकार भी किया जाए कि पैमाने की किफायतों का अभाव पूर्ण विभाज्यता का परिणाम है, फिर भी यदि मांग वक्र क्षैतिज नहीं हो जाते, जैसा तर्क सामान्य रूप से ऊपर किया गया है, तो हमें एक बेतुका परिणाम मिलता है : फर्मों का अन्तःप्रवाह अनिश्चित रूप से जारी रहेगा (क्योंकि स्थिर लागत के अन्तर्गत सदा लाभ मिलेंगे); और ऐसा लगता है कि अन्तिम नतीजा अपरिमित संख्या में अत्यणु रूप से छोटी फर्में होगा। प्रासंगिक रूप से, मैं सोचता हूँ

(रस्किन की छाया !) कि यह कल्पना अवश्य की जानी चाहिए कि क्रेता भी अपरिमित रूप से विभाज्य हैं। अपरिमित विभाज्यता के साथ मांग वक्र के चपटे होने के किसी भी कारण को यह पूर्णतया दूर कर देगा, क्योंकि विक्रेता क्रेताओं के **सापेक्ष** अधिक बहुसंख्यक और एक-दूसरे के अधिक निकट नहीं होंगे।[21]

दूसरी ओर, यदि यह स्वीकार कर भी लिया जाए कि फर्मों की संख्या बढ़ने पर मांग वक्र अधिक लोचदार **अवश्य** हो जाते हैं तो, यदि लागत वक्र U-आकृति वाले ही हों तो, समूह सन्तुलन को फर्मों की इतनी बड़ी संख्या से, जो पूर्णतया लोचदार मांग वक्रों को ला सकती हैं, संबंधित करने का कोई कारण नहीं है।

हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि, क्योंकि अपरिमित विभाज्यता लागत वक्रों की आकृति को कुछ नहीं करती, और फर्मों की संख्या मांग वक्रों की आकृति को निश्चयपूर्वक कुछ नही करती, इसलिए इनमें से किसी तर्कपद्धति से एकाधिकारिक प्रतियोगिता पूर्ण प्रतियोगिता में परिवर्तित नही होती।

पांचवें, कई ऐसी मिथ्या धारणाएं हैं, जिनका संबंध "प्रवेश पर प्रतिबन्ध" से है। हम इस विचार से शुरू कर सकते है "प्रवेश पर प्रतिबन्ध" पूर्ण प्रतियोगिता के विसंगत है, और इसलिए आवश्यक रूप से एकाधिकार या "अपूर्णता" का निर्देश करता है। श्रीमती रॉबिन्सन ने इस विषय पर विस्तारपूर्वक विचार किया है, और मैं उनके निष्कर्ष से अपनी सहमति केवल दर्ज कर सकता हूँ। निष्कर्ष यह है कि किसी उद्योग में प्रवेश पर प्रतिबन्ध पूर्ण (और शुद्ध) प्रतियोगिता के बिल्कुल संगत है, बशर्ते केवल यह कि उद्योग के भीतर ऐसी दशाएं है जो एक-एक फर्म की उत्पत्ति के मांग वक्र को पूर्णतया लोचदार बनाती है।[22] स्वभावतया, प्रवेश पर प्रतिबन्ध उसी तरह अपूर्ण और एकाधिकारिक प्रतियोगिता के संगत है; और इस बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता कि अबाध प्रवेश पूर्ण (और शुद्ध) प्रतियोगिता के संगत है।

अब यह प्रश्न बचता है कि "अबाध प्रवेश" एकाधिकारिक प्रतियोगिता के संगत है या नहीं। इस बारे मे कोई संदेह नहीं है कि श्रीमती रॉबिन्सन के विचार से वह संगत है, और मैंने इस विषय के बारे में, कभी-कभी, ऐसे ढंग से कहा है जो एक विशिष्टीकृत उत्पाद के अर्थ के मूलभूत रूप से संगत नहीं है। श्री काल्डर ने ठीक कहा है कि इस कथन का कि "सामान्य रूप से क्षेत्र में और विशेष रूप से उसके प्रत्येक भाग में प्रवेश बाधारहित है,"[23] निहितार्थ यह है कि "यदि चाहता तो, प्रत्येक उत्पादक किसी अन्य उत्पादक के पण्यों के सम्पूर्णतः एकसम पण्यों का उत्पादन कर **सकता** है—यदि वह ऐसा नहीं करता, तो केवल इसलिए क्योंकि वह ऐसा करना लाभदायक नहीं पाएगा।"[24] तर्कसंगत रूप से, अपने पूर्णतम भाव में "अबाध प्रवेश" का यही अर्थ अवश्य होना चाहिए, और वह विशिष्टीकृत उत्पाद के बिल्कुल विसंगत है। एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत किसी फर्म द्वारा उत्पादित **विशेष उत्पाद** के सम्बन्ध में, किसी प्रकार की "प्रवेश की स्वतन्त्रता" नहीं हो सकती। कोई दूसरा उसके एकसम उत्पाद का उत्पादन नहीं

कर सकता, यद्यपि वह ऐसे अन्य उत्पादों का उत्पादन करने में समर्थ हो सकता है जो उसके बहुत-कुछ अच्छे स्थानापन्न हैं। इसलिए, एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रवेश की स्वतन्त्रता केवल स्थानापन्नों के उत्पादन की स्वतन्त्रता के अर्थ में हो सकती है; और इस अर्थ में प्रवेश की स्वतन्त्रता सार्वत्रिक है, क्योंकि कौन पदार्थ स्थानापन्न है यह पूर्णतया मात्रा का मामला है।

संकल्पना को अर्थ देने के लिए उसकी परिभाषा, सुष्ठुता (goodness) के मनमाने रूप से सीमांकित परिसर के भीतर, स्थानापन्नों के उत्पादन की स्वतन्त्रता के शब्दों में की जा सकती है, जैसे न्यूनतम आवश्यक से अधिक लाभों का विलोपन करने के लिए पर्याप्त रूप से सुष्ठु परिसर। लेकिन, यदि अब हम आम अर्थ में "उद्योगों" का जिक्र करें, तो प्रत्यक्ष है कि उपर्युक्त अर्थ मे प्रवेश की स्वतन्त्रता हो सकता है कि एक उद्योग के कुछ भागों का लक्षण हो, जबकि अन्य का न हो। ऐसी स्थिति का सुपरिचित साक्ष्य "सुनाम" है। इसलिए, हमारा यह पूछना उचित है कि किसमें प्रवेश अबाध है? यहाँ परिभाषित सीमित अर्थ में भी हम उद्योग में प्रवेश की स्वतन्त्रता का जिक्र तब तक नहीं कर सकते, जब तक कि, मांग वक्रों के और लागत वक्रों के सर्वत्र एक-दूसरे की स्पर्शरेखा हो जाने के कारण से, उद्योग में **सब** उत्पादकों के लाभ घटकर लागत वक्र मे सम्मिलित न्यूनतम लाभ के बराबर नहीं हो जाते। यह मानने पर भी कि यह सच है, यह झंझटी तथ्य बचा रहता है कि कुछ लाभों का विलोपन "उद्योग" बनाने वाले स्थानापन्नो के कारण नहीं, बल्कि उसके बाहर के स्थानापन्नों के कारण होता है। दूसरे शब्दों में, जिन परिणामों के शब्दों में **एक उद्योग के लिए** प्रवेश की स्वतन्त्रता की परिभाषा की जाती है, वे "उद्योग" से, जैसे परिभाषित किया गया है, कही अधिक विस्तृत क्षेत्र में स्थानापन्नों के उत्पादन की स्वतन्त्रता की कुछ मात्रा को वास्तव मे सन्निहित करते है। इस विषय का नतीजा यह प्रतीत होता है कि यह संकल्पना बहुत उपयोगी नहीं है और एकाधिकारिक प्रतियोगिता के संबंध में गभीर रूप से भ्रामक भी है। वास्तविकता में, यह संकल्पना प्रायः एक निश्चित पण्य के बाजार से संबधित है, और मूलभूत कठिनाई यह है कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत, एक-एक फर्म द्वारा उत्पादित पण्य के सिवाय, ऐसा कोई पण्य नहीं है।[25] प्रवेश के मामले में केवल इतना ही कहना आवश्यक है कि अर्थप्रणाली में जहाँ कही भी लाभ की संभावनाएं होंगी, उनको जहाँ तक संभव है काम में लाया जाएगा। किसी विशेष फर्म द्वारा बड़े लाभों की प्राप्ति स्पष्ट रूप से इसका संकेत है कि अन्य, निकट स्थानापन्नों का उत्पादन करके, उनमें से कुछ को प्रतियोगिता द्वारा समाप्त करने में हो सकता है कि समर्थ हों। इसके परिणामों का वर्णन प्रवेश की स्वतन्त्रता या प्रवेश पर प्रतिबन्ध की किसी संकल्पना के बिना सरलता से किया जा सकता है—यहाँ तक कि "उद्योग" की संकल्पना के बिना भी किया जा सकता है : प्रणाली में कुछ फर्में लागत के रूप में

गिने जाने वाले न्यूनतम लाभ से अधिक लाभ प्राप्त नहीं करती, और अन्य, विभिन्न मात्राओं में, उससे अधिक पाती है।[26]

अन्तिम मिथ्या धारणा के रूप में श्रीमती रॉबिन्सन के यह प्रमाणित करने के प्रयत्न का उल्लेख अवश्य किया जाना चाहिए कि "अपूर्णता" को उत्पाद के विशिष्टीकरण के साथ संबंधित नही करना चाहिए। वे कहती है[27] कि "बाजार की पूर्णता के प्रति प्रोफेसर चैम्बरलिन का रुख सर्वथा स्पष्ट नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे अपूर्णता को केवल उत्पाद के विशिष्टीकरण के साथ सम्बद्ध करते है। परन्तु...भौतिक विशिष्टीकरण बाजार की अपूर्णता की **आवश्यक** शर्त नही है।...न ही विशिष्टीकरण बाजार की अपूर्णता की **पर्याप्त** शर्त है।" वे तर्क करती है कि विशिष्टीकरण **आवश्यक** नही है क्योंकि "हो सकता है दो पण्य उनका उत्पादन करने वाली फर्मों के **नामों के सिवाय** सब दृष्टियों से सदृश हों, और तिस पर भी यदि विभिन्न क्रेताओं के इन दो फर्मो के संबंध में अधिमान के मापक्रम विभिन्न हों तो जिस बाजार में वे बेचे जाते हैं वह अपूर्ण होगा" (बल मेरा)। परन्तु जिस स्थान का वे उद्धरण देती हैं वहीं विशिष्टीकरण की एक अवस्था के रूप में उत्पादों से सलग्न नामों का विशिष्ट रूप से उल्लेख किया गया है, और यह स्पष्ट कर दिया गया है कि विशिष्टीकरण का आधार "हो सकता है वास्तविक हो या काल्पनिक, वशर्ते कि वह क्रेताओं के लिए कुछ भी महत्व का हो, और पदार्थ के एक प्रकार पर दूसरे प्रकार को अधिमान देने मे परिणत होता हो।"[28] श्रीमती रॉबिन्सन की विशिष्टीकरण के **आवश्यक** शर्त होने के विरुद्ध आपत्ति उसका समर्थन करने वाले दृष्टान्त में बदल जाती है।[29] उसके **पर्याप्त** न होने के बारे में उनकी दलील यह प्रमाणित करना है कि, यदि उत्पाद विशिष्टीकृत हो परन्तु **यदि** अधिमानों के संबध में सब क्रेता एक-से हों, और **यदि** एक समय में एक क्रेता केवल एक फर्म से लेन-देन करे, तो बाजार तब भी पूर्ण होगा। यह सुस्पष्ट रूप से सच प्रतीत होता है। परन्तु ये शर्तें बहुत कठोर है, और इनके उदाहरण ढूंढ़ना, असंभव नही तो, कठिन होगा। शायद इसी कारण से वे कोई उदाहरण नही देतीं, और आद्योपान्त केवल उत्पाद क और उत्पाद ख का जिक्र करती है। यदि रुचियों या अधिमानों मे भेद हो—और बहुत सामान्यतया उनमें भेद होता है—तो प्रतीत होगा कि विशिष्टीकरण, **उसकी जैसी परिभाषा मैंने की है,**[30] एकाधिकारिक प्रतियोगिता की **पर्याप्त** शर्त भी है।

2. एकाधिकारिक और अपूर्ण प्रतियोगिता में भेद

अब हम इस प्रश्न पर विचार करें कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता क्या है, और, विशेष कर के, वह अपूर्ण प्रतियोगिता से कैसे भिन्न है। "एकाधिकारिक प्रतियोगिता" अर्थशास्त्र के इस पारम्परिक दृष्टिकोण को एक चुनौती है कि प्रतियोगिता और एकाधिकार विकल्प हैं, और यह कि एक-एक कीमत की व्याख्या इनमें

से एक या दूसरे के शब्दों में की जानी चाहिए। इस दृष्टिकोण के विरुद्ध यह विचार प्रकट किया गया है कि अधिकांश आर्थिक स्थितियां प्रतियोगिता और एकाधिकार दोनों के सम्मिश्र हैं, और यह कि, जहाँ भी यह स्थिति हो, इन दो शक्तियों में से किसी की भी उपेक्षा करने पर और स्थिति को सर्वतः (भले ही "अपूर्णतया") दूसरे से बना हुआ समझने पर एक मिथ्या दृष्टि मिलती है। यह एक बहुत सरल विचार प्रतीत होता है। वस्तुतः, यदि परस्पर निवारकता को सन्निहित करने वाली चिन्तन पद्धति से कोई बिल्कुल बँध न गया हो तो यह तुरन्त पकड़ में आ जाता है। इसकी अन्तर्निहित युक्तियुक्तता को इससे अच्छी तरह कभी व्यक्त नहीं किया गया जब कक्षा के बाद मेरे एक विद्यार्थी ने मुझसे कहा कि "अध्याय 4 आसान है—उसमें आप कुछ नहीं कहते।"

लेकिन अध्याय 4 पर मेरी टिप्पणी बिल्कुल भिन्न होती। "उत्पाद का विशिष्टीकरण" सभी दृष्टियों से सब विषयों में सर्वाधिक कठिन है, और इसका कारण ढूंढ़ना कठिन नहीं है। इसमें एक तकनीक नहीं, बल्कि अर्थप्रणाली पर विचार करने का एक ढंग अन्तर्विष्ट है; और अपनी आर्थिक विश्वदृष्टि (Weltanschauung) को बदलना वैयक्तिक फर्म के अर्थशास्त्र का निरीक्षण करने या अपने सामान में एक नया उपकरण जोड़ने से बहुत भिन्न चीज है। कुछ ही देर में मैं प्रमाणित करूंगा कि श्रीमती रॉबिन्सन की *Imperfect Competition* प्रतियोगिता और एकाधिकार के मिश्रण की संकल्पना से बिल्कुल रहित है। यह द्विभाजन उसमें उतना ही सुस्पष्ट है जितना पिगु, मार्शल, टॉसिग, या जॉन स्टुअर्ट मिल में।

इस परम्परा का कि एकाधिकार और प्रतियोगिता परस्पर अपवर्जी विकल्प हैं, भार वस्तुतः बड़ा है, और हो सकता है कि इस विचार को वास्तव में गंभीर मान्यता दिलाने में हताश होना पड़े कि वास्तविक स्थितियाँ प्रतिरूपी रूप में इन दो का एक संयोजन हैं—एक ऐसी मान्यता जो यहाँ तक जाए कि एक ऐसी समुचित सैद्धान्तिक संरचना को स्वीकार करे जिसमें दोनों तत्व अपनी-अपनी जगह पाते है। इस सैद्धान्तिक संरचना के स्वभाव के बारे में गलत धारणा विशेष कर के है। क्योंकि वह एकाधिकार की तकनीक का उपयोग करती है, और उन्हें सामने लाती है जिन्हें प्रतियोगिता सिद्धान्त सर्वतः छोड़ देता है—किसी स्थिति में वास्तविक रूप से विद्यमान एकाधिकार के तत्व—इसलिए कुछ को खटका है कि यह एकाधिकार की दिशा में बहुत दूर तक घूम जाना है। जहाँ एकाधिकार है वहाँ प्रतियोगिता नहीं है, इस धारणा के साथ संयुक्त करने पर यह आसानी से इस अभियोग में विकसित हो जाता है कि सिद्धान्त प्रतियोगिता की सर्वतः उपेक्षा कर देता है। प्रोफेसर जे० एम० क्लार्क का मत इसी प्रकार का प्रतीत होता है, जब वे कहते हैं कि "सिद्धान्तियों ने बहुधा कहा है कि प्रतिरूपी औद्योगिक स्थितियाँ 'एकाधिकार के तत्वों को अन्तर्विष्ट करती हैं;' और हाल में और आगे जाने तथा विभाजन रेखा को इस प्रकार खींचने की प्रवृत्ति रही है कि जिन स्थितियों में 'शुद्ध' या 'पूर्ण' प्रतियोगिता के लक्षण नहीं हैं उन सब को एकाधिकार के वर्ग में रखा जाए,

और इस प्रकार यथार्थतः सब उद्योगों को 'एकाधिकार' के वर्ग में रख दिया गया है।" इसके बाद श्रीमती रॉबिन्सन की और मेरी पुस्तकों का हवाला दिया गया है।[31]

अब, किसी ने भी ऐसा नहीं किया है। यह कहना कि किसी उद्योग मे प्रत्येक उत्पादक का उत्पाद के अपने प्रकार पर एकाधिकार है यह कहना नहीं है कि उद्योग मे एकाधिकार स्थापित है। प्रत्युत्, हो सकता है कि उद्योग के भीतर बहुत तीव्र प्रतियोगिता हो; निस्सदेह उस प्रकार की नही जिसका वर्णन शुद्ध प्रतियोगिता के सिद्धान्तों मे किया जाता है, बल्कि इस तथ्य के कारण से भिन्न प्रकार की कि प्रत्येक उत्पादक का उत्पाद के अपने प्रकार पर एकाधिकार है। इस प्रकार प्रत्येक एकाधिकारी स्थानापन्नों की प्रतियोगिता का सामना करता है, और यह तुरन्त स्पष्ट हो जाता है कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता का सिद्धान्त एकाधिकार के सम्पूर्ण सिद्धान्त को समाविष्ट करता है। परन्तु वह उसके परे भी देखता है, और एक-दूसरे से परिमेय मात्रा में प्रतियोगिता करने वाले एकाधिकारियों में परस्पर सबंधों पर, जहां कहीं उनका अस्तित्व है, विचार करता है। प्रतियोगिता की मात्रा कितनी भी अधिक हो, उसे (क) समुपयुक्त रूप से लोचदार, और (ख) लागत वक्र के सापेक्ष समुपयुक्त रूप से स्थित मांग वक्र द्वारा पूरी तरह से मान्यता दी जा सकती है। प्रतियोगिता के सिद्धान्त के माध्यम की अपेक्षा एकाधिकार के सिद्धान्त के माध्यम से समस्या की और उपागम की श्रेष्ठता यहाँ तुरन्त प्रकट हो जाती है। प्रतियोगिता का सिद्धान्त, अपने स्वभाव के ही द्वारा, एकाधिकार तत्वों का सम्पूर्णतः विलोपन कर देता है, और इस प्रकार चित्र के एक भाग को मिटा देता है और अर्थप्रणाली का एक इतना मिथ्या विवरण देता है कि अधिकांश स्थितियों मे उसे उसके सन्निकट तक नही कहा जा सकता। एकाधिकार का सिद्धान्त किसी चीज का विलोपन नहीं करता। वह चित्र में एकाधिकार के अब तक उपेक्षित तत्वों को ले आता है, और, उत्पादकों के समूहों के परस्पर संबधों को सम्मिलित करने वाले विस्तार के द्वारा, किसी विशेष स्थिति में जो भी प्रतियोगिता और जो भी एकाधिकार विद्यमान हो उन्हें पूरी मान्यता देता है।

इस विषय के साहित्य में, यद्यपि "एकाधिकारिक प्रतियोगिता" शब्द का बहुत व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है, फिर भी "अपूर्ण प्रतियोगिता" के लिए भी प्रबल अधिमान है। इसका स्पष्टीकरण कठिन नहीं है। सर्वप्रथम इस वाक्यांश की अचूक तीक्ष्णता का उल्लेख किया जा सकता है—यदि शिष्टाचार पर लिखी पुस्तक का शीर्षक बहुधा "पूर्ण आचार" रखा गया है तो स्थापित सभ्याचार से विचलनों के लिए "अपूर्ण आचार" से अधिक अच्छा शीर्षक क्या होगा? परन्तु "अपूर्ण प्रतियोगिता" के विस्तृत प्रयोग का इससे अधिक बड़ा कारण संभाव्यतः यह है कि उसमें इसकी व्यक्त मान्यता से अधिक कुछ सन्निहित नहीं है कि वास्तविक प्रतियोगिता अपूर्ण है, जिसे सबने किसी न किसी रूप में सदा स्वीकार किया है। यह शब्द शुद्धतः नकारी है। प्रतियोगिता और एकाधिकार अल्पतम परस्परव्याप्ति के बिना अपने-अपने

ढंग से चलते हैं, और किसी के विचारों के प्रवर्गों (category) में होने वाला व्यतिकरण न्यूनतम रहता है। इस प्रकार प्रतियोगिता और एकाधिकार को परस्पर निवारक प्रवर्गों के रूप में बनाये रखने में "अपूर्ण प्रतियोगिता" ने निस्संदेह अंशदान किया है, और वह आगे भी बहुत अंशदान करेगी।[33]

"अपूर्ण" और एकाधिकारिक प्रतियोगिता को एक ही चीज के विभिन्न नामों के रूप में आम तौर पर एकसाथ मिला दिया जाता है। प्रतीत होता है कि उनके सदृश तत्वों को यथेष्ट रूप से पहचाना जाता है।[33] उनकी असदृशताओं को विरले ही समझा जाता है। श्री ह्वाइट, इन सिद्धान्तों का उपयोगी संक्षेप देने के साथ-साथ विषय-क्षेत्र और प्रतिपादन में कुछ भिन्नताओं का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करते है।[34] समस्या की संकल्पना में जो मूलभूत अन्तर मुझे प्रतीत होता है उसे सम्मिलित करने में, मैं इसके प्रति बिल्कुल सचेत हूँ कि उसका महत्व कई की पकड में नही आएगा, प्रत्युत् वे उसमें केवल शब्दावली का प्रश्न सन्निहित देखेगे। लेकिन, मैं निवेदन करता हूँ कि इसका कोई साक्ष्य नही है (कम से कम मैं जिसे पा सका हूँ) कि श्रीमती रॉबिन्सन एकाधिकार (उसके साधारण अर्थ में) और प्रतियोगिता के बारे में उनके परस्पर निवारक होने के अलावा किसी अन्य ढंग से सोचती हैं।[35] सकल्पना में हम दोनों के बीच यह अन्तर वास्तव में सन्निहित समस्याओं के प्रतिपादन में कई अन्य भेदो को समझने की कुजी है। श्रीमती रॉबिन्सन को इस रूढ द्विभाजन का श्रेय देने पर जो मामले स्पष्ट हो जाते हैं उनमें निम्नलिखित का उल्लेख किया जा सकता है: "What is Perfect Competition ?" लेख का अधिकांश, जो इस निर्वचन को ध्यान मे रखने पर नये अर्थ ले लेता है—उदाहरणार्थ, "शुद्ध" और "पूर्ण" प्रतियोगिता के बीच वाद-विषय का उनका विवेचन, "उत्पाद विशिष्टीकरण" का अस्वीकरण, एक "पण्य" की परिभाषा का विवेचन;[36] *Imperfect Competition* में, "एकाधिकार सन्तुलन" पर और "प्रतियोगिता सन्तुलन" पर पृथक् अध्याय; लाभ का उनका प्रतिपादन, जिसका विवेचन आगे किया गया है; और उनका "शोषण" का विश्लेषण, जिसका विवेचन भी आगे किया गया है। इसलिए, यह उचित प्रतीत होता है कि श्रीमती रॉबिन्सन द्वारा दिए गए प्रतियोगिता और एकाधिकार के स्वभाव के और उनके एक-दूसरे से सबध के विश्लेषण की परीक्षा की जाए।

Imperfect Competition के पृष्ठ 4 और 5 में वे स्थानापन्नों की श्रेणियो के मामले पर विचार करती हैं। उनका तथ्यों का उपस्थापन लगभग ठीक मेरा जैसा है, परन्तु निष्कर्ष संलक्ष्य रूप से भिन्न हैं। "वास्तविक तथ्यों को एक ऐसी श्रेणी मे क्रमबद्ध करने" की संभावना उन्हें "मोहक" लगती है "जिसके एक छोर की सीमा शुद्ध एकाधिकार हो और दूसरे की शुद्ध प्रतियोगिता", परन्तु वे उसे अस्वीकार कर देती हैं क्योंकि उसमें दुर्लंघ्य कठिनाइयां अन्तर्विष्ट हैं। यहाँ ऊपर पृष्ठ 50 और 51 में दिए गए प्रतिपादन से तुलना की जानी चाहिए, जहाँ इस मत को सिद्धान्त के आधार के रूप में विशिष्टतः अंगीकार किया गया है। श्रीमती रॉबिन्सन एक "एकाधिकार" की परिभाष

करने के हेतु एक "पण्य" की परिभाषा करना चाहती हैं; और परिभाषा के विस्तार में संभव परिवर्तनों के कारण अटक जाती है। इस प्रकार जो स्वयं उत्तर है, वही उत्तर की ओर से उन्हें फिरा देता है। स्पष्ट रूप से यह कभी नहीं देखा जाता है कि एकाधिकार के सुपरिचित अर्थ को ज्योंही **चाहे किसी भी पण्य** से दृढ़ता से जोड़ा जाता है, पण्य की परिभाषा चाहे जितनी भी व्यापक या संकीर्ण हो, वह पूर्णतः संतोषजनक बन जाता है, और उस पण्य और अन्य पण्यों के बीच प्रतियोगिता के सम्पूर्णतः संगत है। और इसलिए काल्पनिक कठिनाइयों से बचने के लिए वे "एकाधिकार" शब्द की ऐसी परिभाषा देने की ओर प्रवृत्त होती है जो, मेरी जानकारी में न तो इसके पहले और न बाद में कभी उसकी रही है। उसकी ऐसी परिभाषा की गई है कि वह केवल वैयक्तिक विक्रेता को निर्दिष्ट करे। "प्रत्येक वैयक्तिक उत्पादक का अपनी उत्पत्ति पर एकाधिकार है—यह पर्याप्त रूप से सुस्पष्ट है—और यदि वे बडी सख्या में एक पूर्ण बाजार में बेच रहे है तो जो परिस्थिति विद्यमान रहती है उसका पूर्ण प्रतियोगिता के रूप में वर्णन करने के हम आदी हो गए है।"[37] इसलिए, **पूर्ण प्रतियोगिता तक के अन्तर्गत**, एक-एक विक्रेता "एकाधिकारी" है! "एकाधिकार सन्तुलन" पर अध्याय में वे कहती हैं कि "सरलता के हेतु एक-एक उत्पादक का उल्लेख **एकाधिकारी** के रूप मे किया जा सकता है,"[38] और इसी अध्याय में वे **पूर्ण** प्रतियोगिता के अन्तर्गत वैयक्तिक फर्म के सन्तुलन समायोजन के विवेचन को सम्मिलित करती है। भाग 4 में, "एकाधिकार और प्रतियोगी उत्पत्ति की तुलना" में, श्रीमती रॉबिन्सन "एकाधिकार" की परिभाषा प्रचलित ढंग से करती है—अकेले अधिकारी का उत्पत्ति पर नियत्रण, और पृष्ठ 9 मे, अपने संक्षेप में, ऐसी परिभाषा के लिए क्षमा-याचना करती है। वे कहती है कि "इस शीर्षक को.....रिवाज का अनुमोदन प्राप्त है और, यद्यपि वह एकाधिकार की जिस सकल्पना **पर यह पुस्तक आधारित है** उसके शाब्दिक रूप से असगत है, उसके उपयोग का परिहार करना पाण्डित्यदर्शी होता।" (बल मेरा) तो, इसमे सदेह नही कि वे 'एकाधिकार" शब्द के क्या माने लगाती है—किसी भी प्रकार की परिस्थितियों में वैयक्तिक विक्रेता—और पृष्ठ 6 में वे "एकाधिकारी" के इस अर्थ को "तर्कसगत परिभाषा" कहती है।[39] उनकी अपनी इस विचित्र परिभाषा को छोड़ दें तो अपूर्ण प्रतियोगिता की श्रीमती रॉबिन्सन की संकल्पना में कुछ भी एकाधिकार नहीं है। पुनः, "एकाधिकारों की दुनिया" पर अन्तिम अध्याय मे वे एकाधिकार की पूर्ति पर नियंत्रण की रूढ परिभाषा पर लौट आती है, परन्तु सदा एक **उद्योग** के प्रसंग मे, न कि उद्योग के भीतर फर्म विशेष के उत्पाद के संबंध मे।

एकाधिकारिक प्रतियोगिता से सीमित तकनीकी समरूपता के बावजूद, श्रीमती रॉबिन्सन का विश्लेषण ठीक उसी प्रकार से भ्रम पैदा करता है जैसे पूर्ण प्रतियोगिता का सिद्धान्त—अर्थात्, एक संकर स्थिति का ऐसे शब्दों में वर्णन करके जो एकाधिकार के बहुविध आशयों समेत एकाधिकार के पक्ष की पूर्णतया उपेक्षा कर देते हैं। विशिष्टीकृत उत्पाद के फलस्वरूप, जैसे ऊपर बताया गया है, उत्पन्न होने वाले

एकाधिकार की उपेक्षा कर दी गई है, जो यह मानकर की गई है कि एक "अपूर्णतः प्रतियोगी" **उद्योग** एक ऐसे पण्य से "जो व्यावहारिक अभिप्रायों के लिए स्वयं मे **एकरूप** समझा जा सकता है," अभिन्न है।[40] इस एकरूपता के उदाहरण के रूप में जिन पण्यों का व्यक्त रूप से उल्लेख किया गया है उनमें मोटरकार भी है, क्योंकि, वे तुरन्त कहती हैं कि, "मांग वक्र कीमतों की एक सूची का निरूपण करता है जिन पर किसी निश्चित पण्य की विभिन्न राशियाँ किसी बाजार में दी हुई समयावधि के दौरान खरीदी जाएंगी... इंग्लैंड में प्रति मास बेची गई मोटरकारों की संख्या.....एक मांग वक्र द्वारा निरूपित की जा सकती है।" एकाधिकारिक और "अपूर्ण" प्रतियोगिता के बीच खाई का बोध इस संयोग से असाधारण रूप से हो जाएगा कि ऊपर[41] मैंने स्वयं मोटरकारों के **इसी** दृष्टान्त का उपयोग **विपरीत** उद्देश्य से किया है। वहाँ मैने यह दिखलाया है कि कोई विश्लेषण जो उन्हें एकरूप मानता है सम्पूर्णतः अपर्याप्त है; और इस प्रकार एकाधिकारिक प्रतियोगिता के सिद्धान्त की आवश्यकता को, जो अनेकरूपता को व्यक्त रूप से मानता है, स्थापित करने के उद्देश्य से इसी दृष्टान्त का उपयोग किया है।

इस संबंध में यह सार्थक है कि यद्यपि श्रीमती रॉबिन्सन और मैं दोनों "एकसमानता" की कल्पना—कि समूह में सर्वत्र उत्पादकों के मांग और लागत वक्र एकसमान हैं[42]—करते हैं, उसका जो उपयोग किया गया है वह संलक्ष्य रूप से भिन्न है। श्रीमती रॉबिन्सन इस कल्पना को कभी नहीं हटातीं, और इस प्रकार वह अन्तिम सिद्धान्त का एक भाग बना रहता है। यदि एक एकरूप उत्पाद एक "अपूर्ण" बाजार में बेचा जाए तो यही आशंसा की जाएगी, क्योंकि "अपूर्णताएं" एकरूप योग में अशदान करने वाले विभिन्न विक्रेताओं में बिना पूर्वग्रह के बंट जाएंगी। इसके विपरीत, मेरे अपने प्रतिपादन में यह एक "हिम्मतभरी" कल्पना है जो प्रतिपादन को सुकर बनाने के लिए केवल एक अस्थायी कार्यसाधक के रूप में अपनाई गई है,[43] और अन्त में, "प्रत्येक उत्पादक की परिवेशी दशाओं की विविधता"[44] को सिद्धान्त के भीतर सम्मिलित करने के हेतु, उसे हटा दिया गया है; और अपने उत्पाद पर प्रत्येक उत्पादक का एकाधिकार नियन्त्रण होने पर यह विविधता अनेकरूपता का एक स्वाभाविक सहवर्ती है।

इसका लेशमात्र साक्ष्य प्रकट नहीं होता कि श्रीमती रॉबिन्सन "अपूर्ण प्रतियोगता" के अन्तर्गत वैयक्तिक उत्पादक की कल्पना इस रूप में करती है कि उसका किसी अर्थ या मात्रा में एकाधिकार है, जैसा कि एकाधिकार शब्द का प्रयोग अर्थशास्त्र में पारम्परिक रूप से किया गया है और जैसा उसका प्रयोग इस पुस्तक में किया गया है। श्री काह्न ने, *The Economics of Imperfect Competition* की लिखाई में जिनके व्यापक सहयोग को श्रीमती रॉबिन्सन ने अपने प्राक्कथन में स्वीकार किया है, ठीक इसी बात को स्पष्ट शब्दों में दृढ़ता से कहा है : "यह समझ लेना चाहिए कि **प्रतियोगिता की अपूर्णता** वाक्यांश ऐसे किन्हीं आशयों को स्वीकार नही करता जिनसे **एकाधिकार** शब्द परम्परा से संबंधित है।"[45] यह कथन इस पुस्तक के प्रथम संस्करण के प्रकाशन के दो वर्ष बाद प्रकट हुआ और यह विशेष महत्व का है क्योंकि, शायद,

यह स्वीकार किया जा सकता है कि वह यहाँ वर्णित मत के विरुद्ध विशिष्ट रूप से निर्देशित है, और मेरे अनुसार श्रीमती रॉबिन्सन की स्थिति का स्पष्ट पुष्टीकरण है।[46]

श्री काल्डर और अधिक प्रकाश डालते हैं। प्रत्यक्ष है कि, अन्य कई की भांति, उन्होंने अपूर्ण और एकाधिकारिक प्रतियोगिता को एक ही चीज के केवल अंग्रेजी और अमेरिकी समतुल्य समझा है (उनकी तुलना 'ब्रेसेज' और 'ससपेंडर्स' की है)। इसलिए, यह आशा की जा सकती थी कि वे उपर्युक्त दलील का—कि श्रीमती रॉबिन्सन की "अपूर्ण" प्रतियोगिता एकाधिकार को अन्तर्विष्ट करती ही नहीं—तुरन्त ऐसे साक्ष्य प्रस्तुत करके उत्तर देंगे कि वह उसे अन्तर्विष्ट करती है, और इस प्रकार इन दो सिद्धान्तों को एकसाथ ले आएंगे। इसके स्थान पर, वे उन्हें साथ तो लाते हैं परन्तु एकाधिकारिक प्रतियोगिता में से भी एकाधिकार हटा कर और यह दावा कर के कि अवशेष, जो "एक बहुत बड़ा कदम" है, का श्रेय मुझे दिया जाना चाहिए, चाहे मैं सहमत होऊं या नही।[47] यह वास्तव में उदारतापूर्ण है, फिर भी मैं अवश्य चाहूँगा कि इस विशेष कदम का श्रेय अन्यत्र दिया जाए, क्योंकि यह वह नही है जिसे कहने की कोशिश मैं करता रहा हूँ।

श्री काल्डर "संस्थानिक एकाधिकार" शब्द का बहुत उपयोग करते हैं। उसका जो अर्थ प्रतीत होता है वह, आर्थिक साहित्य में एकाधिकार का पारम्परिक रूप से जो अर्थ है और इस पुस्तक में उसका जो अर्थ है, उससे न तो अधिक है और न कम।[48] उनकी समझ में ऐसा एकाधिकार अपूर्ण और एकाधिकारिक प्रतियोगिता के सिद्धान्तों से बिल्कुल भिन्न प्रकार की चीज है, और यह बात उनके इन सिद्धान्तों की "चार आधारभूत कल्पनाओ" के निरूपण से स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाती है। इनमें से एक कल्पना यह है कि "किसी उत्पादक का उत्पादित प्रकारों में से किसी पर 'सस्थानिक एकाधिकार' नहीं है।"[49] इस पुस्तक के केन्द्रीय वाद से, जैसा उसका सविस्तार वर्णन अध्याय 4 में किया गया है, दूर क्या कोई और चीज हो सकती है? क्या कोई चीज न केवल इस प्रस्थापना का कि "अपूर्ण" प्रतियोगिता अर्थप्रणाली को एकाधिकार और प्रतियोगिता के मिश्रण के रूप में नहीं देखती, बल्कि इस तथ्य का भी कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता का निर्वचन प्रायः और असावधानी से इसी ढंग से किया गया है, इससे बेहतर दृष्टान्त प्रदान कर सकती है?[50]

तो अब, दृष्टिकोण में इस भिन्नता के कुछ परिणाम क्या है? मैं केवल तीन बातों पर विचार करूँगा। पहली का संबंध लाभ से है। अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत, एक "पण्य" या "उद्योग" की "सम्पूर्णतया मनमानी" सीमा के भीतर, श्रीमती रॉबिन्सन के अनुसार सब लाभ प्रतियोगी हैं।[51] इससे यह परिणाम निकलता है कि, "उद्योगों" की परिभाषा अपेक्षाकृत विस्तृत रूप से करके, एकाधिकार लाभों की सम्पूर्ण समस्या को सर्वतः लुप्त किया जा सकता है। इस विचार का मिलान लाभ के उस विचार से कीजिए जो एकाधिकारिक प्रतियोगिता से उभरता है : यह कि विशेष उत्पादों की उत्पत्ति पर नियन्त्रण से उत्पन्न होने वाले लाभ अर्थप्रणाली में सर्वत्र पाए

जाते हैं (जो विक्रय व्ययों और उत्पाद विचरण से, स्वभावतया, बहुत प्रभावित होते हैं); ये लाभ सही अर्थ में एकाधिकार लाभ हैं, और यदि प्रतियोगिता शुद्ध होती तो वे न होते। यथेष्ट रूप से उनका कारण बताने वाला लाभ का सिद्धान्त अभी लिखा ही नहीं गया है।[52] जब भी वह लिखा जाएगा, ऐसा लगता है कि वह एकाधिकार और लोकहित के बीच संबंध के बारे मे हमारे विचारों को बदलने में शायद ही विफल हो। परन्तु "अपूर्ण" प्रतियोगिता के शब्दों में, जिसमें एकाधिकार पाया ही नहीं जाता, इस समस्या का निरूपण तक नहीं किया जा सकता, उत्तर देना दूर रहा।

दूसरी बात का संबंध "प्रतियोगी" मानकों से है। अतिदीर्घ काल से, "मुक्त उद्यम" को ढीले-ढाले रूप से "प्रतियोगिता" से अभिन्न समझा जाता रहा है। आर्थिक सिद्धान्त में यह तादात्म्य "पूर्ण" प्रतियोगिता के साथ या "शुद्ध" प्रतियोगिता के साथ रहा है। फिर भी यह सुस्पष्ट अवश्य होना चाहिए कि मुक्त उद्यमका प्रति रूपी नतीजा शुद्ध प्रतियोगिता नहीं, बल्कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता है। पण्यों का विशिष्टीकरण अंशतः उनके स्वरूप के कारण होता है (जो मांग के अनपेक्ष है), और अंशतः क्रेताओं की रुचियों, स्थितियों, उनके अधिमानों, आदि, के कारण होता है, जो जितना उत्पाद के किसी व्यापक वर्ग **के भीतर की** वस्तु-स्थिति (order of things) के भाग है, उतना ही उत्पाद के एक वर्ग और दूसरे वर्ग के **बीच की** वस्तु-स्थिति के। "मुक्त उद्यम" के अन्तर्गत इन कारणों से उत्पन्न होने वाली अनेकरूपता को व्यवसायी, अन्य पण्यों से अपने पण्य को और भिन्न बनाने के और उसकी मांग में विज्ञापन के द्वारा हेर-फेर करने के अपने प्रयासों से, बहुत अधिक बढा देते है। दूसरे शब्दों में, मुक्त उद्यम का एक अनिवार्य भाग प्रत्येक व्यवसायी का अपने एकाधिकार का निर्माण करने का प्रयत्न है, जिसका वह जहाँ कहीं संभव होता है विस्तार करता है और, अपने-अपने व्यवसायों को फैलाने के अन्य व्यवसायियों के प्रयत्नों के विरुद्ध, उसकी प्रतिरक्षा करता है।[53] इन एकाधिकारों में ऐसी कोई प्रवृत्ति नहीं होती कि प्रतियोगिता उन्हें चित्र से बाहर कर देगी; प्रत्युत्, वे उस चित्र के उतने ही भाग है जितना प्रतियोगिता, जो उन्हें अवरुद्ध करती है।

यह व्यक्त स्वीकरण कि उत्पाद विशिष्टीकृत है, प्रकार की समस्या को खुले में ले आता है, और इसे स्पष्ट कर देता है कि **शुद्ध प्रतियोगिता को किसी भी अर्थ में अब कल्याण-अर्थशास्त्र के प्रयोजनों से "आदर्श" नहीं समझा जा सकता है।** कई स्थितियों में उसे स्थापित करना, यदि मान भी लिया जाए कि वह वांछनीय है, सर्वथा असंभव होगा। उदाहरणार्थ, सब खुदरा दुकानें एक ही स्थल पर स्थापित नही की जा सकती हैं, और अभिनेताओं, गायकों, व्यवसायियों, और व्यापारियों के बीच व्यक्तिगत भेदों को दूर नहीं किया जा सकता। परन्तु जहाँ संभव हो वहाँ भी, उत्पादों का एक निश्चित बिन्दु के आगे मानकीकरण वांछनीय नहीं होगा। क्रेताओं की रुचियों, इच्छाओं, आयों, और स्थितियों में अन्तर, और पण्यों को जिन उपयोगों में वे लाना चाहते हैं उनमें भेद, ये सब विविधता की जरूरत का संकेत करते हैं और "प्रतियोगी आदर्श" की संकल्पना

के स्थान पर एकाधिकार और प्रतियोगिता दोनों को सन्निहित करने वाले आदर्श की आवश्यकता का निर्देश करते हैं। अब प्रश्न यह हो जाता है कि, किस मात्रा में सामाजिक नियंत्रण के साथ, कितना और किस प्रकार का एकाधिकार हो।[54]

इसके अतिरिक्त, कल्याण के इष्टतम के अंग के रूप में उत्पादों और विक्रय व्ययों के "आदर्श" समायोजन को, एव कीमत और उत्पत्ति के रूढ़ विश्लेषण को, व्यक्त रूप से मान्यता अवश्य दी जानी चाहिए। वास्तव में ये बढ़ाए गए तत्व संभाव्यतः कीमतों से अधिक परिवर्तनशील है; तिस पर भी, "कल्याण" को अधिकतम करने के हेतु साधनो के विनिधान की सुपरिचित समस्या में कल्पना की जाती है कि (1) उत्पाद दिए हुए है, और (2) विक्रय लागतो का नितान्त अभाव है। पहले के विषय मे, न केवल एक-एक फर्म द्वारा किए गए उत्पाद समायोजनों की उपेक्षा की गई है, बल्कि प्रणाली की उत्पाद-सरचना में परिवर्तनो की भी उपेक्षा की गई है, जो फर्मो की सख्या में, प्रत्येक परिवर्तन पर साधनों के प्रवाह के साथ, होते है, क्योंकि प्रत्येक नयी फर्म एक नये उत्पाद का उत्पादन करती है। दूसरे के विषय में, यह स्पष्ट है कि विक्रय लागतों से न तो उन्हें पूर्णतः अपव्ययपूर्ण कह कर निबटा जा सकता है और न ही उन्हें पूर्णतः उत्पादन लागत के समतुल्य मान कर। इनमे से कोई भी एक सरल समाधान होता; परन्तु, वास्तव मे, उन्हे आंकने की, मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों प्रकार की, कसौटियाँ ढूँढ़ने और उनके एक भाग को कल्याण के आदर्श से समेकित करने की कठिन समस्या का सामना अवश्य किया जाना चाहिए। ये दोनों कारक विशिष्टीकृत उत्पाद में अन्तर्निहित एकाधिकार तत्वों से उत्पन्न होते है, और इस कारण से यह आशा करने का कोई आधार नहीं है कि "अपूर्ण" प्रतियोगिता के सिद्धान्त से, जिसमे किसी एकाधिकार की उपस्थिति स्वीकार नही की जाती, उनका कोई यथेष्ट प्रतिपादन उभरेगा।[55]

अन्तिम बात का संबध एक विशिष्ट प्रतियोगी मानक से है। प्रोफेसर पिगु की तरह, श्रीमती रॉबिन्सन विक्रय कीमत पर मूल्यित श्रम की सीमान्त पदार्थ उत्पत्ति से कम मजदूरी को "शोषण" कहती है,[56] और अपूर्ण प्रतियोगिता तथा एकक्रयण (monopsony) के अन्तर्गत परिणामों की इस कसौटी के आधार पर बहुत विस्तार से तुलना करती है। वे प्रमाणित करती है कि अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत श्रम को अवश्यभावी रूप से इससे कम मिलता है, क्योंकि श्रम का भुगतान उसकी सीमान्त उत्पत्ति गुणा सीमान्त आय के अनुसार किया जाता है, जो उसकी सीमान्त उत्पत्ति गुणा कीमत से कम है। निष्कर्ष, स्वभावतया, यह है कि, "शोषण" की इस परिभाषा के अनुसार, श्रम का बहुत सामान्यतया "शोषण" किया जाता है।

अब यह प्रत्यक्ष है कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत न केवल श्रम को, बल्कि **सब** कारकों को उनकी सीमान्त पदार्थ उत्पत्तियों के बाजार के सममूल्य से कम प्राप्त होता है। इसका कारण यह है कि जो तर्क श्रम के लिए काम में लाया गया है, वह किसी भी **हिस्से** [कारक के प्रतिफल] के लिए काम में लाया जा सकता है।

यह भी प्रत्यक्ष प्रतीत होता है कि फर्म को बनाने वाले कारकों की सीमान्त उत्पत्ति की प्रतियोगी कसौटी के आधार पर संगणित कुल आयों का योग फर्म की कुल आय से अधिक होगा।[57] इसलिए, इस तथ्य का कि कोई हिस्सा सीमान्त उत्पत्ति से कम है, यह अर्थ नहीं है कि किसी अन्य कारक का हिस्सा उससे अधिक है (जैसा कि शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत होता)। सब कारकों को उससे कम प्राप्त होता है क्योंकि वे, सब के सब, एक भिन्न नियम के अनुसार भुगतान पाते है। श्रीमती रॉबिन्सन एक-एक फर्म के लिए इस मत पर स्पष्ट रूप से विश्वास करती हैं, परन्तु इस महत्वपूर्ण अन्तर के साथ कि वे उद्यमकर्ता की सेवाओं को एक कारक के रूप में सम्मिलित नही करती है।[58] उद्यमकर्ता को शोषक की भूमिका दी गई है, और यह एक ऐसी भूमिका है जो उनके विश्लेषण में, उसे और फर्म को अभिन्न मानकर, उसके मत्थे आसानी से मढ़ी जा सकती है।

उद्यमकर्ता और फर्म की यह अव्यक्त अभिन्नता उनके तर्क में आद्योपान्त मिलती है। यह विचार प्रकट किया गया है (पृ० 408) कि "फर्म के लिए उद्यमकर्ता की सीमान्त उत्पत्ति का कोई अर्थ नहीं है," इस प्रत्यक्ष कारण से कि वह एक तथा अविभाज्य है।[59] अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत यह कहना कि "फर्म का आकार अमितव्ययी रूप से छोटा है" यह कहने के समानार्थक है कि "उद्यमकर्ता और अन्य कारकों का अनुपात उस अनुपात से ऊंचा है जो न्यूनतम लागत देता है।"[60] वास्तव में इसका अर्थ केवल यह है कि फर्मों और कारकों का अनुपात उस अनुपात से ऊंचा है जो न्यूनतम लागत देता है। लगता है कि इस बात को अनदेखा कर दिया गया है कि (शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत नही, परन्तु एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत) फर्मों की संख्या में वृद्धि न केवल उद्यमकर्ताओं की संख्या को प्रभावित करती है, बल्कि श्रमिकों की, प्रबन्धकों की, संयन्त्रों की, और अन्य कारकों की संख्या को भी प्रभावित करती है। यहाँ सामान्य रूप मे साधन फालतू हैं (पुनः, शुद्धतः प्रतियोगी कसौटी के अनुसार); ऐसी कोई प्रागनुभव चीज नहीं है जो यह बताए कि कौनसा कारक-विशेष, यदि कोई हो तो, अन्य के सापेक्ष बढ़ाया जाता है।

जहाँ तक उद्यमकर्ता का संबंध है, यह तर्क किया गया है कि उसकी आय "उद्योग" के लिए उसकी सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य से अधिक है, क्योंकि, यदि एक फर्म में लगाई गई उद्यमकर्ता की सेवाएं हटा ली जाती हैं, और इस फर्म को बनाने वाले अन्य कारकों को अन्य फर्मों में बांट दिया जाता है, जिससे फर्मों की संख्या एक से घट जाती है, तो प्रति फर्म बृहत्तर उत्पत्ति के परिणामस्वरूप मिलने वाली किफायतें उद्यमकर्ता की सेवाओं में कमी की क्षतिपूर्ति कर देंगी और उत्पत्ति में कमी को तदनुसार घटा देंगी। वस्तुतः, हो सकता है कि वे इतनी बड़ी हों कि उत्पत्ति बढ़ जाए, जो यह संकेत करता है कि "उद्योग" में उद्यम की सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य ऋणात्मक था। श्रीमती रॉबिन्सन ने इस संभावना को सुझाया है और श्री काह्न इसे कुछ विस्तार से विकसित करते हैं। लेकिन, यह तर्क न केवल उद्यम पर, बल्कि अन्य कारकों में से किसी पर भी

समान रूप से लागू होता है। यह दिखाया जा सकता है कि किसी भी कारक की आय उद्योग के लिए उसकी सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य से अधिक होती है, यदि, जिस समय उसकी अल्प राशि को हटाया जा रहा है उसी समय, उत्पत्ति में परिणामी कमी की उद्योग में बचे हुए साधनों (उद्यम समेत) का, उत्पाद के मानकीकरण की मात्रा बढ़ा कर और फर्मों की संख्या घटा कर, "अधिक कुशल" आधार पर पुनर्गठन करके क्षतिपूर्ति कर दी जाए। लेकिन, वास्तव में, **"उद्योग" में फर्मों की संख्या का संयमन अन्तर्ग्रस्त एकाधिकार तत्वों की प्रबलता द्वारा होगा, और उसमें इस प्रकार जोड़-तोड़ नहीं की जा सकती**। परन्तु किसी भी स्थिति में यह सम्पूर्ण क्रियाविधि तर्कविरुद्ध है, क्योंकि फर्मों की संख्या में परिवर्तन का, जो किसी कारक की राशि में परिवर्तन का **सहचरण** करता है, और इसलिए तथाकथित सीमान्त उत्पत्ति को प्रभावित करता है, ऐसे परिवर्तन से आवश्यक संबंध बिल्कुल नहीं है। उद्यमकर्ता के विषय में, यदि हम इस कल्पना को हटा दें कि उद्यमकर्ताओं मे परिवर्तन करना और फर्मों में परिवर्तन करना एक ही चीज है, और यह स्वीकार करे कि आधुनिक आर्थिक समाज में "उद्यम" उतना ही अधिक विभाज्य है और पुनर्वितरण के उतना ही योग्य है जितना कोई कारक, तो यह तर्क अब नही टिक सकता।[61]

ऐसा प्रतीत होगा कि यदि उद्यम को विभाज्य समझा जाए तो "शोषण" का दायित्व धारण करने के लिए कोई नही बचता। वस्तुतः, शोषक की खोज गलत दिशा में किया गया प्रयास प्रतीत होता है, जो शोषण की प्रतियोगी कसौटी का एक ऐसे क्षेत्र में विस्तार करने के कारण उत्पन्न होता है जहाँ एकाधिकार की उपस्थिति उसे अनुपयुक्त बना देती है। इस स्थिति मे विस्तार करने की व्याख्या चाहे जो हो, यह संभाव्य प्रतीत होता है कि शुद्धतः प्रतियोगी संकल्पनाएं और सिद्धान्त "एकाधिकारिक" प्रतियोगिता की अपेक्षा 'अपूर्ण" प्रतियोगिता पर अधिक आसानी से लागू होंगे। जहाँ एकाधिकार तत्व विद्यमान है, वहाँ उनका नाम लेकर उल्लेख न करने में यह भूल जाने का जोखिम है कि वे विद्यमान है, और विश्लेषण की उन विधाओं को अपनाने का जोखिम है जो केवल तब उपयुक्त होतीं यदि समस्या प्रतियोगितामूलक होती।

परिशिष्ट

परिशिष्ट क

द्वयधिकार और अल्पाधिकार के गणितीय सिद्धान्त

कूर्नो ने द्वयधिकार की समस्या को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया था :[1] दो प्रतियोगियों में प्रत्येक द्वारा बेची गई राशियों के क्रमशः D_1 और D_2 होने पर, कुल उत्पादित राशि $D_1+D_2=D$ होगी, और कीमत होगी :

$$p=f(D_1+D_2)=f(D).$$

यदि यह कल्पना की जाए कि उत्पादन के व्यय कुछ नहीं है, तो इन दो विक्रेताओं के लाभ क्रमशः

$$D_1 \cdot f(D_1+D_2) \text{ और } D_2 \cdot f(D_1+D_2)$$

होगे। क्योंकि प्रत्येक केवल अपनी पूर्ति को प्रत्यक्षतः प्रभावित कर सकता है, वह अपने प्रतिद्वन्द्वी द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली राशि को दृष्टि में रखते हुए, अपनी पूर्ति का समायोजन सबसे लाभप्रद बिन्दु पर करके, अपने लाभ को अधिकतम करने का यत्न करेगा। पहले विक्रेता का लाभ तब अधिकतम होगा जब,

$$\frac{d \cdot D_1 f(D_1+D_2)}{dD_1}=0,$$

और दूसरे का लाभ तब अधिकतम होगा जब,

$$\frac{d \cdot D_2 f(D_1+D_2)}{dD_2}=0.$$

अवकलन करने पर, निम्नलिखित समीकरण मिलते हैं :

$$f(D_1+D_2)+D_1 f'(D_1+D_2)=0,$$
$$f(D_1+D_2)+D_2 f'(D_1+D_2)=0.$$

इनसे, यह निष्कर्ष तुरन्त निकलता है कि

$$D_1=D_2,$$

और, दोनों को जोड़ने पर, यह भी कि

$$2f(D)+(D)f'(D)=0. \qquad (1)$$

यह सुस्पष्ट है कि हल पूर्णतया निर्धार्य है। इसको निम्नलिखित रूप में लिखा जा सकता है :

$$D+2p\frac{dD}{dp}=0,$$

और उत्पादकों की किसी संख्या, n, के लिए समरूप समीकरण प्राप्त होता है, जिसका व्यापक रूप है

$$D+np\frac{dD}{dp}=0,$$

जिससे यह परिणाम निकलता है कि जैसे-जैसे विक्रेताओं की संख्या बढ़ती है, p का मान निरन्तर कम होता जाता है।

$f(D_1+D_2)$ के सरल रेखा होने की सरल परिकल्पना पर इसे लागू किया जा सकता है, और यह देखा जाता है कि हल वही है जो हमने पहले के प्रतिपादन में निकाला था। सरल रेखा के समीकरण को

$$\frac{p}{p_0}+\frac{D}{D_0}=1$$

मानने पर, जिसमें p_0 और D_0 क्रमशः p के अक्ष और D के अक्ष पर p और D के मान हैं, हम देखते है कि

$$p=p_0\left(1-\frac{D}{D_0}\right), \text{ अथवा}$$

$$p=\frac{p_0}{D_0}(D_0-D).$$

(1) में प्रतिस्थापन करने पर,

$$2\,\frac{p_0}{D_0}(D_0-D)+D\left(-\frac{p_0}{D_0}\right)=0$$
$$2(D_0-D)-D=0$$
$$2D_0-3D=0$$
$$D=\tfrac{2}{3}D_0$$
$$D_1=D_2=\tfrac{1}{3}D_0.$$

इस हल के विरुद्ध परेटो ने दो आपत्तियां की हैं।[2] पहली, क्योंकि तीन चरों p, D_1 और D_2 में से अन्तिम दो को,

$$p=f(D_1+D_2)$$

लिखकर, स्वतन्त्र चरों के रूप में चुना गया है, इसलिए उन्हें सदा वैसा ही समझा जाना चाहिए। अर्थात्, $D_1f(D_1+D_2)$ और $D_2f(D_1+D_2)$ व्यंजकों में प्रत्येक के D_1 और D_2 दोनों के सापेक्ष अवकलजों को शून्य के बराबर अवश्य किया जाना चाहिए, और परिणाम निम्नलिखित चार समीकरण हैं :

$$D_1f'(D_1+D_2)+f(D_1+D_2)=0 \qquad (2)$$
$$D_1f'(D_1+D_2)=0 \qquad (3)$$
$$D_2f'(D_1+D_2)=0 \qquad (4)$$
$$D_2f'(D_1+D_2)+f(D_1+D_2)=0. \qquad (5)$$

कूर्नो (3) और (4) को छोड़कर ही एक हल प्राप्त करने में समर्थ हुए थे। तब, यह प्रमाणित किया जाता है कि इन चार समीकरणों का युगपत् हल अर्थहीन परिणाम देता है।

दूसरे, कीमत योगें (D_1+D_2) का फलन नहीं है, बल्कि वह इन दो चरों का एक व्यापक फलन $f(D_2, D_2)$ है। तो समस्या

$$D_1 f(D_1, D_2) \text{ और } D_2 f(D_1, D_2)$$

को अधिकतम करने की है। इनमें से प्रत्येक के, D_1 और D_2 दोनों के सापेक्ष, अवकलज को शून्य के बराबर अवश्य किया जाना चाहिए, और हमें चार समीकरण मिलते हैं, जिनका निम्नलिखित में लघुकरण हो जाता है :

$$f=0, \frac{\partial f}{\partial D_1}=0, \frac{\partial f}{\partial D_2}=0.$$

अब चूंकि दो अज्ञातों, D_1 और D_2, का निर्धारण करने के लिए तीन समीकरण हैं, इसलिए समस्या असाध्य है क्योंकि वह "अति निर्धारित" है। इस निष्कर्ष से जावाद्स्की सहमत है।[3]

मैं इन दो आलोचनाओं में से किसी से सहमत नहीं हूँ। कूर्नो द्वारा (3) और (4) की उपेक्षा किया जाना गलत नहीं था; प्रत्युत्, उन्हे सम्मिलित करना अर्थहीन है। समीकरण (3) केवल तब तर्कसंगत है जब पहला उत्पादक अपने प्रतिद्वन्द्वी की पूर्ति को जितना करना चाहे उतना कर सके; समीकरण (4) केवल तब तर्कसंगत है जब दूसरा उत्पादक अपने प्रतिद्वन्द्वी की पूर्ति को जितना करना चाहे उतना कर सके। वस्तुतः, जावाद्स्की समस्या को ठीक इसी ढंग से प्रस्तुत करते हैं—प्रत्येक उत्पादक द्वारा **दोनों** पूर्तियों को प्रभावित कर सकने के कारण, वह D_1 के उस मान को और D_2 के उस मान को चुनेगा जो उसके लिए सबसे लाभदायक होगा।[4] इसे अपने पहले दृष्टान्त (चित्र 5) पर लागू करने पर हम देखते हैं कि, यदि प्रत्येक उत्पादक के पास यह शक्ति होती तो, वह तुरन्त अपने प्रतिद्वन्द्वी की पूर्ति को शून्य कर देता और अपनी पूर्ति को OA नियत करता। एक उत्पादक के लाभ का दूसरे की पूर्ति के सापेक्ष अवकलन करना निरर्थक है। $p=f(D_1, D_2)$ की स्थिति में व्यापक हल पर भी यह बात समान रूप से लागू होती है। किसी उत्पादक का दूसरे की पूर्ति पर केवल **परोक्ष** प्रभाव है, और उसके द्वारा अपनी पूर्ति के नियंत्रण के जरिये है। यह सब कूर्नो द्वारा प्रयुक्त दो समीकरणों (2) और (5) में अन्तर्विष्ट है।

जहाँ तक दूसरी आलोचना का सम्बन्ध है, $f(D_1+D_2)$ के स्थान पर $f(D_1, D_2)$ रखने पर प्राप्त कुछ नहीं होता और बहुत-कुछ खो जाता है। इनमें दूसरा पहले का केवल अधिक व्यापक रूप है, और चूंकि पहला ज्ञात है, इसलिए उसका उपयोग करना बेहतर है। $f(D_1, D_2)$ का उपयोग करने पर ज्ञात होता है कि हो

हो जाता है। परेटो $f(D_1+D_2)$ के उपयोग को भीषण भूल मानते हैं, जो "आर्थिक परिघटनाओं की आश्रितता की उपेक्षा" से उत्पन्न होती है। यदि तात्पर्य यह है कि D_1 और D_2 एक-दूसरे पर आश्रित हैं, तो यह p को उनके योग के फलन के रूप में लेने से किसी भी प्रकार असगत नहीं है।[5]

द्वयधिकार का एमोरोसो (Amoroso) ने विस्तारपूर्वक प्रतिपादन किया है।[6] उनके निष्कर्ष कूर्नो के निष्कर्षों से तात्विक रूप से भिन्न नहीं है। अपनी समीक्षा में ऍजवर्थ उनकी कड़ी आलोचना करते है,[7] और यह सुझाव तक देते हैं कि यदि पुस्तक का अंग्रेजी में अनुवाद किया जाए तो द्वयधिकार वाले भाग को छोड़ दिया जाना चाहिए।

जी० सी० इव्हान्स (G. C. Evans) ने इस समस्या का विश्लेषण किया है।[8] कूर्नो की भाँति वे भी अपने प्रतियोगिता के सिद्धान्त का विकास पहले दो उत्पादकों पर विचार करके और फिर उनकी सख्या बढा कर करते है। वे एक के बाद एक तीन भिन्न आधारतत्वों (postulates) को लेते हैं, और प्रत्येक एक निर्धार्य हल देता है। चूकि विश्लेषण में आद्योपान्त एक द्विघात पूर्ति वक्र,

$$q(u) = Au^2 + Bu + C,$$

रखा गया है, इसलिए निष्कर्षो मे यह फलन सन्निहित है। लेकिन, अन्य लेखकों के और मेरे सरलतर दृष्टान्त के निष्कर्षो से उनकी तुलना आसानी से की जा सकती है।

पहला आधारतत्व कूर्नो का है, और परिणाम तदनुरूपी है। दूसरा आधारतत्व यह है कि "प्रत्येक उत्पादक समय की प्रति इकाई अपने उत्पादन की राशि इस प्रकार निर्धारित करने की कोशिश करता है ताकि कुल लाभ अधिकतम हो जाएं।" अर्थात्, जो अधिकतम किया जाता है वह **संयुक्त** लाभ है। स्वभावतया, हल वही है जो एकाधिकार का है; वास्तव में, उसकी **परिभाषा** "सहयोग" की गई है। तीसरा आधारतत्व यह है कि "प्रत्येक प्रतियोगी कीमत को स्थिर मानता है और अपने लाभ को अधिकतम करने की कोशिश करता है।" कीमत स्थिर होने पर प्रत्येक के लाभ का उसकी पूर्ति के सापेक्ष अवकलन किया जाता है। इस स्थिति में कीमत गिरती है और, मांग वक्र के सरल रेखा होने के कारण, पूर्ति एकाधिकार की दशाओं में पूर्ति की ठीक दूनी होती है। (तुलना कीजिए, पृष्ठ 28-29 में दिया गया हल, जहां प्रत्येक उत्पादक इस प्रकार क्रिया करता है जैसे कि उसका कीमत पर कोई प्रभाव न हो।) इसके बाद, प्रत्येक परिकल्पना के अन्तर्गत, n उत्पादकों के लिए व्यापक समीकरण प्रस्तुत किए गए हैं, और यह दिखाया गया है कि जब उनकी संख्या बहुत बड़ी होती है, तब पहले और तीसरे आधारतत्वों द्वारा दिए जाने वाले परिणाम लगभग एक-से हैं; जबकि सहयोग की स्थिति में पूर्ति सदैव वही होती है जो प्रतियोगिता की इन दो स्थितियों की पूर्ति का लगभग आधा है।

प्रोफेसर बॉले (Bowley) द्वारा दिए गए समीकरण कूर्नो के समीकरणों के असाधारण रूप से समरूप हैं, परन्तु इस बात में भिन्न हैं कि D_1 को D_2 का फलन

माना गया है।[9] वे मांग वक्र के लिए एक निश्चित फलन, एक सरल रेखा, की कल्पना करते हैं, जो है

$$p=c-k(D_1+D_2),$$

और पूर्ति-रेखाओं, $p_1=l_1D_1$ और $p_2=l_2D_2$, को लेते हैं। पहला विक्रेता

$$D_1(c-k(D_1+D_2)-l_1D_1)$$

को अधिकतम करने के लिए D_1 में परिवर्तन करता है। दूसरा विक्रेता

$$D_2(c-k(D_1+D_2)-l_2D_2)$$

को अधिकतम करने के लिए D_2 में परिवर्तन करता है। D_1 के सापेक्ष पहले का अवकलज और D_2 के सापेक्ष दूसरे का अवकलज निम्नलिखित दो समीकरणों को देते हैं :

$$c-2(k+l_1)D_1-kD_2-k\frac{dD_2}{dD_1}D_1=0$$

$$c-2(k+l_2)D_2-kD_1-k\frac{dD_1}{dD_2}D_2=0$$

निष्कर्ष यह है कि यदि D_2 के एक फलन के रूप में D_1 ज्ञात न हो तो ये समीकरण हल नहीं किए जा सकते, "और यह इस पर निर्भर करता है कि प्रत्येक उत्पादक इस बारे में क्या सोचता है दूसरा संभाव्यतः क्या करता है।" पहले हम इस पर ध्यान दें कि, अन्तिम पद की उपेक्षा करने पर, हल निर्धारणीय है; और, वास्तव में, कूर्नो का हल है। मेरे पहले के दृष्टान्त से तुलना करने पर, यदि (उत्पादन की लागत को हटाने के लिए) l_1 और l_2 शून्य के बराबर रखे जाते है, तो ये दो समीकरण सुपरिचित परिणाम,

$$D_1=D_2=\tfrac{1}{3}\cdot\frac{c}{k}$$

देते है, जिसमें $\frac{c}{k}$, D-अक्ष पर D का मान है।

अब, अन्तिम पद का महत्व क्या है ? मैं अपनी व्याख्या झिझकते हुए दे रहा हूँ। जब "दूसरा संभाव्यतः क्या करेगा इसके बारे में प्रत्येक उत्पादक क्या सोचता है," इस बारे में संशय लुप्त हो जाता है तो जो हल मिलता है वह कूर्नो का है। इसलिए उसका निर्वचन इस रूप में करना कठिन है कि वह संशय के उन तत्वों को भी अपनी परिधि में ले लेता है जो कूर्नो द्वारा समस्या के उपस्थापन की सीमाओं के बाहर हैं। इन दो विक्रेताओं की चालों की जो कल्पना कूर्नो ने की थी, उस रूप में D_1 स्पष्टतः D_2 का फलन नहीं है। प्रत्येक यह जानता है कि दूसरा बाजार में कितनी राशि प्रस्तुत कर रहा है, और अपनी राशि का समायोजन वह तदनुसार करता है, और दूसरे की राशि अपरिवर्तित रहती है। (यह तथ्य कि एक के द्वारा पूरित राशि दूसरे के द्वारा पूरित राशि पर निर्भर करती है, समीकरण $p=f(D_1+D_2)$ द्वारा व्यक्त किया जाता है,

और यह D_1 और D_2 को एक-दूसरे का फलन स्वत: नहीं बनाता।) परन्तु यदि उनमें से कोई नहीं जानता कि उसका प्रतिद्वन्द्वी किस राशि को प्रस्तुत कर रहा है, तो वह नहीं जानता कि उसे स्वयं कितनी राशि प्रस्तुत करनी होगी। तब D_1 और D_2 एक-दूसरे के फलन होते हैं और समस्या हल नहीं की जा सकती; जो यह कहने के समतुल्य है कि वे दो अनिश्चित काल तक एक-दूसरे के आमने-सामने खड़े रहते हैं, इस प्रतीक्षा में कि दूसरा शुरू करे। लेकिन, जैसे ही एक विक्रेता राशि प्रस्तुत करता है, D_1 और D_2 एक-दूसरे के फलन नहीं रह जाते, अन्तिम पद लुप्त हो जाता है, और कीमत अपनी निर्धारणीय स्थिति पर आ जाती है। यदि यह निर्वचन सही है, तो कूर्नो और बॉले में बहुत कम भेद है।

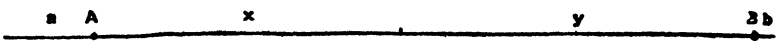

चित्र 34

प्रोफेसर होटेलिंग (Hotelling) ने इस कल्पना के अन्तर्गत कि उत्पाद मानकित नहीं है, द्वयधिकार का एक पटु गणितीय हल प्रस्तुत किया है।[10] वे दृढ़ता से इस विचार का अनुमोदन करते हैं कि "एक बाजार आम तौर पर प्रदेशों में उपविभाजित होता है, जिनमें से प्रत्येक में एक विक्रेता की एकाधिकारवत् स्थिति होती है," और तर्क करते हैं कि यह कारक द्वयधिकार के अन्यथा अनिर्धार्य हल को स्थायित्व देता है। वे कहते हैं कि "कूर्नो, एमोरोसो और एॅजवर्थ द्वारा हल किए गए उदाहरणों में दुकानदारों द्वारा स्वतन्त्र रूप से कीमतों में परिवर्तन करने पर, ग्राहकों का एक दुकानदार से दूसरे की ओर पलटने की मन्दता वह [चीज] है जिसकी उपेक्षा की गई है। उनकी कृतियों में अन्तर्निहित यह कल्पना कि सब क्रेता सबसे सस्ता बेचने वाले विक्रेता से व्यापार करते हैं, एक इस प्रकार के अस्थायित्व की ओर ले जाती है **जो तब लुप्त हो जाता है जब प्रत्येक के द्वारा बेची गई राशि को कीमत में अन्तरों का एक सतत फलन समझा जाता है।**"[11]

वे एक दृष्टान्त पर विचार करते हैं जिसमें माना जाता है कि क्रेता "l लम्बाई की रेखा पर एकसमानत: वितरित हैं, जो रेखा किसी नगर की मुख्य सड़क या महाद्वीप के आर-पार जाने वाला रेल-मार्ग हो सकती है। इस रेखा के दो छोरों से क्रमश: a और b दूरी पर दो विक्रेताओं A और B की दुकानें हैं (चित्र 34)। प्रत्येक क्रेता अपनी खरीद को दूरी की प्रति इकाई c लागत पर घर ले जाता है। निष्कर्षों की व्यापकता को प्रभावित किए बिना, हम मान लेगें कि A और B की उत्पादन की लागत शून्य है, और यह कि रेखा की लम्बाई की प्रत्येक इकाई में समय की प्रत्येक इकाई में पण्य की एक इकाई का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार मांग पूर्णत: बेलोच है। कोई ग्राहक केवल कीमत धन परिवहन लागत को ध्यान में रखता है, और इनके अलावा किसी अन्य आधार पर किसी विक्रेता को अधिमान नहीं देता। सामान्यतया

कई कारण होंगे जिनके परिणामस्वरूप क्रेताओं के विशेष वर्ग एक विक्रेता पर दूसरे को अधिमान देंगे, परन्तु इन कारणों की समष्टि (ensemble) के प्रतीक के रूप में यहां परिवहन लागत को लिया गया है। मान लो कि A की कीमत p_1 है, B की p_2, और मान लो कि उनके द्वारा बेची गई राशियां क्रमशः q_1 और q_2 हैं।.....

"इन दो उद्यमकर्ताओं द्वारा सेवित प्रदेशों का विभाजन-बिन्दु इस शर्त के द्वारा निर्धारित होगा कि उस स्थान पर क्रेता इस बारे में उदासीन है कि वह A से खरीदता है या B से। डिलिवरी-कीमतों को समीकृत करने पर हम पाते हैं कि

$$p_1+cx=p_2+cy.$$

x और y में दूसरा समीकरण है :

$$a+x+y+b=l.$$

हल करने पर हम पाते है कि,

$$x=\tfrac{1}{2}\left(l-a-b+\frac{p_2-p_1}{c}\right),$$

$$y=\tfrac{1}{2}\left(l-a-b+\frac{p_1-p_2}{c}\right),$$

जिससे लाभ हैं :

$$\pi_1=p_1\,q_1=p_1(a+x)=\tfrac{1}{2}(l+a-b)\,p_1-\frac{p_1^{\,2}}{2c}+\frac{p_1\,p_2}{2c}$$

और $\pi_2=p_2\,q_2=p_2(b+y)=\tfrac{1}{2}(l-a+b)\,p_2-\dfrac{p_2^{\,2}}{2c}+\dfrac{p_1\,p_2}{2c}.$

".....प्रत्येक प्रतियोगी अपनी कीमत को इस प्रकार समायोजित करता है कि, दूसरी कीमत के विद्यमान मान पर, उसका अपना लाभ अधिकतम होगा। इससे हमे निम्नलिखित समीकरण मिलते हैं :

$$\frac{\partial\pi_1}{\partial p_1}=\tfrac{1}{2}(l+a-b)-\frac{p_1}{c}+\frac{p_2}{2c}=0,$$

$$\frac{\partial\pi_2}{\partial p_2}=\tfrac{1}{2}(l-a+b)+\frac{p_1}{2c}-\frac{p_2}{c}=0,$$

जिनसे हमे मिलता है :

$$p_1=c\left(l+\frac{a-b}{3}\right),$$

$$p_2=c\left(l-\frac{a-b}{3}\right);$$

और $$q_1 = a + x = \tfrac{1}{2}\left(l + \frac{a-b}{3}\right),$$

$$q_2 = b + y = \tfrac{1}{2}\left(l - \frac{a-b}{3}\right).$$

"π_1 और π_2 फलनों में से प्रत्येक के अधिकतम के लिए पर्याप्त प्रतिबन्ध $\partial^2\pi_1/\partial p_1^2 < 0$ और $\partial^2\pi_2/\partial p_2^2 < 0$ है, जो स्पष्टतया सन्तुष्ट होते हैं।"

जो विशिष्ट उदाहरण चुना गया था, उसमें $l=35$, $a=4$, $b=1$, और $c=1$। यदि समीकरणों में इन मानों का प्रतिस्थापन किया जाए, तो हम पाते है कि

$$p_1=36, \quad p_2=34, \quad q_1=18, \quad q_2=17.$$

लेकिन, परिणाम की निर्धार्यता, जैसा माना गया है, "एक दुकानदार से दूसरे की ओर ग्राहकों के पलटने की मन्दता," जिसका प्रतीक इस दृष्टान्त में परिवहन लागत c है, उसके कारण नहीं है। यदि c को शून्य के बराबर रखा जाए, तब भी कीमत निर्धार्य है—इस स्थिति में शून्य पर, क्योंकि उत्पादन की कोई लागत नही है। वह प्रतियोगितात्मक रूप से कम कीमत लगाने के कारण शून्य तक आ जाएगी, और वहां बनी रहेगी क्योंकि, यदि कोई विक्रेता अपनी कीमत को फिर बढाए, तो वह अपने सम्पूर्ण बाजार को अपने प्रतिद्वन्द्वी को समर्पित कर देगा। (होटेलिंग द्वारा प्रयुक्त समीकरणों का उपयोग इसे दिखाने के लिए नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे केवल उस स्थिति में मान्य है जब $c \neq 0$।) यह उत्तर मिलता है, **यदि समस्या की अन्य कल्पनाएं रहने दी जाती हैं**, विशेषकर ये दोनों कल्पनाएं कि (1) "प्रत्येक प्रतियोगी अपनी कीमत का समायोजन इस प्रकार करता है कि दूसरे की कीमत के विद्यमान मान पर, उसका अपना लाभ अधिकतम होगा," और (2) कोई एक विक्रेता अकेले सम्पूर्ण बाजार में पूर्ति कर सकता है। अध्याय 3 से सुस्पष्ट है कि पहली कल्पना समस्या को अनेक संभावनाओं में से एक में सीमित कर देती है। जहां तक दूसरी कल्पना का संबंध है, यद्यपि होटेलिंग उसका व्यक्त उल्लेख नही करते, वह उनके निष्कर्षों के लिए आवश्यक है। जैसा कि अब देखा जा सकता है, वह, वस्तुतः, उनके हल की निर्धार्यता की कुंजी है।

हम मान लेते हैं कि प्रत्येक विक्रेता की अधिकतम उत्पत्ति 35 से कुछ कम, मान लो कि 20 है; हम **निर्णायक माने गए तत्व c को रहने देते हैं**, और परिणाम देखते हैं। "सन्तुलन" दशाओं के अन्तर्गत, B का लाभ 578 है। परन्तु अपनी कीमत 34 से बढ़ा कर, मान लो, 50 करने पर वह 15 इकाइयां बेच सकता है, और उसे 750 का लाभ मिलता है, क्योंकि A किसी भी परिस्थिति में 20 से अधिक नहीं बेच सकता। क्योंकि दृष्टान्त में पूर्णतया बेलोचदार मांग की कल्पना की गई है, ऐसी चाल की ऊपरी सीमा अनन्त होगी। लेकिन, यदि मांग को लोचदार माना गया होता, तो ऊपरी सीमा परिमित होती और इस ऊपरी सीमा और एक निचली सीमा के बीच, ऍजवर्थ द्वारा वर्णित

सुपरिचित रीति से, दोलन हुए होते।[12] यह उल्लेखनीय है कि एँजवर्थ के दृष्टान्त में प्रत्येक विक्रेता की सीमित उत्पत्ति निर्णायक है (तुलना कीजिए, ऊपर, पृ० 29 और आगे, विशेषकर के यह कथन कि "उसे अपने प्रतिद्वन्द्वी का डर नहीं होगा, क्योंकि यह प्रतिद्वन्द्वी अपनी सम्पूर्ण पूर्ति को बाजार में प्रस्तुत करके अधिकतम नुकसान पहले ही पहुँचा चुका है।" और तुलना कीजिए, पृ० 34, मेरे तर्क से कि " .....यदि कोई विक्रेता अकेला *OB* या अधिक पूर्ति कर सकता, तो दूसरा, यदि कीमत को शून्य से किंचित् अधिक नियत करता तो, बाजार से बहिष्कृत हो जाता। इसलिए कीमत शुद्धतः प्रतियोगी स्तर पर (हमारे दृष्टान्त में शून्य पर) स्थायी होगी।" इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि विचाराधीन उदाहरण में प्रत्येक विक्रेता की **असीमित पूर्ति** वह [चीज] है जो स्थायित्व पैदा करती है। होटेलिंग का दावा कि उत्पाद विशिष्टीकरण के कारण स्थायित्व आता है, अमान्य है।

यह सच है कि उत्पाद का विशिष्टीकरण इस अर्थ में अधिक स्थायित्व उत्पन्न करता है कि वह सभव अनिर्धार्यता की निचली सीमा को उठा देता है। एँजवर्थ ने कहा था कि "पदार्थों के बीच सहसंबंध की मात्रा के घटने के साथ अनिर्धार्यता का विस्तार घटता है।"[13] यह होटेलिंग के समीकरणों से और ऊपर, पृ० 81-82, दिए गए मेरे तर्क से भी प्रकट है।

अन्त मे जे० टिनबर्जन का संदर्भ भी देखा जा सकता है ("Bestimmung und Deutung von Angebotskurven: Ein Beispiel," *Zeitschrift für Nationalökonomie*, खंड 1, अंक 5, पृ० 676), जो एक साख्यिकीय उदाहरण प्रस्तुत करते है, जिसमे वे कूर्नो का अनुसरण करते है।

परिशिष्ट ख

एक उत्पादक का लागत वक्र[1]

फर्म के दीर्घकालीन औसत लागत वक्र का निर्वचन नियोजित कारकों के अनुपातों के और उनकी समस्त राशि के **संयुक्त** (joint) परिणाम के रूप में अवश्य किया जाना चाहिए। नीचे यह विचार प्रकट किया जाएगा कि अनुपातों और आकार का पृथक् समस्याओं के रूप में प्रतिपादन करने की आम प्रथा के कारण इस विषय का प्रचलित सिद्धान्त गम्भीर रूप से भटक गया है; मुख्य रूप से इस कारण से कि वह लगभग सम्पूर्णतः अनुपातों का सिद्धान्त हो गया है।

इस विकास के एक भाग के रूप में, इस गलत प्रस्थापना (thesis) में व्यापक रूप से विश्वास किया जाता है कि सिद्धान्त की "पूर्ण विभाज्यता" के अन्तर्गत, जैसा उसे उत्पादन के कारकों पर लागू किया जाता है, न तो पैमाने की किफायतें होंगी और न अपार्थ (diseconomies) होंगे। किफायतों और अपार्थ की अनुपस्थिति का (शुद्ध प्रतियोगिता की कल्पना के अन्तर्गत) प्रत्यक्ष तात्पर्य एक बिना फर्मों की अर्थव्यवस्था है। कारण यह है कि, सब उत्पत्तियों पर दक्षता के समान होने के कारण, फर्म का आकार अनिर्धार्य है, अतः फर्मों की संख्या भी; जिसके कारण फर्म की संकल्पना का कोई अर्थ नहीं रह जाता। एक और परिणाम यह है कि प्रतियोगिता की दशा की परिभाषा नही की जा सकती, क्योंकि विक्रेताओं की संख्या ज्ञेय नहीं है।

फर्म के सिद्धान्ततः लुप्त हो जाने की इस कथित प्रवृत्ति पर कई क्षेत्रों में चिन्ता प्रकट की गई है, और विश्लेषण की कई विचित्र और आश्चर्यजनक दिशाओं को प्रेरणा देने का श्रेय उसे है। यहां तर्क किया जाएगा कि ये विकास आवश्यक नही थे—फर्म का अस्तित्व, सिद्धान्त में एवं व्यवहार में, है। यदि यह सरल प्रस्थापना स्थापित हो जाए, तो वह स्वयं उन चिन्तन-पद्धतियों पर पुनर्विचार की ओर ले जाएगी जो (क) किफायतों के "अपूर्ण विभाज्यता" वाद से प्रत्यक्षतः, और (ख) उसके परिणामों से बचने के अनावश्यक प्रयत्नों से व्युत्पन्न हुई हैं। आरम्भ में विश्लेषण प्रति इकाई लागत वक्रों के शब्दों में किया जाएगा, और बाद में उसका अनधिमान वक्र तकनीक के शब्दों में पुनःप्रतिपादन किया जाएगा, और वहीं इन दो रीतियों को एक-दूसरे से सम्बन्धित किया जाएगा।

1. "संयंत्र" और अन्वालोप वक्र

वैयक्तिक फर्म के लिए U-आकृति के लागत वक्र का वह प्रकार जो स्थिर "संयंत्र" (plant) की कल्पना करता है, पाठ्य पुस्तकों में तक मामूली बात हो गया

है। चित्र 35 में उसे संदर्भ के लिए खींचा गया है। चित्र में प्रति इकाई उत्पत्ति की लागत शीर्षाक्ष में नापी गई है और उत्पत्ति क्षैतिज अक्ष में नापी गई है। यह मान लिया गया है कि विचाराधीन फर्म के लिए कारकों की कीमतें दी हुई हैं, अर्थात्, यह कि वे विभिन्न उत्पत्तियों से उसके अपने समायोजनों से प्रभावित नहीं होतीं।[2] औसत बँधी (fixed) लागत (AFC), औसत परिवर्ती लागत (AVC), औसत (कुल प्रति इकाई) लागत (AC), और सीमान्त लागत (MC) के वक्रों का संकेत चित्र में उपयुक्त अक्षरों द्वारा दिया गया है।[3]

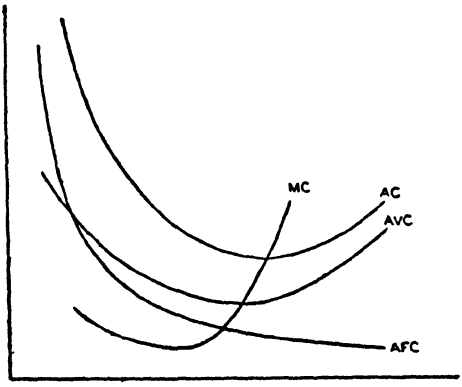

चित्र 35

यह स्मरण रखते हुए कि कारकों के प्रत्येक स्थिर समुच्चय (aggregate) के लिए,[4] जिसे इसके बाद "संयंत्र" कहा जाएगा, वक्रों का एक समरूप कुलक खींचा जा सकता है, हम केवल AC वक्र को आगे ले जाएंगे, जिसे अबसे PAC लिखा जाएगा, जो "संयंत्र औसत लागत" बताता है।

लागत की जिन दशाओं के अन्तर्गत किसी पदार्थ-विशेष का उत्पादन किया जा सकता है उनका पूर्णतया वर्णन करने के लिए, प्रत्यक्ष है कि, ऐसे हजारों PAC वक्रों की अपेक्षा की जाएगी। हम उनमें से केवल पांच वक्रों को दिखाकर शुरू करते हैं (चित्र 36), और कुछ समय के लिए कल्पना करते हैं कि ये पांच वक्र सब संभावनाओं को बनाते है। तो सब उत्पत्तियों के उत्पादन की इष्टतम रीति तीन "तवे जैसी आकृतियों" (scallops) में मोटी रेखाओं द्वारा बताई जाती है, जो PAC_1, PAC_3, और PAC_5 के हिस्सों से बनी हुई हैं। वह प्रत्येक उत्पत्ति के लिए निम्नतम बिन्दु है जो किसी भी वक्र पर हो सकता है और जो x-अक्ष पर प्रत्येक बिन्दु से ऊपर को तब तक चलने पर मिलता है जब तक कोई संयंत्र वक्र आ नहीं जाता। इष्टतम औसत लागतों का यह तवे जैसे किनारे वाला (scalloped) वक्र किसी भी संयंत्र वक्र से अधिक व्यापक है, और अब हम उसे औसत लागत का वक्र, या AC, कहेंगे।[5]

अगला कदम उस अधिक व्यापक स्थिति पर विचार करना है जहाँ संयंत्र की संभावनाएं अधिक संख्या में हैं; और सीमान्त स्थिति में वे इतनी बहुसंख्य हैं और एक-दूसरे के इतने "निकट" हैं कि उन्हें सतत रूप से परिवर्ती समझना उचित हो जाता है। चित्र 37 में, हमने एक-दूसरे के बहुत निकट कई संयंत्र वक्र खींचे हैं, और संयंत्र वक्रों के तवे जैसे बहुत छोटे खंडों से बना हुआ AC वक्र खींचा है। प्रत्येक संयंत्र के लिए, उत्पत्ति के जिस परिसर में वह AC वक्र में अंशदान करता है उसके संगत, संयंत्र सीमान्त

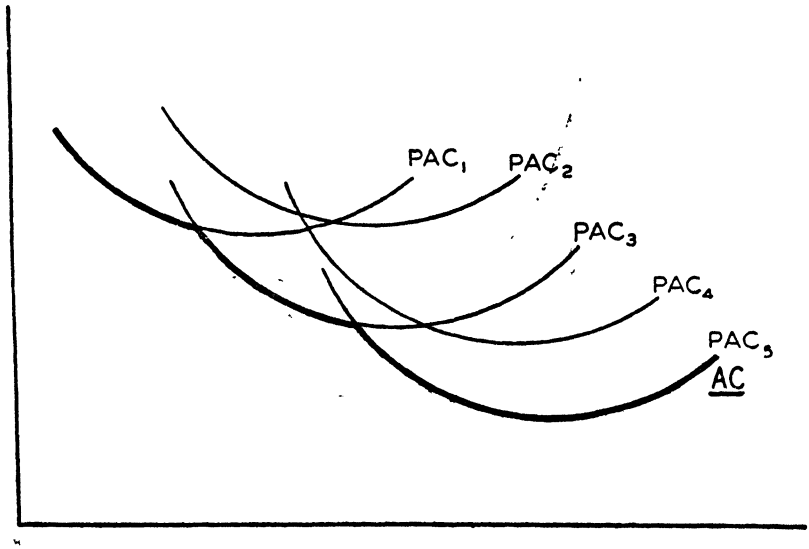

चित्र 36

लागत वक्रों के खंडों को भी खींचा गया है। ये खंड व्यापक औसत लागत वक्र के संगत असतत सीमान्त लागत वक्र, MC, बनाते हैं।[6] आधार रेखा पर लिखी गई संख्याएं उस परिसर का संकेत करती हैं जिसके भीतर संकेतित संयंत्र औसत और संयंत्र सीमान्त लागत वक्र AC और MC वक्रों में अंशदान करते हैं।

चित्र 38 में संयंत्र-संभावनाएं उस बिन्दु तक बढ़ा दी गई हैं कि उन्हें सतत समझा जा सकता है, जिससे AC और MC भी सरल (smooth) वक्र हो गए है। संयंत्र वक्रों की सिद्धान्ततः अपरिमित संख्या में से तीन वक्र PAC_1, PAC_2, और PAC_3 खींचे गए हैं, जो क्रमशः OA, OB, और OC राशियों का उत्पादन करने के लिए सर्वाधिक अनुकूल संयंत्र वक्रों के हैं। (थोड़ी देर के लिए CP_1, CP_2, और CP_3 वक्रों की उपेक्षा कर दीजिए)। सातत्य की कल्पना के अन्तर्गत, AC वक्र पर अत्यल्प गति करने पर भी संयंत्र में एवं उसके साथ काम में लाए गए परिवर्ती कारकों में परिवर्तन सन्निहित है। दूसरे शब्दों में, सब कारक, एवं एक-दूसरे से उनके अनुपात, सतत परिवर्ती हैं। यही सुपरिचित "अन्वालोप" (envelope) लागत वक्र है।[7]

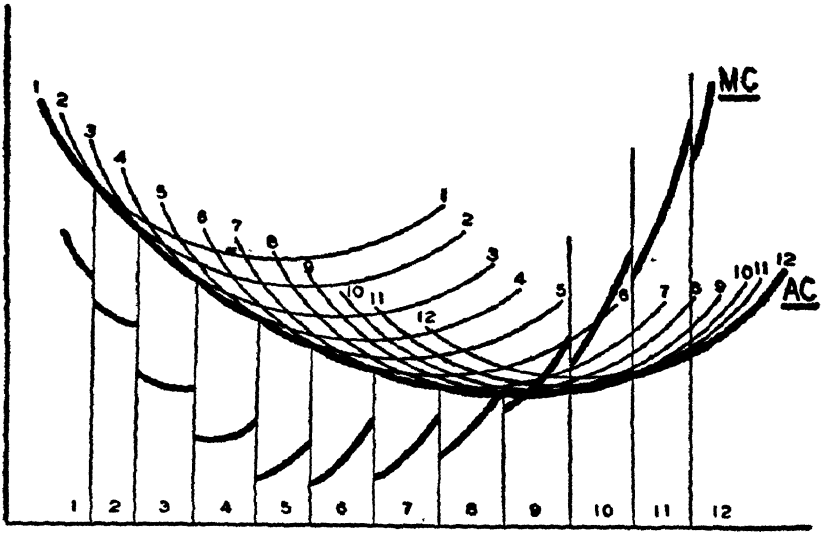

चित्र 37

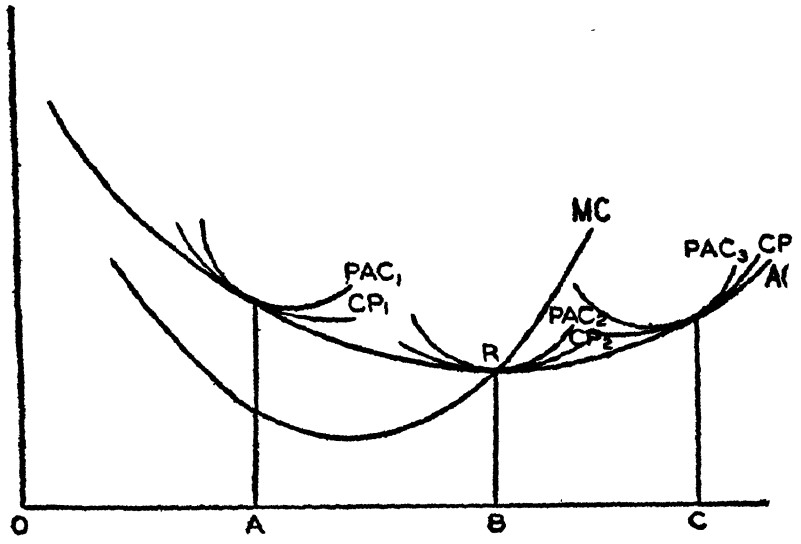

चित्र 38

AC वक्र सतत है या नहीं यह किसी आर्थिक स्थिति-विशेष में तथ्य का प्रश्न है। परन्तु यह सदा सच होगा कि इस वक्र को संयंत्र वक्रों को निर्दिष्ट करके किसी विशेष ढंग से खींची गई पृथक् रचना के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि स्वयं संयंत्र वक्रों के खंडों से बना हुआ समझना चाहिए। वह संयंत्र वक्रों से बना हुआ है : वह संयंत्र वक्रों का समूह है। इसलिए समस्या, सब सम्बद्ध संयंत्र वक्रों को खींच लेने के बाद, अन्वालोप वक्र को या तो उनके निम्नतम बिन्दुओं से होते हुए (जो स्वभावतया, गलत है), या उनकी स्पर्शरेखा के रूप में या किसी अन्य ढंग से, खींचने की नहीं है। वह केवल सब संयंत्र वक्रों का संग्रह करने की है। अन्वालोप वक्र वहाँ पहले ही से है, और उसे कैसे खींचा जाए यह प्रश्न उठता ही नहीं।

संयंत्र वक्रों के निम्नतम बिन्दुओं को सार्थकता प्रदान करने की प्रवृत्ति (urge) चिरस्थायी है।[8] फिर भी, स्पष्ट है कि उनकी कोई भी (दीर्घकालिक) सार्थकता नहीं है। यदि संयंत्र वक्र एक-दूसरे से बहुत दूर न खींचे जाएं, तो उनके निम्नतम बिन्दु *AC* वक्र पर होंगे ही नहीं; और इस असाधारण स्थिति में भी जब कि किसी विशेष संयंत्र और अगले संभव बृहत्तर संयंत्र के बीच बड़ा अन्तर होता है, जिससे पहले *PAC* वक्र का निम्नतम बिन्दु *AC* वक्र में उसके खंड में स्थित होता है, निम्नतम बिन्दु की सार्थकता किसी अन्य बिन्दु से अधिक नही होगी। यह प्रत्यक्ष है कि इस मामले में दो भिन्न इष्टतमों में, जो बिल्कुल असम्बद्ध है, गंभीर संभ्रान्ति रही है और अब भी है : एक है दी हुई राशि के उत्पादन का इष्टतम (optimum) ढंग, और दूसरा है दिए हुए संयंत्र का उपयोग करने का इष्टतम ढंग।

2. विभाज्यता और पैमाने की किफायतें

इस तैयारी के बाद हम अपनी केन्द्रीय समस्या पर आते हैं, जो *AC* वक्र की U-आकृति और उसकी व्याख्या की है। हम वक्र की गिरती हुई और उठती हुई अवस्थाओं पर बारी-बारी से विचार करें।

औसत लागत को बनाने वाले संयंत्र वक्रों के निम्नतम बिन्दु, कुछ समय तक, उत्तरोत्तर नीचे गिरते जाते हैं और, जब तक उसका निम्नतम बिन्दु नहीं आ जाता, उसका अधोमुखी पथ निर्धारित करते हैं। इसके प्रमुखतः दो कारण हैं : (1) बढ़ा हुआ विशेषीकरण जो इस तथ्य के कारण सामान्यतः संभव होता है कि साधनों का समुच्चय बृहत्तर है, और (2) गुणात्मक रूप से भिन्न और प्रौद्योगिक रूप से (technologically) दक्षतर इकाइयाँ या कारक,[9] विशेषकर के मशीनरी, जो बृहत्तर साधनों के द्वारा विस्तारित तकनीकी संभावनाओं के बृहत्तर क्षेत्र में से बुद्धिमत्तापूर्ण चुनाव के कारण संभव होता है।[10] ये दो व्याख्याएं एक-दूसरे को सारवान रूप से अतिव्याप्त करती हैं (उदाहरणार्थ, बहुधा पूंजी कारक में और अधिक "विशेषीकरण" की अभिव्यक्ति मशीनरी है); और कई अन्य कारण (शायद, अपेक्षाकृत कम महत्व

वाले) निश्चित रूप से जोड़े जा सकते हैं। लेकिन, यहां हम समस्या के सकारात्मक पक्ष पर उपर्युक्त सक्षिप्त विवरण दे कर ही संतोष कर लेगे, क्योकि हमारा मुख्य प्रयोजन, "अपूर्ण विभाज्यता" वाली व्याख्या का खंडन करना, नकारात्मक है। इस व्याख्या ने अभी-अभी दी गई व्याख्या को बहुत पीछे धकेल दिया है।

कारकों की अपूर्ण विभाज्यता के मामले के रूप में पैमाने की किफायतों की व्याख्या समस्या के प्रति एक ऐसे उपागम से व्युत्पन्न होती है जो, अभी-अभी संक्षेप में दी गई व्याख्या के विपरीत, आनुपातिकता पर बल देती है। कारकों का एक निश्चित इष्टतम अनुपात होता है; और, क्योंकि कारक केवल विविक्त (discrete) इकाइयों में लिए जा सकते है जिनमें से कुछ बहुत बड़े या "पिण्डीय" (lumpy) होते हैं, यह इष्टतम अनुपात परिशुद्धता से केवल तब प्राप्य है जब कारकों का समुच्चय बड़ा हो। इस प्रकार छोटे पैमाने के उत्पादन की सापेक्ष अदक्षता की व्याख्या इष्टतम अनुपातों को प्राप्त करने में विफलता के विषय के शब्दों में केवल की जाती है। यह तर्क दिया जाता है कि पूर्ण विभाज्यता होने पर वे **किसी** भी समुच्चय के लिए. चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, उपविभाजन द्वारा प्राप्त किए जा सकते है, और पैमाने की किफायते अविद्यमान होंगी। अतएव, किफायतों की व्याख्या अपूर्ण विभाज्यता से हो जाती है।

इस तर्क में मूलभूत दोष यह है कि यह दक्षता पर "विभाज्यता" के प्रभावों की उपेक्षा करता है। परन्तु इस विषय का अनुसंधान करने के पहले यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि विभाज्यता की **परिभाषा** में इस अपेक्षा को सम्मिलित करके कि दक्षता अप्रभावित रहे, इस व्याख्या को किस मात्रा तक द्विरुक्ति (tautology) बना दिया गया है। प्रोफेसर स्टिग्लर इस आधुनिक प्रवृत्ति को प्रतिबिम्बित करते है, जब वे स्पष्टतया कहते है कि "यह कहना द्विरुक्तिपूर्ण है कि पैमाने की किफायतें अविभाज्यताओं पर आधारित हैं, क्योंकि अविभाज्य सेवा की **परिभाषा** यह की जाती है कि वह ऐसी है जो (उत्पत्ति के रूप में नापे गए) सब आकारों में समान रूप से दक्ष नही है।"[11]

इससे कहीं अधिक सामान्य एक ऐसा प्रतिपादन है जिसमे द्विरुक्ति को यद्यपि व्यक्त रूप से स्वीकार नही किया गया है, फिर भी वह समान रूप से विद्यमान है। इस प्रकार श्री काल्डर कहते है कि "यह **अध्ययनरीतीय रूप से** (methodologically) **सुविधाजनक** प्रतीत होता है कि बड़े पैमाने की किफायतों की सब स्थितियों पर 'अविभाज्यता' शीर्षक के अन्तर्गत विचार किया जाए;" और एक अनम्य (refractory) स्थिति को इस व्यवस्था (rule) के अन्तर्गत लाने के लिए, वे तुरन्त व्याख्या करते हैं कि हो सकता है कि " 'मौलिक कारक' इतने अविभाज्य नहीं है, बल्कि इन कारकों के विशेषित कार्य अविभाज्य हैं।"[12] इस प्रकार विभाज्यता की **परिभाषा** ऐसे की गई है कि उसमें छोटे पैमाने पर भी उन "विशेषित कार्यों" की सुलभता सम्मिलित है जो वास्तव में बड़े पैमाने की क्रिया पर निर्भर करते हैं, क्योंकि "विशेषीकरण" पैमाने की किफायतों का सार है। अब यह कहना कि जहाँ प्रत्येक चीज

"पूर्णतया विभाज्य" है वहाँ पैमाने की किफायतें सम्पूर्णतया अविद्यमान हैं, अपने कथन को केवल दोहराना है।

इसी प्रकार, श्री लर्नर का कल्याण की समस्या के सम्बन्ध में विभाज्यताओं का सर्वांगीण विश्लेषण इस प्रस्थापना पर बहुत अधिक टिका हुआ है कि "कारकों, उत्पादों और उत्पादन की रीतियों" की पूर्ण विभाज्यता के अन्तर्गत पैमाने की किफायतें अविद्यमान है, और स्थिर लागत की कथित परिणामी दशाओं से दूरव्यापी निष्कर्ष निकाले गए हैं। यहाँ "उत्पादन की रीतियों" का व्यक्त समावेश स्वतः दक्षता की समस्या को संभाल लेता है, क्योंकि इस मद की "विभाज्यता" "कारकों और उत्पादों के बीच निश्चित अनुपातों को सन्निहित करने वाली किसी विशेष उत्पादन-रीति की, ठीक उसी ढंग से, बृहत्तर या लघुतर पैमाने पर पुनरावृत्ति करने देती है।"[13] वाक्यांश "ठीक उसी ढंग से" का अर्थ स्पष्टतः ठीक उसी दक्षता से है (अन्यथा "रीति" की पूर्ण विभाज्यता के होने पर भी पैमाने की किफायतें बनी रहेंगी)। यहाँ यह **कल्पना** की जा रही है कि साधनों के बृहत्तर समुच्चय के कारण सभव हुई श्रेष्ठ रीतियाँ, जैसे ऐसेम्ब्ली लाइन, अल्पतर समुच्चय के लिए भी समान रूप से सुलभ है—दूसरे शब्दों में, "रीति की विभाज्यता" "किफायतों के अभाव" के लिए केवल एक प्रियोक्ति (euphemism) है।

विभाज्यता तर्क का सबसे पहला कथन, मेरी जानकारी के अनुसार, प्रोफेसर नाइट ने दिया है; शायद इसी कथन से, उनके प्रभाव के कारण, हाल के वर्षों के अधिक व्यक्त रूप से द्विरुक्तिपूर्ण निरूपण विकसित हुए है। उन्होने तर्क किया है कि "**यदि** किसी संयोजन के **सब** तत्वों की राशियां बिना सीमा के मुक्त रूप से परिवर्ती हों और उत्पाद भी सतत विभाज्य हो, तो प्रत्यक्ष है कि अपने कार्यकरण में संयोजन का एक आकार समरूपतः बने हुए किसी अन्य आकार के ठीक-ठीक समरूप होगा।"[14] ऐसी प्रस्थापना केवल तब "प्रत्यक्ष" है यदि दक्षता पर कारकों के विभाजन की उपेक्षा कर दी जाए; दूसरे शब्दों में, यदि पैमाने की किफायतों के वाद-विषय को कल्पना करके हटा दिया जाए।

अब हम द्विरुक्तियों के प्रश्न को छोड़कर समस्या के प्रति एक अन्य मिथ्या उपागम पर विचार करें: यह एक आम तर्कपद्धति है जो विश्वास करती है कि विभाज्यता के "गणित" में कुछ ऐसा है जो किफायतों को मिटा देता है। विद्यार्थियों और सहयोगियों से इस विषय पर विचार-विमर्श करने में मैने इसका बार-बार सामना किया है—वस्तुतः, हाल के वर्षों में विभाज्यता वाद के आधिपत्य का कारण अंशतः गणित की, न केवल उपकरण के रूप में बल्कि बहुधा अर्थशास्त्र के स्थानापन्न के रूप में, प्रधानता को बताना अयुक्त नहीं होगा। वर्तमान स्थिति में वह एक घटिया स्थानापन्न है—और यह गणित भी तो नहीं है। इस कल्पना का कि कारक "पूर्णतः विभाज्य" हैं, इस बारे में कोई भी लक्ष्यार्थ (implication) नहीं है कि विभाजन की प्रक्रिया में

उनकी दक्षता किस प्रकार प्रभावित होगी। दूसरे शब्दों में विवादास्पद प्रश्न के प्रति गणित, गणित के रूप में, कोई अंशदान नहीं करता।

वास्तविक आर्थिक फलन (function) हर हालत में असतत है, और "पूर्ण" विभाज्यता की कल्पना करना, गणित के दृष्टिकोण से, उसके स्थान पर केवल एक सतत फलन को रख देना है। यदि प्रतिस्थापित फलन आर्थिक वस्तुस्थिति को अभिव्यक्त करने वाले फलन का निकट से अनुकरण नहीं करता, तो उसके उपयोग से निकाले गए परिणाम बेकार होंगे। पूर्ण विभाज्यता की कल्पना के अन्तर्गत फर्म का सतत उत्पादन लागत वक्र खीचने के बारे में परामर्श के लिए बुलाया गया गणितज्ञ, अर्थशास्त्री से यह पूछने के लिए विवश होगा कि विचाराधीन समस्या में विभाज्यता का मूर्त रूप से क्या अर्थ है, और वह दक्षता को कैसे प्रभावित करेगी। वह केवल तब आगे बढ़ सकता है जब अर्थशास्त्री उत्तर दे चुका हो। यह प्रश्न अर्थशास्त्र का है, गणित का नहीं।[15]

प्रश्न यह है कि विभाज्यता दक्षता का, यदि कुछ करती है तो, क्या करती है? और इसका उत्तर अंशतः इस पर निर्भर करता है कि किसी कारक को "विभाजित करने" का हम मूर्त रूप से क्या अर्थ करते है।[16] एक और प्रश्न का उत्तर भी अवश्य दिया जाना चाहिए : उस स्थिति में क्या किया जाए जब किसी कारक को विभाजित **नहीं किया जा सकता,** और इसलिए जब भिन्नात्मक (fractional) इकाइयों मे उसकी दक्षता का प्रश्न उत्पन्न नही होता?

हम उस स्थिति से आरंभ करें जिसमे विभाज्यता किसी अर्थ में संभव है, और मान ल कि फर्म के उत्पादन की दक्षतम दशाओं के अन्तर्गत (उसके अन्वालोप लागत वक्र के निम्नतम बिन्दु पर) 100 मजदूर नियुक्त है। समस्या को सरल बनाने के लिए हम यह कल्पना भी करते है कि उत्पादन के कोई अन्य कारक नही है। श्रम की कुल राशि को किसी ऐसी भिन्न में विभाजित करने में कोई कठिनाई नही होगी जिसका अंश कोई पूर्ण संख्या है और हर 100 है; यहां केवल इतना करना है कि इकाइयों की उचित संख्या ले ली जाए। एक अकेली इकाई पर पहुँचने तक, "विभाजन" का मूर्त रूप से यह अर्थ है; और हम दक्षता पर उसके प्रभाव को भली भांति जानते है : मजदूर जितने ही कम होंगे उतने ही कम वे विशेषज्ञ (specialised) होंगे, और इसलिए उतने ही कम दक्ष होंगे। एडम स्मिथ ने इसके कारणों की विस्तार से व्याख्या की है—संक्षेप में, वे कम "निपुणता" (dexterity) प्राप्त करेंगे और वे "एक प्रकार के काम से दूसरे मे जाने में" अधिक समय खोएंगे। विचाराधीन उत्पत्तियों की प्रति इकाई लागत का आलेखन करने पर, हमें 100 बिन्दुओं की असतत श्रेणी मिलती है, जिनमें से प्रत्येक औसत लागत वक्र की ह्रासमान अवस्था पर एक बिन्दु है। 100 मजदूरों की "पूर्ण विभाज्यता" में, मध्यवर्ती बिन्दुओं के लिए उसका चाहे जो भी अर्थ हो, 1/100, 2/100.....100/100 जैसी भिन्ने अवश्य **सम्मिलित** होनी चाहिए, और इस निष्कर्ष से बचा नही जा सकता कि ये बिन्दु उस वक्र पर अवश्य होने चाहिए। ऐसा होने पर, प्रतीत होगा कि उनके बीच मे क्या होता है इसका महत्व वास्तव मे गौण है, क्योंकि

जहां तक यह निश्चित है कि पूर्ण विभाज्यता वाला वक्र इन बिन्दुओं से होकर अवश्य जाना चाहिए, वह, व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए, निर्धारित है। उदाहरणार्थ, यह पूर्णतया स्पष्ट है कि वह क्षैतिज रेखा नहीं हो सकता, जो पैमाने की किफायतों को नकारती है।

परन्तु हम किसी कारक की **भिन्नात्मक** इकाइयों में सन्निहित और अधिक विभाज्यताओं की परीक्षा करें। विभिन्न आर्थिक वस्तुओं की इकाइयों का "विभाजन" करने के कई ढंग है। विदारक का उपयोग करने पर पण्य मांस-खण्ड अपरिमित रूप से विभाज्य है; बॉयलर को छोटा (या बड़ा) बनाकर उसका "विभाजन" किया जा सकता है, और पुनः उसकी श्रेणियों (gradations) की संख्या अपरिमित है। श्रम के लिए इनमे से कोई भी प्रक्रिया उपयुक्त नही है। यह टिप्पणी हंसी-मजाक के लिए नही की गई कि कारक श्रम के लिए इनमें से कोई प्रक्रिया उपलब्ध नही है, बल्कि यह स्पष्ट करने के लिए की गई है कि विभाज्यता का जो निर्वचन किया जाना है, वह गणितीय रूप-रेखा (ब्लूप्रिन्ट) से नहीं, बल्कि विचाराधीन समस्या की आर्थिक वास्तविकताओं से व्युत्पन्न होता है।

ऐसा प्रतीत होगा कि श्रम की इकाई को विभाजित करने का एक अर्थपूर्ण और वास्तविक ढंग समय के आधार पर है।

मान लो कि ऐसी उत्पत्ति चाहिए जो 50 मजदूरों की और 51 मजदूरों की उत्पत्तियों के बीच में है। यदि मजदूरों को अंशकालिक आधार पर नियुक्त किया जा सके (या तो प्रत्यक्षतः या, कुछ प्रकार के कामों को ठेके पर देकर, परोक्षत.), तो मामला केवल यह अनुसन्धान करने का हो जाता है कि इस व्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादन की दक्षता का क्या होता है, और अन्तरों को कैसे भरा जाए। सबसे अनुकूल परिस्थितियाँ वे प्रतीत होंगी जिनमें मजदूर को अंशकालिक रूप से नियुक्त करने पर दक्षता पर यह प्रभाव पड़ता है कि मध्यवर्ती बिन्दुओं पर उत्पाद की प्रति इकाई लागत उपर्युक्त प्रवृत्ति के अनुरूप हो, अर्थात्, वे हमारे प्रारम्भिक 100 बिन्दुओ से होकर खीचे गए सरल वक्र पर हो। यदि ऐसा है तो हमें इन बिन्दुओं मे से किन्हीं दो के बीच के परिसर के लिए उसी प्रकार का विश्लेषण करना होगा, जिसे 0 से 100 मजदूरों के परिसर के लिए अभी-अभी विकसित किया गया है। इस प्रकार, यदि हम मान लें कि श्रम की एक "भिन्नात्मक इकाई" 5 मिनट है, तो दिन भर में ऐसी लगभग 100 इकाइयां होंगी, और श्रम की 10 ऐसी पांच-मिनट इकाइयां सामान्यतया 100 ऐसी इकाइयों से कम दक्ष होंगी, जिसका कारण वही है जो इसका कि 10 दिन का श्रम 100 दिन के श्रम से कम दक्ष होगा। यह निष्कर्ष दक्षता को किसी कारक की **राशि** पर निर्भर कराता है, और इकाई का आकार पूर्णतया स्वेच्छ है। विचाराधीन समस्या में दक्षता पर विभाज्यता के प्रभाव के बारे में यह निश्चित रूप से सरलतम **व्यापक** कल्पना है और प्रतीत होगा कि उचिततम भी है।

इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि, इस निर्वचन के फलस्वरूप, किसी

भिन्नात्मक इकाई की दक्षता श्रम की उस कुल राशि पर निर्भर करती है, जिसमें वह **जोड़ी जाती** है। वक्र के प्रत्येक बिन्दु पर वह भिन्न है, और उस दक्षता के लगभग अनुरूप है जो जहां पर विभाजन किया जाता है, वहां प्राप्त है, न कि उस दक्षता के जो किसी अन्य सुदूर बिन्दु पर, जैसे लागत वक्र के निम्नतम बिन्दु पर, प्राप्त है। उदाहरणार्थ, क्योंकि 50 पूरे मजदूरों को अंकगणितीय रूप से 100 आधे मजदूरों के बराबर सोचा जा सकता है, इससे यह निष्कर्ष न निकाला जाए कि क्योंकि "इकाइयों" की संख्या समान है इसलिए उनकी दक्षता निम्नतम बिन्दु पर 100 पूरे मजदूरों के बराबर होगी। उनकी संख्या **वस्तुतः** 50 होने के कारण, प्रत्येक को जितनी क्रियाओं का 100 मजदूर होने पर पारंगत होना होता, उससे अधिक का होना पड़ेगा, और उन्हें एक काम से दूसरे में अधिक बार-बार आना-जाना पड़ेगा, आदि। इन और ऐसे ही अन्य कारणों से वे कम दक्ष होंगे।

100 मजदूरों को आधे समय के लिए रखकर भी इस निष्कर्ष से बचा नहीं जा सकता। इस स्थिति मे आवश्यक के दुगुने मजदूरों की नियुक्ति, प्रशिक्षण, और देख-रेख के, एक मजदूर से दूसरे को बदलने के, और अन्य बातों के कारण अदक्षता होगी, जिससे परिणाम, 50 पूर्णकालिक मजदूरों की अपेक्षा बेहतर नहीं, बदतर होगे। यह देखने के लिए कि यद्यपि उपविभाजन इष्टतम उत्पत्ति के अन्तर्गत "इकाइयो" की संख्या को अल्पतर उत्पत्ति के लिए भी प्रस्तुत कर सकता है तथापि वह दक्षता की वैसी ही दशाओं को प्रस्तुत नही कर सकता, केवल दो स्थितियों का मिलान करना काफी है : एक वह जिसमें एक व्यक्ति प्रतिदिन आठ घंटे काम करता है, और दूसरी वह जिसमें 96 व्यक्ति पांच मिनट की पारियों में एक-एक करके काम करते हैं।

अति अल्प इकाइयों के इस उदाहरण से, हम उन बहुत वास्तविक जटिलताओं पर विचार करने की ओर प्रवृत्त होते हैं जो इकाई के आकार के कारण उपस्थित होती हैं। किसी विशेष उत्पत्ति का दक्षतम रूप से उत्पादन करने के लिए, यह उदासीनता का विषय स्पष्टतः नही है कि 100 दिन काम करने वाला अकेला मजदूर हो, या एक दिन काम करने वाले 100 मजदूर हों, या 4·8 मिनट काम करने वाले 10,000 मजदूर हों। अन्वालोप वक्र परिभाषा से अपेक्षा करता है कि प्रत्येक उत्पत्ति के लिए कारकों की इकाइयां सदा ऐसी चुनी जाएं कि अधिकतम दक्षता प्राप्त हो। (सुस्पष्ट है कि "श्रम" जैसे विस्तृत प्रवर्ग के लिए वे विविध आकार की होंगी।) परन्तु यदि इकाई का आकार महत्व रखता है, तो अब विभाज्यता की एक और समस्या आ जाती है : एक भिन्नात्मक इकाई में दक्षता की क्षति सन्निहित हो सकती है, केवल इस कारण से कि वह भिन्नात्मक है—उदाहरणार्थ, कामगार चाहे अंशकालिक हो या पूर्णकालिक, काम शुरू करने और बंद करने में लगने वाला समय वही रहता है। इस स्थिति में, हमारे अब तक के सरल वक्र में जहां कहीं एक भिन्नात्मक इकाई प्रकट होती है, वहां वक्र भंग होकर किंचित् उच्चतर बिन्दु पर आ जाएगा और, विभाजित इकाई के परिसर में, पूरी इकाई के बिन्दु पर पुनः पहुँचने तक, सरल वक्र की ओर अधिक तीव्र उतार

होगा। जहां कुल इकाइयों के सापेक्ष विभाजित इकाइयाँ बडी हैं, ऐसे विचार महत्वपूर्ण हो सकते हैं; परन्तु ऐसी भिन्नात्मक इकाइयों की अदक्षताओं का औसत **सब** इकाइयों के लिए सदा आद्योपान्त निकाला जाएगा, और, अल्पतम उत्पत्तियों के सिवाय अन्य के लिए, प्रायः नगण्य होगा। अधिकांश स्थितियों में उनकी उपेक्षा करने का, और यह समझने का कि अंशकालिक कामगारों की दक्षता प्रवृत्ति के अनुरूप है, अर्थात्, प्रति इकाई लागत उत्पत्ति का **सतत** फलन है, औचित्य यही है। (जहां कहीं अदक्षताएं महत्वपूर्ण हों, वास्तविक सामग्री में सरल वक्र का आसंजन एक विकल्प है।)

किसी कारक की सतत विभाज्यता प्राप्त करने का, अभी-अभी विवेचित समय-आधार के अतिरिक्त, एक अर्थपूर्ण और यथार्थिक ढंग उसे गुणात्मक रूप से बदलना है। अब अंशकालिक मजदूरों के स्थान पर, अधिक (या कम) दक्ष मजदूरों, या शायद किंचित् **भिन्न** मजदूरों, की नियुक्ति समाधान है। यह साधारण बात है कि मनुष्यों की सामर्थ्य और आर्थिक विशेषताएं असाधारण रूप से विविध होती है, और इस प्रस्थापना से विमति (dissent) निस्संदेह नहीं होगी कि व्यापक कारक "श्रम", यहां विवेचित अर्थ में, सतत रूप से विभाज्य है। अब केवल यह देखना बाकी है कि ऐसी विभाज्यता का किफायतों पर क्या प्रभाव पड़ता है। मेरा विश्वास है कि यहां भी व्यापक सहमति होगी कि ऐसे गुणात्मक विचार (considerations) स्वत पैमाने की किफायतों का एक महत्वपूर्ण नया स्रोत प्रदान करते हैं। इसका कारण यह है कि अधिक उच्च रूप से विशेषित और उत्कृष्ट योग्यताओं का नियोजन बहुधा बृहत्तर उत्पत्तियों पर निर्भर करता है, क्योंकि जिन इकाइयों में ऐसी योग्यताएं समाविष्ट होती हैं वे इतनी बड़ी होती हैं कि अल्प उत्पत्तियों पर उनका पूरी तरह से उपयोग नही हो पाता। अतः न्यूनतम लागत की दशाओं के अनुरूप "श्रम" के समुच्चय का "विभाजन" (एक सौ मजदूरों वाली पहले की स्थिति की भांति), प्रयुक्त इकाइयों के प्रकारों के चुनाव को संकीर्ण करके, दक्षता को घटा देगा। ऐसी इकाइयाँ समय के आधार पर निस्संदेह विभाज्य हो सकती हैं, जिस स्थिति में हमारा पहले का विश्लेषण, कम दक्ष इकाइयों को रखने के विकल्प के रूप मे, प्रयुक्त होगा, और इनमें से बेहतर संभावना को चुना जाएगा।

मनुष्यों के लिए किए गए इस विश्लेषण के सदृश विश्लेषण मशीनों (और भूमि) के लिए किया जा सकता है, और उसका संक्षेप में निर्देश करना पर्याप्त होगा। मशीनों की संख्या बढ़ने पर, एकरूप इकाइयों का उपयोग करने की रीति में और विभिन्न मशीनों के निर्माण और अभिकल्प (डिजाइन) में, विशेषीकरण में ठीक उसी प्रकार वृद्धि होती है, जैसे मजदूरों की संख्या के बढ़ने पर। समय के आधार पर "भिन्नात्मक" इकाइयाँ किराये, बटाई (sharing), या ठेके की व्यवस्था के माध्यम से, कुछ मात्रा तक, संभव है, यद्यपि विनिर्माण की साधारण क्रियाओं में ये बातें शायद बहुत महत्वपूर्ण नहीं हैं। जहां वे विद्यमान हैं वहां श्रम के लिए पहले ही दिया गया विश्लेषण, बिना किसी महत्वपूर्ण संशोधन के, प्रयोज्य है।

ऐसा प्रतीत होगा कि मशीनरी और पूंजी साज-सामान की स्थिति में विभाज्यता का निर्वचन गुणात्मक परिवर्तन के शब्दों में कही अधिक अर्थपूर्ण और महत्वपूर्ण है। जबकि मनुष्य स्वभाव और प्रशिक्षण से विविध होते हैं, पूंजी-यन्त्र विनिर्माण से विभिन्न होते है। अभिकल्पना (डिजाइन) में परिवर्तन अपरिमित है, और सब मशीनें भौतिक आकार की एक नयी विमिति (dimension) में भी सतत रूप से विभाज्य हैं, जिसके दक्षता के लिए, स्वभावतया, महत्वपूर्ण परिणाम हैं। ऐसा प्रतीत हो कि कारक पूंजी की सतत विभाज्यता पूर्णतया व्यापक होगी, यदि सीमित संख्या में मॉडलों पर संकेन्द्रण के कारण से स्वयं पूंजी-यन्त्रों के उत्पादन मे किफायतें न होती। इस प्रकार फर्म को उपलब्ध विभिन्न प्रकार की इकाइयों के बीच "अंतरों" (gaps) की संभावना उत्पन्न हो जाती है। जहां कही ऐसे अंतर पाए जाते है (यदि किसी अन्य आधार पर, जैसे समय के आधार पर, भिन्नात्मक इकाई प्राप्त न हो तो), वहां किसी विशेष इकाई का उपयोग, उसके साथ नियोजित अन्य कारकों की राशियों में एक निश्चित परिसर में परिवर्तन करके, तीव्रता (intensity) की विभिन्न मात्राओं में किया जाएगा, और परिणाम चित्र 37 जैसा तवे जैसा कटावदार वक्र होगा। लेकिन, विशाल संगठनों में, विभिन्न प्रकार के उपस्करों के लिए ऐसे अंतरों का विभिन्न बिन्दुओं पर आना लगभग निश्चित है, जो तवे जैसी आकृतियों को छोटा कर देगा और शायद सब बिन्दुओं पर पूंजी व्यय की पूर्ण विभाज्यता को पुनः स्थापित कर देगा।

यह तो हुई सातत्य की समस्या। अब प्रश्न है कि वक्र की आकृति का—कि गुणात्मक परिवर्तन की इस स्थिति में किफायतों पर विभाज्यता का प्रभाव क्या होगा? मेरा विश्वास है कि यहां भी इस बारे मे व्यापक सहमति होगी, जैसी श्रम के बारे में थी, कि बृहत्तर उत्पत्तियां, नयी और दक्षतर प्रौद्योगिक सम्भावनाओं को निरन्तर उद्घाटित करके, इकाइयों के चुनाव को विस्तृत कर देती है। ये सम्भावनाएँ अल्पतर उत्पत्तियों के लिए बहुत महंगी होगी क्योंकि उनका बहुत न्यून-उपयोग होगा। अतः, इस विषय पर दूसरे ढंग से विचार करने पर, न्यूनतम लागत की दशाओं के अनुरूप पूंजी के समुच्चय का विभाजन, प्रयुक्त इकाइयों के प्रकारों के चुनाव को संकीर्ण करके, दक्षता को घटा देगा, जैसा श्रम के समुच्चय के लिए हुआ था।

अब हम उस स्थिति पर विचार करें जिसमें कोई इकाई या कोई कारक विभाज्य है ही नहीं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि यद्यपि सामान्य कारक "पूंजी" विभाज्य है, जिन विशिष्ट मशीनों में वह समाविष्ट होता है, वे विभाज्य नही है, और यह कि पैमाने की किफायतों का यही स्रोत है, या कम से कम एक स्रोत है। परंतु इस प्रस्थापना में कोई सच्चाई प्रतीत नही होती। प्रत्यक्ष है कि यदि किसी मशीन का विभाजन न किया जा सके, तो जब तक उसका किसी भी तरह से उपयोग होता है, उसकी "राशि" स्थिर अवश्य रखी जानी चाहिए, और उसके साथ प्रयुक्त अन्य कारकों की राशियां बदला जाएंगी, जो U-आकृति का संयंत्र वक्र देगा, जिसकी ह्रासमान अवस्था में किफायतें मिलती हैं। लेकिन, सतत गुणात्मक परिवर्तन की स्थिति में,

अन्वालोप वक्र पर गति में ऐसे एक वक्र से दूसरे में निरन्तर संक्रमण सन्निहित है, और अन्वालोप वक्र की ह्रासमान अवस्था उसे बनाने वाले संयंत्र वक्रों की **आकृतियों** का नहीं बल्कि एक-दूसरे के सापेक्ष उनकी **स्थिति** का परिणाम है। जब स्मरण रखा जाता है कि U-आकृति वाले सब संयंत्र वक्रों का न्यूनतम मान समान होने पर अन्वालोप वक्र एक क्षैतिज रेखा होगा, तो यह तुरन्त स्पष्ट हो जाता है।

वैकल्पिक स्थिति में, जहां किसी कारक की इकाइयों के बीच, या "संयंत्रों" के बीच, सारवान "अंतर" होते है, दीर्घकालीन औसत लागत वक्र के प्रति विशिष्ट संयंत्र वक्रों के अंशदान परिमित होंगे, और शायद सारवान होंगे। तब यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि प्रत्येक तवे जैसी आकृति स्थिर कारक विश्लेषण के नियमों से निर्धारित होती है, जिसका प्रतीक चित्र 35 है। परन्तु, जैसा सातत्य की स्थिति में था वैसे ही, दीर्घकालीन औसत लागत वक्र में अंशदान करने वाले किसी संयंत्र वक्र का विशिष्ट **खंड** एक-दूसरे के सापेक्ष संयंत्र वक्रों की स्थिति से निर्धारित होता है, न कि उनकी आकृति से। इस प्रकार पुनः, यदि सब संयंत्र वक्रों के न्यूनतम मान समान हों तो, AC वक्र इन न्यूनतम मानों के इर्दगिर्द खंडों से बना होगा; उसमें जितने उठते हुए खड होंगे उतने ही गिरते हुए खंड होंगे, और उस पर आसंजित सरल वक्र एक क्षैतिज रेखा होगा। इसलिए, "अंतरों" की स्थिति में भी हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि अन्वालोप वक्र की उपनति (trend) एक सयंत्र से दूसरे सयत्र में संक्रमण के स्वभाव द्वारा निर्धारित होती है, न कि किसी विशिष्ट संयंत्र वक्र पर गति पर। तिस पर भी, यह कहने पर, निस्संदेह, कोई आपत्ति नहीं है कि किसी विशिष्ट (शायद सारवान) खड में अन्वालोप वक्र का व्यवहार स्थिर कारक विश्लेषण द्वारा निर्धारित होता है।

लेकिन, किसी भी स्थिति में, यह कहने पर आपत्ति है कि किसी संयंत्र वक्र की ह्रासमान अवस्था में किफायतों की व्याख्या स्थिर संयंत्र की **अविभाज्यता** से हो जाती है, जहां इसका अर्थ यह है कि यदि संयंत्र विभाज्य होता तो किफायतें न होतीं। ऐसी प्रस्थापना समस्या की द्विरुक्तिरूप संकल्पना का अनिवार्य अंग है, अपनी पारी में जो इस आधार-वाक्य (premise) से व्युत्पन्न होती है कि यदि सब उत्पत्तियों के लिए उन्हीं (कथित रूप से "सर्वोत्तम") अनुपातों को बनाए रखा जाता है, तो पैमाने की किफायतें (या अपार्थ) नहीं होंगी। विभाज्यता की इस संकल्पना की व्यापकता, जो "दक्षता में क्षति के बिना" को अन्तर्विष्ट करती है, इस बात का प्रत्यक्ष रूप से माप है कि किफायतों की व्याख्या में आकार के ऊपर अनुपातों की विजय कितनी व्यापक रही है; जबकि यहां विभाज्यता, यदि वह किसी प्रकार से भी अर्थपूर्ण है तो, अधिक से अधिक यह कर पाती कि संयंत्र वक्र के न्यूनतम बिन्दु की दशाओं को अल्पतर उत्पत्तियों के लिए **केवल अनुपातों के सम्बन्ध** में पैदा करती। ऊपर विवेचित वे सब शक्तियां जो दक्षता को प्रभावित करती हैं, और जो **आकार** का फलन हैं, बनी रहती। लेकिन, "अविभाज्यता" के शब्दों में संयंत्र वक्र की आकृति की व्याख्या करने के विरुद्ध वास्तविक आपत्ति यह है कि इसका कोई अर्थ नहीं है। यदि कोई कारक

अविभाज्य है तो मामला खत्म; यह जानने का कोई तरीका नहीं है कि उसका विभाजन दक्षता को किस प्रकार प्रभावित करेगा।[17] यदि विभाज्यता का अर्थ वास्तविक तवे जैसे किनारे वाले वक्र के स्थान पर सरल वक्र रखना मात्र है, तो जिस वक्र को रखा गया है उसे प्रतिस्थापित वक्र के उपयुक्त अनुरूप कम से कम अवश्य होना चाहिए, और उसमे ऐसी कोई स्वेच्छ कल्पना सन्निहित नही होनी चाहिए जो उसे सहसा बदल दे।

यहां यह और कहा जा सकता है कि कई स्थितियों में, जहां कारक का विभाजन नही किया जाता है, विभाजन न करने का कारण हो सकता है कि यह न हो कि वह अविभाज्य है, बल्कि यह हो कि उसका "विभाजन" करने पर (मान लो कि, अंशकालिक रूप से काम में लगाने पर) दक्षता में होने वाली कमी उसे अंशतः बेकार पड़े रहने देने की अपेक्षा अधिक हो। इस स्थिति में, एक अविभाज्य इकाई के रूप में उसका उपयोग दक्षता को **बढ़ा देता है।**

संक्षेप में, प्रकट होता है कि पैमाने की किफायतों की व्याख्या में अविभाज्यताओं का कोई भी भाग नहीं है। जहां सब कारक पूर्णतया विभाज्य है, वहां दक्षता आकार का फलन फिर भी बनी रहती है; जिससे अन्वालोप वक्र, चाहे सरल हो या तवे जैसे किनारे वाला हो, अपनी पहली अवस्था में एक न्यूनतम तक गिरता है। जहां दीर्घकालिक औसत लागत वक्र के सारवान भागों के लिए कोई विशिष्ट कारक या कारकों की इकाइयां स्थिर बनी रहती है, और जहां इसके कारण तवे जैसे किनारे आ जाते हैं, वहां "उपनति" वही होगी, और उसका कारण भी वही है। और जहां दीर्घकालिक औसत लागत वक्र के खड, जिन पर स्थिर कारक विश्लेषण लागू होता है, सारवान है, वहां इस परिसर के भीतर किफायतों का कारण "अविभाज्यता" को बताना या तो द्विरुक्तिपूर्ण है या अर्थहीन।

3. आनुपातिकता और पैमाने के अपार्थ

अब हम *AC* वक्र के निम्नतम बिन्दु की दाहिनी ओर उसके व्यवहार पर विचार करें। यहां भी आनुपातिकता वाद ने चित्र को, इन दोनों बातों के बारे में कि क्या वक्र ऊपर को उठता है और यदि उठता है तो क्यों, मिथ्या रूप में प्रस्तुत किया है।

शुद्धतः प्रतियोगितामूलक सिद्धान्त के लिए इस विषय का महत्व निर्णायक है,[18] क्योकि यदि वक्र ऊपर को न उठे तो फर्मों की संख्या, शुद्ध प्रतियोगिता के लिए अपेक्षित "बड़ी" होने के स्थान पर, अनिर्धार्य है। व्यापक आनुपातिकता वाद के, जो दक्षता और आकार का सम्बन्ध तोड़ देता है, इस परिणाम का सामना होने पर प्रोफेसर नाइट, दृढ़तापूर्वक यह कहने के बाद कि "इन चीजों (आनुपातिकता और आकार) को अनिवार्यतः पृथक् अवश्य रखना चाहिए", दो वाक्य लिखने के बाद पाते हैं कि उन्हें पृथक् नहीं रखा जा सकता, और इसलिए विरोधी **आधारतत्वों** (postulates) को

मान लेते हैं[19]—यह एक ऐसा कार्यसाधक है जिसे यह निर्देश करना ही चाहिए कि पृथक्करण के सिद्धान्त में कुछ न कुछ गलती है।

जब इसी कठिनाई का सामना श्री काल्डर को करना पड़ा तो वे उसे आनुपातिकता सूत्र के अन्तर्गत हल करने का प्रयत्न करते है। वे कहते हैं कि "चूंकि एकसाथ सब कारकों को ह्रासमान प्रतिफल कल्पनीय नहीं है," इसलिए यदि कम से कम एक कारक स्थिर नहीं है तो फर्म के इष्टतम आकार का निर्धारण नहीं किया जा सकता।[20] इसलिए वे एक स्थिर कारक की खोज करते है जो ऐसा है कि "(उसकी) **केवल एक इकाई** कार्य कर सकती है।" उद्यम के कार्यों का संशय-वहन (uncertainty-bearing), परिवीक्षण (supervision), और समन्वय (coordination) में विश्लेषण करके, वे स्वीकार करते हैं कि पहले दो परिवर्तनीय हैं और निर्णय करते हैं कि अन्तिम कारक स्थिर कारक है। उनका विचार है कि वह एक इकाई है क्योंकि उसमें "अकेला एक दिमाग" काम करता है। परन्तु इसके रास्ते में निर्देशक मंडल घातक चट्टान जैसे है और अन्त में उन्हें परिवर्तनीय स्वीकार किया गया है; परन्तु यह कहा गया है कि उनमें बहुत्व के बावजूद वे एक "अकेले दिमाग" की अपेक्षा के समनुरूप है। तब फर्म की परिभाषा यह की जाती है कि वह एक "उत्पादक संयोजन है, जिसके पास समन्वयकारी योग्यता की एक **दी हुई** इकाई है"।[21] किन्तु, यदि उसे "दिया हुआ" होना है तो, वह केवल कल्पना से स्थिर है, जैसा कि समन्वय के अतिरिक्त कोई भी कारक समान रूप से हो सकता है।

लेकिन समन्वय, जो फर्म को सीमाओं के भीतर रखने के लिए नियत किया गया है, श्री काल्डर के साथ हमें भी अन्त में निराश कर देता है, क्योंकि अन्त मे पता चलता है कि वह "सारतः गत्यात्मक कार्य" है जो स्थिर (stationary) अवस्था के पास पहुँचने पर सहजमृत्यु को प्राप्त होता है, और हमें "अपरिमित (या अनिर्धारित)" आकार की फर्म के साथ फिर छोड़ जाता है। इसलिए उनका अन्तिम निष्कर्ष यह है कि "दीर्घावधि स्थैतिक सन्तुलन और पूर्ण प्रतियोगिता विसगत कल्पनाएं है।" सब कारकों को एकसाथ बढ़ाने पर यदि, वृद्धिमान लागत के अर्थ में, "सब कारकों को ह्रासमान प्रतिफल" को एक बेतुकी बात के रूप में वर्णित न कर दिया गया होता, तो यह सब कितना अधिक सरल हुआ होता!

इस स्थापना को स्वीकार किए बिना कि औसत लागत वक्र को ऊपर को उठाने के लिए कोई स्थिर कारक **आवश्यक है**, यह तुरन्त स्वीकार किया जा सकता है कि यदि कोई ऐसा कारक है जो किसी स्थिति-विशेष में किसी कारण से स्थिर है, तो वक्र ऊपर को उठेगा, जैसे चित्र 35 के सयत्र वक्र के विश्लेषण में उठा था। "उद्यम", चाहे उसकी परिभाषा कैसे ही की जाए, परिवर्तनशील प्रतीत होता है। परन्तु यदि कोई उद्यमकर्ता अपनी फर्म में उसका प्रसार नहीं करना चाहता, क्योंकि वह जिन कार्यों को स्वयं कर रहा है उनमें से कुछ में दूसरों को हिस्सा नहीं देना चाहता है, तो उसकी फर्म का आकार, संयंत्र वक्र विश्लेषण की रीति की भांति, इन कार्यों का सम्पादन

करने की उसकी योग्यता के, या उसको उपलब्ध पूंजी और उसकी उधार-योग्यता के, या दोनों के, द्वारा सीमित होगा।[22]

अन्वालोप वक्र पर सब कारकों के परिवर्ती होने के कारण, यह प्रत्यक्ष है कि वह ऊपर को क्यों उठता है, इस बात की **व्यापक** व्याख्या स्थिर कारक के शब्दों में नहीं हो सकती। फिर भी इसके ठोस कारण प्रतीत होते हैं कि वह ऊपर को क्यों उठता है, और उन्हें केवल इसलिए अस्वीकार करना कोई कारण नहीं है कि न्यूनतम बिन्दु पर अनुपातों को गुणा करना गणितीय रूप से सम्भव है! यह प्रश्न पुनः उठता है कि गुणन दक्षता का क्या करता है?

औसत लागत वक्र को बनाने वाले संयंत्र वक्रों के न्यूनतम बिन्दु, एक निश्चित बिन्दु के बाद, उत्तरोत्तर उच्चतर होते जाते है, और इसलिए औसत लागत वक्र के उपरिमुखी पथ को निर्धारित करते है, क्योंकि जैसे-जैसे उत्पादन इकाई का आकार बढ़ता है, वह अधिक जटिल होती जाती है, जिसके परिणामस्वरूप समन्वय और प्रबन्ध में कठिनाइयाँ बढ़ती जाती हैं। अवैयक्तिक सम्बन्धों के कारण नियन्त्रण की अधिक प्रयत्नसिद्ध (elaborate) प्रणालियाँ आवश्यक हो जाती है। वे स्वय महंगी होती हैं और, इसके अतिरिक्त, उनके परिणाम क्रियाविधि की कठोरता और वैयक्तिक उपक्रम का गला घोंटना होते हैं। श्री ई० ए० जी० रॉबिन्सन ने सेना से उपयुक्त सादृश्य दिया है: "प्लाटून कमांडर की गलती के लिए तत्क्षण 'जैसे थे' कहना काफी है। सेना कमांडर द्वारा की गई गलती को ठीक करने में हो सकता है कि कई दिनों के श्रम की अपेक्षा हो।"[23] पुन:, विश्लेषण की यह पद्धति सुपरिचित है[24] और उसका विस्तारपूर्वक बचाव करने की आवश्यकता नहीं है, विशेषकर के इसलिए क्योंकि आनुपातिकता वाद, जिसमें हमारी मुख्य दिलचस्पी है, उसे इन्कार करके या उसकी आलोचना करके इतना आगे नहीं बढता, बल्कि केवल उसकी उपेक्षा कर देता है।

बढ़ती हुई जटिलता से उत्पन्न होने वाली समन्वय की समस्याओं के आविर्भाव को लागत वक्र के निम्नतम बिन्दु से अभिन्न समझने से बचना महत्वपूर्ण है। वे पहले-पहल कहां महत्वपूर्ण हो जाती है यह विचाराधीन उत्पाद और विभिन्न कालों और स्थानों में उसके उत्पादन की तकनीकों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। परन्तु, AC वक्र द्वारा दक्षता का जो पथ अंकित किया गया है उसके सम्पूर्ण चित्र में एक तत्व के रूप में, वे सामान्यतया अत्यन्त अल्प उत्पत्तियों के लिए प्रकट होना शुरू हो जाएंगी। आरंभिक अवस्थाओं में वे और अधिक विशेषीकरण और दक्षतर तकनीकों से मिलने वाली अत्यधिक प्राप्तियों के कारण, जिनका वर्णन पहले ही किया जा चुका है, दब जाती हैं। परन्तु चूंकि बृहत्तर समुच्चयों के होने पर वे चुकने लगती हैं, जबकि जटिलता निरन्तर बढ़ती जाती है, इसलिए यह निश्चित लगता है कि देर-सबेर अपार्थ किफायतों से भारी अवश्य पड़ने चाहिए, और इस बिन्दु के बाद वे प्रबल हो जाते हैं। AC वक्र के निम्नतम बिन्दु पर किफायतों और अपार्थों को उत्पन्न करने वाली शक्तियाँ सन्तुलित हैं; उसकी दाहिनी ओर अपार्थ वाली शक्तियाँ प्रबल हो जाती हैं।

इस उपागम से यह केन्द्रीय सिद्धान्त पुनः उभरता है कि उत्पत्ति से स्वतन्त्र "कारकों का दक्षतम अनुपात" जैसी कोई चीज नहीं है। यदि ह्रासमान वक्र की *व्याख्या अविभाज्यताओं* के कारण "सर्वोत्तम अनुपातों" को प्राप्त करने की विफलता से हो गई होती, तो हो सकता है कि यह परिणाम निकलता कि उत्पत्ति के काफी बड़े होने पर कठिनाइयां दूर हो जाएंगी, और यह कि उस बिन्दु के बाद, सुतरां, कोई और समस्या नहीं होगी। किन्तु, ऊपर विकसित, हमारा दृष्टिकोण यह रहा है कि AC वक्र के निम्नतम बिन्दु के अनुरूप कारकों का अनुपात "सर्वोत्तम अनुपात" **नहीं** है, प्रत्युत् केवल उस उत्पत्ति के लिए सर्वोत्तम है। यह एक बिल्कुल भिन्न चीज है, और उसे गुणा करने का कोई उचित कारण नहीं देती। इस उत्पत्ति पर जटिलता का प्रभाव पहले ही अपना काम कर रहा है; और क्योंकि वह एक ऐसी शक्ति है जो निम्नतम बिन्दु पर उच्चतर लागत की ओर स्वतः बढ़ रही है, इसलिए किफायतों को उत्पन्न करने वाले अन्य प्रभाव भी दुरुस्तकारी भूमिका में विद्यमान अवश्य होने चाहिए। इस दृष्टिकोण से, चूंकि निम्नतम से **दोनों** दिशाओं की ओर **दोनों** शक्तियां उपस्थित है, यह सोचने का कोई कारण नहीं है कि न्यूनतम का लक्षण-वर्णन करने वाली दक्षता की दशाओं का विस्तार अल्पतर उत्पत्ति की अपेक्षा वृहत्तर उत्पत्ति की ओर किया जा सकता है।[25]

4. स्थिर अनुपात और समघातता

अब हमें कारकों के अनुपातों को स्थिर रखने, जबकि उनकी समस्त राशि बदल जाती है, के प्रभावों की जांच करनी है। यह स्मरण रखना चाहिए कि अन्वालोप वक्र की विशेषता इन सब के बारे में आद्योपान्त सम्पूर्ण परिवर्तिता है कि कौन कारक चुने जाते है, उनकी क्या राशियां चुनी जाती हैं, और इसलिए वे एक-दूसरे से किन अनुपातों में चुने जाते हैं। वह प्रत्येक उत्पत्ति के लिए केवल इष्टतम को बताता है। यदि निम्नतम बिन्दु की दाहिनी ओर वह उपर को उठता है, जब कि बढ़ी हुई जटिलता को अभिभूत करने के लिए **सर्वाधिक प्रभावकारी रूप से** साधनों का प्रयोग किया जा रहा है, तो प्रति इकाई लागत का कोई वक्र जो इस मनमानी अपेक्षा से प्रतिबन्धित है कि निम्नतम बिन्दु के लिए कारकों के इष्टतम अनुपातों को बृहत्तर उत्पत्तियों के लिए कायम रखा जाए, और अधिक तेजी से उठेगा। उदाहरणार्थ, यदि एक "प्रबन्धकीय" या "परिवीक्षी" या "समन्वयकारी" कारक को पृथक् कर लिया गया है, और बढ़ते आकार के साथ उसका अन्य कारकों से अनुपात बढ़ा दिया जाए, तो अन्वालोप वक्र इस समायोजन को दिखाएगा। चूंकि निम्नतम बिन्दु के बाद प्रबन्धकीय कारक के अन्य कारकों की अपेक्षा अधिक तेजी से बढ़ने पर भी प्रति इकाई लागत बढ़ती है (अन्वालोप वक्र), इसलिए यदि प्रबन्धकीय कारक को उस कमतर राशि से बढ़ाया जाए जो अनुपातों को स्थिर बनाए रखने के लिए आवश्यक है, तो वह और भी अधिक तेजी से बढ़ेगी।

स्थिर अनुपातों का, CP नामांकित, यह वक्र चित्र 38 (पृष्ठ 191) में तीन विभिन्न स्थितियों में दिखाया गया है। पहले हम AC वक्र के निम्नतम बिन्दु पर उस के संगत संयंत्र वक्र PAC_2 के और AC वक्र के सम्बन्ध में CP_2 पर विचार करें। जब उत्पत्ति OB से बदली जाती है, तो हम जानते हैं कि, सामान्यतया, PAC_2 वक्र AC वक्र की दोनों ओर ऊपर होता है और उठता है क्योंकि यह प्रतिबन्ध लगाया गया है कि कारकों का एक संश्लेष (complex), "संयत्र", OB उत्पत्ति के लिए उपयुक्त राशि पर स्थिर रखा गया है, जबकि AC वक्र पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध नही है। अब CP_2 वक्र के लिए भी समरूप प्रस्थापना की जा सकती है। जब उत्पत्ति OB से बदली जाती है तो, सामान्यतया, CP_2 वक्र AC की दोनों ओर उसके ऊपर होगा और उठेगा क्योंकि एक अन्य प्रकार का प्रतिबन्ध लगाया गया है : यह कि कारको के **अनुपात** वही रहते है जो OB के लिए निर्धारित है, जबकि AC वक्र पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है। R पर ये तीनों वक्र एक-दूसरे की स्पर्शरेखाएं है। यदि अन्वालोप वक्र पर उत्पत्ति में परिवर्तनों के साथ कारको के अनुपात बहुत धीरे-धीरे बदलते है, तो CP_2 वक्र R की दोनों ओर AC से PAC_2 की अपेक्षा अधिक धीरे-धीरे अपसृत (diverge) होगा, और इस प्रकार PAC_2 और AC के बीच मे रहेगा, जैसा चित्र 38 मे दिखाया गया है। इसके विपरीत, यदि अन्वालोप वक्र पर कारकों के अनुपात तेजी से बदलते हैं, तो CP_2 वक्र R की दोनों ओर AC से PAC_2 की अपेक्षा अधिक तेजी से अपसृत होगा, और इस प्रकार PAC_2 एव AC के ऊपर होगा।[26] ऐसा कोई प्रागनुभव नियम नहीं दीखता जो निर्देश करे कि इन दो मे से कौन परिणाम अधिक संभाव्य है। चित्र 38 में केवल पहली स्थिति दिखाई गई है।

ये ही वक्र अन्वालोप वक्र पर किसी भी बिन्दु से खीचे जा सकते है, और चित्र 38 में, निदर्शन के लिए, OA और OC उत्पत्तियों के लिए भी खीचे गए हैं। इनमें से प्रत्येक बिन्दु पर अन्वालोप वक्र से संयंत्र वक्र के सम्बन्ध पर पहले ही विचार किया जा चुका है। प्रत्येक स्थिति में, CP वक्र और AC वक्र के स्पर्श-बिन्दु की दोनों ओर CP वक्र AC वक्र के ऊपर होगा, क्योंकि उसे निर्धारित करने वाले अनुपात क्रमशः OA और OC उत्पत्ति के लिए तो इष्टतम है, परन्तु अन्य सब बिन्दुओं पर वे अन्वालोप वक्र द्वारा बताए जाने वाले अनुपातों से निकृष्ट है। पहले की भांति प्रत्येक स्थिति मे वह संयंत्र वक्र के नीचे खींचा गया है, यद्यपि उन दोनों की स्थितियां, जैसा अभी-अभी बताया गया है, बदली भी जा सकती है।

निम्नतम बिन्दु पर खीचे गए वक्र CP_2 से अब यह प्रकट होता है कि जब उस बिन्दु पर के अनुपातों को अल्पतर या बृहत्तर समुच्चयों के लिए, यह कल्पना करके कि सतत रूप से ऐसा करना संभव है, दोहराया जाता है, तो अन्वालोप वक्र को दबा कर क्षैतिज रेखा करना तो दूर रहा, उसका **विपरीत** प्रभाव पड़ेगा, और ऐसे परिणाम देगा जो निम्नतम बिन्दु के अलावा अन्य सब बिन्दुओं पर अन्वालोप वक्र से निकष्ट हैं (और शायद उसी बिन्दु पर के संयंत्र वक्र से भी निकष्ट हैं)।

इसका कोई कारण नहीं दीखता कि कारकों के अनुपातों को स्थिर बनाए रखने में उद्यमकर्ता की कोई दिलचस्पी क्यों हो। अधिकतम नम्यता (लचीलापन) होने पर, वे अन्वालोप वक्र की दशाओं को पाने की चेष्टा करेंगे। कारकों के विभिन्न संश्लेषों को "अल्पावधियों" में स्थिर रखने के लिए वे जिस मात्रा तक विवश होंगे, वे उन वक्रों पर चलेंगे जिनके प्रतीक विभिन्न *PAC* वक्र हैं। जिस मात्रा तक मध्यवर्ती अवधि में कारकों में धीरे-धीरे परिवर्तन किया जा सकता है, वे *PAC* और *AC* वक्रों के अन्तर्वर्ती वक्रों पर चलेंगे, जो अन्वालोप वक्र में अन्तर्विष्ट पूरी संभावनाओं को अशतः अभिव्यक्त करते है। परन्तु यदि वे समघातता (homogeneity) के गणित में ऐसी दिलचस्पी नहीं रखते जो उनके साधारण उद्यम सम्बन्धी ध्येयों को डुबा देती है, तो कोई कारण नही है कि वे *CP* वक्रों द्वारा निर्दशित संभावनाओं के पीछे लगे रहें।

लेकिन, अर्थशास्त्री वितरण की समस्या के एक भाग के रूप में उत्पादन फलन की समघातता में दिलचस्पी रखता है, और इस सम्बन्ध मे *CP* वक्र प्रासगिक है, न कि संयंत्र या अन्वालोप वक्र। शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म **अन्वालोप** वक्र के निम्नतम बिन्दु पर सन्तुलन में होगी; **स्थिर अनुपात** वक्र के निम्नतम बिन्दु पर ऑयलर प्रमेय लगभग लागू होगा; और क्योंकि ये दो बिन्दु संपाती है, इसलिए ऑयलर प्रमेय सन्तुलन दशाओं पर लागू होता है। इस तथ्य के बावजूद कि उद्यमकर्ता वास्तव मे *CP* वक्र पर समायोजन नहीं करेगे, यह फिर भी सच रहता है यदि लागत वक्र मे सम्मिलित प्रत्येक कारक को सन्तुलन पर उसकी सीमान्त उत्पत्ति के अनुसार भुगतान किया जाता है, तो फर्म की कुल उत्पत्ति उनके बीच, कमी या बेशी के बिना, ठीक-ठीक बँट जाती है।

एक समरूप प्रस्थापना, जिसमें सीमान्त उत्पत्ति के स्थान पर सीमान्त **आय** उत्पत्ति रखा गया है, एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत सच होगी। लेकिन, जिन का ऑयलर प्रमेय का ज्ञान प्रारम्भिक या शून्य है--संक्षेप मे, जो उसे विश्वास पर ग्रहण करते हैं और उसे स्थिर लागत से सम्बन्धित करते है, उनके लिए यह तथ्य परेशान करने वाला है कि फर्म का सन्तुलन ह्रासमान लागत की दशाओं को सन्निहित करता है। हम उस स्थिति पर विचार करें जिसमें मांग और लागत वक्र स्पर्शरेखाएं हैं, जैसे चित्र 39 में, जहां सन्तुलन उत्पत्ति *OA* है और सन्तुलन कीमत *AP* है। संयंत्र, स्थिर अनुपात, और अन्वालोप वक्र खीचे गए हैं, जो *P* बिन्दु पर, जैसा पहले ही बताया जा चुका है, एक-दूसरे की ओर मांग वक्र की स्पर्शरेखाएं हैं। *CP* वक्र का सीमान्त लागत वक्र, *MCP*, भी खींचा गया है, क्योंकि हमारे प्रयोजन के लिए यही वक्र सार्थक है। वह सीमान्त आय वक्र *MR* को *G* पर काटता है (जहां पर अन्य सीमान्त लागत वक्र भी काटते यदि वे खींचे जाते)। सन्तुलन पर, कारकों पर कुल व्यय और कुल आय उत्पत्ति, दोनों, आयत *OAPH* के बराबर हैं। अब यदि कारकों पर व्यय में, उनके अनुपातों को स्थिर रखकर, अति अल्प परिवर्तन किया जाए, तो पदार्थ उत्पत्ति में वृद्धि, मान लो, *AB* है (दृश्य बनाने के लिए चित्र में उसे आवर्धित दिखाया गया है)। व्यय में वृद्धि *ABFG* है, और आय उत्पत्ति में वृद्धि *ABEG* है। यदि *B* को *A* के बहुत

निकट जाने देकर इन वृद्धियों को अल्पतर कर दिया जाए, तो उनका अन्तर, EFG, बहुत तेजी से घटता है, और G के इर्दगिर्द अति अल्प विचरणों के लिए उसकी उपेक्षा की जा सकती है : आय उत्पत्ति में वृद्धि कारकों पर व्यय में वृद्धि के लगभग अनुपाती है। पुनः, सन्तुलन दशाओं के अन्तर्गत ऑयलर प्रमेय प्रयोज्य है, यद्यपि ये दशाएं CP

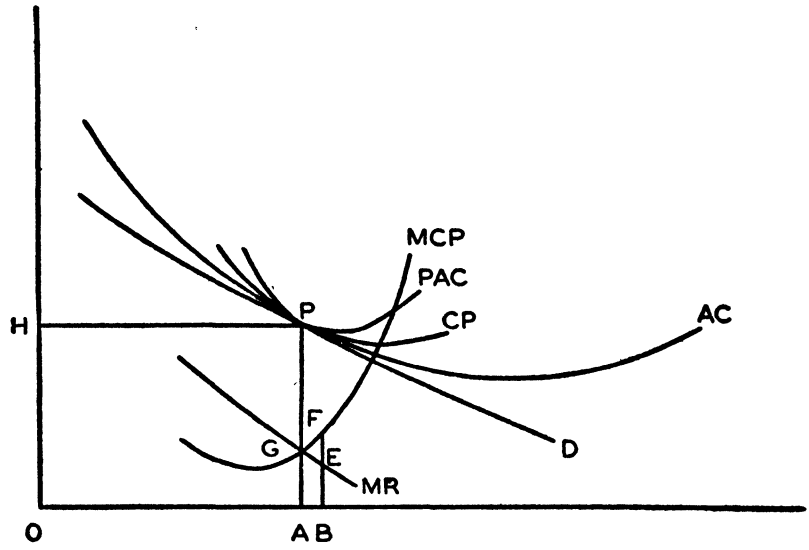

चित्र 39

वक्र का निर्देश किए बिना निर्धारित की गई है। इससे यह परिणाम निकलता है कि यदि लागत वक्र में सम्मिलित प्रत्येक कारक को सन्तुलन में उसकी सीमान्त **आय उत्पत्ति** के अनुसार भुगतान किया जाता है, तो फर्म की कुल **आय उत्पत्ति** ($OAPH$) उनमें, कमी या बेशी के बिना, ठीक-ठीक बँट जाएगी।

विकल्प के रूप में, इन वक्रों को नये सिरे से खीचा जा सकता है। अब x-अक्ष पर पदार्थ उत्पत्ति नही बल्कि आय उत्पत्ति—"एक डालर मूल्य का पदार्थ"—नापा जाता है। सन्तुलन में (चित्र 39 में OA उत्पत्ति), "डालर मूल्य के पदार्थ" के उत्पादन की लागत ठीक एक डालर है (क्योंकि कीमत लागत के बराबर है) जबकि सन्तुलन की दोनों ओर वह अधिक है (क्योंकि लागत कीमत से अधिक है)। अब तीनों लागत वक्र अपने **निम्नतम** बिन्दुओं पर (जो एक डालर के बराबर है) एक-दूसरे की स्पर्श-रेखा होंगे, और मांग वक्र क्षैतिज होगा और उस बिन्दु पर उनकी स्पर्शरेखा होगा, क्योंकि स्पष्ट है कि "डालर मूल्य का पदार्थ" सदा एक डालर पर बिकेगा। इस प्रकार यह स्थिति व्यक्त रूप से सन्तुलन पर लगभग स्थिर लागत—**आय उत्पत्ति** के उत्पादन की स्थिर लागत—की स्थिति जैसी प्रतीत होती है।

परन्तु मान लो कि ये वक्र स्पर्शरेखाएं नहीं हैं, तब ?—क्योंकि मैंने स्वयं आग्रह किया है "स्पर्शिता हल" की प्रयोज्यता सीमित है, और व्यापक स्थिति "विविधता" की है, जिसमें अ-स्पर्शिता शामिल है।[27] **सब** वास्तविक लाभों को (जिनमें "न्यूनतम" के ऊपर आधिक्य भी शामिल है) लागत वक्र में जोड़ने पर, सन्तुलन को स्पर्शिता की दशा से अभिन्न सदा समझा जा सकता है। यद्यपि **एक व्यापक क्रियाविधि के रूप में यह निश्चित रूप से तर्कसंगत नहीं होगा,** प्रस्तुत प्रयोजनों के लिए यह अनापत्तिजनक प्रतीत होता है। यहां समस्या सन्तुलन के **निर्धारण** की नहीं है, क्योंकि अ-स्पर्शिता हल की स्थिति में सन्तुलन का निर्धारण कुल लाभ को सम्मिलित करने वाले नये वक्र को खींच सकने के पहले ही अवश्य हो चुका होगा। इस प्रकार **वास्तविक** लाभों को "लागत नही समझा जा रहा है," और इस समस्या के द्वारा उठाए गए वादग्रस्तों के जमघट से बचा जा रहा है। हमारी दिलचस्पी केवल उस सम्बन्ध को जानने में है जो कारकों को जो वास्तव में मिलता है और उनकी सीमान्त आय उत्पत्तियों के बीच है। उद्यम द्वारा वास्तव में प्राप्त आय के बारे में कोई सदेह नही है, और हमारे प्रयोजन के लिए उसे विचाराधीन कारक को दी गई कीमत समझा जा सकता है। निष्कर्ष यह है, जैसा कि पहले ही विकसित किया जा चुका है, कि सन्तुलन दशाओं के अन्तर्गत, उद्यम समेत **सब** कारक फर्म के लिए अपनी सीमान्त आय उत्पत्तियों को प्राप्त करते है, और यह कि, इस नियम के अनुसार, फर्म की कुल उत्पत्ति ठीक-ठीक खप जाती है।[28]

5. संक्षेप : अनुपात और आकार

अब हम इस केन्द्रीय प्रस्थापना पर कि अनुपात और आकार फलनीय रूप से सम्बन्धित हैं, और उन्हें ऐसा न मानने पर मिलने वाली त्रुटियों के स्वरूप पर, अधिक विशिष्ट रूप से विचार करें।

अनुपातों और आकार की समस्याओं को उचित रूप से केवल इस अर्थ में "पृथक्" किया जा सकता है कि प्रत्येक के लिए, दूसरे को किसी कल्पित मान पर स्थिर रखकर, एक सापेक्ष इष्टतम का आकारिक रूप से (formally) निर्धारण किया जा सकता है। इस प्रकार किसी दिए हुए आकार (कुल व्यय) के लिए हमें इष्टतम अनुपात मिलता है और किसी दिए हुए अनुपात के लिए इष्टतम आकार मिलता है। इनमें से पहले को अनधिमान वक्र तकनीक द्वारा सबसे प्रभावकारी रूप से पाया जा सकता है, परन्तु वह अन्वालोप वक्र पर एक बिन्दु के रूप में प्रकट होता है। इनमें से दूसरा किसी विशेष OP वक्र के निम्नतम बिन्दु द्वारा बताया जाता है, जो सामान्यतया अन्वालोप वक्र पर होता ही नहीं। ऐसे आंशिक हल केवल इस अर्थ में "तर्कसगत" हैं कि वे विचाराधीन चरों में अन्तिम फलनीय सम्बन्ध की स्वीकृति के अविरुद्ध हैं। प्रस्तुत समस्या में इनमें से प्रत्येक का स्वयं में केवल बहुत सीमित अर्थ या मूल्य है। अनुपातों और आकार को पृथक् रखने की अनुमति इस अभिप्राय से निश्चय ही नही दी जा

सकती कि ऐसे आंशिक विश्लेषणों पर रुक जाया जाए। चूंकि व्यापक समस्या में वे दोनों चर है, इसलिए फर्म के लिए इष्टतम (न्यूनतम) लागत की दशाओं को उन्हें पुनः एकसाथ लाकर ही ज्ञात किया जा सकता है।

इस **सामान्य** समस्या पर विचार करने के पहले, यह समझ लेना चाहिए कि कतिपय **आंशिक** विश्लेषणों मे भी अनुपात और आकार दोनों चर होते है। जब एक कारक (या कारको का संश्लेष) किसी कल्पित राशि पर स्थिर रखा जाता है, जबकि अन्य में उसके सापेक्ष परिवर्तन किए जाते हैं, तो "संयंत्र" वक्र पर गति में अनुपातों में और आकार (कुल व्यय) मे भी निरन्तर परिवर्तन सन्निहित है। यह स्थिर कारक विश्लेषण अत्यधिक महत्वपूर्ण है[29] (और निस्सन्देह अनापत्तिजनक है !), फिर भी वह इस अभ्युक्ति (dictum) के यथावत् निर्वचन के कारण कि अनुपातो और आकार को पृथक् अवश्य रखा जाना चाहिए, असंगत ठहरा दिया जाएगा।

लेकिन, हमारा मुख्य सम्बन्ध सामान्य विश्लेषण से है, जिसमें अन्वालोप वक्र पर सब कारक परिवर्ती है। यह व्यवस्था करना, जैसा कि आम तौर पर किया जाता है, कि "सर्वोत्तम अनुपात" एक पृथक् समस्या है, जिसका समाधान पैमाने की एक दूसरी सुस्पष्ट समस्या का मार्ग खोलता है, जिसकी परिभाषा है सब समस्त व्ययों के लिए इन "सर्वोत्तम अनुपातों" की प्रतिकृति करना, एक जटिल समस्या को उसके अंशों मे विभाजित करना नही है, बल्कि उसको सम्पूर्णतया मिथ्या विचारना है। इसका कारण यह है कि जिस क्रियाविधि से सर्वोत्तम अनुपात मालूम होते है, उसी से सर्वोत्तम कुल व्यय भी मालूम होता है, और इसका विलोम भी सच है, क्योंकि दोनों स्थितियों मे वह अन्वालोप वक्र के निम्नतम बिन्दु को जानने की अकेली क्रियाविधि है। अन्य उत्पत्तियों पर इन सर्वोत्तम अनुपातों की प्रतिकृति (CP वक्र) के शब्दों मे पैमाने के प्रश्न को परिभाषित करना, जैसा कि आम तौर पर किया जाता है, एक सम्पूर्णतः कृत्रिम समस्या का सृजन करना है। इससे आगे जाना और व्यवस्था देना, जैसा कि आम तौर पर किया जाता है, कि "सर्वोत्तम अनुपात" न केवल आकार से स्वतन्त्र हैं (CP और अन्वालोप वक्रों का संपतन), बल्कि (सिद्धान्त की "पूर्ण विभाज्यता" के अन्तर्गत) वे एक आकार पर दूसरे आकार से बेहतर नहीं हैं (CP वक्र का क्षैतिज रेखा मे दब जाना), इन दो सन्निहित तत्वों को, उनमें से एक के पूर्णतया परिसमापन के चरम परन्तु प्रभावकारी कार्यसाधक के द्वारा, "पृथक्" करना है—इसके द्वारा फर्म को मिटा देना है, और इस बार कृत्रिम समस्याओं के एक पूरे झुड का सृजन करना है।

ऐतिहासिक रूप से प्रतीत होगा कि इस परिस्थिति का विकास ह्रासमान प्रतिफल के "स्थिर कारक" उपागम का निर्वचन करने की उस बहुत पुरानी कार्य-प्रणाली से हुआ है जिसमें केवल अनुपात सन्निहित हैं, और यह माना जाता है कि आकार नही बदलता है जिसका कारण सम्भाव्यतः यह रहा हो कि आकार को स्थिर कारक के साथ अचेतन रूप से सम्बन्धित कर लिया जाता था। किसी परिवर्ती कारक

में अल्प परिवर्तनों के लिए, जिस पर हुआ कुल व्यय स्थिर कारकों पर हुए व्यय के सापेक्ष अल्प रहता है, इस निर्वचन में अन्तर्विष्ट त्रुटि हो सकता है कि बड़ी न हो, परन्तु विस्तरण से वह शीघ्र ही बहुत बड़ी हो जाती है। इस प्रकार, यदि कुल व्यय में से "प्रबन्ध" पर व्यय पांच प्रतिशत है, और अन्य सब कारकों पर पचानवे प्रतिशत, तो अन्य सब कारकों को दुगुना करना न केवल उनके और प्रबन्ध के अनुपात को बदल देता है, बल्कि कुल व्यय को प्रभावतः दुगुना कर देता है। **तिस पर भी ऐसी सब स्थितियों में, और वस्तुतः जब भी कोई स्थिर कारक पहचाना जा सके, चाहे वह कितना ही अमहत्वपूर्ण क्यों न हो, सम्पूर्ण परिणाम का कारण अनुपातों को बताना आम कार्यप्रणाली रही है।**[30] इससे अगला कदम लेना आसान रहा है, और जब कोई भी स्थिर कारक नहीं है, जैसे अन्वालोप वक्र पर, तब भी सम्पूर्ण परिणाम का कारण अनुपातों को बताया गया, बशर्ते कि कुल व्यय में परिवर्तन के साथ अनुपातों में किंचित् परिवर्तन हो।[31] अनुपातों की अब पूर्ण विजय हो गई है : क्योंकि वे सब किफायतों की व्याख्या कर देते हैं, प्रत्यक्ष है कि पैमाने द्वारा व्याख्या करने के लिए कुछ नही बचता, और इसलिए हमें यह अभ्युक्ति मिलती है कि पैमाने की किफायतों (और अपार्थो) का अस्तित्व नही है। उनके अस्तित्व के तथ्य में और उनके अनस्तित्व के सिद्धान्त में इस वाद के द्वारा मेल बैठाया गया है कि उसका कारण "अपूर्ण विभाज्यता" है जो सब उत्पत्तियों पर उपयुक्त अनुपातों के होने में बाधा डालती है; और अन्त मे यह पूरी औंधी (विपर्यस्त) संरचना इसे द्विरुक्ति में बदलने के सुखकर कार्यसाधक द्वारा बचाई जाती है।

इस बात को पहले से स्वीकार करना कितना अच्छा होता है कि जब अनुपात और आकार दोनों बदलते हैं, तो लागत पर प्रभाव किसी एक का अकेला प्रभाव नहीं है, बल्कि दोनों का साथ-साथ प्रभाव है! एक बार ऐसा कर लेने पर समस्या का ऐसा कोई तत्व नहीं है जो आसानी से उपयुक्त जगह पर नहीं आ जाता।

6. अनधिमान वक्र विश्लेषण

इस खंड का उद्देश्य पूर्ववर्ती तर्क में कुछ जोड़ना नहीं है, बल्कि उसका वैकल्पिक अनधिमान वक्र तकनीक के शब्दों में केवल निर्वचन करना है। दो कारकों का कोई उत्पादन फलन तीन विमितियों में एक पृष्ठ (surface) देता है, समतल मैदान से ऊपर को उठने वाले पहाड़ की तरह। चित्र 40 पर एक मानचित्र के रूप में विचार करना सहायक होगा, जिसमें विभिन्न रेखाएं इस पहाड़ पर सड़कें या पथ हैं, जो O के उत्तरपूर्व की ओर उठता है, और OA तथा OB अक्ष मैदान पर समतल सड़कें हैं। दो कारकों की राशियां इन रेखाओं पर पूर्व और उत्तर की ओर नापी जाती हैं जैसा कि दिखाया गया है, और O की उत्तरपूर्व दिशा में मानचित्र पर कोई बिन्दु कारकों के एक निश्चित संयोजन का निरूपण करता है। सुविधा के लिए, हम

सोच सकते हैं कि मैदान समुद्रतल पर स्थित है। तीसरा चर ऊंचाई है; और पहाड़ पर किसी बिन्दु की समुद्रतल से ऊंचाई (इष्टतम दशाओं के अन्तर्गत) विचाराधीन संयोजन द्वारा उत्पादित उत्पाद की राशि बताती है। उत्तरपूर्व दिशा में चलने पर कारकों के बृहत्तर समुच्चयों का उपयोग होता है, और प्रत्यक्ष है कि पहाड़ की ऊंचाई बढ़ती जाती है। समोच्च रेखाएं (contour), जो समुद्रतल से समान ऊंचाई दिखाती

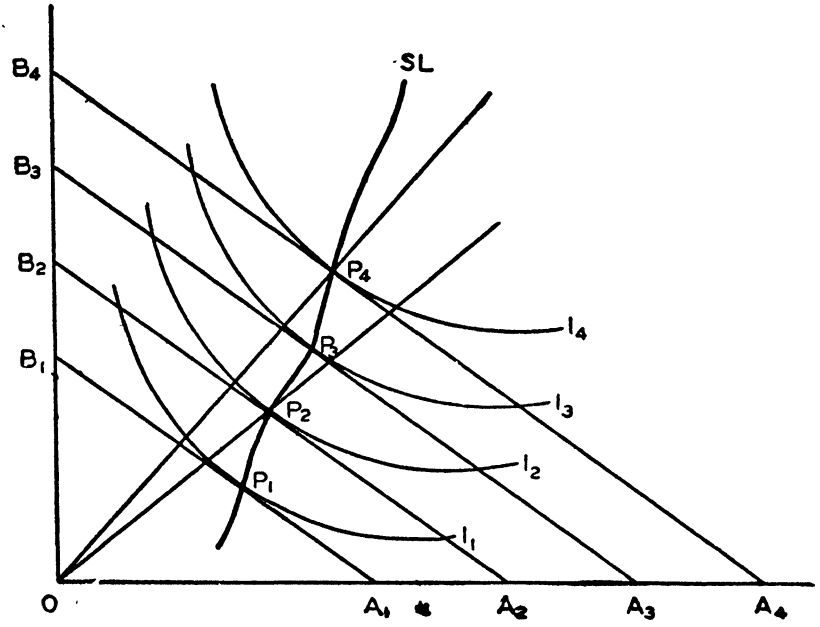

चित्र 40

है, मानचित्र को समझने वालों के लिए सुपरिचित हैं, और I_1, I_2, I_3, और I_4 नामांकित अनधिमान वक्र पहाड़ पर ऐसी ही रेखाएं या पथ हैं। उनमें से प्रत्येक से कारकों के उन विभिन्न संयोजनों को जाना जा सकता है जो समान राशि का उत्पादन करते हैं, और यह राशि जिस ऊंचाई पर समोच्च रेखा खींची गई है उसके बराबर है।

कारकों की कीमतों को आद्योपान्त दिया हुआ माना गया है, और अब हम मुद्रा की दी हुई कुल राशि की कल्पना कर सकते हैं और उससे कारकों की जिन राशियों को खरीदा जाएगा उन्हें अंकित कर सकते है। मान लो कि यह राशि एक हजार डालर है। यदि पूरी राशि को कारक A पर खर्च किया जाए तो उससे (मान लो कि) OA_1 राशि खरीदी जाएगी; और यदि पूरी राशि को कारक B पर खर्च किया जाए तो उससे (मान लो कि) OB_1 राशि खरीदी जाएगी। अब यदि हम मानचित्र पर A_1B_1 रेखा खींचते हैं, तो उस पर कोई बिन्दु इन दो कारकों के एक ऐसे

संयोजन को बताएगा जिसे एक हजार डालर की राशि से खरीदा जा सकता है। यह सरल रेखा कई समोच्च रेखाओं को काटेगी, और जिस उच्चतम समोच्च रेखा को वह छूती है उसकी स्पर्शरेखा होगी। यह स्पर्श-बिन्दु A_1B_1 पथ पर प्राप्त उच्चतम ऊंचाई को बताता है, अर्थात्, एक हजार डालर के लिए प्राप्य उत्पाद की बृहत्तम राशि। मूलबिन्दु से अधिकाधिक दूर, A_2B_2, A_3B_3, और A_4B_4 की रचना भी बृहत्तर कुल व्ययों के लिए इसी तरह की गई है, और इसी प्रकार प्रत्येक किसी समोच्च रेखा की स्पर्शरेखा होगी, और स्पर्श-बिन्दु निर्दिष्ट कुल राशि के लिए प्राप्य अधिकतम उत्पत्ति को बताता है।

चूंकि प्रत्येक स्पर्श-बिन्दु पर संगत व्यय के लिए कुल उत्पत्ति अधिकतम है, और इस उत्पत्ति के लिए कुल लागत न्यूनतम है, इसलिए, व्यय और उत्पत्ति दोनों के लिए, प्रति इकाई लागत न्यूनतम होगी। स्थिर व्यय रेखा के किसी अन्य बिन्दु पर उसी व्यय के लिए अल्पतर उत्पत्ति मिलेगी; अनधिमान वक्र पर किसी अन्य बिन्दु पर वही उत्पत्ति बृहत्तर व्यय पर मिलेगी। इसलिए प्रत्येक स्पर्श-बिन्दु अन्वालोप वक्र पर किसी बिन्दु के अनुरूप है; और लहरदार (wavy) रेखा, जिसे पैमाना रेखा के लिए SL लिखा गया है, जो इन सब स्पर्श-बिन्दुओं से होकर जाती है, अन्वालोप वक्र के अनुरूप है। इस रेखा से हम विभिन्न उत्पत्तियों के लिए कारकों के इष्टतम संयोजनों को जान सकते हैं; और, चूंकि उत्पादन-पृष्ठ पर अनधिमान वक्रों की ऊंचाइयाँ ज्ञात है, हम प्रत्येक सयोजन को उसके द्वारा उत्पादित राशि से सम्बन्धित कर सकते है।

चूंकि किसी भी उत्पत्ति का उत्पादन करने के लिए कारकों की एक निश्चित न्यूनतम राशि का प्रयोग करना आवश्यक है, इसलिए O से हटते ही पहाड़ की चढ़ाई तुरन्त शुरू नहीं हो जाती। इसलिए पैमाना रेखा O से होकर नहीं जाती (यद्यपि यह विश्वास प्रायः पाया जाता है कि उसके लिए ऐसा करना "गणितीय रूप से" आवश्यक है), बल्कि उससे सान्तर (discontinuous) किसी बिन्दु से शुरू होती है, जैसा चित्र 40 में खींचा गया है। न ही इसका कोई कारण है कि वह इस प्रकार शुरू हो कि पीछे की ओर उसका विस्तरण O से होकर जाए। यह बात बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह विश्वास कि पैमाना रेखा O से होकर अवश्य जानी चाहिए, और यह तथ्य कि वह प्रायः इसी प्रकार खींची जाती है, उसे लगभग स्थिर अनुपातों की रेखा समझने की, और एक कदम आगे बढ़कर उत्पादन फलन को लगभग समघात समझने की, प्रवृत्ति में सारवान रूप से अंशदान अवश्य करता है।

अब हम पैमाना रेखा के विभिन्न बिन्दुओं से मूलबिन्दु को मिलाने वाली सरल रेखाओं पर विचार करें। निदर्शन के लिए चित्र 40 में केवल दो रेखाएं, P_2 और P_4 बिन्दुओं से, खींची गई हैं। पहाड़ पर ऊपर को इन दो पथों में प्रत्येक पथ कारकों के बीच एक स्थिर अनुपात को बताता है (यह अनुपात, स्वभावतया, उसके और पैमाना रेखा के प्रतिच्छेद पर मिलने वाले अनुपात के बराबर है)। ये पथ हमारे CP वक्र (चित्र 38) के समतुल्य हैं। जिस प्रकार चित्र 38 में CP और अन्वालोप वक्र के

स्पर्श-बिन्दु द्वारा बताई जाने वाली राशि के अलावा किसी राशि का उत्पादन CP वक्र से अन्वालोप वक्र पर आने पर अधिक सस्ता होता है, उसी प्रकार यहां स्थिर अनुपात रेखा पर, उसके और पैमाना रेखा के प्रतिच्छेद बिन्दु के अलावा, दिखाई गई किसी राशि का उत्पादन उससे अनधिमान वक्र पर चलते हुए पैमाना रेखा पर आने पर अधिक सस्ता होता है। अथवा, वैकल्पिक रूप से, AB जैसी किसी स्थिर व्यय रेखा पर उसके और पैमाना रेखा के प्रतिच्छेद की ओर अधिक ऊंचाई पर आने पर उसी व्यय से अधिक उत्पादन किया जा सकता है। स्थिर अनुपात रेखा पैमाना रेखा के चाहे किसी ओर हो, यह सच होगा; अर्थात्, O से OP_2 पथ पर पहाड़ पर चढ़ने में, चाहे पैमाना रेखा बायी ओर (P_2 पर पहुँचने के पहले) हो या दाहिनी ओर (P_2 से आगे बढने पर)। पैमाना रेखा सदा इष्टतम है।[32]

चूँकि समघातता में तीनों चरों के एक-दूसरे से सम्बन्ध सन्निहित हैं, इसलिए चित्र 40 से, सन्निहित ऊंचाई को जाने बिना, यह बताना असम्भव है कि उसके प्रतिबन्ध पूरे होते है या नहीं। सम-एकघातता की स्थिति मे, पैमाना रेखा के लिए आवश्यक होगा कि वह, न केवल दिखाई गई दो विमितियों में बल्कि ऊंचाई की तीसरी विमिति में भी, कारकों की कीमतों (अत: AB वक्रों के ढलान) के बारे में हर संभव कल्पना के अन्तर्गत, O से होकर जाने वाली सरल रेखा हो (जैसी OP_2 और OP_4 है, न कि जैसी SL है)। इसका अर्थ यह है कि O से पहाड़ के ऊपर एक सरल रेखा में चाहे किसी भी दिशा में चढा जाए इस पथ की प्रवणता कभी नहीं बदलती है। (सामान्यतया, विभिन्न दिशाओं में वह निस्सन्देह भिन्न-भिन्न होगी।) यदि यह सच हो तो यह परिणाम निकलता है कि पृष्ठ पर चाहे किसी बिन्दु (कारकों के संयोजन) पर, यदि प्रत्येक कारक को उसकी सीमान्त उत्पादिता के अनुसार भुगतान किया जाए तो, कुल उत्पत्ति ठीक-ठीक खप जाएगी (ऑयलर का प्रमेय)।

यह प्रतिबन्ध स्थिर प्रति इकाई लागत के समतुल्य है, और अपने पहले के विश्लेषण से हम जानते हैं कि फर्म का उत्पादन फलन इस प्रकार का नहीं है। प्रत्युत्, न केवल पैमाना-रेखा-पथ पर कारकों के अनुपात बदलते है, जैसे कि SL रेखा पर, बल्कि स्थिर-अनुपात-पथों की प्रवणताएं भी पहले धीरे-धीरे बढती है और अधिकतम पर पहुँचकर गिरने लगती है (जैसा अधिकांश पहाड़ों में वास्तव में होता है)। वास्तविक पृष्ठ पर जब कोई O से दूर होता हुआ किसी पथ, मान लो OP_4, पर चलता है, तो वह प्रवणतम ढलान से गुजर जाने के बाद, किन्तु पहाड की चोटी पर पहुँचने के पहले, एक ऐसे बिन्दु पर आएगा जिसके बाद वह, पहाड की वक्रता के कारण, बिन्दु O को देख पाने में बिल्कुल असमर्थ होगा। (जमीन से उसकी आंखों की ऊंचाई की उपेक्षा कर दी जानी चाहिए।) इस बिन्दु पर उसके पथ की प्रवणता, क्षण भर के लिए, O से अवकाश (space) से होकर जाने वाली रेखा की प्रवणता के बराबर होगी, और स्थिर-अनुपात-पथ पर अति अल्प गतियों के लिए उत्पादन फलन लगभग समघात होगा। प्रत्येक स्थिर-अनुपात-पथ पर ऐसा एक बिन्दु होगा, और उनके बिन्दु-पथ

(जो चित्र में नहीं दिखाया गया है) के बारे में एक ऐसे पथ के रूप में सोचा जा सकता है जिस पर कोई तब चलेगा यदि वह पहाड़ पर ऐसे चलना चाहता है कि O बिन्दु नजर से ओझल होने से बाल-बाल बच जाए; या, विकल्पतः, यदि कोई O पर खड़ा हो और पहाड़ का सर्वेक्षण करे, तो इस पथ के बारे में क्षितिज के रूप में सोचा जा सकता है। यह लगभग समघातता (स्थिर लागत) का पथ है, और पैमाना रेखा से उसका प्रतिच्छेद उस रेखा पर क्षितिज-बिन्दु को भी बताता है; दूसरे शब्दों में, फर्म के U-आकृति अन्वालोप लागत वक्र के न्यूनतम बिन्दु को भी बताता है। मान लो कि यह बिन्दु P_4 है। अब स्थिर अनुपात रेखा OP_4 उस लागत वक्र CP के अनुरूप है जो अन्वालोप वक्र की दोनों वक्रों के निम्नतम बिन्दुओं पर स्पर्शरेखा है।

अब तक हमने ऊंचाई पर पदार्थ उत्पत्ति, या पदार्थ उत्पत्ति गुणा कोई **स्थिर** कीमत, के रूप में विचार किया है, जो शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म की स्थिति के समानुरूप है। एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत उत्पत्ति के बदलने पर कीमत भी बदल जाती है, और जैसे-जैसे उत्पत्ति बढ़ती है वह घटती जाती है। यदि प्रत्येक उत्पत्ति को जिस कीमत पर वह बेची जाती है उससे गुणा किया जाए तो हमारे अब तक के विश्लेषण में परिणामी **आय उत्पत्ति** को पदार्थ उत्पत्ति के स्थान पर रखा जा सकता है, जिसका परिणाम एक भिन्न पृष्ठ होगा। इस पृष्ठ की समोच्च रेखाएं (अनधिमान वक्र) वे ही होंगी जो पहले थीं, क्योंकि प्रत्येक उत्पत्ति (ऊंचाई) को उसकी सीमान्त आय से केवल गुणा किया गया है; और इसलिए पैमाना रेखा नहीं बदलेगी। (प्रत्यक्ष है कि अन्वालोप लागत वक्र मांग वक्र में परिवर्तन से प्रभावित नहीं होता।) परन्तु प्रत्येक समोच्च रेखा की **ऊंचाई** भिन्न रूप से निर्धारित की गई है; और चूंकि O से दूरी बढ़ने पर उत्पत्ति की कीमत निरन्तर गिरती जाती है, इस पृष्ठ की ऊंचाई (जिसका निर्धारण अब आय उत्पत्ति से होता है) अधिक शीघ्र और अधिक तेजी से घटने लगेगी, जिसका परिणाम यह होगा कि O से देखा गया क्षितिज (अर्थात् लगभग समघातता की रेखा) अधिक निकट आ जाता है। मान लो कि वह पैमाना रेखा को P_2 पर काटती है; और यहां हमें क्षण भर के लिए उत्पत्ति की एक इकाई के नही बल्कि **आय** उत्पत्ति की एक इकाई के उत्पादन की स्थिर (न्यूनतम) लागत मिलती है। पहले के चित्र 39 के शब्दों में, जिसमें आधार रेखा पदार्थ उत्पत्ति दिखाती है, यह मांग और लागत वक्रों का स्पर्श-बिन्दु है।[33] स्थिर अनुपात रेखा OP_2 उस CP लागत वक्र के अनुरूप है जो विचाराधीन उत्पत्ति के लिए अन्वालोप लागत वक्र की स्पर्शरेखा है। इस बिन्दु पर, यदि प्रत्येक कारक का भुगतान उसकी सीमान्त आय उत्पत्ति के अनुसार किया जाए तो, OP_2 पर अल्प विचरणों के लिए **आय उत्पादन** फलन के लगभग समघात होने कारण, फर्म की कुल आय ठीक-ठीक खप जाएगी।

परिशिष्ट ग

शुद्ध क्षेत्रीय प्रतियोगिता

शुद्ध क्षेत्रीय प्रतियोगिता की परिभाषा बड़ी सरलता से हो जाती है। जिस प्रकार किसी विक्रेता का बाजार उसके द्वारा नियत कीमत के अनुसार बड़ा या छोटा होता है, ठीक उसी प्रकार वह उसके द्वारा चुने गए स्थान के अनुसार बदलता है। लोग न केवल वहां से खरीदते है जहां कीमतें सबसे सस्ती हैं, वे उस दुकान से भी खरीदारी करते हैं जो सबसे सुविधाजनक रूप से स्थित है। कीमतों के विश्लेषण में साधारणतया कल्पना की जाती है कि कीमतों के अलावा प्रतियोगिता के अन्य आधार "समान बने रहते है"। अब हम कल्पना करेंगे कि स्थिति के अलावा कीमतें और अन्य सब चीजें "समान बनी रहती है", जबकि विक्रेता केवल अपने व्यापार करने के स्थानों में समायोजन करके अपने पदार्थो के लिए बाजार प्राप्त करने का प्रयत्न करते है।

अपने सबसे सामान्य रूप में, यह समस्या क्रेताओं और विक्रेताओं **दोनों** की एक-दूसरे से स्थिति-अनुकूलन की समस्या है। उदाहरणार्थ, किसी नगरीय क्षेत्र में दुकानो के वितरण और आबादी के वितरण के बीच पारस्परिक अनुकूलन होता है। एक ओर तो, **अन्य बातें समान रहने पर**, क्रेताओ की प्रवृत्ति उस जगह के निकट स्थित होने की होती है जहां चीजें बेची जाती है; दूसरी ओर, विक्रेता क्रेताओं की तलाश में रहते है, और प्रत्येक अपनी दुकान को ऐसे स्थित करना चाहता है कि उससे व्यापार करने की असुविधाएं न्यूनतम हो जाएं। लेकिन, हम इस कल्पना से शुरू कर सकते हैं कि आबादी का वितरण दिया हुआ है, और यह प्रकट हो जाएगा कि इसमें बहुत कम संशोधन करने की आवश्यकता होती है। दुकानों का वितरण ग्राहकों की जरूरतों से पर्याप्त रूप से अच्छी तरह अनुकूलित है, जिससे वे मुख्यत: अन्य चीजो को ध्यान में रखकर अपने निवास स्थानों को चुनने में समर्थ होते है।

मूलभूत प्रश्न यह है कि (एक ही पण्य के) विक्रेताओं की प्रवृत्ति क्या एक ही बिन्दु पर संकेन्द्रण की होगी या पूरे क्षेत्र में विकिरण की होगी ताकि वे क्रेताओं को अधिकतम सुविधा दें। हम शुरू में कल्पना करते हैं कि क्रेता एकसमान रूप से वितरित हैं; और यह मान लेने पर कि वे, एक क्षेत्र में नही बल्कि, एक रेखा पर वितरित हैं, समस्या (निष्कर्षों के स्वभाव को प्रभावित किए बिना) सरल हो जाएगी। प्रोफेसर होटेलिंग ने प्रमाणित किया है[1] कि जहां क्रेता ऐसी रेखा पर वितरित होते है, और जहां केवल दो विक्रेता होते हैं, वे रेखा के चतुर्थक बिन्दुओं (quartile points) पर स्थापित न होकर, जहां क्रेताओं को मिलने वाली सुविधा अधिकतम होती, आशंसा के विपरीत, एक-दूसरे के जितना संभव हो उतने निकट स्थापित होते है। उदाहरणार्थ, चित्र 34 में (पृ० 184) यह तुरन्त स्पष्ट हो जाता है कि, क्योंकि A और B में से प्रत्येक

के बाजार का आधा भाग दूसरे की ओर है, इसलिए उनमें से कोई भी दूसरे की दिशा में चलकर अपने बाजार को बढ़ा सकता है। (वास्तव में, अन्तिम सन्तुलन बिन्दु को ठीक-ठीक निर्धारित किया जा सकता है। वह रेखा के मध्य बिन्दु पर होगा, क्योंकि यदि वह अन्यत्र हो तो जिस विक्रेता का बाजार अल्पतर है वह अपने प्रतिद्वन्द्वी की दूसरी ओर चला जाएगा, और ऐसी चालें तब तक जारी रहेगी जब तक कि दोनो मध्य बिन्दु पर स्थापित नहीं हो जाते।) यह एक बहुत महत्वपूर्ण निष्कर्ष है, परन्तु जब प्रोफेसर होटेलिंग बड़ी संख्याओं के लिए इसे व्यापक बनाते है तो वे गलती करते हैं। वे तर्क करते है कि "यदि तीसरा विक्रेता C प्रकट होता है तो, जितना संभव हो उतने बड़े बाजार की इच्छा, उसे उसी तरह A या B के निकट, परन्तु उनके बीच में नही, स्थान लेने के लिए प्रोत्साहित करेगी," और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि "जैसे-जैसे उसी पण्य के अधिकाधिक विक्रेता आते है तो प्रवृत्ति, सामाजिक रूप से इष्टतम रीति में वितरित होने की नहीं होती बल्कि, अनुचित रूप से एकत्र होने की होती है।" लेकिन, जैसे ही तीन विक्रेता होते है, दो के बीच मे फंसा हुआ विक्रेता समूह के बाहरी किनारे पर चला जाएगा, और बीच में पड़े हुए विक्रेता द्वारा सदा चली गई ऐसी चालों का अनुक्रम समूह को तितर-बितर कर देगा। तीन विक्रेताओं के लिए यह परिणाम प्रतीत होता है कि उनमें से दो, मान लो A और B, चतुर्थक बिन्दुओं पर स्थित होंगे और तीसरा, C, उनके बीच में किसी बिन्दु पर। विकिरण कम से कम यहां तक अवश्य होगा, क्योंकि यदि हम मान लें कि अपने बाजार को बढाने के लिए A या B मध्य बिन्दु की ओर चलता है तो उसका स्थान C द्वारा तुरन्त ले लिया जाएगा। हम निष्कर्ष निकाल सकते है कि, विक्रेताओं के सर्वोत्तम स्थानो को प्राप्त करने के प्रयत्नों के कारण यद्यपि उनके बीच अविरत स्थानान्तरण हो सकता है, किसी भी क्रेता को खरीदारी करने के लिए रेखा की लम्बाई के $\frac{1}{4}$ से अधिक नही चलना पड़ेगा। आदर्श स्थिति में उसे $\frac{1}{6}$ से अधिक नही चलना चाहिए, क्योंकि सुविधा अधिकतम तब होती है यदि ये तीन विक्रेता ऐसे बिन्दुओं पर स्थित हों जो रेखा के एक छोर से दूसरे छोर तक की दूरी के $\frac{1}{6}$, $\frac{1}{2}$, और $\frac{5}{6}$ दूरियों पर है।

विक्रेताओं की संख्या के बढ़ने पर हो सकता है कि वे दो-दो के समूह बनाएं (हमने अभी-अभी देखा है कि C का स्थान A या B से लगा हुआ हो सकता है), परन्तु तीन या अधिक विक्रेताओं का कोई भी समूह पहले ही वर्णित रीति से टूट जाएगा। रेखा की लम्बाई को इकाई मानने पर, n विक्रेताओं के लिए सामान्य निष्कर्ष यह है कि प्रत्येक छोर पर स्थित विक्रेता और रेखा के उस छोर की दूरी $1/n$ से अधिक कभी नहीं हो सकती (यदि विक्रेताओं की संख्या विषम है, तो वह $1/(n+1)$ से अधिक नही हो सकती), और यह कि किन्हीं दो विक्रेताओं के बीच की दूरी $2/n$ से अधिक कभी नहीं हो सकती। यह सीमान्त मान $(2/n)$ केवल उस चरम स्थिति में मिलता है जब विक्रेताओं के दो-दो के समूह होते है। इसलिए किसी क्रेता द्वारा तय की गई दूरी $1/n$ से अधिक कभी नहीं हो सकती, जो विक्रेताओं के आदर्श वितरण के

अन्तर्गत तय की जाने वाली दूरी की, जो $1/2n$ से अधिक कभी नही हो सकती, दूनी है। लेकिन जैसे उनके तितर-बितर होने के लिए कारण नही है, उनके दो-दो के समूह बनाने का कारण भी नही है।[2] यह प्रमाणित किया जा चुका है कि जहां कोई विक्रेता अपने को अन्य दो के बीच मे पाता है (जैसे, ऊपर के उदाहरण में, C), उसके लिए यह उदासीनता का विषय है कि वह कहा स्थित होता है, और यदि हम मान लें कि वह मध्य बिन्दु को चुनता है ताकि विक्रेता रेखा पर समान अन्तरालों (interval) पर वितरित है, तो परिणाम आदर्श से बहुत कम भिन्न होता है। यदि नौ विक्रेता हों, तो वे रेखा पर $\frac{1}{10}, \frac{2}{10}, \ldots\ldots\ldots\frac{9}{10}$, के अन्तरालों पर स्थित होंगे, जबकि आदर्श वितरण है $\frac{1}{18}, \frac{3}{18}, \ldots\ldots\ldots\frac{17}{18}$। छोरों पर स्थित दो विक्रेताओं में प्रत्येक का बाजार $\frac{3}{20}$ होगा, और अन्य सात मे प्रत्येक का $\frac{1}{10}$, जबकि आदर्श स्थिति में सब का बाजार $\frac{1}{9}$ होगा। रेखा के छोरों पर कुछ क्रेताओं द्वारा तय की गई दूरी $\frac{1}{10}$ $(=1/(n+1)$ होगी, परन्तु उनके अलावा अधिकतम दूरी $\frac{1}{20}$ $(=1/2(n+1))$ है, जबकि आदर्श दूरी $\frac{1}{18}$ $(=1/2n)$ है। संक्षेप में दो विक्रेता एक बिन्दु पर केन्द्रित होगे, परन्तु जब तीन होते है तो विकिरण शुरू हो जाता है, और पर्याप्त रूप से बड़ी संख्याओं की स्थिति मे, वितरण उस आदर्श का सन्निकटन करता है जो क्रेताओं की सुविधा को अधिकतम करता है।[3]

जहां, किसी कारण से, आबादी का वितरण असमान है, यह सुस्पष्ट है कि दुकानों का वितरण उसके समनुरूप होगा। अब "आबादी के वितरण" वाक्यांश का जो निर्वचन अवश्य किया जाना चाहिए उसकी दृष्टि से यह प्रस्थापना बहुत महत्वपूर्ण है। इस तर्क मे आद्योपान्त उसका जिस अर्थ में प्रयोग किया जाएगा, उसके अनुसार उसमें न केवल निवासों (residence) की स्थिति को, बल्कि काम, मनोरंजन, और अन्य वृत्तियो (pursuits) के लिए इधर-उधर आने-जाने के कारण क्रेताओं की परिवर्ती स्थिति को भी शामिल समझना चाहिए। सुस्पष्ट है कि कई खरीदारिया निवासों से सुविधाजनक स्थानो की अपेक्षा यात्रा में सुविधाजनक स्थानों से की जाती है। इसलिए, जहां भी "आबादी" अधिक घनी होगी, दुकानो के जमा हो जाने की आशंसा की जानी चाहिए। ऐसा समाहरण, कुछ सीमा तक, सचयी होता है, क्योंकि दुकानें खरीदारों और उनमे काम करने वाले लोगों, दोनों, को खीचती हैं; और ये, अपनी पारी में, अधिक दुकानों के लिए, बाजार प्रदान करते है। लेकिन, हमें "पणन क्षेत्रो" (shopping district) और अन्य समरूप समाहारो की व्याख्या इन क्षेत्रों में क्रेताओं के समाहरण के शब्दों मे सम्पूर्णतया करने की गलती नही करनी चाहिए। जिस प्रश्न की व्याख्या की जानी है वह यह है कि क्रेताओ का ऐसा समाहरण पहले-पहल शुरू कैसे हुआ।

विकिरण के पक्ष में सामान्य तर्क किसी एक पदार्थ के विक्रेताओं पर लागू होता है—सही अर्थों में, केवल पूर्णतया मानकित उत्पाद के विक्रेताओं पर लागू होता है। क्रेताओं के लिए यह सुस्पष्टतः सुविधाजनक है कि विभिन्न उत्पाद एक-दूसरे के समीप

बेचे जाएं, और इसी में खुदरा व्यापार में वास्तव में पाए जाने वाले अधिकांश समाहारों की व्याख्या मिलती है। ऐसे समाहार का सरलतम रूप अकेली दुकान स्वयं है जो, कई प्रकार का माल प्रस्तुत करके, क्रेताओं को (क) एक छत के नीचे कई खरीदारियाँ कर के अपना समय बचाने में, और (ख) "बाजार करने मे" (shopping), अर्थात्, खरीदने के पहले कीमतों और प्रकारों की तुलना करने में, समर्थ करती है।[4] स्वभावत:, (क) के सम्बन्ध में उन पदार्थों को रखने की निश्चित प्रवृत्ति होती है जिनकी मांग संयुक्त रूप से की जाती है, जैसे विभिन्न प्रकार का किराना, औषधियां; वस्त्र, आदि; और (ख) के सम्बन्ध में उन उत्पादों को रखने की निश्चित प्रवृत्ति होती है जो संग्रथित (composite) पूर्ति बनाते है, अर्थात्, जो एक-दूसरे के स्थानापन्न है, जैसे पदार्थो के एक ही सामान्य वर्ग की विभिन्न छापें या प्रकार। दुकानों के समूहन से समाहरण और आगे बढ़ता है, और यह उन्हीं नियमों के अनुसार होता है। बिल्कुल भिन्न प्रकार की दुकानें गुच्छे में एकत्र होती हैं, ताकि क्रेता एक ही इलाके में कई खरीदारियाँ कर सकें, और इन गुच्छों की, एकल उत्पादों के लिए पहले ही निर्दिष्ट नियम के अनुसार, विकिरण की प्रवृत्ति होती है। इसके साथ-साथ, समरूप उत्पाद बेचने वाली दुकानों की समूहन की प्रवृत्ति होती है ताकि लोग "बाजार कर" सकें। इसके उदाहरण हैं रंगशाला वाले इलाके और मोटरगाड़ी वाले इलाके। "पणन क्षेत्र" (क) बहुत भिन्न उत्पादों, और (ख) प्रत्येक के कई प्रकारों के समूहन के मूलतत्वों (principles) को विशाल पैमाने पर मिला देता है। जैसा संकेत पहले ही किया जा चुका है, ऐसा समाहरण बहुत संचयी हो सकता है।

अब हम कुछ अन्य बातों पर विचार करेंगे। हमारे विश्लेषण में कल्पना की गई है कि जब क्षेत्रीय प्रतियोगिता होती है, अन्य बातों में, कीमतें भी समान रहती हैं। प्रतियोगिता में लगे हुए विक्रेताओं की सख्या, और प्रत्येक के उत्पादन का पैमाना लागत और कल्पित कीमतों के बीच सम्बन्ध पर निर्भर करेगा। ये कीमतें चाहे जो हों, विक्रेताओं की संख्या और उत्पादन का पैमाना दोनों अपने को पहले वर्णित रूप में (पृ० 87) समायोजित कर लेंगे, जिससे कीमतों और लागतों का समीकरण हो जाता है, सिवाय इस बात के कि जहां आबादी का संकेन्द्रण है, भूमि की सापेक्ष दुर्लभता समायोजन में बाधा हो सकती है और उसका परिणाम सामान्यतया उत्पादन का बृहत्तर पैमाना और उच्चतर भाटक (किराया) होता है (तुलना कीजिए, ऊपर, पृ० 90-91 और परिशिष्ट 'घ')। अब, शुद्ध क्षेत्रीय प्रतियोगिता की हमारी वर्तमान कल्पना के अन्तर्गत, एक ओर तो क्रेताओं और विक्रेताओं के असमान वितरण और दूसरी ओर नगरीय भाटकों के बीच सम्बन्ध का अधिक विस्तार से अनुसंधान किया जा सकता है।

आबादी का मामूली संकेन्द्रण होने पर हो सकता है कि हमारे सामान्य निष्कर्षों में कोई संशोधन न करना पड़े। यदि जगह काफी हो, तो परिणाम उसी सामान्य आकार और लाभ-दर वाली दुकानों की संख्या में केवल वृद्धि होना हो सकता है, जो उस किराये से अधिक नही देतीं जितना निवास या अन्य प्रयोजनों के लिए जमीन को

मिलता है। यदि किसी विक्रेता को अल्पकालिक रूप से बृहत्तर परिमाण में व्यापार और बृहत्तर लाभ प्राप्त होते हैं, तो वह अपने प्रतियोगियों के साथ बाजार का हिस्सेदार होने के लिए विवश होगा, जो अपनी दुकान उसके नजदीक स्थापित करेंगे। ऐसी प्रतियोगिता यहाँ व्यापार के परिमाण को वही कर देगी जो वह कम सघन आबादी वाले इलाकों में होता, और किराये भी वहां से अधिक नहीं हो सकते, क्योंकि कोई स्थिति अन्य से बृहत्तर बाजार नहीं देती।

परन्तु हो सकता है कि इतने छोटे इलाके में समाहार इतना अधिक हो कि उन विक्रेताओं के लिए जो स्वभावतः आकर्षित होते है, कोई जगह ही न हो। इस स्थिति में, दुकानों को एक के ऊपर दूसरी रखकर चट्टा लगाने की असंभावना के कारण, लाभों पर प्रतियोगिता का समकारी प्रभाव और उत्पादन के एकसमान पैमाने की ओर परिणामी प्रवृत्ति प्रतिबन्धित हो जाती है। इलाके में पहले से जमे हुए विक्रेताओं को मिले हुए बृहत्तर बाजारों का अतिक्रमण करने में प्रतियोगी असमर्थ होते है। परन्तु वे उन्हें उत्पादन के बृहत्तर पैमाने और घटी हुई प्रति इकाई लागत के कारण उत्पन्न होने वाले लाभों को—वे लाभ जो दुकानों की सख्या में वृद्धि के कारण साधारणतया लुप्त हो जाते—पाने से रोक सकते हैं। उनके द्वारा स्थानों के लिए कीमत लगाने के कारण ये प्राप्तियां भूस्वामियों के हाथ में किराये के रूप में चली जाती हैं।

आबादी के वितरण में असमानता का न केवल इस अर्थ में प्रयोग होता है कि ऐसे कतिपय इलाकों का अस्तित्व है जिनमें आबादी कुल मिलाकर अधिक सघन है, बल्कि इस अर्थ में भी किया जा सकता है कि विभिन्न विक्रेताओं के बाजार एक-दूसरे में बहुत बेडौल रूप से फिट होते हैं। इस दूसरे अर्थ में आबादी के वितरण की असमानता से भी उत्पादन के पैमाने में, किरायों में, और लाभों में विभिन्नता होती है। अव्यक्त रूप से कल्पना कर ली गई है कि विक्रेताओं की ओर क्रेता एक सरल रेखा में जाते है, और इसलिए यह कि विक्रेता अपने को इस प्रकार वितरित कर सकते हैं जिससे उनके बाजार लगभग एक ही आकार के होंगे। लेकिन, सड़कों की बेतरतीबी अवश्यंभावी अनियमितताओं को ले आती है। यदि किसी नुक्कड़ से प्रतिदिन 8000 आदमी गुजरते हैं, तो वह निकटतम संभव स्थान (बगल में, परन्तु नुक्कड़ पर नहीं) से, जहां से 5000 आदमी प्रतिदिन गुजरते हैं, बेहतर बाजार प्रदान करता है। **अन्य बातें समान रहने पर,** नुक्कड़ वाले स्थान पर बिक्री 8 के 5 से अनुपात में अधिक होगी और लाभ बृहत्तर होंगे। चूंकि प्रतियोगियों के पास बगल में या नजदीक में अपनी दुकान स्थापित करके इस बाजार में हिस्सा करने का विकल्प नहीं होगा, वे इस बेहतर स्थान के लिए दाम लगाएंगे और इस प्रकार यह स्थान जो भी अतिरिक्त प्राप्ति प्रदान करता है, वह सब भूस्वामी के हाथ में रख देंगे। प्रतियोगिता लाभों के एक अंश को किराये में बदलकर उन्हें समान कर देती है। और एकसमान आकार की ओर प्रवृत्ति में इस तथ्य के द्वारा संशोधन हो जाता है कि बाजार कुछ मात्रा तक एक स्थल

(spot) पर संकेन्द्रित हो जाते हैं और पूरे इलाके में, जिसे बाँटा जा सकता है, फैले नहीं रहते ।

पुनः, शायद ऐसा प्रतीत हो कि यदि किसी विक्रेता का निकटतम प्रतियोगी काफी दूर हो, तो यह लगभग उदासीनता का विषय होगा कि एक-दूसरे के निकट अनेक स्थलों में से किसे चुना गया है । यदि उसे अपनी दुकान के आसपास **निवास** करने वाले लोगों से पूरा व्यापार मिले तो ऐसा हो भी सकता है । परन्तु उसके निकटतम बसे हुए लोगों में से कई अपनी दैनिक यात्राओं में अन्य दुकानों से भी गुजरते है। फिर, उसी इलाके में चौराहे पर कोई विशेष स्थान हो सकता है जो उसे वहां से गुजरने वाले लोगों से अधिक परिमाण मे व्यापार दिलाए, जिसे वह अन्यथा सर्वतः खो देगा । इन जैसे कारक विभिन्न स्थलों को न्यूनाधिक महत्व प्रदान करते है, भले ही वे आसन्न स्थल हों, और उनके किराये में तदनुरूप कमी-बेशी होती है । यह सुस्पष्ट है कि असाधारण रूप से बड़ा बाजार प्रदान करने वाले किसी स्थान के बाजार मे, यदि किसी ऐसे स्थल का अस्तित्व हो जो इतना काफी अतिक्रमण करने दे कि लाभ की साधारण दर प्राप्त हो जाए, कोई प्रतियोगी आकर कमी कर देगा, जिससे, बहुत घने इलाके को छोड़कर, किसी अकेले विक्रेता द्वारा प्राप्त व्यापार के परिमाण की एक निश्चित सीमा होती है । आबादी का वितरण जितना ही "एक-सा" (smooth) होगा—अर्थात्, कई निकटस्थ स्थलों द्वारा प्रदान किए जाने वाले अवसर जितने ही सदृश होंगे—"सामान्य" आकार से विचलन उतने ही अल्प होंगे ।

बाजारों की ये अनियमितताएँ हो सकता है कि किरायों के स्थान पर लाभों में कमी-बेशी करें । यदि कोई बाजार इतना बड़ा है कि एक विक्रेता को असाधारण लाभ प्रदान करता है, फिर भी इतना बड़ा नहीं है कि दो विक्रेताओं को साधारण दर पर लाभ मिलें, तो जो विक्रेता वहां पहले पहुँचता है वह अतिरिक्त लाभ बनाए रखने में, हो सकता है, सफल हो जाए, बशर्ते कि लगभग उतने ही आकर्षक अनेक स्थल हों । इस स्थिति में भूमि को अन्य उपयोगों, मान लो निवास-स्थान, के लिए जो किराया मिलता उससे अधिक किराया नहीं मिलेगा, क्योंकि भूस्वामियों की प्रतियोगिता उसे उस स्तर पर ले आएगी । किसी नये प्रतियोगी के कारण लाभ की उच्चतर दर घट नहीं सकती, क्योंकि उसे एवं पहले विक्रेता को उसके प्रवेश के कारण हानि होगी । भूस्वामी या किरायेदार को इस प्रकार की अनियमितताओं के परिणामी अतिरेकों को देने की प्रवृत्ति रखने वाली शक्तियाँ अधिकांश स्थितियों में सम्भाव्यतः मिली-जुली रहती हैं, जिससे इस कारण से पूरे इलाके में किरायों और लाभों में कमी-बेशी हो सकती है । चूँकि किसी स्थल के लिए प्रतियोगिता करने वाले प्रायः थोड़े होते हैं, इसलिए सौदाकारी की गुंजाइश है, और वह प्राप्ति को हो सकता है कि बाँट दे या उसे एक या दूसरे पक्ष को दे दे ।

परिशिष्ट घ

एकाधिकार आय के रूप में नगरीय भाटक[1]

खुदरा विक्रयण के क्षेत्र मे एकाधिकारिक प्रतियोगिता के सिद्धान्त का अनुप्रयोग करने पर नगरीय स्थलों के भाटक की जो व्याख्या मिलती है, वह साधारण व्याख्या से भिन्न है। खुदरा व्यापार के उद्देश्य से दिया जाने वाला नगरीय भाटक[2] लगान से भिन्न प्रकार की आय है—वस्तुतः, यद्यपि ये दो प्रकार साधारणतया सदृश समझे जाते है, परन्तु उनमे केवल यह समानता प्रकट होती है कि दोनों का भुगतान भूमि के उपयोग के लिए किया जाता है। लगान एक पूर्णतः प्रतियोगितामूलक आय है; भाटक एक पूर्णतः एकाधिकारमूलक आय है। पहले का अस्तित्व शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत हो सकता है और होता है; दूसरा एकाधिकारिक प्रतियोगिता मे एकाधिकार तत्वों के कारण सर्वतः उत्पन्न होता है।

उन कल्पनीय स्थितियों को छोड़कर जहां जमीन या चट्टान बड़ी इमारत का भार सहने में विशेष रूप से समर्थ है, व्यापार-स्थल ऐसा कोई फायदा नही देता जो लगान मे उत्कृष्ट उर्वरता के सदृश है। कोई स्थल खुदरा व्यापार की सेवाओं की उतनी ही बडी राशि का **उत्पादन** करने मे समर्थ है जितना कोई अन्य स्थल—उर्वरता मे कोई अन्तर नही है, और इस सम्बन्ध में सर्वोत्तम भूमि की कोई भी दुर्लभता नहीं है। विक्रयण के उद्देश्य से कही भी सीमान्त और अवसीमान्त (sub-marginal) भूमि —निःशुल्क भूमि—उतनी ही "उर्वर" है जितना न्यूयार्क के बाजार-क्षेत्र मे सर्वोत्तम स्थल। वह समान रूप से अच्छी फुटकर व्यापार सुविधाओं को प्रदान कर सकती है, और यदि वहां उत्पादित सेवाएं बेची जा सकती तो करती।

स्थिति के कारक के द्वारा नगरीय भाटक की व्याख्या पूर्णतया, कृषि-भूमि के लगान की व्याख्या अंशतः, होती है। फिर भी किसी व्यापार स्थल से जुड़ा हुआ स्थिति सम्बन्धी फायदा वही नही है जो लगान की व्याख्या का एक भाग है। कृषि-भूमि की उपज जिस बाजार मे बेची जाती है उससे उसकी दूरी के अनुसार लगान कम या अधिक होता है। वह बाजार से **दूरी पर** सदा होती है। नगरीय भूमि अपना बाजार अपने साथ ले जाती है—वे क्रेता जो विचाराधीन स्थान पर खरीदारी करना सबसे सुविधाजनक पाते है, और इस बाजार के आकार और स्वरूप के अनुसार उसका भाटक ऊंचा या नीचा होता है। लगान इसलिए उत्पन्न होता है क्योंकि कुछ भूमियों की उपज की उत्पादन लागत और उसे बाजार तक पहुंचाने की परिवहन लागत का योग बाजार कीमत से कम होता है, क्योंकि सब भूमियों की उपज एक प्रतियोगी बाजार में क्रेताओं के एक ही समूह को समभाव से बेची जा रही है। नगरीय भाटक इसलिए उत्पन्न होता है क्योंकि भूमि के किसी टुकड़े पर से अधिक **बेचा** जा सकता है—

किसी व्यापार-क्षेत्र में क्रेताओं के एक भाग के सापेक्ष उसकी स्थिति बेहतर है। कृषि-भूमि की उपज का बाजार शुद्धतः प्रतियोगी है—क्रेताओं और विक्रेताओं की संख्या बड़ी है, और भूमि के एक भाग की उपज दूसरे से विशिष्ट नहीं है। इसके विपरीत, फुटकर बाजार में एकाधिकार के तत्व अन्तर्विष्ट होते हैं, क्योंकि सुविधा का कारक उत्पाद का क्षेत्रीय रूप से विशिष्टीकरण कर देता है। क्रेताओं की आवाजाही मे अड़चन होने के कारण, प्रत्येक स्थल के "उत्पाद" में किसी न किसी समूह के लिए सुविधा का तत्व अन्तर्विष्ट रहता है, और वहां स्थित विक्रेता का उसके उत्पाद पर एकाधिकार होता है, और उस स्थल के उपयोग के लिए अन्य की प्रतियोगिता के कारण वह उसके पूरे मूल्य को भूस्वामी को देने के लिए विवश होता है। यदि क्रेता समूचे क्षेत्र में निर्बाध आते-जाते, जैसा वे शुद्धतः प्रतियोगी बाजार में करते, तो नगरीय भाटक में और भूमि मूल्य (land value) में अन्तर सर्वतः लुप्त हो जाते।

यह अन्तर एक सरल उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगा। कृषि-भूमि के एक टुकड़े के लगान पर विचार कीजिए जो केन्द्रीय बाजार से इतनी दूरी पर है कि उसकी उपज की परिवहन लागत 10 सेंट प्रति बुशल है। यदि सीमान्त भूमि से परिवहन की लागत 30 सेंट प्रति बुशल हो, तो (उर्वरता में अन्तर की उपेक्षा करने पर) भूमि के उस टुकड़े का लगान 20 सेंट प्रति बुशल होगा। चूंकि केन्द्रीय बाजार में क्रेताओं और विक्रेताओं की संख्या बड़ी है, वह शुद्धतः प्रतियोगी है और प्रत्येक विक्रेता आश्वस्त है कि वह जितनी भी राशि का उत्पादन करेगा उसे बाजार कीमत पर बेच लेगा, उसकी अपनी उपज का मांग वक्र सदा एक क्षैतिज रेखा होगा। बाजार कीमत पर, मान लो 1·00 डालर प्रति बुशल पर, (जिस राशि का उत्पादन वह लाभप्रद रूप से कर सकता है उसकी तुलना में) वह अनिश्चित रूप से बड़ी राशि बेच सकता है। अथवा, परिवहन व्यय को घटाने पर, हम कह सकते हैं कि **उसके फार्म पर** 80 सेंट की कीमत पर मांग अनिश्चित रूप से बड़ी है।

इसकी तुलना नगरीय स्थल भाटक से कीजिए। लगान के बारे में साधारण तर्क बिल्कुल उपयुक्त नहीं है। भाटक परिवहन लागत को बचाने के लिए नहीं दिया जाता। वह बिक्री का बृहत्तर परिमाण प्राप्त करने के लिए दिया जाता है। क्रेता और विक्रेता दोनों एक विस्तृत क्षेत्र में बिखरे हुए हैं। उनकी आवाजाही में ऐसी अड़चने है कि क्षेत्र में एक स्थान क्रेताओं के एक भाग की गाहकी प्राप्त करने में सुविधा देता है। वह एक ऐसा बाजार प्रदान करता है कि जो, कुछ मात्रा तक, सम्पूर्ण से भिन्न है। प्रचलित कीमत पर उत्पाद की जो राशि प्रत्येक विक्रेता बेच सकता है वह अनिश्चित रूप से बड़ी नहीं है। वह स्थिति के द्वारा निश्चित रूप से सीमित कर दी जाती है; यदि ऐसा न होता, तो बहु-विभागी दुकानें (department stores) दूरस्थ इलाकों में स्थापित की जातीं, जहां वे व्यापार का उतना ही परिमाण प्राप्त करतीं और किराये में किफायत करके अपने लाभ बढ़ा लेतीं। यदि हम सम्पूर्ण क्षेत्र को एक बाजार समझें, तो स्पष्ट है कि भाटक इसलिए दिया जाता है क्योंकि उसमें एकाधिकार के तत्व

अन्तर्विष्ट हैं। क्षेत्रीय विशिष्टीकरण के परिणामस्वरूप एक-एक विक्रेता के पदार्थ का मांग वक्र पूर्णतः क्षैतिज न रहकर ऋणात्मक ढलान वाला हो जाता है। यदि वे क्षैतिज होते तो नगरीय स्थल भाटक लुप्त हो जाते; इसलिए यह निष्कर्ष अवश्य निकलता है कि वह एकाधिकार तत्वों के कारण मिलता है, और शुद्ध एकाधिकार-प्रतिफल है।

नगरीय स्थल भाटक में कोई विस्तार का सीमान्त (extensive margin) नहीं है। इस संकल्पना का सम्बन्ध उस स्थिति से है, जिसमें **विभिन्न** श्रेणियों की भूमियों की उपज **एक ही** बाजार में बेची जाती है जबकि नगरीय भाटक **एक ही** श्रेणी की भूमियों के उत्पादों को **विभिन्न** बाजारों में बेचने के कारण उत्पन्न होता है। कम भाटक वाले स्थल उसी अर्थ में अधिक घटिया नहीं है जिस अर्थ में सीमान्त भूमि सर्वोत्तम कृषि-भूमि से घटिया है। उन पर उत्पादन की लागत उच्चतर नही है; बल्कि, उनके द्वारा प्रदान किया गया बाजार अल्पतर है। दो स्थल जिस मात्रा तक विभिन्न बाजारो में हैं उस मात्रा तक उनके भाटक भिन्न है, और ठीक उसी मात्रा तक विस्तार के सीमान्त की संकल्पना, जैसे उन पर लागू होती है, अर्थहीन है।

किसी नगरीय स्थल का भाटक **उस विशेष जगह पर** फुटकर व्यापार की सेवाओं को मुहैया करने के एकाधिकारिक विशेषाधिकार के मूल्य की अभिव्यक्ति है। इन एकाधिकार प्राप्तियों को पाने के लिए उद्यमकर्ताओं के बीच प्रतियोगिता वह शक्ति है जो उन्हें भूस्वामियों के हाथ मे रख देती है। ऊपर विचारित लागत वक्रों में भाटक को वैयक्तिक विक्रेताओं के दृष्टिकोण से एक लागत के रूप में सदा सम्मिलित किया गया है, और लाभों पर अवशेष के रूप में विचार किया गया है। भूस्वामियों के दृष्टिकोण से व्यवसायियों के लाभ लागत के रूप में शामिल किए जा सकते हैं, और अवशेष भाटक होगा। लेखाचित्रीय रूप से, पहले के निरूपणों मे वह लाभ-अतिरेकों के रूप में प्रकट होगा।

यदि सम्पूर्ण शहरी क्षेत्र में क्रेता समान रूप से वितरित हों, तो भाटकों में कोई भिन्नता नहीं होगी। सर्वत्र स्थल लगभग एक-से सुलाभकारी होंगे, और लागत वक्रों के सापेक्ष मांग वक्रों की स्थिति समरूप होगी। (यदि भूमि को अन्य प्रयोजनों से, मान लो निवास के लिए, दिया जाने वाला भाटक लागत वक्र में सम्मिलित कर लिया जाए, तो मांग और लागत वक्र एक-दूसरे की स्पर्शरेखाएं होंगे।) विशेष इलाकों में और निश्चित सड़कों या नुक्कड़ों पर, क्रेताओं का समाहार, और इन जगहों पर स्थलों की सापेक्ष दुर्लभता के ही कारण वहां मुहैया की जाने वाली सेवाओं के मांग वक्र अन्यत्र के मांग वक्रों की तुलना में अधिक दाहिनी ओर होते हैं, और प्रत्येक विशेष स्थल को वह अतिरेक देते हैं जिसके होने का कारण वह है।

हमें यह समझने की गलती के बारे में सतर्क रहना चाहिए कि भाटक के अन्तर केवल प्रत्येक स्थल द्वारा प्रदान किए गए व्यापार के परिमाणों के अन्तरों के माप है। यह केवल तब सच होता यदि उत्पाद का विशिष्टीकरण क्षेत्रीय रूप के अलावा किसी अन्य रूप में न होता और यदि क्षेत्र में सर्वत्र कीमतें एकसमान होतीं। तब,

भाटक बड़े पैमाने के उत्पादन की किफायतों का यथार्थ माप होता; क्योंकि बृहत्तम बाजारों को प्रदान करने वाले स्थलों का मूल्य केवल तब अधिक होता यदि इस बृहत्तर परिमाण का उत्पादन अल्पतर प्रति इकाई लागत पर किया जा सकता और केवल उस मात्रा तक अधिक होता। यह वह राशि होती जिसे भूस्वामी वसूल सकता है, और जिसे व्यवसायियों की प्रतियोगिता उसके हाथ मे रख देती है। वास्तव में, बड़े पैमाने के उत्पादन की किफायतों के बारे में ऐसा कोई निष्कर्ष नही निकाला जा सकता है। भाटक विभिन्न स्थलों द्वारा प्रदान किए गए सापेक्ष **फायदों** की अभिव्यक्ति है, और ये फायदे व्यापार के सापेक्ष परिमाणों पर केवल अंशत: निर्भर करते हैं। अन्य कारक है: वे कीमतें जो मांगी जा सकती है, और जिस प्रकार का व्यवसाय उस स्थान पर सबसे अच्छा चलाया जा सकता है।

जैसा अध्याय 5 में तर्क किया गया है, इस बात पर विश्वास करने का कोई प्रागनुभव कारण नही है कि फुटकर व्यापार के सम्पूर्ण क्षेत्र में, यदि क्रेताओं का वितरण यादृच्छिक न हो तो, कीमतें समान होंगी। बिक्री के परिमाण मे विस्तृत अन्तर इसका पर्याप्त प्रमाण है कि वह मात्रात्मक रूप से यादृच्छिक नही है। न ही वह गुणात्मक रूप से यादृच्छिक है: किसी एक दुकान के ग्राहक खरीदारो के समस्त निकाय के यदृच्छ प्रतिदर्श सामान्यतया नहीं होते। हारवर्ड स्क्वायर के नजदीक विद्यार्थियो की प्रधानता है; सेन्ट्रल स्क्वायर के नजदीक कामगारों की; पणन क्षेत्र मे स्त्रियों की। ऐसे कारक कीमतों में विभिन्नता ला सकते है और नही भी। प्रत्येक दुकानदार को अपने लिए यह निर्णय स्वय लेना पड़ता है कि उसके लाभ अपने पदार्थों की कीमतों को ऊचा रखने पर अधिक होंगे, या मध्यम रखने पर, या कम रखने पर। जिस मात्रा तक अनुसरण की जाने वाली नीति का नियंत्रण स्थल करता है, वह इस प्रकार जिन बृहत्तर या अल्पतर लाभों को सभव करता है वे भाटक में प्रतिबिम्बित होंगे।

इस कीमत-कारक के अतिरिक्त, अन्य सब प्रकार के विशिष्टीकरण भी साथ-साथ विद्यमान रहते हैं और उनका भाटक पर प्रभाव पड़ता है। विभिन्न इलाकों में बिकने वाले पदार्थों के प्रकार व्यापार की श्रेणी के साथ बहुत बदलते हैं, और विविध प्रकार की बिक्रीकारी-रीतियों का एक-दूसरे से कोई सादृश्य नहीं होता। इसके साथ-साथ उत्पादन के पैमाने के बदलने के साथ उत्पाद गुणात्मक रूप से बदल सकता है। एक छोटी दुकान की अपेक्षा एक बड़ी बहु-विभागी दुकान, अन्य चीजों के साथ-साथ, पदार्थों के किसी वर्ग के भीतर चयन के लिए अधिक विविधता प्रदान करती है। वह पहले विचारित अर्थ से भिन्न अर्थ में सुविधा भी बेचती है, जो एक ही छत के नीचे कई तरह की खरीदारियां करने की सुविधा है। ये **एक ही चीज** के छोटे पैमाने की तुलना में बड़े पैमाने के उत्पादन की किफायतें नहीं हैं, प्रत्युत् स्वयं उत्पाद में परिवर्तन हैं। कीमत और प्रकार में परिवर्तनों के इन कारकों पर विचार किए बिना फुटकर व्यापार के क्षेत्र में बड़े पैमाने के उत्पादन की किफायतों के सम्बन्ध में कोई निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते।

फुटकर व्यापार में जिस प्रकार की सेवाएँ—"उत्पाद"—प्रदान की जाती हैं, उनमें गुणात्मक परिवर्तनों का तात्पर्य है लागत वक्रों में परिवर्तन, और ऐसे परिवर्तन विचाराधीन स्थल की स्थिति द्वारा अंशतः निर्धारित होते हैं। जिस मात्रा तक वे इस प्रकार निर्धारित होते हैं, वे उसके भाटक के निर्धारण में सम्मिलित होने वाले कारक हैं। सिद्धान्त का सरल रूप में संक्षेप यह है कि प्रत्येक स्थल को ऐसे उपयोग में लाए जाने की प्रवृत्ति होती है जिसमें उसका उपयोग करने में सन्निहित लागत के ऊपर कुल प्रतिफल अधिकतम होगा। इन लागतों में, अन्य चीजों के साथ-साथ, लाभ के रूप में ऐसे प्रतिफल भी सम्मिलित है जो व्यवसाय योग्यता को आकर्षित करने के लिए आवश्यक हैं। बचा हुआ अन्तर, जो एक की तुलना में दूसरे स्थल द्वारा प्रदान किए गए लाभार्जन के अवसरों की उत्कृष्टता के कारण है, भाटक है, और सर्वोत्तम अवसरों के लिए उद्यमकर्ताओं की प्रतियोगिता के कारण वह भू-स्वामियों के हाथ में चला जाता है।

परिशिष्ट च

व्यापार-चिह्न अतिलंघन और "अनुचित व्यापार" के पक्ष में कुछ तर्क

अध्याय 4 में पेटेन्टों और व्यापार-चिह्नों के विश्लेषण से निष्कर्ष निकलता है कि अतिलंघन (infringement) से व्यापार-चिह्नों का संरक्षण और सामान्यतया व्यापारियों के उत्पादों के अनुकरण से, जिसे "अनुचित व्यापार" कहा जाता है, उनका संरक्षण एकाधिकार का सरक्षण है। ऐसे अतिलंघनों और अनुकरणों को करने देना, एकाधिकार तत्वों के विलोपन द्वारा, प्रतियोगिता को शुद्ध करने की दिशा मे एक कदम है। इसलिए, यदि हम इस आधारवाक्य से तर्क शुरू करें कि प्रतियोगिता अच्छी है और एकाधिकार बुरा है, तो निष्कर्ष यह होगा कि "अनुचित" प्रतियोगिता (प्रतियोगियों के पदार्थों की नकल के अर्थ में) की अनुमति अवश्य दी जानी चाहिए, बल्कि उसे प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। हम इस तर्क की परीक्षा करेंगे।

यद्यपि व्यापार-चिह्न अतिलंघन और अनुचित व्यापार की विधिपरक उत्पत्ति भिन्न है, और उनमें अब भी पारिभाषिक रूप से भेद किया जा सकता है, फिर भी हमारे प्रयोजन के लिए पहले को दूसरे का एक प्रकार समझा जा सकता है, और सम्पूर्ण विवेचन को एक ही शीर्षक के अन्तर्गत लाया जा सकता है। विधि का मूलभूत नियम है कि किसी को यह अधिकार नही है कि वह अपने माल को धोखा देकर अपने प्रतिद्वन्द्वी व्यापारी के माल के रूप में बेचे।

जिन रीतियों से ऐसा प्रयत्न किया जा सकता है वे विविध हैं। सफल नाम या व्यापार-चिह्न को स्वयं कई अनुकरणों का अपरिहार्य रूप से मुकाबला करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, ये फैसले दिए गए कि "गोल्ड डस्ट" का अतिलघन "गोल्ड ड्रॉप" ने किया, "लैक्टोपैप्टीन" का "लैक्टोपैप्सीन" ने, "उनीडा" का "इवान्टा" ने, इत्यादि।[1] वाल्थम वाच कम्पनी को वाल्थम शहर मे स्थित और इस भौगोलिक नाम "वाल्थम" का इस प्रकार उपयोग करने वाले दूसरे विनिर्माता से संरक्षण मिला कि दो उत्पादो मे सम्भ्रम न हो जाए।[2] किसी उत्पादक द्वारा शुद्धतः वर्णनात्मक शब्दों या वाक्यांशों तक का उपयोग नहीं किया जा सकता, यदि उनका किसी प्रतियोगी के पदार्थों से पहले ही से साहचर्य रहा है, "जब तक कि मूल विनिर्माता या विक्रेता के पदार्थों से सम्भ्रम को रोकने के लिए उनके साथ पर्याप्त स्पष्टीकरण या पूर्वोपाय नहीं कर लिया जाता।"[3] नामों की नकल के अतिरिक्त, लेबलों और वेष्टनों की सामान्य बनावट और रूप-सज्जा की, रंग, आकार और आकृति की, नकल की जाती है। कई स्थितियों में जिस मात्रा में चतुराई का प्रदर्शन किया गया है वह असाधारण है, और कानून के भीतर रहते हुए ठीक कहां तक कोई जा सकता है यह बारीक विभेद का विषय है। ऐसे मामले हैं

जिनमें यह फैसला दिया गया है कि उत्पाद की आकृति की भी नकल नहीं की जा सकती है, जैसे टिकिया की आकृति वाली एक दवा (केस्केरट्स)[4] के और तालों के मामलों में।[5] कोका-कोला कम्पनी बनाम गे-कोला कम्पनी में[6] प्रतिवादी को वादी के पेय के कृत्रिम रंग की नकल न करने का आदेश दिया गया, जब यह प्रमाणित कर दिया गया कि नकल अनावश्यक थी क्योंकि अन्य रंगों का समान रूप से अच्छी तरह उपयोग किया जा सकता था।

इन सब स्थितियों में, इस बारे में कोई विवाद नहीं हो सकता कि कानून क्या कर रहा है। वह प्रतियोगिता का नहीं, बल्कि एकाधिकार का परिरक्षण कर रहा है। जब कोई उत्पादक दूसरे के नाम, प्रतीक, वेष्टन, या उत्पाद की नकल करता है तो परिणाम अधिक लगभग मानकित पदार्थ है, और, यदि अनुकारक (नक्काल) सफल होता है तो, उसके प्रतिद्वन्द्वी के लाभों में कमी होती है। जैसा अध्याय 4 में दिखाया गया है, ये लाभ (जहां तक वे आवश्यक न्यूनतम से अधिक हैं) केवल एकाधिकार तत्वों के कारण से हैं। क्योंकि यदि पदार्थ **सम्पूर्णतया** मानकित होते, तो क्रेताओं के पास भेद करने का कोई आधार न होता; एक विक्रेता की बिक्री का परिमाण दूसरे से बृहत्तर न होता और इसलिए बृहत्तर लाभ (जिसमें भूमि का भाटक और उत्कृष्ट व्यवसाय योग्यता का अधिशेष शामिल नहीं हैं, प्राप्त न कर पाता। वे पदार्थों की असमानता के कारण मिलते है न कि समानता के कारण, और इसलिए एकाधिकारिक तत्वों के कारण मिलते हैं न कि प्रतियोगितामूलक तत्वों के कारण। उन्हें किसी उत्पादक को शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत अन्तरिम काल के दौरान मिलने वाले अल्प-कालिक लाभ अवश्य नही समझा जाना चाहिए, जो उसे प्रतियोगियों के प्रकट होने के पहले, या कुछ समय बाद तक भी मिलते हैं, क्योंकि उसे क्षेत्र में पहला होने का फायदा है। इन लाभों के विलोपन की प्रवृत्ति रहती है; परन्तु व्यापार-चिह्न संरक्षण के द्वारा संभव हुए स्थायी लाभों के बारे में ऐसा नहीं होता। ये दूसरे लाभ प्रतियोगिता की "अपूर्णताओं" के कारण से नही है, इस कारण से नहीं हैं कि प्रणाली नयी दशाओं से शीघ्र समायोजित नहीं हो पाती; वे इस स्थायी "अपूर्णता" (यदि उसे ऐसा कहा ही जाए) के कारण से हैं कि वह स्वयं को समायोजित कभी करती ही नहीं—उसे कानून रोक देता है।

यह देख लेना दिलचस्प है कि न्यायालय में प्रतियोगिता का कोई प्रथम दृष्टि में प्रतीत मामला नहीं है। कीर्तिस्व (goodwill) का अधिकार मूलभूत कानूनी अधिकार है, और प्रतियोगिता को उसके माने गए सामाजिक हित के कारण केवल कार्यनीति के विषय के रूप में "बरदाश्त" (tolerate) किया जाता है।[7] लेकिन, अर्थशास्त्रीय रूप से प्रथम दृष्टि में प्रतीत मामला प्रतियोगिता के पक्ष में है, और (अनियन्त्रित) एकाधिकार को सामान्यतः सामाजिक हित का विरोधी माना जाता है। इसके अपवाद हैं, परन्तु किसी भी स्थिति में उन्हें तथ्य रूप में मान नहीं लिया जाना चाहिए। उदाहरणार्थ, पेटेन्ट कानून द्वारा संरक्षित एकाधिकार बहुधा इस

आधार पर उचित ठहराए जाते हैं कि वे उपज्ञा (ईजाद) को प्रोत्साहन देते हैं। अब यह अवश्य पूछा जाना चाहिए कि अनुचित प्रतियोगिता और व्यापार-चिह्नों के कानूनों द्वारा संरक्षित एकाधिकारों को किस, यदि किसी, आधार पर उचित ठहराया जा सकता है।

कानून का संरक्षण (क) उत्पादक को, या (ख) उपभोक्ता को दिया गया समझा जा सकता है। पहले हम उत्पादक पर विचार करें। ऐसे कोई आधार नहीं दिखाई देते जिन पर वह ऐसे संरक्षण का न्यायोचित रूप से दावा कर सके। यदि यह मान लिया जाए कि उपभोक्ता दो विक्रेताओं के पदार्थों से समान रूप से तुष्ट है तो क्षेत्र में दूसरे विक्रेता के प्रवेश को पहले के लाभों को रोकने के लिए और लागत पर पदार्थ की पूर्ति को उसकी मांग से समायोजित करने के लिये, पूंजी का सहज (natural) प्रवाह अवश्य समझा जाना चाहिए। लार्ड हार्डविक ने, 1742 में, एक व्यापारी को दूसरे के चिह्न का उपयोग करने से रोकने से इन्कार करते समय, इस बात को स्पष्ट रूप से कहा है। वे कहते हैं कि

> "प्रत्येक व्यापारी का विशेष चिह्न या छाप होता है; परन्तु मुझे यहां ऐसा व्यादेश (injunction) देने के लिए कोई दृष्टान्त नहीं मिलता कि एक व्यापारी उसी चिह्न का उपयोग न करे जिसका दूसरा करता है, और मैं सोचता हूँ कि ऐसा करने का फल अनिष्टकारी होगा।
>
> "यह आपत्ति की गई है कि प्रतिवादी, वादी के चिह्न का उपयोग करके ग्राहकों का अपहरण करके, वादी के दावे को नुकसान पहुँचा रहा है।
>
> "परन्तु उसमें उससे अधिक बल नहीं है, जितना उस आपत्ति में होता जो किसी सराय मालिक द्वारा दूसरे के चिह्न के साथ सराय स्थापित करने के विरुद्ध होती।"[8]

किसी उत्पादक को यह अधिकार नहीं है कि वह अन्य को उसी उत्पाद, यहां तक कि **एकरूप** उत्पाद, का विनिर्माण करने और विक्रयण करने से वर्जित करे। वह केवल इसके विरुद्ध संरक्षण का दावा कर सकता है कि कोई उसके नाम पर जालसाजी न करे, और कानून का **सिद्धान्त** यह प्रतीत होता है कि उसे केवल इस सम्बन्ध में संरक्षण दिया जाए। वॉल बनाम ब्रौडवे बाजार में[9] न्यायालय ने व्यापार-चिह्न की परिभाषा यह की है कि "कोई चिह्न, छाप, प्रतीक, शब्द या शब्द समूह जो **पदार्थ के प्रकार से प्रभिन्न** उसके उद्भव (origin) या स्वामित्व का निर्देश करता है, और जिसका उन्ही प्रयोजनों के लिए प्रयोग करने का अन्य को समान अधिकार नहीं है।" कानूनी निर्णय और पाठ्य पुस्तकें सहमत हैं कि व्यापार-चिह्न का कार्य उद्भव दिखलाना, पहचान करना, है। प्रश्न यह है कि कहां पहचान समाप्त हो जाती है, और विशिष्टीकरण शुरू हो जाता है? यदि दो प्रतियोगी पदार्थ हर दृष्टि से एकरूप हों—रंग, आकृति, और डिजाइन, लेबल, छाप, और नाम, हर एक बात में—सिवाय एक असंलक्ष्य (inconspicuous) पहचान-चिह्न के या उत्पादक

के नाम और पते के, तो, उत्पाद का और आगे विशिष्टीकरण हुए बिना, केवलमात्र पहचान होगी। सुस्पष्ट है कि इससे और आगे न मिलने वाले "संरक्षण" का उत्पादक के लिए कोई आर्थिक मूल्य नहीं होगा, क्योंकि उसका क्रेता के लिए उतना ही महत्व होगा जितना आधान पात्र मे पाई गई पर्ची का (जो पूर्णतय पहचान कराती है) कि "न० 23" ने पैक किया"। उन स्थितियों को छोड़कर जहां क्रेता विक्रेता से सीधे खरीदारी करते है, जैसे फुटकर व्यापार मे, और इसलिए जहां व्यक्तिगत सम्बन्ध आ जाते हैं, उसके लिए उद्भव की सार्थकता बिल्कुल नही है सिवाय इसके कि वह गुण का निर्देश करता है। "लक्स" का खरीदार शायद जानता भी न होगा कि उसे लीवर ब्रदर्स कम्पनी ने बनाया है, और इस बारे में कुछ कहना व्यर्थ है कि वह इसकी परवाह करता है कि उन्होंने उसे बनाया है या नहीं। यदि कोई अन्य कम्पनी वैसा ही पदार्थ बनाती, और उसे वैसे ही डिब्बे में रखती और वही नाम देती, ताकि वह नासमझी से बहक न जाए, तो वह उसे खरीदने के लिए समान रूप से तत्पर होगा। नाम एक निश्चित प्रकार का, एक निश्चित उत्पाद का, प्रतिनिधित्व करता है, न कि एक निश्चित उत्पादक का, और केवल एक उत्पादक को उस नाम का उपयोग करने देना उसे उत्पाद का एकाधिकार प्रदान करना है। कानून केवल पहचान ही नहीं करवाता; उससे कहीं अधिक करवाता है।

अब हम उपभोक्ता पर विचार करें। यह तुरन्त कहा जाएगा कि उसे धोखे और जालसाजी से बचाने के लिए व्यापार-चिह्न आवश्यक हैं। यदि उत्पादक अन्य के व्यापार-चिह्नों, लेबलों, वेष्टनों, और उत्पादों की नकल करने के लिए स्वतन्त्र हो तो किसी को अपने पदार्थ के प्रकार को बनाए रखने की कोई प्रेरणा नहीं होगी, क्योंकि उसके पदार्थ का कम कीमत पर घटिया पदार्थ द्वारा अनुकरण अवश्यंभावी है, जो एकरूप दीखने वाले पदार्थों के रूप में प्रस्तुत किए जाएंगे। यह तुरन्त प्रत्यक्ष हो जाता है कि जिन क्षेत्रों में विशिष्टीकरण संभव है, उपभोक्ता को घटिया प्रकार से कानूनी संरक्षण की आवश्यकता होती है। व्यापार-चिह्न और अनुचित व्यापार का कानून उसकी रक्षा का उपाय करता है, परन्तु विशिष्टीकरण में बढ़ौती करके और उसके कारण स्थापित एकाधिकारों का संरक्षण करके। लेकिन नकल की अनुमति देने की नीति बशर्ते कि हर तरह से ठीक वैसा ही पदार्थ बनाया जाए, या कानून द्वारा प्रकार के मानकों को निश्चित करने की नीति, समान रूप से प्रभावकारी होगी। इनमें से पहली अपनी अव्यावहारिकता के कारण शायद निकम्मी है। लेकिन, दूसरी में बहुत सभावनाएं हैं, विशेषकर के वाणिज्य के मुख्य पदार्थों की स्थिति में, जहां व्यापार-चिह्न और छाप प्रत्यक्षत: बेकार हैं बशर्ते कि प्रकार सुनिश्चित है। उपभोक्ता से कपट केवल तब होता है यदि वास्तव में भिन्न पदार्थ भ्रान्तिजनक रूप से समरूप हों। जब तक वह उत्पाद के प्रकार, वेष्टन, या चिह्न को पहचानने में और यह जानने में कि वह उसी प्रकार का है जैसा उस-जैसा अन्य प्रकार, समर्थ है, वह पूरी तरह से संरक्षित है।

व्यापार-चिह्न के संरक्षण के पक्ष में अन्तिम तर्क यह हो सकता है कि वह विविधता को उद्दीप्त करता है, और इसलिए उपभोक्ता को चुनाव के अधिक अवसर देता है। निस्संदेह, यह वांछनीय है, परन्तु सीमा के भीतर। समस्या है उच्चतर कीमतों पर विविधता और निम्नतर कीमत पर अधिक एकसमान उत्पाद की तुलना करने की; और सिद्धान्त न तो इस बारे मे कोई उत्तर देता है कि विशिष्टीकरण कितनी दूर तक "स्वभावत." किया जाएगा, और न इस बारे में कि उसे कितनी दूर तक किया जाना चाहिए। (यह तथ्य कि वह एक निश्चित बिन्दु तक किया जाता है, इस बात का सकेत नहीं है कि वह उपभोक्ताओं की अभिलाषाओं (wishes) के अनुसार है, क्योंकि जिन सरणियों (channels) में प्रबल मांग बड़े लाभो का सृजन कर रही है वहां साधनों को मुक्त रूप से निदेशित करने मे उत्पादकों को कानून द्वारा रोक दिया जाता है।) लेकिन, जिस मात्रा तक पूर्ण द्विरूपकरण (duplication) की अनुमति के कारण विविधता के सृजन में वैयक्तिक उपक्रम पर रोक लग जाती है, यह विश्वास करने का कारण है कि ऐसी रोक बेफायदा नहीं होगी। क्योंकि कम एकाधिकार का सृजन किया जा सकेगा, इसलिए उसका सृजन करने की कोशिश में कम ध्यान दिया जाएगा और उत्पादन में तदनुसार अधिक ध्यान दिया जाएगा। हो सकता है कि "व्यापारी" कम और श्रमिक अधिक हो जाएं। बेमतलब विशिष्टीकरण हतोत्साहित होगा। परिणाम पूर्ण मानकीकरण नहीं होगा, क्योकि उपभोक्ताओं की विविधता की कामना का उत्पादन के दिशा-निर्देशन पर स्वाभाविक प्रभाव फिर भी होगा। जहां तक नवीन क्रियाओं (innovations) का सम्बन्ध है, यदि कोई नया विचार पर्याप्त महत्वपूर्ण हो, तो सीमित काल के लिए पेटेन्ट की सम्भावना फिर भी बनी रहेगी, और किसी भी स्थिति में, प्रतियोगियों के प्रकट होने में लगने वाले समय के पहले किसी क्षेत्र में पहले उत्पादक को अल्पकालिक रूप से मिलने वाले "उद्यम" लाभ फिर भी बने रहेंगे। यदि यह अपर्याप्त हो, तो सीमित अवधि के लिए व्यापार-चिह्न के अनन्य उपयोग की मंजूरी दी जा सकती है, और यह मंजूरी उन्हीं नियमों के अन्तर्गत दी जा सकती है जिनके अन्तर्गत पेटेन्ट कानून में दी जाती है, मान लो कि पांच वर्ष के लिए, जिसके उपरान्त कोई भी एक-रूप उत्पाद बना सके, और उसे वही नाम दे सके। विज्ञापन पर अपव्यय, जिसके बारे मे अर्थशास्त्रियों ने बहुधा असन्तोष प्रकट किया है, घट जाएगा, क्योंकि इस रीति से कोई भी सुनाम प्राप्त करने में समर्थ नहीं होगा, जो प्रतियोगियों के अबाध प्रवेश के कारण उसके देखते-देखते लुप्त हो जाएगा। सब उत्पादकों को मिलने वाले प्रतिफल लगभग समान होंगे और दीर्घकालीन एकाधिकार लाभों का विलोपन हो जाएगा। सब मिलाकर, महत्वपूर्ण यह है कि उन हितकारी परिणामों के अधिक समीप पहुँचा जाएगा, जिनके बारे में साधारणतः सोचा जाता है कि वे "मुक्त प्रतियोगिता" के अन्तर्गत अपने को निष्पन्न करते हैं।

परिशिष्ट छ

विक्रय लागत की परिभाषा

मेरा विश्वास है कि अध्याय 6 का विश्लेषण, जिसका लक्ष्य विक्रय लागत और उत्पादन लागत में भेद करना और इस प्रभेद का परिष्कार करना है, कुल मिलाकर सही है; परन्तु वह अपर्याप्त है और इसलिए भ्रमकारी है। उसमें कमी यह है कि वह एक मुख्य वाद-विषय को स्पष्टतः स्वीकार नहीं करता और उसका विवेचन नहीं करता है। यह वाद-विषय है विक्रय लागत और उत्पाद में **परिवर्तन करने** की लागत में भेद।

विक्रय लागत की अनेक परिभाषाएं दी गई हैं,[1] और उन सब में उत्पादों की मांगों का सृजन या विवर्तन सन्निहित है। यह कहा जा सकता है कि सदा एक **दिए हुए** उत्पाद की मौन रूप से कल्पना की गई प्रतीत होती है ("किसी उत्पाद", "पूर्व-वर्णित उत्पाद", आदि का उल्लेख लगातार किया गया है); और यदि उत्पाद वास्तव में **दत्त** है, तो उसे बदलने की कोई समस्या वस्तुतः हो ही नहीं सकती, और इसलिए परिवर्तन की लागत की भी कोई समस्या नहीं हो सकती।

लेकिन जब उत्पाद की परिवर्तनीयता स्वीकार की जाती है (जैसा अवश्य किया जाना चाहिए), तो संभव सम्भ्रम इस तथ्य के कारण उत्पन्न होता है कि उसमें परिवर्तन सामान्यतः मांग में परिवर्तन कर देता है (क्योंकि तब वह एक **भिन्न** उत्पाद है)। इसलिए, यह निर्देश करना कि व्यय "मांग को बदल देता है" आवश्यक रूप से स्थापित नहीं करता कि वह विक्रय लागत है। प्रत्युत्, यदि कोई व्यय मांग वक्र को दाहिनी ओर हटा देता है तो यह (अब तक) अनुत्तरित प्रश्न बना रहता है कि क्या व्यय का परिणाम नया उत्पाद हुआ है, जिसकी मांग प्रबलतर है (और इसलिए वह नये उत्पाद की उत्पादन लागत है) या उसने पुराने उत्पाद की मांग को केवल बढ़ाया है (और इसलिए उसकी विक्रय लागत है)। वस्तुतः, यह संभावना प्रकट होती है कि उसे बिल्कुल मनमाने ढंग से पहली या दूसरी समझा जा सकता है। यह प्रधान मामला है जिसके अनुसंधान की आवश्यकता है।

प्रस्तुत ग्रंथ में आर्थिक चर के रूप में उत्पाद का सीमित मात्रा में विवेचन किया गया है, और अन्यत्र उसका कहीं अधिक विस्तृत वर्णन किया गया है।[2] यहां जिस विस्तृत अर्थ मे "उत्पाद" शब्द का प्रयोग किया गया है उसका केवल स्मरण करना आवश्यक है।[3]

जिस मामले से हमारा सम्बन्ध है उसका निदर्शन अमरीकी कारों के "फिनों" (fins) के घिसे-पिटे उदाहरण से किया जा सकता है। क्या वे एक फिन वाली कार के **उत्पादन** की लागत के भाग हैं, या एक ऐसी कार के **विक्रयण** की लागत हैं जिसकी फिन के बिना कल्पना की गई है?

उत्पाद विशिष्टीकरण के अधिक सतही माने गए पहलुओं के बारे में आलोचनात्मक रूप से कहना, और इस प्रकार के सब व्ययों को विक्रय लागत के प्रवर्ग में डाल देना, एक आम प्रथा है, विशेषकर के इस विषय के अंग्रेज लेखकों में। इस प्रकार श्री काल्डर विक्रय लागत मे 'गुण (quality) पर तथा और अधिक विविधता पर 'अतिरिक्त व्यय को' (वह जो भी हो) और 'बनावट' (style) लागत, महंगे वेष्टन की लागत, इत्यादि को" सम्मिलित करते है।[4] यह दृष्टिकोण सर्वथा असमर्थनीय प्रतीत होता है। आखिर, "अतिरिक्त" गुण क्या है ?—जिसे श्री काल्डर या कोई और आवश्यक समझे उससे अधिक ? और जहां तक फैन्सी वेष्टन की बात है, क्या हम उसे केवल इसलिए एक विक्रय लागत कहें क्योंकि वह "सजावटी" है ? उपहार देने के लिए खरीदे गए किसी पदार्थ का उपहार-वेष्टन विक्रय लागत क्यों है, जबकि अन्य पदार्थ को बादामी कागज में लपेटना नही है ? जहां तक बनावट का सम्बन्ध है, क्या हम यह कहें कि न्यूनतम "कामचलाऊ" सूट या स्त्रियो की पोशाक के उत्पादन के लिए आवश्यक व्यय के बाद वस्त्रों पर किया गया कोई व्यय एक विक्रय लागत है ? इसमे जो चीज सन्निहित प्रतीत होती है वह यह है कि जिसे "आधारभूत इंजीनियरी" व्यय कहा जा सकता है उसके परे किसी व्यय का सामान्य विरोध।[5] इसके अतिरिक्त, ऐसे मामलों में हर एक का निर्णय भिन्न-भिन्न होगा। हो सकता है कि कई लोग, जिसे श्री काल्डर "अतिरिक्त" गुण कहते हैं, उसके लिए खर्च करना पसन्द करे और करेंगे भी। सिगरेटों के वेष्टन पर छपा हुआ ऊंट उन्हें "बेचने" में निस्संदेह अपना अंशदान करता है, परन्तु यदि हम उसे विक्रय लागत कहें तो फिर रुकने की कोई जगह नही है। वेष्टन के चारों ओर लिपटे हुए सेलोफेन को भी हो सकता है कि विज्ञापन कहा जाए—वास्तव में कई ने उसे कहा है। वेष्टन स्वयं विज्ञापन हो सकता है। वह वस्तुतः "सजावटी वेष्टन" का एक सम्भव उदाहरण है, क्योंकि कई सिगरेटें कभी-कभी किसी वेष्टन के बिना एक-एक करके बेची जाती हैं।

भोजनालय में भोजन तैयार करने और परोसने की लागत स्पष्टतः उत्पादन की लागत लगती है। परन्तु भोजन सामग्री की तालिका को, सूचना समझने पर, क्या माना जाए—उत्पादन या विक्रयण ? और यदि वह किसी समाचारपत्र में विज्ञापन के रूप में छपा है, तब ? उत्पादन की लागतें कहां समाप्त होती हैं और विक्रयण की लागत कहां शुरू होती हैं ?

ऐसे उदाहरणों से इस निष्कर्ष पर पहुंचना बिल्कुल सम्भव प्रतीत होता है कि सीमा रेखा सर्वतः स्वेच्छ है। वस्तुतः श्री काल्डर उनमें हैं जो विश्वास करते है कि ऐसा है। वे कहते हैं कि "कोई तर्कसंगत प्रभेद नहीं किया जा सकता है।"[6] एक चरम स्थिति यह है कि सब व्ययों पर विक्रय लागतों के रूप में विचार किया जा सकता है, क्योंकि उन सब का प्रभाव मांग वक्र को ऊपर को उठाना होता है। उनके द्वारा दिया गया उदाहरण यह है कि "डर्हम में खान के तले से लन्दन के बैठकखानों के मार्ग पर कोयले का प्रत्येक ढेला, जैसे-जैसे वह एक सिरे से दूसरे सिरे तक यात्रा करता है, अपने

मांग वक्र को निरन्तर ऊपर को या दाहिनी ओर 'हटा रहा है'।" परन्तु यह हास्यास्पद है, और मैं सोचता हूँ कि गलती कहां है यह प्रकट करने के लिए भी उदाहरण अच्छी तरह से अभिकल्पित है। यदि कोयले की गाडी अपनी माग को अपने आगे वास्तव में ढकेलती चलती, तो वह चाहे किसी भी दिशा में चलती ऐसा सदा करती—लन्दन की ओर चलने में और विपरीत दिशा मे चलने मे भी। दूसरे शब्दो मे, कोयले की गाडी के लन्दन की ओर जाने का कारण यह है कि वहां कोयले की माग पहले ही से है। वह मांग का सृजन नही करती—वह माग पूरी करने जाती है। कोयले के परिवहन की लागत एक उत्पादन लागत है, न कि विक्रय लागत। अधिक सामान्यतया, किसी उत्पाद के उत्पादन की लागत स्वत: उसकी माग का सृजन नही करती। यदि वह ऐसा करती, तो बाजार के अभाव के कारण कोई कभी दिवालिया न होता। यह निष्कर्ष अवश्य निकलता है कि सब उत्पादन लागतों को विकल्पत: विक्रय लागत **नहीं** समझा जा सकता है। यह निष्कर्ष आत्यन्तिक महत्व का है, क्योंकि यह विक्रय लागतों के प्रवर्ग से, यह सरल प्रमाण देकर कि वे अर्थहीन हैं, कि **सब** लागतें किसी न किसी अर्थ मे विक्रय लागत है, निवटने पर रोक लगाता है।

तिस पर भी, यह सच है और इसके संगत है कि एक अर्थ है जिसमें सब विक्रय लागतों को उत्पादन की लागत समझा जा सकता है। किसी बियर कम्पनी के खर्चे पर बेसबौल के खेल की टेलीविजन पर प्रसार की लागत, जिसे (संयुक्त राज्य में) सब मुफ्त देख सकते है, विज्ञापन लागत और इसलिए निस्संदेह विक्रय लागत प्रतीत होगी। इसके विपरीत, इसे एक टेलीविजन कार्यक्रम की केवल उत्पादन लागत समझा जा सकता है—उदाहरणार्थ, इंग्लैड में जहां (मेरा ख्याल है कि) टेलीविजन मनोरंजन का भुगतान कई वर्षों से टेलीविजन सैट के स्वामियों पर कर लगाकर किया जाता रहा है; और इस प्रकार के मनोरंजन के विपणन की अन्य रीतियां स्पष्टत: कल्पनीय है।

इसी प्रकार विज्ञापन-पट्ट पर लगा हुआ कैमल सिगरेट का विज्ञापन एक उत्पाद समझा जा सकता है जो स्वभावतया मुफ्त दिया जाता है, और प्रत्येक को यह विशेष सुविधा प्रदान करता है कि उसके पास से गुजरते समय उसे देखे। सच है कि वह एक ऐसा उत्पाद है जिसे कोई नही चाहता, तिस पर भी उत्पाद तो है ही। सम-रूपत:, सब विज्ञापन और विक्रयण कार्यों को किसी प्रकार के "उत्पादों" या सेवाओं का उत्पादन समझा जा सकता है (जो यदि उसी रूप में अलग से विक्रयार्थ प्रस्तुत किए जाएं तो हो सकता है कि उनकी कीमतें लागत से सारवान रूप से अधिक से लेकर शून्य तक, या ऋणात्मक राशि भी, हो सकती है)।

तो, हम उत्पादन की लागत और विक्रय लागत में संक्षेपत: भेद कैसे करें (यह स्वीकार करते हुए, जैसा कि अवश्य किया जाना चाहिए, कि विक्रय लागत को **किसी चीज** के उत्पादन की लागत भी समझा जा सकता है)? जो कसौटी मैं प्रस्तावित कर रहा हूँ वह बाजार से ही प्राप्त होती है। प्रश्न सीधे-सीधे यह है कि क्रेता क्या खरीदता है, और विक्रेता क्या बेचता है? यथार्थत: वह क्या है जो "संविदा" का विषय

है ? इस दृष्टि से विचार करने पर एक प्रभेदक रेखा का संकेत स्पष्टतः मिलता है : उत्पाद में प्रत्येक ऐसी चीज सम्मिलित है जो उत्पाद को बेचने पर उसके साथ जाती है (जिसमें सेवाएं भी सम्मिलित हैं), और जिसे हम विक्रेता से क्रेता के पास जाने वाला "बंडल" कह सकते हैं उसे बनाती है, और उसकी लागत उत्पादन की लागत है। इस 'बंडल" से पृथक् मदों पर, जो अलग से बांटी जाती हैं, व्यय विक्रय लागत है।

इस कसौटी पर संयुक्त राज्य में टेलीविजन कार्यक्रम स्पष्टतः एक विक्रय लागत है। उसका वितरण स्वतन्त्र रूप से किया जाता है, जिससे उसे देखने वालों में से कई उस बियर को नहीं खरीदते, और उस बियर को खरीदने वालों में से कई टेलीविजन कार्यक्रम को नहीं देखते। रेस्त्रां की मेज पर रखी गई व्यंजन-सूची एक उत्पादन लागत है, परन्तु बाहर वालों के फायदे के लिए खिड़की पर चिपकाए जाने पर वह एक विक्रय लागत हो जाती है। सिगरेट की डिबिया पर छपा हुआ ऊंट एक उत्पादन लागत है क्योंकि उसके प्रत्येक खरीदार को वह मिलता है, परन्तु विज्ञापन-पट्ट पर बनाए जाने पर वह उत्पादन लागत नहीं है। सेलोफेन वेष्टन, और सामान्यतया, "अतिरिक्त" गुण, फैन्सी वेष्टन और बनावट, ये सब इस परिभाषा के अनुसार स्पष्टतः उत्पाद के भाग हैं।

इस प्रकार की कसौटी निश्चित रूप से स्वेच्छ नहीं है; और उसमें यह गुण भी है कि वह वास्तविक है और साधारण बोध के अनुसार है, और ऐसी बेतुकी बातों से बचाती है जैसे बियर के उदाहरण में यह कहना कि "उत्पाद" बियर की एक बोतल और टेलीविजन कार्यक्रम के एक अंश से बना हुआ है। क्योंकि एक सीमा-रेखा है इसलिए स्वभावतः विवादास्पद स्थितियां भी होंगी। परन्तु विशेष उदाहरणों में इस नियम को लागू करने की कठिनाइयों को समझना यह कहने से सर्वथा भिन्न है कि सब मनमाना है और यह कि कोई नियम नहीं है, जिससे उत्पादन और विक्रय लागतों का भेद मिट जाता है।

विवादास्पद स्थितियां अधिकांशतः इन प्रश्नों में परिणत हो जाती हैं कि क्रेता यथार्थतः क्या खरीदता है—उसे क्रेता के रूप में क्या दिया जाता है जो उसे अन्यथा न दिया जाता ?

यहां विज्ञापन स्पष्टतः वर्जित प्रतीत होता है, क्योंकि वह सामान्य रूप से प्रस्तुत किया जाता है, केवल उन्हीं को नहीं जो खरीदते हैं। यह इसके संगत है कि जो खरीदते हैं वे उत्पाद की कीमत में इतना काफी दे देते हैं कि विक्रय लागतें औसतन पूरी हो जाती हैं। बात यह है कि उन्हें विज्ञापन प्राप्त करने के लिए भुगतान नहीं करना पड़ता, और यह कि भुगतान न करने वाले अन्य लोगों को वह प्राप्त हो सकता है (दोनों स्थितियों में, चाहे वे चाहें या न चाहें) : इसलिए वह "संविदा" का भाग नहीं है। इस पर गौर करना चाहिए कि चाहे विवादास्पद सेवाओं का, उदाहरणार्थ टेलीविजन कार्यक्रम का, अलग से लाभ पर विपणन किया जा सके या न किया जा सके, विज्ञापन निकाल दिया जाता है।[7]

अब "संविदा" पर ही ध्यान देने पर, क्रेता यथार्थतः क्या खरीदता है, इसके सम्बन्ध में प्रश्न केवल इस कारण से उठते हैं कि उत्पाद (और सेवाएं) वास्तव में सम्मिश्र हैं, जो लगभग अनिश्चित रूप से भागों में (कम से कम वैश्लेषिक रूप से) विभाजित किए जा सकते है, जिससे कोई क्रेता सम्मिश्र के ऐसे तत्वों को भी लगभग अनिवार्यतः खरीदता है या कम से कम उनके लिए भुगतान करता है जिन्हें वह वस्तुतः नहीं पाना चाहता। वह उनका परिहार करने में सफल हो भी सकता है और नहीं भी। वह सफल होगा यदि उसके पास खरीदते समय विचाराधीन तत्व को अस्वीकार करने का विकल्प है। इसका एक सरल उदाहरण है फुटकर व्यापार में उधार और गृह-डिलीवरी की वह स्थिति जिसमें जो इन्हें चाहते है उन्हें ये प्रदान की जाती हैं, परन्तु जो नकद लेना और अपनी खरीदारी को साथ ले जाना पसन्द करते हैं वे इन्हें अस्वीकार कर सकते हैं। परन्तु यदि विचाराधीन तत्व उत्पाद में समाविष्ट हैं और उससे पृथक् नहीं किए जा सकते तो यह सफल नहीं होगा। पृष्ठभाग के फिनों के बारे में ऐसा ही है। जब मैंने कार खरीदी तो उसमें लगे हुए फिन मुझे खास तौर से भद्दे लगे (और अब भी लगते है); फिर भी मुझे अन्य कारणों से वह कार पसन्द थी, और मैंने उसके साथ फिन भी खरीदे क्योंकि और कोई विकल्प नहीं था।

विज्ञापन के साथ इन दोनों स्थितियों में सर्वनिष्ठ यह है कि समूह के रूप में क्रेताओं पर एक ऐसी चीज की समष्टिक (global) लागत का एक हिस्सा "थोपा" जा रहा है जिसे हो सकता है कि वे न चाहें, और उन्हें जो वे यथार्थतः चाहते हैं उसे समुपयुक्त रूप से समायोजित कीमत पर प्राप्त करने से रोका जा रहा है। लेकिन, विचाराधीन तत्व **केवल क्रेताओं के लिए** प्रस्तुत किए जा रहे है, और इस बात में उनमें और विज्ञापन में महत्वपूर्ण भेद है।

इसे अनदेखा नहीं करना चाहिए कि स्थिति को उलटा भी रखा जा सकता है : कई क्रेता सम्मिश्र उत्पाद मे, हो सकता है, ऐसे तत्वों को चाहें (और उनके लिए भुगतान करने को तैयार हों) जो प्रस्तुत नही किए जाते। उदाहरणार्थ, हो सकता है कि वे दुकान से उधार लेना और गृह-डिलीवरी पसन्द करें जबकि उन्हें नकद देना पड़ता है और सामान स्वयं ले जाना पड़ता है; परन्तु वे अन्य कारणों से उसी दुकान से खरीदारी करते हैं, जैसे सुविधा, उत्कृष्ट प्रकार, इत्यादि। निस्संदेह, जिस मात्रा तक यह व्यवहार्य हो, उत्पाद के भाग अलग-अलग बेचे जा सकते हैं और कीमत में तदनुसार परिवर्तन किया जा सकता है (उदाहरणार्थ, डिलीवरी के लिए अतिरिक्त प्रभार लिया जाना); और जिस मात्रा तक यह किया जाता है, सामान्य समस्या का महत्व घट जाता है।[8] विभिन्न विक्रेताओं द्वारा "विविधता" की व्यापक मांग के अनुसार "उत्पादों" के अनुकूलन को भी अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए। (इस प्रकार कुछ दुकानें नकद बिक्री करेंगी और अन्य उधार की सुविधा देंगी, इत्यादि।) परन्तु यह तथ्य बना रहता है कि बाजार में किसी ऐसे उत्पाद या सेवा को पाना जो हर बात में ठीक वैसा है जैसा एक क्रेता चाहता है, वस्तुतः एक

विरल अनुभव अवश्य है। आवश्यकताओं की वास्तविक विविधता को सन्तुष्ट करने के लिए जो प्रतिरूपी स्थिति पाई जाती है वह यह है कि एक मानकित उत्पाद होता है, जो पैमाने की किफायतो के कारण सस्ता होता है, परन्तु किसी विशेष क्रेता द्वारा जो चाहा जाता है उसके केवल अपूर्णतया अनुरूप होता है। एक ओर तो पैमाने की किफायतें और दूसरी ओर विविधता की मांग, इन दोनों में समझौते का मूल-नियम चर के रूप में उत्पाद के सिद्धान्त में सुपरिचित है।[9]

सामान्य विश्लेषण मे "उत्पाद" शब्द के विस्तृत अर्थ को निरन्तर ध्यान में रखना चाहिए। उपर्युक्त विवेचन में उधार और गृह-डिलीवरी को उत्पाद विचरणों की संपूर्ण चित्रमाला का विवरण देने वाले सरल दृष्टान्त समझा जाना चाहिए।

इस तथ्य का उल्लेख बहुधा कीमत-भेद के हलके प्रकार के रूप में किया जाता है कि हो सकता है कि क्रेता एक ही कीमत पर भिन्न-भिन्न उत्पादों को प्राप्त करें, जिससे कुछ को अन्य से अधिक मिलता है (जैसे डिलीवरी की सुविधा)—अर्थात्, यह स्थिति **एक ही** चीज को **विभिन्न** कीमतों पर प्राप्त करने के लगभग समतुल्य है। इसमे सन्देह नही कि कीमतें लागतों के ठीक-ठीक अनुरूप होने में विफल हुई हैं, परन्तु यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि यह विफलता बहुत व्यापक है। उदाहरणार्थ, फुटकर व्यापार में क्रेता उत्पाद से अपनी दूरी के अनुसार सुविधा की विभिन्न राशियां खरीदते हैं, और पुनः तर्क बहुत सामान्य है, जो "आर्थिक" एवं भौगोलिक दूरी पर लागू होता है। प्रत्यक्षतः यह समस्या बहुत संश्लिष्ट है, परन्तु यह समझ लेने पर कि बहुत थोड़े लोग या तो (1) जो वे यथार्थतः चाहते हैं वह पाते हैं, या (2) उनके उत्पादन की लागत के यथार्थतः बराबर भुगतान करते हैं, उस पर निश्चित रूप से नया प्रकाश पड़ता है। इस क्षेत्र में (1) क्रेता को ठीक क्या प्राप्त होता है और (2) उसके लिए वह ठीक क्या भुगतान करता है, इसका, और इसलिए विवादास्पद स्थितियों का, विवेचन करने की गुंजाइश स्पष्टतः है।

कुछ निश्चित प्रकार के विज्ञापनों के बारे में एक प्रश्न उठाया जा सकता है—उन विज्ञापनों के बारे में जो किसी उत्पाद की प्रतिष्ठा बढ़ाते हैं, या जो उस पदार्थ के बारे में उसके क्रेता और स्वामी के गुण-दोष विवेचन को किसी न किसी प्रकार बढ़ाते हैं। यद्यपि वह विज्ञापन का परिणाम है, बढ़े हुए "तुष्टिगुण" को उत्पाद का एक भाग समझा जा सकता है, और इसलिए इस अर्थ में उत्पादन की लागत समझा जा सकता है कि वह प्रत्येक क्रेता को मिलता है, भले ही कुछ लोग उसकी परवाह न करें। यह भी सम्मिश्र उत्पाद के एक ऐसे तत्व का केवल उदाहरण प्रतीत होता है जो क्रेता को मिलता है, भले ही वह उसके लिए भुगतान न करना चाहे।

अन्त में, हम एक विवादास्पद समस्या का उल्लेख करें जो इस तथ्य के कारण संभवतः उत्पन्न होती है कि, हो सकता है कि, किसी उत्पाद में एक दिया हुआ परिवर्तन करना लाभकर न हो, यदि उसका विज्ञापन न किया जाए (निश्चित है कि उसका विज्ञापन तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि वह वास्तव में बना नहीं

लिया जाता), और यह कि परिवर्तन करने और लोगों को उसके बारे में बताने की सब लागतें स्पष्टत: नियतकरणीय (allocable) न हों। कार में फिन लगाने के लिए औजारों और सांचों तथा श्रम की लागत स्पष्टत: उत्पादन लागत है; और लोगों को फुसलाने की, कि यही वे चाहते हैं, लागत स्पष्टत: विक्रय लागत प्रतीत होती है। परन्तु, दृष्टान्त के लिए, सम्पूर्ण प्रायोजना पर विचार-विमर्श करने में लगा प्रबन्धकों का समय केवल मनमाने ढंग से नियत किया जा सकता है।

यद्यपि उल्लिखित समस्याओं जैसी विवादास्पद समस्याएं कतिपय प्रयोजनों के लिए चिन्ता का विषय हो सकती हैं, यह समझा जाना चाहिए कि वे जिन शुद्धत: प्राविधिक समस्याओं को उत्पन्न करती हैं उनका आसानी से समाधान हो सकता है। हान्स ब्रैम्स ने दिखाया है[10] कि उत्पाद विचरण की कतिपय समस्याओं का प्रतिपादन लेखाचित्रीय रूप से ठीक वैसे ही किया जा सकता है जैसे चित्र 22 (पृ० 116) में विक्रय लागत का। उदाहरणार्थ, एक निश्चित "न्यूनतम" उत्पाद की कल्पना करके, उसमें सुधार करने और इस प्रकार उसकी बिक्री बढ़ाने पर अनुक्रमिक व्ययों को ठीक उसी प्रकार दिखाया जा सकता है जैसे चित्र 22 में OF' कीमत पर विक्रय लागत को दिखाया गया है; जिससे किसी दी हुई कीमत पर "इष्टतम" उत्पाद का पता लग जाता है। इसी प्रकार, उसी विश्लेषण में उत्पाद-सुधार और विक्रय लागत को **संयुक्त** किया जा सकता है : न्यूनतम उत्पाद और विज्ञापन न करने की स्थिति से शुरू करके, दोनों पर एकसाथ व्यय किए जा सकते है, जिसमें सदा कल्पना की जाती है कि उनके और सामान्यतया साधनों के इष्टतम उपयोग के बीच उसका सर्वोत्तम वितरण होता है। जब प्रत्येक संभव कीमत के लिए ऐसा कर लिया जाता है, तो हमें प्रत्येक कीमत के लिए प्रकार-सुधार **और** विक्रय लागत पर इष्टतम व्यय का **बिन्दुपथ वक्र** मिलता है,[11] जिससे हम सर्वोत्तम कीमत प्राप्त करते हैं, और इस प्रकार फर्म के **चार** चरों, विक्रय लागत, उत्पाद, कीमत और उत्पत्ति, के लिए फर्म का इष्टतम प्राप्त करते हैं। उत्पाद विचरण और विक्रय लागत के बीच विवादास्पद स्थितियों को चाहे जिस ढंग से घुमाया जाए, प्रत्यक्ष है कि अन्तिम परिणाम वही होना चाहिए।

यह शुद्धत: प्राविधिक परिणाम आश्चर्यजनक नहीं है, और प्रत्यक्षत: विक्रय लागतों और उत्पादन की लागतों के बीच प्रभेद बनाए रखने के महत्व के बारे में ऊपर दिए गए विवेचन से सर्वथा स्वतन्त्र है।

परिशिष्ट ज

विक्रेताओं की संख्या और लोचें*

मैं सोचता हूँ कि अधिकांश अर्थशास्त्री इस सामान्य स्थापना से तुरन्त सहमत होंगे कि किसी बाजार में विक्रेताओं की संख्या जितनी ही अधिक होगी, प्रत्येक विक्रेता की मांग की लोच उतनी ही अधिक होगी। इस परिशिष्ट का उद्देश्य कुछ सरल उदाहरणों से यह प्रमाणित करना है कि यह स्थापना केवल कुछ विशेष कल्पनाओं के अन्तर्गत सच है। यह समझना महत्वपूर्ण है कि ये कल्पनाएं क्या हैं, क्योंकि जो इस स्थापना को स्वीकार करते हैं वे इन्हें मान लेते हैं, भले ही शायद अचेतन रूप से। सामान्य नियम (principle) के कथन के रूप में यह सही बिल्कुल नहीं है, और इसकी विवेकरहित स्वीकृति का परिणाम केवल हानिकर हो सकता है।

यह सुविदित है कि किसी बिन्दु पर किसी वक्र की लोच उस बिन्दु पर उसकी स्पर्शरेखा के दो खंडों के अनुपात द्वारा बताई जाती है : x-अक्ष तक जाने वाला

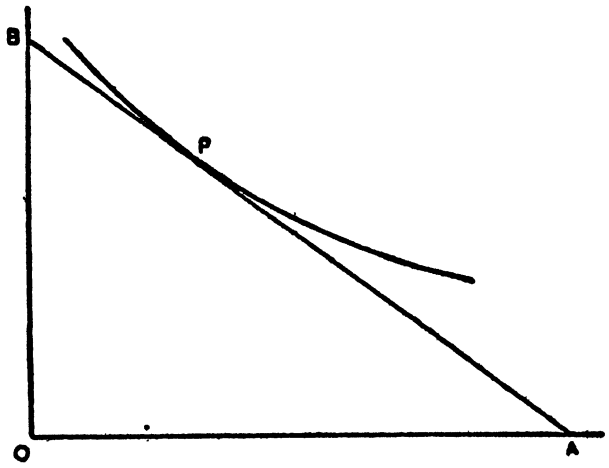

चित्र 41

खंड बटा y-अक्ष तक जाने वाला खंड।[1] इस प्रकार चित्र 41 में, P बिन्दु पर DD की लोच PA/PB है। इस परिशिष्ट के प्रारम्भिक भाग में लोच मापने की इस रीति का उपयोग किया जाएगा। वास्तव में सरलतम क्रियाविधि यह है कि केवल एक सरल रेखा मांग वक्र पर सीधे विचार किया जाए, जिसकी लोच, इस नियम से, y-अक्ष पर ∞ से उसके मध्य बिन्दु पर एक हो कर $2x$-अक्ष पर शून्य प्रत्यक्षतः हो जाती है।

जिस नियम को यहां चुनौती दी जा रही है उसका सबसे अहितकर प्रभाव निस्संदेह उत्पाद विशिष्टीकरण के क्षेत्र में पाया जाएगा,[2] और विषय की इस अवस्था पर बाद में संक्षेपत: विचार किया जाएगा। पहले हम एकरूप उत्पाद की सरलतर स्थिति का अनुसंधान करेंगे, जहां यह सोचा जा सकता है कि संख्या और लोच में अनुलोम सहसम्बन्ध (direct correlation) लगभग स्वयंतथ्यमूलक है।

जो इस अनुलोम सहसम्बन्ध में विश्वास करते हैं वे, शायद बिना जाने, इस अर्थ में कूर्नोवादी हैं कि वे एक विक्रेता के मांग वक्र की लोच पर इस कल्पना के अन्तर्गत विचार कर रहे है कि अन्य विक्रेताओं द्वारा प्रस्तुत की गई राशियों में परिवर्तन नहीं होता। और कूर्नो के ढाँचे के अन्तर्गत भी वे एक और कल्पना कर रहे हैं

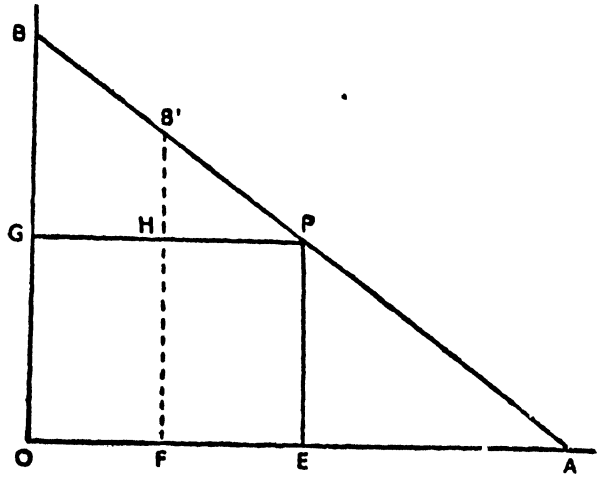

चित्र 42

कि विक्रेताओं की संख्या बढ़ने पर कीमत, और इसलिए बेची गई कुल राशि, वही बनी रहती है, जिससे प्रत्येक विक्रेता नियत कुल बिक्री का एक अल्पतर अंश प्रदान करता है। इन प्रतिबन्धों के अन्तर्गत वह सच है। इस प्रकार चित्र 42 में, सरल रेखा मांग वक्र BA का मध्य बिन्दु P है, और उत्पादन की लागत शून्य मानी गई है। अब यदि एक विक्रेता के हाथ में OE उत्पत्ति है, तो कीमत EP होगी, और लोच PA/PB अर्थात् एक है। यदि OE को दो विक्रेताओं में बराबर बाँट दिया जाए, जिससे प्रत्येक OF $(=FE)$ राशि प्रस्तुत करता है, और यदि प्रत्येक अपने प्रतिद्वन्द्वी की पूर्ति को दत्त मानता है, तो यह ऐसा है जैसे कि वह चित्र के उस भाग की उपेक्षा कर देता है जो बिन्दुरेखा FB' की बायीं ओर है, और अपनी गणनाओं के लिए FB' को y-अक्ष मानता है। इसलिए P बिन्दु पर उसके मांग वक्र की लोच PA/PB' अथवा 2 है। इस प्रक्रिया को जारी रखने पर यह प्रत्यक्ष है कि जब OE को

अधिकाधिक विक्रेताओं में बाँटा जाता है तो इस सरल उदाहरण में P पर किसी एक विक्रेता के लिए लोच संख्यात्मक रूप से विक्रेताओं की संख्या के बराबर होती है, और इसलिए जब विक्रेताओं की संख्या बहुत बड़ी हो जाती है तो वह ∞ की ओर बढ़ती है।

इस परिणाम को लोच के सूत्र $\epsilon = pdq/qdp$ के शब्दों में एक दूसरे ढंग से कहा जा सकता है। वर्तमान उदाहरण में p और dq/dp दोनों स्थिरांक हैं, जबकि फर्मों की संख्या के ∞ की ओर बढ़ने पर (एक-एक फर्म के लिए) q शून्य की ओर बढ़ता है। इसलिए ϵ, ∞ की ओर बढ़ता है।

लेकिन, यहां तक प्राप्त परिणाम कीमत को, और इसलिए कुल बिक्री को, स्थिर रखकर मिला है। वास्तव में EP **केवल** एक विक्रेता की सन्तुलन कीमत है; और अब यदि हम पूछें कि **सन्तुलन में** एक विक्रेता की मांग की लोच का क्या होता

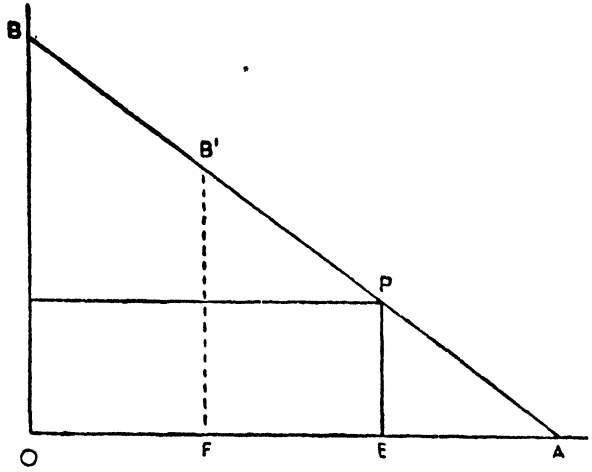

चित्र 43

है, तो उत्तर भिन्न है। चित्र 43 में दो विक्रेताओं का सन्तुलन दिखाया गया है, जिसमें $OF = FE = EA$। प्रत्येक विक्रेता की पूर्ति $OF(=FE)$ है और सन्तुलन कीमत EP है। एक-एक विक्रेता के लिए मांग की लोच $P.1/PB' = 1$ है, ठीक वैसे ही जैसे एक अकेले विक्रेता के लिए थी, और विक्रेताओं की संख्या बढ़ने पर **सन्तुलन के अन्तर्गत** वह इकाई बनी रहती है, जिससे विक्रेताओं की संख्या के ∞ की ओर बढ़ने पर भी उसका सीमान्त (limiting) मान इकाई ही बना रहता है। बृहत्तर संख्या का आशय **सन्तुलन में** उच्चतर लोच नहीं होता है, और ऐसा लगता है कि यह प्रश्न कि सन्तुलन में लोच का व्यवहार क्या होता है, इस प्रश्न से अधिक महत्वपूर्ण है कि किसी विशेष और स्वेच्छया चुनी गई कीमत पर उसका व्यवहार क्या होता है।

अब हम कूर्नो से विदा लेते हैं और कीमत प्रतियोगिता की अधिक सुपरिचित —और अधिक वास्तविक—कल्पना पर आते हैं। उत्तर फिर भिन्न है। चित्र 42

में, एक अकेले विक्रेता की सन्तुलन कीमत पहले की भाँति, EP है, और $\epsilon=1$। परन्तु दो विक्रेता होने पर, जिनमें से प्रत्येक $GH(=HP)$ बेच रहा है, उनमें से कोई भी कीमत में किंचित् कमी करके अपनी बिक्री को असतत रूप से बढ़ाकर HP से GP कर सकता है, और अपने प्रतिद्वन्द्वी के सब ग्राहकों को छीन लेता है। चूंकि EP से उच्चतर कीमत पर वह कुछ नहीं बेच पाएगा, और उससे अत्यणु (infinitesimal) रूप से निम्नतर कीमत पर वह GP बेचेगा, इसलिए हम कह सकते हैं कि उसके लिए मांग वक्र सन्निकटतः असतत रेखा GPA है। लेकिन, EP कीमत पर, चूंकि उसकी बिक्री केवल GH है, वह P पर नहीं बल्कि H पर स्थित है, और खंड HP बिक्री में उस परिमित वृद्धि को बताता है जो उसे कीमत में अत्यणु कमी करने पर प्राप्त होती है। यद्यपि उसके वास्तविक मांग वक्र में P पर एक कोना है, और वह x-अक्ष को A पर काटता है, फिर भी H पर उसकी एक "स्पर्शरेखा" x-अक्ष को ∞ पर काटती है। इसलिए H पर लोच $\infty/GH=\infty$ है।

विकल्पतः, हम गुणांक pdq/qdp का उल्लेख कर सकते हैं, और देखते हैं कि इस स्थिति में p और q स्थिरांक है जबकि dq/dp, ∞ हो जाता है, क्योंकि जब $\triangle p$ अत्यणु रूप से छोटा हो जाता है तो $\triangle q$ परिमित और स्थिर रहता है। इसलिए केवल दो विक्रेता होने पर भी ϵ,∞ हो जाता है, दो या दो से अधिक विक्रेता होने पर वह सदा ∞ होता है। और इसलिए इस परिसर में वह संख्या से स्वतंत्र है।

"कीमत प्रतियोगिता" की यह दूसरी कल्पना वही है जो अल्पाधिकार सिद्धान्त के इतिहास में बर्ट्रैंड और एँजवर्थ से बहुधा जोड़ी जाती है, और इन विभिन्न परिणामों से यह शिक्षा ली जानी चाहिए कि, इस कल्पना और कूर्नो की कल्पना के बीच, अपनी कल्पनाओं के अन्तर्गत प्रत्येक सही है, यह नहीं कि एक सही है और दूसरा गलत।[3] हमारे वर्तमान संदर्भ में हम कह सकते है कि ये कल्पनाएं मांग वक्र की विभिन्न **परिभाषाओं** में प्रतिबिम्बित होती है; और चूंकि इन दो स्थितियों में वक्र भिन्न है, इसलिए उसकी लोच स्वभावतः भिन्न होगी।

कई अन्य कल्पनाएं संभव है,[4] और दृष्टान्त के लिए, चलते-चलते, एक और पर भी शीघ्रता से विचार कर लिया जाए। यदि प्रत्येक विक्रेता कल्पना करता है कि उसके द्वारा किए गए किसी कीमत समायोजन का अनुसरण उसके प्रतिद्वन्द्वियों द्वारा किया जाएगा (यह "पारस्परिक आश्रितता स्वीकारने" का एक ढंग है),[5] तो सब कीमतों पर उसका मांग वक्र कुल का एक स्थिर अंश होगा। इस प्रकार चित्र 42 में, सम्पूर्ण बाजार के लिए एक सरल रेखा मांग वक्र BA होने पर, यदि उसे आपस में बराबर बाँटने वाले दो विक्रेता हैं, तो किसी एक अकेले का मांग वक्र B से E तक की सरल रेखा होगा, जो H से होकर जाती है (चित्र में नहीं खींची गई है)। विक्रेताओं की संख्या चाहे कितनी ही बड़ी हो, जब तक पारस्परिक आश्रितता की स्वीकृति रहती है, किसी एक के लिए मांग की लोच प्रत्यक्षतः इकाई होगी (सरल रेखा मांग वक्र और शून्य लागत की कल्पना के अन्तर्गत, जैसे चित्र 42 में)। लेकिन, संख्या

अल्प अवश्य होनी चाहिए क्योंकि जैसे-जैसे वह बढ़ती है, किसी एक विक्रेता की चाल का दूसरे पर प्रभाव घटता जाता है, और अन्त मे वह नगण्य हो जाता है, जब परस्पर आश्रितता की स्वीकृति की कल्पना मान्य नहीं रह जाती ।[6]

यह स्थिति इससे ठीक पहले की स्थिति की एक दिलचस्प विपरीत स्थिति है। दोनों स्थितियों में एक निश्चित परिसर में लोच संख्या से स्वतंत्र है। वर्तमान स्थिति में "अल्प" संख्याओं के परिसर में (जिनमें एक भी शामिल है) उसका स्थिर परिमित मान है; पिछली स्थिति में एक को छोड़कर सब बड़ी संख्याओं के परिसर मे उसका मान ∞ है।

संक्षेप में, एकरूप उत्पाद की सरल स्थिति में तक संख्याओं और लोच के सम्बन्ध के बारे में कोई मान्य सामान्यीकरण मिलता प्रतीत नहीं होता। एक विक्रेता (एकाधिकार) और "बड़ी" संख्या में विक्रेताओं (शुद्ध प्रतियोगिता) की चरम स्थितियों का केवल उल्लेख करना, और उन दो के बीच की स्थितियों का एक चरम स्थिति से दूसरी चरम स्थिति की ओर किसी प्रकार के सतत प्रक्रम के रूप में निरूपण करना बिल्कुल तर्कविरुद्ध है। अल्पाधिकार के मध्यवर्ती परिसर में जो होता है वह समस्या का सार है, और यहां हम इस तथ्य से नहीं बच सकते कि विभिन्न प्रकार की कल्पनाएं संभव भी हैं और तर्कसम्मत भी है। लोच का व्यवहार अल्पाधिकारियों के व्यवहार पर निर्भर करता है, और यह "मध्यवर्ती परिसर" अर्थव्यवस्था के अधिकांश को समाविष्ट करता है।

अब विशिष्टीकृत (या अनेकरूप) उत्पादों पर विचार करने में, पहले हम देखते हैं कि समस्या का सम्पूर्ण स्वरूप वैश्लेषिक रूप से रूपान्तरित हो जाता है। यहां, चूंकि प्रत्येक विक्रेता का उत्पाद अन्य के उत्पादों से भिन्न है, स्थिति के स्वभाव से **प्रत्येक उत्पाद का** केवल एक विक्रेता है। विक्रेताओं की बृहत्तर संख्या का तात्पर्य केवल यह है कि उत्पादों की सख्या तदनुसार बृहत्तर है; और उनके अन्योन्याश्रय का स्वभाव, जिस मात्रा तक वह उनके मांग वक्रों की लोचों में अभिव्यक्त होता है, केवल संख्या द्वारा निर्धारित नही होता। इस सरल सत्य की स्वीकृति से यह परिणाम तुरन्त निकलता है कि "समूह" में विक्रेताओं की संख्या और उनके मांग वक्रों की लोचों के बीच सम्बन्ध के बारे में कोई सामान्यीकरण संभव नहीं है।

इस विषय में एक प्रारंभिक भ्रम स्थानापन्नों की **संख्या** और उनकी **सुष्ठुता** (goodness) के बीच है। **अधिक** स्थानापन्नों का तात्पर्य आवश्यक रूप से उस अर्थ में **बेहतर** स्थानापन्न नहीं होता जो लोचों को बढ़ा देगा। वह लोचों को निस्सन्देह बढ़ा सकता है परन्तु, ठीक उसी तरह से, हो सकता है कि न बढ़ाए। यदि दुनिया के अर्थशास्त्र के सब प्रोफेसर पाठ्यपुस्तकें लिखें, तो यह सोचने का कोई कारण नहीं है कि किसी एक पुस्तक का माग वक्र अभी (जब, मान लो, लगभग आधे प्रोफेसर लिख रहे हैं) जितना लोचदार है उससे अधिक लोचदार हो जाएगा। वस्तुत:, चूंकि प्रत्येक प्रोफेसर हो सकता है कि अपनी पुस्तक को अधिमान दे और उसे अपने

विद्यार्थियों को सम्प्रेषित करे, इसलिए हो सकता है कि मांग पहले से कम लोचदार हो जाएं।

एक अन्य कारण के रूप में, विचार कीजिए कि कौन व्यक्ति ऐसा है जिसे दो की अपेक्षा बीस व्यंजनों वाली सूची में से चुनाव करना अधिक कठिन नहीं लगा ? बड़ी संख्या में प्रतियोगी पदार्थों में प्रत्येक पर अलग-अलग विचार करने (या उनके बारे में पता लगाने) में सन्निहित श्रम सामान्यतया बहुत महत्वपूर्ण कारक होता है। प्रत्येक क्रेता उनमें से बहुत कम पर प्रभावकारी रूप से विचार करने में शायद समर्थ होता है, जिससे संख्या अधिक हो जाने पर, लोच कुल मिलाकर नहीं बढ़ेगी, यद्यपि वह खरीदारियों का पुनर्वितरण कर देगी। वस्तुतः, हो सकता है कि वह उन्हें घटा दे—कोई **तर्कनापरक** (rational) परिवर्तन करने के लिए उसे बृहत्तर संख्या में विकल्पों को आजमाना पड़ेगा, जिसके कारण हो सकता है कि किसी विशेष विक्रेता (उत्पाद) में औसत क्रेता की निष्ठा अधिक दृढ़ हो जाए। यह एक सुपरिचित घटना अवश्य होनी चाहिए। स्थानापन्न न केवल कम अच्छे होने के अर्थ में दूर के हो सकते है, बल्कि इस अर्थ में भी दूर के हो सकते हैं कि वे चेतना या उपलब्धि की देहरी के पार हों, जैसे इस उदाहरण में। सामान्यतया, जब इस मूलभूत नियम को दिमाग में रखा जाता है कि प्रतिस्थापन सर्वतः मात्रा का मामला है तो, "अधिक" स्थानापन्नों का लोचों पर कोई स्वतः प्रभाव नहीं पड़ सकता।

"स्वतंत्र-लघु-एकक" (atomistic) अर्थव्यवस्था की संकल्पना सुविदित है, और शुद्ध प्रतियोगिता से उसका आम तादात्म्य भी सुविदित है, जो निस्संदेह एक स्तब्धकारी (egregious) गलती है। स्वभावतया, यदि अर्थव्यवस्था सीमित संख्या में एकरूप उत्पादों से बनी होती, और यदि प्रत्येक के बाजार का विक्रेता पक्ष "स्वतंत्र-लघु-एककों से बना होता" (atomized), ताकि प्रत्येक विक्रेता छोटा होता और विक्रेता कई होते, तो परिणाम शुद्ध प्रतियोगिता होता। परन्तु वास्तविक दुनिया अनेकरूप उत्पादों की दुनिया है, जो मानव अधिमानों की आधारभूत अनेकरूपता के अनुरूप है। बड़े उत्पादकों के "स्वतंत्र-लघु-एककीकरण" का तात्पर्य सामान्यतया उनके स्थान पर बृहत्तर संख्या में छोटे उत्पादकों को रखना होगा, जिनमें से **प्रत्येक उत्पाद के अपने प्रकार का उत्पादन करता है**, और इस प्रकार उसका तात्पर्य उत्पाद अनेकरूपता को पहले की अपेक्षा और भी आगे ले जाना होगा। विविध मानव-आवश्यकताओं के होने पर, एक स्वतंत्र-लघु-एकक अर्थव्यवस्था आवश्यक रूप से एकाधिकारमूलक होगी न कि शुद्ध प्रतियोगितामूलक, क्योंकि प्रत्येक विक्रेता अपने को "संभाव्य" उत्पादों के क्रम में सर्वाधिक लाभदायक "नियत स्थान" (niche) में बैठाने की कोशिश करेगा। यह क्रम उसके अनुरूप है जो सारतः मांग का सातत्यक (continuum) है, और वह जिस रेखा पर एक सिरे से दूसरे तक क्रेता (और इसलिए विक्रेता) स्थित रहते हैं उसके सदृश है, जिस पर हम आगे विवेचित समस्या में विचार करेंगे।[7]

संख्या और लोच के सामान्य प्रश्न पर सुपरिचित क्षेत्रीय सादृश्य (analogy)

के शब्दों में विचार करना बोधकर होगा; और सरलता के लिए हम अपने को एकविमितीय क्षेत्र तक सीमित रख सकते हैं—एक रेखा (सड़क) पर एक से दूसरे सिरे तक विक्रेताओं के वितरण का सुपरिचित उदाहरण, जिस पर, कल्पना की जाती है, क्रेता एक से दूसरे सिरे तक एकसमानतः फैले हुए हैं। अन्य के साथ बातचीत (और तर्क) करके, जिनमें से कुछ ऊंची जगहों पर की गई हैं, मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि इस विचार में व्यापक रूप से विश्वास किया जाता है कि जैसे-जैसे विक्रेताओं

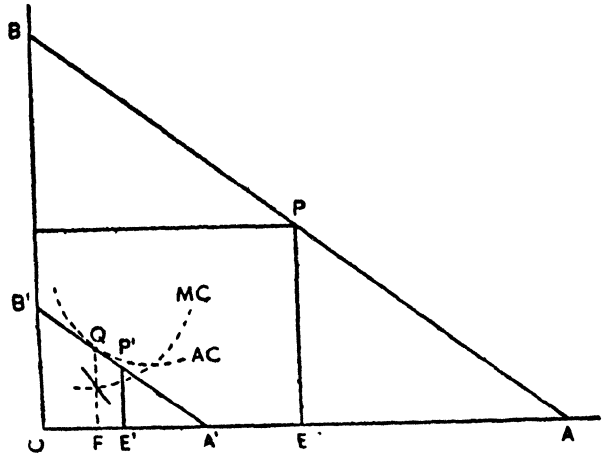

चित्र 44

की संख्या बढ़ती है (रेखा पर जिनकी एक-दूसरे से दूरी सदा समान रहती है), जिससे उनके बीच के अन्तराल छोटे होते जाते है, वैसे-वैसे शुद्ध प्रतियोगिता की चरम स्थिति की ओर सन्निकटन होता जाता है। परन्तु आसानी से प्रमाणित किया जा सकता है कि यह गलत है।

क्षेत्रीय समस्या में, इस कल्पना के कारण कि सब विक्रेताओं के उत्पाद इसके अलावा एकरूप हैं कि विभिन्न स्थितियों में प्रस्तुत किए जाते हैं, विशिष्टीकरण के सब पहलू एक में—जो सुविधा है—परिणत हो जाते हैं। रेखा पर किसी बिन्दु पर स्थित विक्रेता उन क्रेताओं के लिए अधिक सुविधाजनक है जो उसके निकट है और उनके लिए कम सुविधाजनक है जो अधिक दूर हैं। यदि हम किसी एकसमान दर पर सुविधा के सामान्य मूल्यांकन की कल्पना करें, मान लो कि एक डालर प्रति मील, (जो या तो उत्पाद को क्रेता तक (या क्रेता को उत्पाद तक) पहुंचाने की परिवहन लागत को या चलने की तुष्टिहीनता (disutility) के किसी मूल्यांकन को अभिव्यक्त करता है), तो किसी विशेष बिन्दु पर स्थित विक्रेता का मांग वक्र एक सरल रेखा है जिसका ढाल उस एकसमान दर पर निर्भर करता है जिस पर दूरी का मूल्यन किया जाता है। चित्र 44 में, BA एक विक्रेता का ऐसा मांग वक्र है, जो इस कल्पना पर खींचा गया है कि विक्रेताओं की कोई (स्वेच्छ) कुल संख्या है जो

रेखा पर एक से दूसरे सिरे तक समान अन्तरालों पर वितरित है। यदि हम पुनः कल्पना करें कि लागत वक्र नहीं है, तो उसकी सन्तुलन कीमत EP है, और उत्पत्ति OE है। अब यदि विक्रेताओं की संख्या बढ़ती है जिससे वे अधिक समीप आ जाते हैं, तो किसी अकेले विक्रेता का यह मांग वक्र बायीं ओर को हट जाएगा, जो उसके अल्पतर बाजार का निर्देश करता है। उदाहरणार्थ, वह हट कर $B'A'$ हो जाए, जिससे प्रत्येक विक्रेता की सन्तुलन कीमत (कुछ समय के लिए बिन्दु लागत-वक्रों की उपेक्षा करते हुए) $E'P'$ है। परन्तु इससे उसका ढलान नहीं बदलता है, और सन्तुलन बिन्दु पर लोच अब भी इकाई है। फर्मों की संख्या अनिश्चित रूप से बढ़ सकती है, परन्तु जब वह सीमान्त मान ∞ पर पहुँचने लगती है, तब भी सन्तुलन में लोच इकाई पर स्थिर रहती है। इस उदाहरण में विशेष कल्पनाएं प्रत्यक्षतः सन्निहित हैं, और इसलिए यह सिद्ध नहीं होता कि **सामान्य** स्थिति मे लोच संख्या मे **स्वतन्त्र** है। परन्तु चूंकि इस स्थिति में लोच स्थिर बनी रहती है, यह अवश्य सिद्ध होता है कि बृहत्तर संख्या, जिससे विक्रेता "एक-दूसरे के निकटतर" (close together) हैं, लोचों को आवश्यक रूप से बढ़ाती नहीं है।

यह आपत्ति की जा सकती है कि जब विक्रेता "एक-दूसरे के निकटतर" आ जाते है तो क्रेता उनमें भेदों की उपेक्षा करने लगेंगे, जिससे एक डालर प्रति मील की नियत दर पर कल्पित मूल्यांकन अब सच नहीं बना रहता। अब जो लोग शुद्ध प्रतियोगिता को किसी भी कीमत पर उबारना चाहते हैं, उनमें किसी भी तर्क को पकड़ने का लालच रहता है जो सहायता देता प्रतीत होता है, जैसे यह तर्क। लेकिन, इसके अनेक उत्तर हैं।

हो सकता है कि यह तर्क, शायद अचेतन रूप से, दूरी के कम होने के कारण "भुगतान" की **राशि** में कमी को सम्भ्रम के कारण **दर** में कमी समझ लेता हो। जहां तक दर में कमी का सम्बन्ध है, यदि यह सच होता कि किसी कारण से लोग दूरी का मूल्यन निम्नतर **दर** पर करते हैं, मान लो कि एक डालर प्रति मील के स्थान पर एक सेंट प्रति मील पर, तो यह निस्संदेह शुद्ध प्रतियोगिता की ओर गति का निरूपण करता। परन्तु यदि विक्रेताओं के एक-दूसरे के निकटतर होने पर वे उसका मूल्यन एक सेंट प्रति 1/100 मील करें, जिससे **दर** में कोई भी परिवर्तन नहीं होता है, तो ऐसा नहीं है।

पुनः, स्वीकृत है कि **एकसमान** दर स्वेच्छ है। वास्तव में, दूरी के साथ हो सकता है कि नियत कार्य लागत (terminal cost) और बँधी लागत के कारण से परिवहन दरें क्रमशः कम होती जाएं। अथवा, दूरी के साथ (चलने की) तुष्टिहीनता की दर हो सकता कि सचित श्रान्ति के कारण से बढ़ जाए; दूरियों के छोटे परिसर में वह दूरी के बढ़ने के साथ घट भी सकती है क्योंकि रवाना होने के पहले आरंभिक निश्चेष्टता को दूर करना पड़ता है, इत्यादि। परन्तु इन विचारों के परिणामस्वरूप वह छोटी दूरियों के लिए, असतत विच्छेद से, **शून्य** नहीं हो जाती।

इसके अतिरिक्त, हमारा सम्बन्ध केवल तर्कनापरक गणनाओं और मापों से ही नहीं है, बल्कि बाजार व्यवहार से है, जिसमें तर्कनाविरुद्ध व्यवहार भी सम्मिलित है। यदि लोग आवेगी (impulsive) रूप से निकटतम दुकान में चले जाएं (या सर्वप्रथम प्रस्तुत उत्पाद को आगे देखे बिना खरीद लें), तो हमारे प्रयोजन के लिए वे "दूरी" का मूल्य लगा रहे हैं। इसके प्रचुर प्रमाण हैं कि छोटी दूरियों की उपेक्षा वास्तव में नहीं की जाती है। एक सरल उदाहरण यह है कि दो सड़कों के नुक्कड़ पर स्थिति का उसकी अगली स्थिति की, जो केवल एक सड़क पर है, तुलना में अधिक मूल्य होता है। एक-दूसरे के अगल-बगल से अधिक निकट दुकानें हो ही नहीं सकतीं, और यदि लोग कम दूरी को ध्यान में न रखते तो नुक्कड़ पर स्थिति अधिक मूल्यवान न होती।

अन्त में, इस पर ध्यान दीजिए कि वास्तविक जीवन में उत्पादों का विशिष्टीकरण कई विमितियों में होता है, न कि केवल अकेले (शाब्दिक) क्षेत्र की विमिति में। शाब्दिक (literal) क्षेत्र में एक-दूसरे की बगल में स्थित दुकानें जिन उत्पादों को बेचती हैं वे अन्य प्रकार से विशिष्टीकृत होते हैं—या तो संकीर्ण अर्थ में उत्पाद के अपने गुणों में, या उसकी बिक्री की परिवेशी परिस्थितियों में (जो उत्पाद शब्द के हमारे अर्थ में सदा उसका एक **भाग** है)। इस प्रकार संकीर्ण अर्थ में एकरूप उत्पाद (मान लो एक ही छाप की सिगरेटें) जब विभिन्न दुकानों में बेचा जाता है तो वह वही नहीं रहता। इसलिए शुद्ध क्षेत्रीय उदाहरण उत्पादों के एक-दूसरे के निकट होने की संभावना की अतिशयोक्ति करते हैं। यह भी देख लिया जाना चाहिए कि यदि, (सिगरेटों के) किसी निश्चित मानक छाप की स्थिति में, क्रेता उनकी बिक्री में विशिष्टीकरण के क्षेत्रीयेतर पहलुओं के बारे में **वास्तव में** उदासीन है, तो वे उन्हें प्रतिरूपी रूप से सबसे सुविधाजनक रूप से अवश्य **खरीदते** हैं, भले ही एक वैकल्पिक स्थान बिल्कुल पास हो। जब (क्षेत्रीय) विशिष्टीकरण स्वल्प होता है तब भी, वे **वास्तव में** उसकी उपेक्षा नहीं करते।

अब, विश्लेषण में U-आकृति के लागत वक्र के समावेशन के विषय पर आने पर, जो वैयक्तिक फर्म के लिए पैमाने की किफायतों को अभिव्यक्त करता है, हम देखते हैं कि, सुपरिचित नियमों के अनुसार, बड़ी संख्या होने पर वह मांग वक्र की बायीं ओर को गति को ऐसे बिन्दु पर रोक देता है जहां वह लागत वक्र की स्पर्शरेखा हो जाता है। चित्र 44 में ऐसा लागत वक्र बिन्दु-रेखा AC द्वारा दिखाया गया है, जिसके साथ सीमान्त लागत वक्र MC भी बिन्दु-रेखा द्वारा दिखाया गया है। सीमान्त लागत और सीमान्त आय का प्रतिच्छेद स्पर्श-बिन्दु Q के ठीक नीचे दिखाया गया है। अब इस पर गौर करें कि सीमान्त लागत वक्र MC के उन सब भागों के लिए जहां किसी बिन्दु पर उसकी स्पर्शरेखा आधार रेखा को O की दाहिनी ओर काटेगी, बृहत्तर संख्या होने पर जब मांग वक्र अपनी सन्तुलन स्थिति $B'A'$ पर पहुंचने के लिए बायीं ओर हटता है तो **सन्तुलन में** मांग की लोच **वास्तव में** कम

होगी। यह सरल ज्यामिति का मामला है, जिसकी जांच पाठक स्वयं कर सकता है। एक सरल रेखा सीमान्त लागत वक्र खींचिए जो x-अक्ष को O की दाहिनी ओर काटता है, और अब जैसे-जैसे मांग वक्र बायीं ओर को, मान लो BA से $B'A'$ की ओर, हटता है, तो अनुक्रमिक सीमान्त आय वक्रों से उसके प्रतिच्छेद से मिलने वाली उत्पत्तियों पर मांग की लोचों का निरीक्षण कीजिए।

लागत वक्रों के सम्बन्ध में अन्तिम बात यह है कि उनका समावेशन विक्रेताओं की संख्या को "अनिश्चित रूप से" बढ़ाने की संकल्पना को असंगत ठहरा देता है। कुछ लोगों ने उसका प्रस्ताव इस विश्वास के अन्तर्गत किया है (जिसे यहां किसी भी स्थिति में गलत ठहराया गया है) कि यदि यह प्रक्रिया **पर्याप्त दूर तक** ले जाई जाए तो पूर्ण लोच (अर्थात्, शुद्ध प्रतियोगिता) प्राप्त हो जाएगी। इस परिशिष्ट के पहले भाग की तरह चाहे उत्पाद एकरूप हो, या दूसरे भाग की तरह अनेकरूप हो, अर्थव्यवस्था के किसी क्षेत्र में विक्रेताओं की सन्तुलन-**संख्या**, आसान प्रवेश की कल्पना करने पर, वास्तव में पैमाने की किफायतों (स्वभावतया, मांग की दशाओं के साथ) द्वारा नियत की जाएगी। यह सन्तुलन की समस्या का एक भाग है और, अन्तिम विश्लेषण में, जोड़-तोड़ के अधीन नही है। निस्संदेह, विभिन्न कल्पित दशाओं के अन्तर्गत, विक्रेताओं की संख्या को बदला जा सकता है, और लोचो पर उसके प्रभाव का अनुसंधान किया जा सकता है, जैसा यहां किया गया है। परन्तु किसी दी हुई परिस्थिति मे संख्याएं, सिवाय परिकल्पनात्मक रूप से, जोड़-तोड़ के अधीन नहीं है।

इसे समझना महत्वपूर्ण है, क्योकि पूर्ण विभाज्यता की कल्पना के माध्यम से अर्थव्यवस्था की संकल्पना इस प्रकार करने की आम प्रथा है जैसे कि वह सारतः शुद्ध प्रतियोगिता वाली है। यह बाजीगरी (magic) कथित रूप से दो सेवाएं प्रदान करती है : पैमाने की किफायतों को मिटा देना और टुकड़ों को केवल अल्पतर बनाकर जितनी चाहें उतनी संख्या में विक्रेता प्रदान करना। प्रभावतः, यह तर्क किया गया है कि यदि एक एकाधिकारी के (कुशलता की क्षति के बिना) एक हजार टुकड़े किए जा सकें, जिनमें से प्रत्येक अन्य से प्रतियोगिता करे (यदि, केंचुए के टुकड़ों की तरह, वे अभी भी जीवित बने रहे), तो वह अब एकाधिकारी नहीं रह जाएगा। यह कोई बहुत ज्ञानवधक नही है, क्योकि यदि उसके इस तरह से टुकड़े नहीं किए जा सकते (कुशलता की क्षति के बिना), तो वह वास्तव में एकाधिकारी बना रहेगा। शुद्ध प्रतियोगिता इस मार्ग से प्राप्त नही की जा सकती है।

इस परिशिष्ट का उद्देश्य यह प्रमाणित करना रहा है कि सामान्य प्रस्थापना के रूप में संख्याएं और लोचें धनात्मक रूप से सहसम्बन्धित नहीं हैं। एकरूप उत्पाद होने पर भी, विभिन्न कल्पनाएं विभिन्न परिणाम देती है; और उत्पाद अनेकरूपता की स्थिति में सन्निहित सम्बन्धों का सामान्यीकरण और भी कम किया जा सकता है। अन्त में, लागत वक्रों का समावेशन विक्रेताओं की संख्या को सन्तुलन की परिभाषा की एक अवस्था बना देता है, और इसलिए उसमें जोड़-तोड़ नही की जा सकती है।

परिशिष्ट झ

एकाधिकारिक प्रतियोगिता सिद्धान्त की उत्पत्ति और उसका प्रारम्भिक विकास

1. प्रस्तावना

इस परिशिष्ट का उद्देश्य इस पुस्तक के विकास में, पहले 1927 में एक शोध-सबंध[1] के रूप में और फिर 1933 में प्रकाशित ग्रंथ के रूप में, अंशदान करने वाले अधिक मौलिक स्रोतों और प्रभावों के बारे में कुछ कहना है। अन्तर्वर्ती अवधि के साहित्य से, विशेषकर के वर्धमान प्रतिफल और प्रतिनिधि फर्म पर विवादों के साहित्य से, उसके सम्बन्ध पर भी टिप्पणी की जाएगी।

किसी पुतस्क के बारे में इस प्रकार की सूचना साधारणतया भूमिका में न्यूनाधिक विस्तार से प्रकट होती है, और यदि मुझे अनुवर्ती विकासों का कोई ज्ञान होता, तो वह मेरी भूमिका में 1933 में निस्संदेह दी जाती। वास्तव में, वह भूमिका चन्द सामान्य कथनों और अन्तर्वर्ती थीसिस अवस्था के केवल उल्लेख तक सीमित थी, और इसके साथ अनेक सहयोगियों से प्राप्त सहायता की आभारोक्तियां थीं, विशेषकर के प्रोफेसर ऐलिन यंग के प्रति जिनके निर्देशन में थीसिस लिखी गई थी। अब (चौंतीस वर्ष बाद!) मेरा उद्देश्य इस पुस्तक के "बौद्धिक इतिहास" की अधिक पूरी तरह से रचना करना है—एक ऐसे अन्तर को भरना है जिसके महत्व का साक्षी, चाहे-अनचाहे, यह तथ्य है कि उसके अस्तित्व ने इतने अधिक लोगों को उसे अनुमान से (सब गलत) भरने की ओर प्रवृत्त किया है।

मुझ से सिद्धान्त के अधिक दूरस्थ स्रोतों के बारे में प्रायः पूछा जाता है, और उनके बारे में लिखित रूप से कुछ कहने का मेरा कुछ समय से इरादा रहा है; परन्तु यद्यपि मन इच्छुक था, देह दुर्बल थी। अन्त में जिस उत्प्रेरक (catalyst) के कारण कार्यान्वयन हुआ वह नवम्बर 1960 में *QJE* में प्रकाशित "The Erosion of Marshall's Theory of Value" पर श्री पीटर न्यूमैन का लेख था (यद्यपि वहां विवेचित विशेष वाद-विषय यहां उठाए गए सम्पूर्ण विषय का एक छोटा भाग है)। श्री पीटर न्यूमैन वर्णन करते हैं कि किस प्रकार "मार्शल के मूल्य सिद्धान्त पर.....उनकी मृत्यु के तुरन्त बाद प्रबल और प्रभावपूर्ण रूप से आक्षेप किए गए," और किस प्रकार "एक नया सिद्धान्त—अपूर्ण प्रतियोगिता का सिद्धान्त—राख से [उठ खड़ा हुआ]।"[2] सच्ची बात तो यह है कि जिन कारणों से जिस समय-विशेष में *Monopolistic Competition* प्रकाशित हुई वे विचाराधीन "आक्षेप" से और, फरवरी 1933 में इस पुस्तक के प्रकाशन के तैथिक रूप से पहले अधिकांशतः *EJ* में प्रकाशित, प्रतिफल के नियमों और प्रतिनिधि फर्म पर हुए विवादों से बिल्कुल असंबद्ध हैं।

(वह, प्रायः दिए जाने वाले कथनों और व्यापक विपरीत धारणा के बावजूद, इंग्लैंड में युद्धोत्तर और अमेरिका में 1929 के बाद की मंदी की दशाओं से भी असम्बन्धित था। श्रीमती रॉबिन्सन लिखती है कि "दो विश्वयुद्धों के बीच के वर्षों में मंदी की दशाओं के अनुभव ने, जो केन्स के रोजगार के सिद्धान्त की उत्पत्ति का कारण हुआ, कीमतों के परम्परानिष्ठ सिद्धान्त में भी उग्र आपरिवर्तनों की ओर प्रवृत्त किया," अर्थात् उस "नये प्रकार के विश्लेषण" की ओर जो "अपूर्ण प्रतियोगिता" है।[3] तथ्य यह है कि *The Theory of Monopolistic Competition* जब लिखी गई थी, उस समय "कूलिज-समृद्धि" अपने शिखर पर थी, और वह व्यवसाय की किसी, अच्छी या बुरी, अवधि का निर्देश नहीं करती।)

श्रीमती रॉबिन्सन की *Economics of Imperfect Competition* उसी वर्ष कुछ महीने बाद प्रकाशित हुई, जिसका संकेत उसके प्राक्कथन में *Monopolistic Competition* के हवाले से मिलता है;[4] और उस पुस्तक के "बौद्धिक इतिहास" से, जिसे वे श्रमसाध्य रूप से विस्तारपूर्वक लिखती है, स्पष्ट हो जाता है कि यह तो उनका सिद्धान्त है जो, न्यूमैन के शब्दों में, मार्शल पर आक्षेप की "राख से उठ खड़ा हुआ"। *Monopolistic Competition* वस्तुतः न्यूमैन द्वारा वर्णित गतिविधि के, जिसे वे नये सिद्धान्तों की "सफलता" के लिए, एवं उनके अब "बढ़ते हुए विकृत (baroque) प्रदर्शन" (एतद्वत् लिखित) के लिए, इतना जिम्मेदार समझते हैं, सर्वथा बाहर था। वस्तुतः, यदि एकाधिकारिक प्रतियोगिता का सिद्धान्त किसी चीज की राख से उठा है तो वह है टॉसिग-पिगु विवाद कि रेलवे दरों में "जितना मिल जाए उतना लेने" की व्याख्या एकाधिकारिक कीमत-भेद के शब्दों में की जानी चाहिए या सयुक्त लागतों के शब्दों मे, जो बारह साल पहले (1921) की बात है।

2. रेलवे दर सिद्धान्त में प्रारंभिक स्रोत : अल्पाधिकार

1921 में मिशीगन विश्वविद्यालय के स्नातक विद्यार्थी के रूप में मैंने प्रोफेसर आइ. ऐल. शार्फमैन का रेलवे परिवहन का पाठ्यक्रम लिया था, और रेलवे दरों पर टॉसिग-पिगु विवाद पर पाठ्यक्रम के भाग के रूप में एक निबन्ध लिखा था। उसमें निकाले गए निष्कर्ष मेरे लिए उत्तेजक थे, और वे प्रोफेसर शार्फमैन के लिए भी अवश्य रहे होंगे, क्योंकि मुझे अच्छी तरह याद है कि उन्होंने स्वयं पहल की और निबन्ध को *QJE* में प्रकाशनार्थ भेजा, जहां से वह इस निस्संदेह बहुत सुसगत टिप्पणी के साथ लौट आया कि अधिक गहरे और विस्तृत परिशीलन की आवश्यकता है। इस बीच, वह निबन्ध खो गया (या इधर-उधर हो गया), परन्तु उस निबन्ध से भी अधिक महत्वपूर्ण थीसिस (1927) में एक लम्बा तलटीप है, जो प्रत्यक्षतः उससे लिया गया है और जो स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि वहां निकाले गए निष्कर्ष किस प्रकार एकाधिकार और प्रतियोगिता के बीच सैद्धान्तिक सम्बन्ध के और

अधिक परीक्षण के पथप्रदर्शक के रूप में उपयोगी हुए ।

नीचे तलटीप को पूरा का पूरा उद्धृत किया गया है :

रेलवे उद्योग में संयुक्त लागत के बारे में टॉसिग-पिगु विवाद में निर्णय पर पहुंचने की कोशिश करने में शुद्ध प्रतियोगिता और एकाधिकारिक प्रतियोगिता का प्रभेद लेखक के लिए सहायक हुआ है, और वह यहां एक "समझौता" हल का सुझाव देता है। उस तर्क-वितर्क का निचोड़ *QJE*, फरवरी 1913, पृ० 378; मई 1913, पृ० 535; अगस्त 1913, पृ० 687, मे मिलता है। प्रोफेसर टॉसिग के पक्ष के तर्कों का पूर्णतर विवरण उस प्रकाशन के जुलाई 1891 के अंक में पृ० 438 मे मिलता है, जिसका शीर्षक है "A Contribution to the Theory of Railway Rates"। प्रोफेसर पिगु के पक्ष के तर्कों का पूर्णतर विवरण *Wealth and Welfare*, अध्याय 12, और *The Economics of Welfare*, अध्याय 15, में मिलता है।

वाद-विषय केवल यह है कि रेलमार्ग द्वारा परिवहन में कोयले और तांबे के लिए विभिन्न दरें क्या एकाधिकार के कारण ली जाती है या संयुक्त लागत के कारण। प्रोफेसर पिगु पहले का समर्थन करते हैं और प्रोफेसर टॉसिग दूसरे का। प्रोफेसर पिगु अपने तर्क को इस प्रकार कहते हैं कि "यदि पृथक् मांग सारणियों वाले अनेक बाजारों में परिवहन या किसी अन्य चीज की पूर्ति करने वाले कई प्रतियोगी विक्रेता हों, और यदि इनमें से किसी बाजार में दूसरे से ऊंची कीमत हो, तो यह एक-एक विक्रेता के हित में आवश्यक रूप से है कि वह अपनी सेवाओं को कम कीमत वाले बाजार से ऊंची कीमत वाले बाजार में स्थानान्तरित कर दे; और इस प्रक्रिया की प्रवृत्ति विभिन्न बाजारों में कीमतों को अन्ततः एकसमान स्तर पर लाने की अवश्य होनी चाहिए।" (*Economics of Welfare*, पृ० 265।) यह तर्क विश्वासोत्पादक है यदि प्रत्येक प्रकार की सेवा का बाजार शुद्धतः प्रतियोगी है, ताकि प्रतियोगिता प्रत्येक स्थिति में निवेदित **राशियों** को स्थानान्तरित करने का रूप ले लेती है। प्रोफेसर पिगु के साथ, हम विश्वास करते हैं कि कोयले और तांबे के लिए असमान प्रभारों का कारण एकाधिकार है।

किन्तु एकाधिकार का यत्किंचित् तत्व, प्रतियोगिता की प्रक्रियाओं में परिवर्तन करके, प्रोफेसर टॉसिग के निष्कर्ष का समर्थन करेगा। जहां उत्पादक **राशियों को स्थानान्तरित करने के** स्थान पर **कीमतों को नियत** करते हैं, वहां यह स्पष्ट नहीं है कि वे **उन्हें** ऊंची कीमत वाले बाजार में **कम कर देंगे**, और यह कि संयुक्त, या उभयनिष्ठ, लागत में ये दो पण्य समान रूप से हिस्सा करेंगे। वास्तव में, तर्कसम्मत रूप से प्रमाणित करना असंभव है कि वे ऐसा करेंगे। बाद में इस तर्क को विस्तार से विकसित किया गया है, विशेषकर के पृष्ठ 221 और

आगे, और उसका संक्षिप्त और साथ ही साथ विश्वासोत्पादक विवरण यहां आसानी से उपस्थित नहीं किया जा सकता। [यह संदर्भ अल्पाधिकार के "पारस्परिक आश्रितता स्वीकृत" वाले हल के विवेचन का है, जिसके अन्त में कहा गया है कि "एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत किसी विक्रेता की गणनाओं में से इस विचार का विलोपन करना असंभव है कि उसकी चाल के अनुचार (response) में उसके प्रतियोगी संभाव्यतः क्या करेंगे, जिसका सरल कारण यह है कि **वे जो करते हैं वह, वह जो करता है, उसके प्रत्यक्ष परिणाम** हैं। इस बात में शुद्ध प्रतियोगिता से वैषम्य मूलभूत है।"]

प्रतियोगिता प्रत्येक बाजार में अकेली एक कीमत (प्रत्येक पण्य के लिए एकल दर) थोप देगी, जिससे प्रत्येक विक्रेता सब बाजारों में अनिवार्यतः भाग लेता है। वह कम कीमत नियत करके अधिक लाभदायक बाजार में बढा हुआ भाग प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि उसके प्रतियोगी तुरन्त अनुसरण करेंगे, और सापेक्ष हिस्से पहले जैसे ही रहेंगे। इसलिए, वह प्रत्येक बाजार में ऐसी कीमतें नियत करता है जो उसके कुल प्रतिफल को अधिकतम बना देंगी, और ऐसा करने में, वह प्रत्येक स्थिति में मांग की सामर्थ्य (strength) को ध्यान मे रखेगा, और "जितना लोग दे सकें उतनी" कीमत मांगेगा। यदि प्रत्येक विक्रेता के कुल प्रतिफल बड़े है, तो अधिक विक्रेता हो जाएंगे, न कि उनकी कीमत-नीतियों का पुनःसमायोजन होगा।

लेखक किसी भी प्रकार से विश्वास नही करता कि कीमत प्रणाली से सब एकाधिकार तत्व हटा दिए जाने चाहिए—इस पर कि प्रति टन-मील दरें एकसमान अवश्य होनी चाहिए **क्योंकि** शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत यही परिणाम होगा। यदि एकाधिकार के तत्व "सहज" और अवश्यंभावी है, जैसे रेलमार्ग द्वारा परिवहन मे, तो ऐसी कीमत प्रणाली के पक्ष में तर्क दिए जा सकते है जो उन्हें ध्यान में लाता है।[5]

इस उद्धरण के बारे में एक स्पष्टीकरण आवश्यक है क्योंकि पुस्तक (1933) की अपेक्षा थीसिस में (1927) शुद्ध प्रतियोगिता की अधिक कठोर परिभाषा की गई थी। थीसिस में यह विचार प्रकट किया गया था कि एक ही बाजार में किसी एकरूप उत्पाद की इकाइयों की कीमतों में **कोई**, यहां तक कि क्षणिक, भिन्नता **शुद्ध** प्रतियोगिता के असंगत है, जिससे **राशि** समायोजन एकमात्र संभव समायोजन है।[6] "कीमतें नियत करना" केवल तब संभव था जब उत्पाद भिन्न होते या (शायद केवल क्षणिक रूप से) विभिन्न बाजारों में बेचे जाते।[7]

इसलिए "एकाधिकार का यत्किंचित् तत्व" जो "टॉसिग का समर्थन करता", किंचित् विशिष्टीकरण था जो कीमत समायोजनों को होने देता, और जो विक्रेताओं की अल्प संख्या से संयुक्त होकर, "पारस्परिक आश्रितता की स्वीकृति" का निर्देश

करता, और इस प्रकार एक ऐसे कीमत-भेद को नष्ट करने की ओर विक्रेताओं की क्रियाओं पर रोक लगाता जो उनके लिए लाभदायक है। (प्रासंगिक रूप से, मुझे अब भी (1961) जितना लोग दे सकें उतना मांगने वाली स्थितियों की, रेल परिवहन जिसका एक अच्छा उदाहरण है, यह एक तर्कसम्मत सैद्धान्तिक व्याख्या प्रतीत होती है, जहां विक्रेताओं की संख्या, यदि एक न हो तो कम से कम, अल्प हो।)

यह भी कहा जाना चाहिए कि "टॉसिग का समर्थन करने वाले" तर्क के रूप में जो तर्क दिया गया है वह वस्तुतः टॉसिग का है ही नहीं। उनकी स्थिति संयुक्त लागत (स्थिर अनुपातों के अर्थ में) और केवल बंधी, या सर्वनिष्ठ, लागत में निश्चय ही सम्भ्रम पैदा करती है। इस दूसरी लागत में, जैसा कि पिगु ने ठीक कहा है, अनुपात स्थिर नहीं हैं, जिसके कारण "जितना मिल जाए उतना लेने" की सही व्याख्या "संयुक्त लागत" अवश्य नहीं होनी चाहिए, बल्कि एकाधिकारिक (या जैसा ऊपर कहा गया है, अल्पाधिकारिक) कीमत-भेद होनी चाहिए। जिसे "टॉसिग का समर्थन करने वाला" तर्क कहा गया है उसे "पिगु का खण्डन करने वाला तर्क" कहना अधिक सही होगा—स्वभावतया, शुद्ध प्रतियोगिता की स्थिति के सिवाय।

(अन्त में, और प्रासंगिक रूप से, उद्धरण का अन्तिम अनुच्छेद बाद में अपनाई गई स्थिति का निश्चित रूप से पूर्वाभास देता है; अर्थात्, यह कि एकाधिकार तत्व ऐसी चीजें नहीं हैं कि, कल्याण के आदर्श के रूप में पूर्ण प्रतियोगिता के पक्ष में, उनसे अर्थव्यवस्था की शुद्धि कर दी जाए, बल्कि वे स्वयं आदर्श के निर्धारण में आवश्यक रूप से भाग लेते हैं।)[8]

यह पूरा तलटीप जो थीसिस में, जैसा स्पष्ट कर दिया गया है, इस पुस्तक के अधिक दूरस्थ स्रोतों का निर्देश करता है, पुस्तक में इस आधार पर छोड़ दिया गया (जैसा मुझे याद आता है) कि जिस रूप में वह था उसमें अयथेष्ट प्रतीत हुआ; और रेलवे दरों के विशेष विषय को या कीमत-भेद के विषय को आगे विकसित करने की प्रेरणा अनुपस्थित थी।

मुझे याद है कि, 1922 में ऐन आर्बर छोड़ने के पहले, मैंने अपने प्रिय अध्यापक, प्रोफेसर फ्रैंड ऐम. टेलर, से जानना चाहा कि उनकी राय में डाक्टर की थीसिस के रूप में एकाधिकार और प्रतियोगिता के संश्लेषण का निष्पादन कैसा विषय रहेगा। उन्होंने मेरी बात ध्यान से सुनी, और घर जाकर उस पर पुनः विचार किया। परन्तु अगले दिन मुझे "फ्रैंडी" की ईमानदार और, मेरा विश्वास है कि, सावधानी से विचारी गई सलाह मिली कि मैं किसी और चीज को खोजूं तो बेहतर होगा।

3. प्रक्रिया, संरचना, और तर्क

हार्वर्ड में थीसिस पर वास्तव में महत्वपूर्ण काम 1924 के बसन्त तक नहीं हुआ, और तब तक "जनरल" रास्ते से हट गए थे। एकाधिकार और प्रतियोगिता के

संकर सिद्धान्त का पहला और सबसे सुस्पष्ट आधार विक्रेताओं की संख्या प्रतीत हुआ, जिसमें द्वयधिकार इन दो चरम स्थितियों के बीच पहले ही से स्वीकृत अन्तर्वर्ती क्षेत्र था; और यह एक तथ्य है कि "उत्पाद विशिष्टीकण" की "खोज", जो बाद में समस्या की दो अवस्थाओं में दूसरी अवस्था बना, द्वयधिकार के परस्पर-विरोधी सिद्धान्तों विशेषकर के कूर्नो और एॅजवर्थ के सिद्धान्तों, का समाधान करने की कोशिश से अंशत: उत्पन्न हुआ। (ऊपर पृष्ठ 1 में शुरू हो कर पृष्ठ 2 में जाने वाले अनुच्छेद में इस स्रोत का अवशिष्ट संकेत बना रहता है।) ऊपर दिया गया एॅजवर्थ का किंचित् विस्तृत आलोचनात्मक विश्लेषण[9] इस गहन अध्ययन का सहज उपजात (by-product) था। एक सुझाव इस तथ्य से मिला कि एकरूप मांग वक्रों के होने पर भी, केवल इस कारण से कि एक स्थिति में राशि-समायोजन होते हैं और दूसरी में कीमत-समायोजन, दो हल इतने भिन्न हो सकते हैं। इस तथ्य द्वारा दिया गया सुझाव जिन प्रक्रियाओं द्वारा सन्तुलन कीमत अभिभावी होती है, उनके विभिन्न लेखकों द्वारा दिए गए वर्णनों का व्यापक अनुसन्धान बन गया। स्पष्ट है कि केवल वक्रो से उत्तर नहीं मिलता। "किसी पदार्थ के मांग और पूर्ति वक्र, अपने प्रतिच्छेद के द्वारा, उस कीमत को बताते हैं जिस पर मांग और पूर्ति बराबर होंगे। किन्तु वे इसकी किसी व्याख्या से रिक्त हैं कि कीमत इसी बिन्दु पर स्थिर क्यों हो जाए।..... यह प्रश्न उचित रूप से सीधे-सीधे पूछा जाए कि कीमत क्या होगी, और क्यों ?"[10]

जब पता चला कि कुछ लेखकों ने कोई भी कारण नहीं दिया है, तो "क्या कारण है" इसकी खोज को और अधिक प्रोत्साहन मिला। साध्य को सिद्ध मान कर तर्क करने वाले (question-begging) उत्तरों का एक पूर्ण उदाहरण हैन्डर्सन की *Supply and Demand* में मिलता है, जहां "नियम" के कथन में हम पाते हैं कि "जब प्रचलित कीमत पर, मांग पूर्ति से अधिक होती है तो कीमत बढ़ने की प्रवृत्ति रहती है। विलोमत:, जब पूर्ति मांग से अधिक होती है तो कीमत गिरने की प्रवृत्ति रहती है।"[11] बाद में, जो उपपत्ति के अभिप्राय से दिया गया प्रतीत होता है उसमें, केवल वही बात फिर से कही गई है।[12] यहां यह और कह दिया जाना चाहिए कि इस आरंभिक काल में मुझे याद नहीं पडता कि मेरा सामना अधिक हाल के द्विरुक्तिरूप हलों से हुआ था (यद्यपि हो सकता है कि उनका अस्तित्व रहा हो)। उदाहरणार्थ, हैन्डर्सन में पूर्ति और मांग की परिभाषा इस प्रकार की गई है कि उनमें से कोई भी दूसरे से अधिक **हो सकती है**, और सन्तुलन कीमत को छोड़कर अन्य किसी कीमत पर स्पष्टत: यह स्थिति होती है। मेरा विश्वास है कि ये द्विरुक्तियाँ इस बात के बढ़ते हुए बोध की प्रतिक्रिया (शायद अचेतन) हैं कि अर्थपूर्ण अर्थ में "नियम" की प्रयोज्यता वास्तव में सीमित है। और इसलिए उसकी "सर्वव्यापकता" को इस प्रस्थापना में गंभीरता से दृढ़तापूर्वक कहा जाता है कि पूर्ति और मांग को सदा **अवश्य** बराबर होना चाहिए क्योंकि जो कुछ खरीदा जाता है वह बेचा भी जाता है।

परन्तु, अपने विषय पर वापस आएं : क्या कारण है ? "प्रतियोगी" बाजारों

के उदाहरणों के लिए, और प्रत्येक स्थिति में जिस तर्क के द्वारा यह दलील दी गई थी कि समकारी कीमत से भिन्न किसी कीमत से उसकी ओर **गति** होगी, उसके लिए, अर्थसिद्धान्त के साहित्य को छाना गया। जिन बाजारों का विश्लेषण किया गया और तुलना की गई, उनमें निम्नलिखित थे : मार्शल (अनाज), बॉह्म बावर्क (घोड़े), कूर्नो (खनिज जल), डेव्हनपोर्ट (टोप), चैप्मैन (चाय), विक्स्टीड (अलूचा); और मिल तथा कैर्न्स से लेकर जे. एम. क्लार्क तथा व्हॅब्लॅन तक दर्जनों अर्थशास्त्रियों की सामान्य तर्कना।

बाजार-प्रक्रियाओं की इस सैर में, सर्वाधिक उद्दीपक और उत्तेजक प्रक्रियाओं में एक जे. एम. क्लार्क की थी, और उनका यह विरोधाभासी निष्कर्ष भी था कि "बाजार की मन्दित क्रिया-विधि जो एक ही समय में विभिन्न कीमतों को प्रचलित होने देती है, वास्तव में एक 'अपूर्णता' नहीं है, जैसा उसे मानने की प्रवृत्ति सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र में रही है। प्रत्युत्, वह एक अनिवार्य अपेक्षा है, जिसके बिना वह अपने लाक्षणिक प्रभावों को पैदा नहीं कर सकता।"[13] तो क्या वास्तव में यह अवश्य कहा जाना चाहिए कि **किसी** बाजार से, यहां तक कि **पूर्ण** बाजार से भी, कार्य करवाने के लिए **अपूर्णता** आवश्यक है? और यदि ऐसा है, तो वह हमें किस अवस्था में छोड़ देता है? इन प्रश्नों के उत्तर केवल शुद्ध तर्क में निस्संदेह मिलने चाहिए, और वास्तविक बाजारों पर पुनर्विचार करके नही, क्योंकि हम जानते हैं कि **सब** वास्तविक बाजार किसी मात्रा में अपूर्ण हैं। मेरा अपना निष्कर्ष यह निकला कि यह तर्क विरोधाभासों के केवल उस प्रशस्त आखेट-क्षेत्र में मान्य है जो अल्पाधिकार का सिद्धान्त है, और यह कि विक्रेताओं की बड़ी संख्या कीमत **गतिविधि** और प्रतियोगितामूलक परिणामों दोनों को, किसी मन्दित क्रिया-विधि या समरूप घटनाओं के बिना, पैदा करने के लिए **तर्कसम्मत रूप से** पर्याप्त है।[14] यह इससे, स्वभावतया, इनकार नहीं करता कि समय-पश्चताएं, अवकाश-पश्चताएं, आदि, कई वास्तविक बाजारों के कार्यकरण में महत्वपूर्ण भाग अवश्य लेती है; परन्तु वह इससे इनकार करता है कि, यदि बाजार पूर्णतः प्रतियोगी होते तो, यह **आवश्यक** या **सम्भव** भी है।

थीसिस में, जैसा ऊपर संकेत किया गया है, अन्य के बाजारों और बाजार-प्रक्रियाओं के आलोचनात्मक और तुलनात्मक विश्लेषण को प्रचुर स्थान दिया गया था, परन्तु पुस्तक में इस विस्तृत वर्णन का केवल अल्प भाग बना रहा। लेकिन, उस समय के द्वयधिकार के अपूर्ण साहित्य के अध्ययन और कीमतें कैसे निर्धारित की जाती हैं, इस बारे में व्यवसाय-अर्थशास्त्र के गहन पठन समेत (जिसका उल्लेख आगे किया जाएगा) इस सम्पूर्ण अवस्था से कई **क्रांतिक** (critical) प्रभेद निकले। ये प्रभेद निम्नलिखित के बीच में हैं : शुद्ध और पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार तत्वों के दो प्रभिन्न **प्रकारों** के रूप में संख्या और विशिष्टीकरण, राशि समायोजन के विरुद्ध कीमत समायोजन, प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रभाव, विभिन्न **प्रकार** के संशय

और निश्चितता, बाजार में अल्प और दीर्घकालिक दिलचस्पी, पुनःसंविदा के साथ या उसके बिना समय-पश्चताएं, इत्यादि ।

समय-पश्चताओं के सम्बन्ध में इसका उल्लेख किया जा सकता है कि थीसिस में उनका प्रतिपादन विशिष्टीकरण के एक प्रकार के रूप में किया गया था : जैसे विक्रेताओं (या क्रेताओं) का अवकाश (स्थिति) में पृथक्करण हो सकता है, ठीक वही बात काल के लिए भी सच है और इस प्रकार थीसिस में "कालिक विशिष्टीकरण" की संकल्पना बार-बार प्रकट होती है । उसे पुस्तक में नहीं लाया गया, और उसे क्यों नहीं लाया गया, इसका कारण याद करने में अब मुझे कठिनाई हो रही है । मेरा सबसे अच्छा अन्दाजा यह है कि, कई अन्य चीजों की भांति, उसे सरलीकरण के विचार से छोड़ दिया गया, ताकि पुस्तक के उत्पादन की अवधि का एक निश्चित अन्त हो । अब मुझे लगता है कि वह संरचना से सम्बद्ध है और इसलिए उसे हटा देना एक अनुचित चूक थी । क्षेत्रीय विशिष्टीकरण के असदृश, कालिक विशिष्टीकरण एक "एकतरफा मार्ग" होता; और चूंकि "पुनःसंविदा" उसे अकृत (nullify) कर देती, इसलिए पुनःसंविदा को नियमविरुद्ध करना पड़ता । इस स्थिति में "अंतिम संविदाओं" का एक अनुक्रम होता, ठीक वैसे ही **जैसे वास्तविक जीवन में** । जिसे "कालिक विशिष्टीकरण"[15] कहा जा सकता है उसका, इस पद का प्रयोग किए बिना, एक उदाहरण है "सन्तुलन से विचलन पर टिप्पणी" ।[16] यहां जो कुछ कहा गया है उससे स्पष्ट है कि अब मैं वह निर्णय न लेता जो मैंने तब लिया था कि यह समस्या एकाधिकार के तत्वों से असम्बद्ध है ।

प्रभिन्न समस्या के रूप में क्षेत्रीय विशिष्टीकरण का भी पुस्तक की अपेक्षा थीसिस में अधिक विस्तृत विकास किया गया था । विशेषकर के, अध्याय 5 में "शुद्ध क्षेत्रीय प्रतियोगिता" पर एक परिच्छेद में द्विविमितीय क्षेत्र का विश्लेषण था, जिसमें, अन्य चीजों के साथ, दिखाया गया था कि विक्रेता सर्वप्रथम एक केन्द्रीय बिन्दु पर समाहरण की ओर जाएंगे और तब पुनः तितर-बितर हो जाएंगे (और, दिए गए विशेष उदाहरण में, शाश्वत दोलन उत्पन्न करेंगे) । इस स्थिति को थीसिस के बाद पाठ में अनुकूलित किया गया ।[17] यह स्वीकार किया गया कि प्रोफेसर होटेलिंग 1929 के अपने सुविदित लेख के कारण "पहले पहुंचे" थे ।[18] इस लेख मे उन्होंने प्रमाणित किया था आरंभतः एक रेखा पर एक से दूसरे सिरे तक फैली हुई फर्मों में (एक विमिति में) मध्य बिन्दु पर जमा होने की प्रवृत्ति होती है, और इस प्रकार वे द्वयधिकार की अन्यथा अनिर्धार्य समस्या में स्थायित्व लाए थे । तदनुसार, मैंने द्विविमितीय क्षेत्र का अपना प्रतिपादन अलग कर दिया; और, विकीर्णन की ओर कार्य करने वाली सुस्पष्ट विरोधी शक्तियों का समावेश करके, उसे होटेलिंग के समाहरण वाद के खंडन में बदल दिया (परिशिष्ट 'ग') । सामान्य निष्कर्ष यह था कि जैसे ही दो से अधिक विक्रेता होते हैं विकीर्णन लाने वाली शक्तियां कार्य करने लगती हैं, और यह कि "पर्याप्त रूप से बड़ी संख्याओं की स्थिति में वितरण उस आदर्श का सन्निकटन करता है जो क्रेताओं की सुविधाओं को अधिकतम करता है ।"

होटेलिंग का एक सामान्य वाद यह था कि विशिष्टीकरण का कारक द्वयधिकार के अन्यथा अनिर्धार्य हल में स्थायित्व सामान्यतया ले आता है। इस वाद का और अधिक विवेचन परिशिष्ट 'क'[19] में दिया गया है, जहां यह विचार प्रकट किया गया है कि यह वाद अमान्य है, और यह कि होटेलिंग के उदाहरण में स्थायित्व का स्पष्टीकरण दूसरे ढंग से हो जाता है।

थीसिस में कुछ विस्तारपूर्वक विवेचन करने के बाद भी पुस्तक में सम्मिलित न किया जाने वाला शायद सबसे महत्वपूर्ण (और अनाशंसित) विषय था अध्याय 5 में (24 पृष्ठों का) "वितरण का उत्पादिता सिद्धान्त" पर परिच्छेद।[20] 1933 में वह, पुनः सरलीकरण की प्रक्रिया के एक भाग के रूप में, सम्मिलित नहीं किया गया था, ताकि पुस्तक को (संकीर्ण अर्थ में) मूल्य के सिद्धान्त तक सीमित रखा जाए और उसमें वितरण की अधिक व्यापक समस्या का उस समय अपूर्ण लगने वाला परिच्छेद न जोड़ा जाए। (अध्याय 7 के अन्तिम अनुच्छेद को देखिए।) मेरा विश्वास है कि अध्याय 8 का आजकल का पाठक, जो उसके जोड़े जाने की तिथि पर गौर करता है, स्वभावतया मान लेगा कि वह 1933 के बाद लिखा गया और उसका मुख्य उद्देश्य सीमान्त उत्पत्ति की परिभाषा के कुछ मामलों पर, और विशेषकर के शोषण के सिद्धान्त पर, श्रीमती रॉबिन्सन का खंडन करना है। निस्संदेह, कुछ सामग्री, और सुस्पष्टतः अधिकांश संदर्भ, बाद में जोड़े गए थे। फिर भी, शोषण शब्द का प्रयोग किए बिना (और स्वभावतः यह जाने बिना कि उस पर कोई विवाद उठ खड़ा होगा), 1926 में उस अध्याय में सीमान्त आय उत्पत्ति का (जिसे सीमान्त मूल्य उत्पत्ति कहा गया था) सिद्धान्त सम्मिलित था; और यह सिद्धान्त भी, जिसका चित्रों के साथ विस्तार मे विकास किया गया था, सम्मिलित था कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत नियुक्त(hired) कारकों को उनकी केवल सीमान्त मूल्य उत्पत्तियाँ मिल सकती हैं, और यह कि यह उद्यमकर्त्ता के न्यूनतम लाभ के अविरुद्ध है। उसमें सब कारकों के परिवर्ती होने पर **दीर्घकालिक** लागत वक्र का पूर्णतया विकसित अन्वालोप वक्र विश्लेषण भी, सचित्र, सम्मिलित था (थीसिस में जिसका वर्णन प्रायः विचारित वक्र के रूप मे किया गया था —देखिए, ऊपर, अध्याय 2, तलटीप 16।), और उसके अन्तर्गत एक वक्र-कुल का भी वर्णन था, जिसके वक्र किसी बिन्दु पर उसकी स्पर्शरेखा हैं और जो उस बिन्दु पर अन्य कारकों को स्थिर रखकर केवल एक कारक (जैसे श्रम) में परिवर्तन होने देकर प्राप्त होता है। (केवल एक परिवर्ती कारक वाले ऐसे वक्र परिवर्ती कारक की सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य और सीमान्त मूल्य उत्पत्ति का निर्धारण करने लिए सुस्पष्टतः आवश्यक हैं।) 1926 में सीमान्त मूल्य उत्पत्ति की संकल्पना का उपयोग कर चुकने के कारण, मैं श्रीमती रॉबिन्सन के प्राक्कथन में उल्लिखित उन लोगों की श्रेष्ठ संगति में, जो लगभग एक ही समय इस संकल्पना पर पहुँचे थे, अपनी जगह का दावा शायद कर सकता हूँ। परन्तु अफसोस ! मुझे अवश्य कबूलना चाहिए कि वह मुझे मार्शल के गणितीय परिशिष्ट, टिप्पणी 14, में मिला। मार्शल कोई चित्र नहीं खींचते, परन्तु वे

बीजगणितीय सूत्र देते हैं, और उसका कुछ विस्तार से विवेचन करते हैं।[21] न ही वे उसे कोई नाम देते हैं, परन्तु (एकाधिकार की स्थिति में) "जिस निवल उत्पत्ति को हम ढूंढ़ रहे हैं" इस रूप में उसका निर्देश किया जाना सिंहावलोकन में किंचित् मर्मस्पर्शी लगता है।

4. "प्रतियोगी एकाधिकारी" और व्यवसाय सम्बन्धी साहित्य

बाजारों के ऊपर वर्णित व्यापक अध्ययन से एक नये विचार के, जो जैसा पहले बताया जा चुका है अल्पाधिकार सिद्धान्त से प्रस्फुटित हुआ था, अतिविशाल (massive) सत्यापन और विस्तरण का भी विकास हुआ। वह है : पण्य शब्द के सामान्य विस्तृत अर्थ में, किसी पण्य के बाजार का कुछ मात्रा में उपखंडों में बंट जाना, जिससे एक ही बाजार में वैयक्तिक विक्रेता कुछ मात्रा में विसम्पर्कन का फायदा उठाते हैं। लेकिन, अभी भी प्रतिरूपी रूप से बृहत्तर बाजार पर बल दिया गया था। "ऐसे वाक्य यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं जिनमें कहा गया है कि व्यापार-चिह्नों, सुनाम, सुविधा, आदत, आदि पर, अपूर्णताओं के रूप में विचार अवश्य किया जाना चाहिए। परन्तु इनके अलावा अर्थ-शास्त्र के साहित्य में ऐसा कोई विश्लेषण नहीं है जैसा यहां चिन्तित है (अर्थात्, **प्रत्येक विक्रेता** के एक बाजार और एक उत्पाद का)। सामान्य दृष्टिकोण यह है कि ये चीजें प्रतियोगिता के अन्यथा पूर्ण कार्यकरण में केवल निर्घर्ष का समावेशन कर देती हैं।"[22] इसके बाद पुस्तक के प्रथम सस्करण के पृ० 69 के तलटीप 2 की सामग्री आती है, जिसमें फिशर, मार्शल, डॉब, जे. एम. क्लार्क, और ए. बी. वुल्फ का उल्लेख है; (ए. बी. वुल्फ के सिवाय) ये सब प्रत्येक विक्रेता के पृथक् **बाजार** का व्यक्त रूप से उल्लेख करते हैं। हो सकता है कि ऐसे अन्य भी हों, परन्तु उस समय मुझे वे नही मिले, और थीसिस में उनका कोई हवाला अब मैं नहीं पाता। (इन अन्य लोगों में विक्सॅल का उल्लेख किया जा सकता है, जिन्होंने अपनी *Lectures on Political Economy*[23] में एक अच्छा संक्षिप्त परिच्छेद (फुटकर व्यापार तक सीमित) दिया है, जो प्रोफेसर रॉबिन्स के परिचय के अनुसार, स्वीडी भाषा में 1901 में उपलब्ध था।) थीसिस के ठीक बाद वाली अवधि में, निस्संदेह ऐसे अन्य कई थे—जिनकी शुरुआत दिसम्बर 1926 में स्राफा से होती है। इनमें से कुछ का उल्लेख पुस्तक के प्रथम (1933) और बाद के संस्करणों में तलटीपों में किया गया है।

रूढ़ और व्यापक अर्थ में प्रतियोगी बाजार के "बँट" जाने के विचार से यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक विक्रेता के पास कुछ "सीमित," "आंशिक," या अन्यथा प्रतिबन्धित एकाधिकार शक्ति होती है। परिवर्धन या स्पष्टीकरण के बिना, केवल एकाधिकारी के रूप में **प्रत्येक विक्रेता** के पृथक् बाजार के विचार से अधिक व्यापक समस्या प्रतियोगी एकाधिकारियों के "समूह" की समस्या हो जाती है। पहले विचार से दूसरे विचार में संक्रमण कोई आसान बात नहीं है, जैसा कि इस क्षेत्र में हुए विवादों

के इतिहास ने अत्यन्त स्पष्ट कर दिया है। मेरे संबंध में थीसिस में वह पेटेन्टों और व्यापार-चिह्नों के साहित्य में गहरे पैठने से प्राप्त हुआ।[24] इसका आरंभ बिन्दु ऐली की *Outlines of Economics* में अपने अध्याय में ऐलिन यंग द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण था। " 'इस यथार्थतः कानूनी अर्थ में कि उनका अन्य कोई उपयोग नहीं कर सकता, व्यापार-चिह्न, पेटेन्टों की भांति, एकाधिकार हैं। परन्तु पेटेन्टों के असदृश, उनका परिणाम एकाधिकार इस आर्थिक अर्थ में नही होता कि वे एक प्रकार के व्यापार पर अनन्य नियंत्रण देते है।' व्यापार-चिह्न के कारण एक सफल व्यापारी 'अपने को प्रतियोगिता के चरम तल से ऊंचा उठाने में समर्थ हो सकता है।...वह उसे प्राप्त करने में समर्थ होता है जिसे एकाधिकारवत् कहा जा सकता है। परन्तु क्योंकि अपने उत्पाद की कीमत को नियंत्रित करने की उसकी शक्ति सच्चे एकाधिकारी के ऐसा करने की शक्ति की अपेक्षा सामान्यतया कही अधिक सीमित होती है, और क्योंकि प्रतियोगिता उसकी क्रियाओं को अन्य प्रकार से सीमित और प्रतिबन्धित करती है, इसलिए उसके व्यापार को एकाधिकारमूलक न कहकर प्रतियोगितामूलक कहना अधिक उचित है।' "[25] द्विभाजन (dichotomy) के पक्ष में यंग के इस स्पष्ट कथन के खंडन में, इस सामान्य स्थिति के पक्ष में विस्तार से तर्क किया गया था कि व्यापार-चिह्नों और पेटेन्टों में कोई भी भेद नहीं है—शायद मात्रा तक में नहीं है : "प्रत्येक एक उत्पाद को कुछ मानों में अद्वितीय बनाता है; यह उसका एकाधिकारमूलक पहलू है। प्रत्येक लगभग उस जैसे, किन्तु बिल्कुल वैसे ही नहीं, अन्य पण्यों के लिए गुंजाइश रखता है; यह उसका प्रतियोगितामूलक पहलू है।"[26] इस सामान्य निष्कर्ष का क्षेत्रीय समस्या में और विशिष्टीकरण के अन्य सब पहलुओं में, उत्पाद के अपने और उसकी बिक्री की परिवेशी परिस्थितियों के पहलुओं में, अनुप्रयोग करना केवल बाकी रहता है, और "एकाधिकारिक प्रतियोगिता" वाक्यांश, स्वतोव्याघाती शब्दजाल के रूप में प्रकट होने के स्थान पर, सर्वाधिक प्रारंभिक सामान्य बोध बन जाता है। (इस मामले पर मेरे और यंग के बीच लम्बी बहसें हुईं, और मुझे यह कह सकने में प्रसन्नता होती है कि, लन्दन जाने के पहले, उन्होंने मुझे बताया कि वे आलोचनाओं को स्वीकार करते हैं।)

एकाधिकारी शब्द के पूर्ण अर्थ में—अर्थात्, किसी **प्रमेय** (distinguishable) उत्पाद की पूर्ति पर पूर्ण नियंत्रण (फिर भी, किसी एकाधिकारी की तरह, स्वभावतया, स्थानापन्नों का सामना करने) के अर्थ में—प्रत्येक विक्रेता को एकाधिकारी समझना इस सम्पूर्ण विश्लेषण की कुंजी बन गया। इसका परिणाम हुआ : उद्योग की न्यूनाधिक पारम्परिक रूप से निश्चित संकल्पना के स्थान पर प्रतियोगी एकाधिकारियों के "समूह" के अधिक लचीले विचार का रखा जाना; और एक ऐसी अर्थ-प्रणाली की संकल्पना जो कहीं अधिक बड़ी संख्या में उत्पादों से बनी हुई है—जिसमें (किसी शुद्धतः प्रतियोगी बाजार की एकरूप उत्पत्ति के अलावा) प्रत्येक विक्रेता का एक उत्पाद है। इस प्रकार विक्रेताओं का प्रवेश या निर्गम, उदाहरणार्थ, समूह सन्तुलन की

समस्या में, किसी दिए हुए उत्पाद के उत्पादकों की संख्या में केवल परिवर्तन करने के स्थान पर सम्पूर्ण प्रणाली में **उत्पादों** की संख्या में प्रसार या आकुचन करता है।[27]

प्रत्येक विक्रेता के लिए एक बाजार की संकल्पना "विविधता" की एक ऐसी समस्या को भी प्रकट करती है जो शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत संभव किसी चीज के परे है, और अपूर्ण शब्द द्वारा साधारणतया उपलक्षित किसी चीज के परे है। शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत मांग पक्ष में किसी भी प्रकार की विविधता प्रत्यक्षतः नहीं हो सकती, और जहां तक लागत का संबंध है, विविधता केवल प्रति इकाई लागत में, (कारकों की अनेकरूपता को स्वीकार करने पर) फर्म के आकार में, और (यदि अन्य कल्पनाओं द्वारा हटा नहीं दी जाती तो) संभवतः फर्म की आयु में हो सकती है। यद्यपि अपूर्णता में, परिभाषा के द्वारा, अधिक सम्मिलित करा जा सकता है, फिर भी उसका दृढ़ स्वगुणार्थ (connotation) **सामान्य** "निर्घर्ष" है, जैसे अपूर्ण ज्ञान, अयुक्तिकता, या निश्चलता, जो समग्र बाजार पर एक प्रकार से समान रूप से प्रभाव डालता है। परन्तु प्रत्येक विक्रेता के लिए भिन्न उत्पाद और बाजार को स्वीकार कर लेने पर, **किसी भी** अर्थ में एकसमानता के बारे में प्रकल्पनाएं लुप्त हो जाती हैं; और हमें सर्वाधिक स्वाभाविक और आशंसित परिणाम के रूप में विविधता मिलती है : कीमतों में, मांगों में, लागतों और आकार के संबंध में नयी शक्तियों में, उत्पादों (इस व्यापक शब्द के, स्थिति, व्यक्तित्व—जिसमें निपुणता और "योग्यता" भी शामिल है—समेत, सब पहलुओं में), अन्तर-फर्म सम्बन्धों के स्वरूप और उनकी मात्रा में, बाजार-प्रक्रियाओं में, आदि।

"विविधता" की इस समस्या पर पुस्तक की अपेक्षा थीसिस में बहुत अधिक ध्यान दिया गया था। वस्तुतः, फर्मों में विविधता को इतना सर्वव्यापी स्वीकार किया गया है कि "उद्योग" के, या फर्म से बड़े किसी प्रवर्ग के, मांग और लागत वक्रों की संकल्पना को स्वैर काल्पनिक (fantastic) और असंभव बना देती है। पुस्तक में इसी दृष्टिकोण को कम पृष्ठों में, परन्तु समान बल देकर, कायम रखा गया है।[28]

इस दृष्टिकोण को बनाए रखने का कारण अंशतः विविधता है और विक्रय लागत है, परन्तु "एकसमानता" कल्पना की सरलीकृत स्थिति में भी और विक्रय लागत के समावेशन के पहले उसे बनाए रखा गया है। स्पष्ट होना चाहिए कि विक्रय लागत के न होने पर भी, **समूह** सन्तुलन की संकल्पना समष्टि के (aggregate) रूप में समूह के मांग और लागत **वक्रों** की संकल्पनाओं को आवश्यक रूप से सन्निहित नहीं करती।[29] यह सच है कि पृष्ठ 93 में एक विशिष्टीकृत उत्पाद के लिए समस्त वक्रों का जोड़ा खींचा गया था जहां उनके प्रयोग द्वारा शुद्ध और एकाधिकारिक प्रतियोगिता की तुलना को दिमाग में जमाने का प्रयत्न किया गया था।[30] परन्तु यहां लागत और मांग वक्र पहले शुद्धतः प्रतियोगी बाजार के लिए खीचे गए थे, और तब (तुलना के अन्य पहलुओं को प्रकट करने के लिए) केवल **कल्पना** की गई थी कि उत्पाद का विशिष्टीकरण होने पर वे नहीं बदलते हैं।[31]

समूह विश्लेषण में (और एकसमानता की कल्पना में) अधिक सामान्य बाजार के लिए समस्त मांग वक्र, हो सकता है कि, अन्तर्निहित (implied) प्रतीत हो, जिस में DD' प्रकार के वक्र की परिभाषा यों की जाती है कि वह "उत्पाद के सामान्य वर्ग के मांग वक्र का एक प्रभाजित भाग" है।[32] परन्तु DD' को विक्रेताओं की संख्या से आद्योपान्त गुणा करके सामान्य वक्र प्राप्त नहीं किया जा सकता है, क्योंकि अधिक सामान्य बाजार में विक्रेताओं की संख्या एक चर है। (कतिपय सीमित प्रयोजनों के लिए, निस्संदेह, कल्पना की जा सकती है कि वह स्थिर है, जैसा मूल पाठ में इस स्थान पर किया गया है।) संक्षेप में, समूह स्पर्शिता हल को प्राप्त करने के साधन के रूप में, न तो (1) प्रवेश और निर्गम, और न ही (2) कीमत, उत्पाद, या विक्रय लागत समायोजन (या एकसाथ ये सब) **समूह** के मांग और लागत वक्रों की **अपेक्षा** करता है, जो "उद्योग" के सुपरिचित मांग और लागत वक्रों के अनुरूप हों।

"बहु-उत्पाद फर्मों" की समस्या को दिए जा रहे बढ़ते हुए ध्यान को देखते हुए, इसमें कुछ दिलचस्पी हो सकती है कि थीसिस में विविधता फर्मान्तरिक एवं अन्तरफर्म थी। फर्म के भीतर उत्पाद की विविधता की समस्याओं के कुछ विस्तृत विवेचन के बाद, जो मांगों के बारे में और लागतों के बारे में है (जिससे ऊपर दिया गया रेलवे दरों पर लम्बा उद्धरण लिया गया है), निम्नलिखित सरलकारी कल्पनाएं की गई हैं : "बंधी लागत का वह हिस्सा जिसका (फर्म के भीतर) प्रत्येक उत्पाद या उत्पाद-वर्ग में सबसे फायदेमन्द अनुभाजन किया जा सकता है वह, एक व्यवसाय क्षेत्र के विभिन्न व्यापारियों के लिए, लगभग समान है; और अपनी कीमत-नीतियां निर्धारित करने में वे अपनी बंधी लागत का इस प्रकार अनुभाजन (apportion) करते हैं। इसलिए, किसी पण्य के लागत वक्र में व्यवसाय की आम लागतों का ऐसा भाग सम्मिलित रहता है। इस विश्लेषण में आद्योपान्त, लागत वक्र का निर्वचन इस प्रकार किया जा सकता है कि वह (क) किसी विशेष पण्य पर, या (ख) कई पण्यों का व्यापार करने वाली किसी सिब्बंदी में 'व्यवसाय की इकाई' पर समान रूप से लागू किया जा सकता है। इस दूसरी स्थिति में, मांग वक्र का निर्वचन सिब्बंदी के भीतर कीमतों के सामान्य औसत, या सूचकांक, के रूप में अवश्य किया जाना चाहिए।" ये शायद काफी उचित कल्पनाएं हैं, परन्तु उनकी अयथेष्टता के बोध, और उस समय इस समस्या पर यथेष्ट रूप से विचार करने की असमर्थता के परिणामस्वरूप निस्संदेह उन्हें पुस्तक में नहीं रखा गया।

पुस्तक के मौलिक स्रोतों के रूप में जिस अन्तिम स्रोत का उल्लेख किया जाना है वह है, सामान्यतया व्यवसाय-अर्थशास्त्र के साहित्य का पर्याप्त अध्ययन; और "वितरण" के, खुदरा बाजारों के और विज्ञापन के विषय के, कुछ विशेष संदर्भ में किया गया अध्ययन।

जहां तक विज्ञापन का संबंध है, वास्तविक जगत में इतनी अत्यधिक महत्व-पूर्ण शक्ति की सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र द्वारा उपेक्षा मुझे काफी समय से एक असगति (anomaly) लगती थी; और जैसा मुझे याद पड़ता है, पिगु की *Economics of Welfare* के सुविदित तलटीप ने इस दृढ़ विश्वास को शक्तिशाली ढंग से दिमाग में बैठा दिया कि जिस संकर सिद्धान्त को मैं लिखने जा रहा था उसका विज्ञापन एक **आवश्यक** भाग है। वह तलटीप निम्नलिखित है : "सरल प्रतियोगिता के अन्तर्गत इस विज्ञापन का कोई प्रयोजन नहीं है, क्योकि, परिकल्पना से, बाजार-कीमत पर, कोई छोटा विक्रेता जितना बेचना चाहे उतना बाजार ले लेगा।"[33]

तब, **शुद्ध** प्रतियोगिता का एक प्रमुख लक्षण विज्ञापन का नितान्त अभाव अवश्य होना चाहिए; इसलिए वह एक ऐसी क्रिया है जो स्थिति में **एकाधिकार** तत्वों पर तर्क-सम्मत रूप से आरोपित की जानी चाहिए—इस बात पर कि प्रत्येक विक्रेता के लिए अन्य के बाजारों से प्रभिन्न बाजार का अस्तित्व है, विक्रयण प्रयासों द्वारा जिसका विस्तार करने की वह कोशिश करता है। आखिरकार, यह स्पष्ट हुआ कि विक्रय लागतों को अर्थसिद्धान्त में क्यों छोड़ दिया गया। प्रतियोगिता के सिद्धान्त में, अर्थात् "पूर्ण" प्रतियोगिता के सिद्धान्त में (जो व्यापक रूप से विषय के सर्वाधिक अमूर्त और सामान्य रूप में उसका एकमात्र (*the*) सिद्धान्त समझा जाता था), उसके लिए कोई जगह थी ही नहीं। और दूसरी ओर, प्रवर्तमान द्विभाजन के अन्तर्गत विज्ञापन जैसी तीव्र रूप से प्रतियोगितामूलक क्रिया के लिए एकाधिकार के सिद्धान्त में भी कोई जगह प्रत्यक्षत: नहीं थी। तिस पर भी, एक ऐसे सिद्धान्त मे विक्रय लागत कितने सहज रूप से ठीक बैठ जाती है जिसका उद्देश्य ही परस्पर-संबध के, न कि परस्पर-निवारकता के, ढांचे में एकाधिकार और प्रतियोगिता का विश्लेषण करना है !

विक्रय लागत के प्रतिपादन में थीसिस और पुस्तक के बीच मुख्य अन्तर यह था कि थीसिस में वह काट दिया गया था, और अध्याय 6 के अन्त में रुक जाता था, और उसमें आगे आने वाले अध्याय 7 का वादा किया गया था। इस क्रियाविधि को अपनाने का अनुरोध—बल्कि आग्रह कहना बेहतर होगा—यंग ने किया था, क्योकि बिल्कुल प्रत्यक्ष था कि 1 अप्रैल की अन्तिम तिथि तक अध्याय 7 का प्राविधिक विश्लेषण सन्तोषजनक रूप से सभवत: पूरा नही किया जा सकता था (बल्कि किया ही नही जा सकता था)। अध्याय 6 जिस रूप में प्रकाशित हुआ उससे कही अधिक ब्योरेवार और लम्बा था, और उसमें वह भी सम्मिलित था जो बाद में अध्याय 7 का एक भाग बना। 1927 के बाद किए गए संशोधन में, अध्याय 7 का आकारिक विन्यास पुनर्व्यवस्थित अध्याय 5 के पूर्णतया अनकूल किया गया। इसका उद्देश्य यह था कि अध्याय 7 में परिच्छेद-प्रति-परिच्छेद अध्याय 5 में दिए गए संगत विश्लेषण का परिवर्धन या संशोधन होना चाहिए; और आंशिक विश्लेषण के दृष्टान्त के रूप में अध्याय 5 की ("पूर्वायोजित") कमी को, जो विक्रय लागतों की अनुपस्थिति की व्यक्त कल्पना है,[34] उसमें पूरा कर दिया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथसूची का,[35] जो डाक्टर की प्रत्येक थीसिस का मानक परिशिष्ट होता है, संक्षिप्त वर्णन इस सिद्धान्त के प्रारंभिक विकास में, जैसा वह ऊपर दिया गया है, अन्तर्निहित सामग्री का निर्देश करने के लिए उपयोगी होगा। ग्रंथसूची चार भागों में विभाजित की गई थी : (1) प्रमुख नियमों और सिद्धान्त पर सामान्य कृतियां और पत्रिकाओं के लेख, जिनमें मुख्यतया अंग्रेज, फ्रांसिसी, आस्ट्रियाई और अमरीकी लेखक सम्मिलित थे। इस भाग में सबसे पुराना संदर्भ कूर्नो (1838) का था, और नवम्बर 1925 का एक पत्रिका-लेख नवीनतम था। (2) द्वयधिकार का सिद्धान्त : "लेखक की जानकारी के अनुसार यहां प्रस्तुत सूची सम्पूर्ण है" : इस सूची में बीस संदर्भ थे जिनमें से कई, चन्द पंक्तियों से लेकर एक या दो पृष्ठों के, केवल लेखांश थे। यहां दिया गया सबसे पुराना संदर्भ फिर कूर्नो का था, और 1925 में बॉले की यंग द्वारा समीक्षा नवीनतम थी। इस प्रारंभिक काल मे लिखी गई कुछ और सामग्री तब से खोजी गई है, परन्तु मेरा ख्याल है कि 1926 से पहले की सामग्री की अब ज्ञात संख्या पच्चीस या तीस से अधिक नहीं होगी।[36] (3) व्यवसाय-अर्थशास्त्र पर पुस्तकें और लेख, जिनमें *Printer's Ink*, *System*, और उस काल की अन्य अग्रणी व्यवसाय पत्रिकाओं के कई लेख सम्मिलित थे। इसमें विभिन्न व्यवसाय अनुसंधान (बिजनैस रिसर्च) ब्यूरो द्वारा और संयुक्त राज्य सरकार के कृषि विभाग द्वारा प्रकाशित बुलेटिनें भी शामिल थीं। (4) पेटेन्ट और व्यापार-चिह्नों पर आर्थिक और कानूनी साहित्य।

इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि बाजारों के विद्यमान आर्थिक विश्लेषण पर, सामान्य रूप से, कठोर तर्क का अनुप्रयोग करने का प्रयत्न तो किया ही गया, परन्तु व्यावसायिक ढांचे और व्यवहार संबंधी सामग्री का नयी परिकल्पनाओं को सुझाने के लिए और नये निष्कर्षों के लिए दृष्टान्त सामग्री प्रदान करने के लिए उपयोग करने का प्रयत्न और भी अधिक महत्वपूर्ण था। संक्षेप में, मूल्य के सामान्य सिद्धान्त में एक ऐसी आर्थिक क्रिया को समाविष्ट करने का प्रयत्न किया गया जो अब तक सामान्य अर्थ-सिद्धान्ती के दायरे के बाहर थी। वर्धमान प्रतिफल और प्रतिनिधि फर्म अपनी अनुपस्थिति से संलक्ष्य है।

चित्र को पूरा करने के लिए थीसिसोत्तर अवधि के बारे में कुछ और शब्द कहना आवश्यक है।

प्रथम संस्करण की भूमिका में निर्देश किया गया था कि इस अवधि में किया गया कार्य मुख्यतः पुनर्लेखन और पुनर्विन्यास का था। जो उलट-पलट हुई उसके स्वरूप को इस प्रक्रिया में हटाई गई या परिशिष्टों में डाल दी गई सामग्री का ऊपर दिया गया वर्णन पहले की अपेक्षा अधिक स्पष्ट कर देगा। जिसका **केवल** पुनर्विन्यास किया गया उसके ब्योरे में सामान्य दिलचस्पी नहीं होगी, परन्तु यदि थीसिस के अध्यायों में उपशीर्षकों की तुलना वर्तमान विषय-सूची के उपशीर्षकों से की जाए तो देखा जाएगा कि वे या तो सर्वतः भिन्न हैं या अनुपस्थित हैं; और इससे रूपान्तरण के स्वरूप का संकेत होगा। विशेषकर के, इस पर ध्यान दिया जाए कि पुस्तक की अपेक्षा थीसिस में

अल्पाधिकार शक्तियों का विश्लेषण कहीं अधिक छितरा हुआ और सम्पूर्ण विषय की अन्य अवस्थाओं के साथ कहीं अधिक समेकित था। इस संबंध में पुस्तक की अपेक्षा वह "वास्तविकता" के अधिक समानुरूप था; पुस्तक में अध्याय 3 में विश्लेषण के एकत्रीकरण का यह अशुभ परिणाम हुआ कि कई को वह एक पृथक् विषय लगने लगा।

मुझे सिद्धान्त में की गई कल्पनाओं के अमूर्त स्वरूप पर, और वास्तविक जीवन से उनकी दूरस्थिति पर, कई टिप्पणियां और आलोचनाएं तक देखने को मिली है। यह सच है कि पुस्तक में किए गए विश्लेषण का प्रत्येक भाग आंशिक है और वह सम्पूर्ण समस्या के अन्य कारकों के संबंध में, जो स्थिर रखे जाते हैं, निश्चित कल्पनाओं के अन्तर्गत सम्पन्न किया गया है; और इसी कारण से जब वह स्वयं अकेला लिया जाता है तो विश्लेषण का प्रत्येक अंश साधारणतया अमूर्त और अवास्तविक प्रतीत होता है। इसकी व्याख्या यह है कि मार्शल के अनुदेश का, परिणाम चाहे जो हों, यथावत् प्रयोग करने का सचेतन प्रयत्न किया गया था। मार्शल के अनुसार "किसी संश्लिष्ट प्रश्न को विभाजित करके, एक समय में एक छोटे भाग का अध्ययन करके, और अन्त मे अपने आंशिक हलों को सम्पूर्ण पहेली के न्यूनाधिक सम्पूर्ण हल के रूप में संयुक्त करके, क्रमशः आगे बढ़ो।...विचार-वस्तु को इस प्रकार जितना ही संकीर्ण किया जाएगा, उसका प्रतिपादन उतने ही यथार्थतः किया जा सकता है; परन्तु वह वास्तविक जीवन के अनुरूप उतने ही कम निकट रूप से होता है। ...प्रत्येक कदम के साथ [अन्य बातें समान रहें के] बाड़े मे से अधिक चीजें मुक्त की जा सकती हैं .., इत्यादि।"[37] अल्पाधिकार का विषय इसका एक अच्छा दृष्टान्त है। अध्याय 3 में इस विषय का प्रतिपादन उत्पाद विशिष्टीकरण के बिना सर्वप्रथम किया गया है; फिर उत्पाद विशिष्टीकरण जोड़ दिया गया है, पृ० 80--88; और अन्त में 139--142 में विक्रय लागत, जो अब तक अनुपस्थित मानी गई थी, जोड़ी गई है।[38] वास्तव में, विचाराधीन समस्या जितनी "संश्लिष्ट समस्या" में "क्रमशः" की मार्शलीय रीति की इस अवस्था के इससे अधिक शाब्दिक अनुप्रयोग का उदाहरण मैं तत्काल सोच ही नहीं सकता। किसी "कदम" का अकेले में अवास्तविक होना निश्चित है।

5. मार्शल पर आक्षेप

"वर्धमान प्रतिफल विवाद" पर, जिसका आरम्भ दिसम्बर 1926 में स्राफा के *EJ* के लेख से सामान्यतया माना जाता है,[39] और प्रतिनिधि फर्म पर वाद-विवाद पर, जिसका आरम्भ पिगु और रॉबिन्स के लेखों से होता है,[40] (और जो अब तक होता चला आ रहा है), इन दोनों पर यहां गहराई से विचार करने का हमारा इरादा नहीं है। इस सुस्पष्ट बात का केवल संकेत करना आसान होगा कि केवल कालक्रम से ही, एवं ऊपर दिए गए पुस्तक के विवरण से (और निरीक्षण से) सुस्पष्ट है कि इस पुस्तक

(*The Theory of Monopolistic Competition*) के विकास में उन दोनों में से किसी ने कुछ भी भाग नहीं लिया। इसलिए यह निर्वचन नहीं किया जा सकता कि यह पुस्तक "मार्शल पर आक्षेप" की राख से उठी है, जो इसके प्रकाशन से पहले किए गए थे। न ही पुस्तक में सन्निहित किसी वाद-विषय में मार्शल पर आक्षेप किया गया है (जैसा दैवयोग से हो भी सकता था)।

लेकिन, इसमें संदेह नहीं कि आक्षेप किया गया था; **और यह कि सामान्यतया माना गया है कि अपूर्ण और एकाधिकारिक प्रतियोगिता का साहित्य उससे प्रस्फुटित हुआ है।** श्रीमती रॉबिन्सन की पुस्तक और मेरी पुस्तक की सबसे पहले की (1934) संयुक्त समीक्षाओं में से, जिन्होंने उन्हें एकसम बताने में इतना योगदान दिया, एक मे अंशतः कहा गया है कि : "इसलिए, हम इस पुस्तक को [*Monopolitsic Competition*] लब्ध प्रगति के एक उपयोगी सारांश के रूप में स्वीकार कर सकते हैं [एतद्वत् लिखित]। श्रीमती रॉबिन्सन की पुस्तक को इसी दृष्टि से स्वीकार किया जा सकता है। कैम्ब्रिज के पर्यावरण में लिखी गई यह पुस्तक हार्वर्ड से निकली कृति की अपेक्षा **और भी अधिक प्रामाणिक** समझी जा सकती है।"[41] परन्तु यह अति उदार है। सच तो यह है (पाठक स्वयं जाँच ले) कि इस मामले में *Monopolistic Competition* कोई भी "प्रमाण" नहीं है।

जो "आक्षेप" वस्तुतः किया गया था उसके स्वरूप पर कुछ टिप्पणियों से क्या प्रस्फुटित हुआ, और क्या नहीं हुआ, इसकी समझ बढ़ जानी चाहिए।।

पहला, इस बात को स्पष्ट और निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि जिसे आजकल अल्पाधिकार कहा जाता है वह इस आक्षेप का भाग बिल्कुल नही था। जिन अनेक स्थितियों में उसका प्रश्न उठाया गया है, उसका सदा एक ही सुव्यक्त उद्देश्य रहा है : उससे छुटकारा पाना। स्राफा इस "सन्देह को दूर करना" चाहते है कि विचारित स्थिति में, "सन्तुलन अनिर्धार्य हो सकता है," और कुछ विवेचन के बाद निष्कर्ष निकालते हैं कि वह "सामान्यतया निर्धार्य होता है,"[42] जो स्पष्टतः उपलक्षित करता है कि इसलिए चिंता का कोई कारण नहीं है। अपने लेख, "An Analysis of Supply", के प्रारंभ में पिगु स्पष्ट कर देते हैं कि "जिस उद्योग में x_r (प्रति फर्म उत्पत्ति) न तो y (उद्योग की कुल उत्पत्ति) के सापेक्ष अल्प है और न ही y के बराबर है, ऐसी कठिन मध्यवर्ती स्थिति पर—जो कुछ मात्रा में अनिर्धार्यता को सन्निहित करती है—विचार नहीं किया जाएगा।"[43] अपने लेख, "Notes on Supply", में हैरॉड इस विषय को एक छोटे अनुच्छेद में निबटा देते हैं : "यदि स्रोतों की संख्या एक से अधिक हो परन्तु बड़ी न हो, तो जिस प्रकार की मांग का सामना प्रत्येक स्रोत करता है उसे निर्धारित करना कठिन है...उस स्रोत के उत्पादों के मांग वक्र और समस्त मांग में वृद्धि के वक्र भिन्न होंगे। इस स्थिति में हो सकता है कि सब स्रोत अल्प और दीर्घ अवधियों में ह्रासमान पूर्ति कीमतों पर उत्पत्ति में वृद्धि करें।"[44] जहां इस विषय का किसी भी तरह से उल्लेख हुआ है, उसके उपर्युक्त तीन उदाहरण पाने में मैं समर्थ हुआ

हूँ। साधारण स्थिति में, उसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसलिए श्रीमती रॉबिन्सन द्वारा विषय का केवल उससे पिंड छुड़ाने के लिए[45] किया गया उल्लेख सर्वथा परम्परानुसार है। यह देखना दिलचस्प है कि "हाल में विकसित अपूर्ण प्रतियोगिता से संबंधित सिद्धान्तों में अर्थसिद्धान्त के लिए प्रमुख महत्व की बातों"[46] से अवगत कराने के लिए अभिकल्पित, *QJE* में प्रकाशित, अपने लेख में श्री हैरॉड अल्पाधिकार को उनमें नहीं पाते। प्रत्युत्, उनकी एकमात्र टिप्पणी यह है कि "द्वयधिकार की स्थिति में पारम्परिक सिद्धान्त सन्तोषजनक हल प्रदान करने में विफल रहा है।"[47]

दूसरे, जहां तक वर्धमान प्रतिफल विवाद का संबंध है, इस विषय में स्राफा का आधारभूत "नवप्रवर्तन" (innovation) उद्योगों के संबंध में था, न कि फर्मों के संबंध में। यह आक्षेप वर्धमान, ह्रासमान और स्थिर लागत के शब्दों में त्रिविध वर्गीकरण पर था; और अकेले पण्य पर पहले दो की प्रयोज्यता की नींव को निपुणता से खोखली करके, उससे यह निष्कर्ष निकला कि (कुछ अपवादों को छोड़कर) "प्रसामान्य स्थितियों में प्रतियोगी रूप से उत्पादित पण्यों के उत्पादन की लागत उत्पादित राशियों में अल्प परिवर्तनों के सापेक्ष स्थिर अवश्य मानी जानी चाहिए।"[48] वस्तुतः, ऐसा लगा कि "केवल उत्पादन की लागत" के इस "सर्वोत्तम उपलब्ध" सिद्धान्त ने ही "मुक्त प्रतियोगिता के पथ का परित्याग करने और...एकाधिकार की ओर मुड़ने" की आवश्यकता को प्रकट किया, ताकि "जिन दशाओं के अन्तर्गत विशेष स्थितियों में विनिमय होता है उनका अधिक विस्तार से अध्ययन किया जाए...।" यहीं "हम (फर्म के लिए) एक सुनिश्चित सिद्धान्त पाते हैं जिसमे वैयक्तिक उपक्रम (undertaking) की विमितियों में परिवर्तनों से संबधित लागत के परिवर्तन महत्वपूर्ण भाग अदा करते है।" और उद्योग के लिए स्थिर लागतों के दिए होने पर, फर्म के लागत वक्र पर उद्योग की उत्पत्ति में परिवर्तनों के प्रभाव के बारे में कोई समस्याएँ उठती प्रतीत नही होतीं। इस दोषरहित (irreproachable) स्थिर लागत वक्र के साथ मांग के एक नये विश्लेषण को मिलाकर के एकाधिकार के रूप में वैयक्तिक फर्म के सिद्धान्त का सृजन करना शेष रहा।[49]

इस चरम स्थिति से निम्नलिखित विवादों का विकास हुआ : उद्योगों का संयमन करने वाले नियमों के बारे में; (दुर्लभ कारकों, "भीतरी-बाहरी" किफायतों, इत्यादि के बारे में) उद्योगों और फर्मों के संबंधों के बारे में; उद्योग का सन्तुलन क्या यह अपेक्षा करता है कि सब फर्मों में सन्तुलन हो या केवल यह कि उनके विभिन्न असन्तुलन एक-दूसरे का "विलोपन कर" देते हैं, इस बारे में; फर्मों की संख्या में वृद्धि के विरुद्ध प्रति फर्म उत्पत्ति में वृद्धि द्वारा उद्योग के प्रसार के बारे में; उद्योग के लिए "सन्तुलन फर्म" बनाम प्रतिनिधि फर्म, और सन्तुलन में ऐसी फर्म की लागत की दशाओं के बारे में; यद्यपि सन्तुलन में उत्पादन की प्रति इकाई लागत का वक्र बराबर गिरता जा रहा है, तब भी, इस बिन्दु पर विपणन व्यय को जोड़कर क्या उसे यथोचित-आचरणयुक्त बनाया जा सकता है, और ऊपर को मोड़ा जा सकता है; इत्यादि, इत्यादि। मैं केवल

तीन विषयों पर टिप्पणी करूंगा : (1) "स्पर्शिता", (2) उद्योग की केन्द्रीय भूमिका, और (3) उद्योग के पूर्ति वक्र की व्याख्या करने में फर्म के मांग वक्र की भूमिका।

(1) स्राफा के 1926 के लेख के छः वर्ष बाद श्रीमती रॉबिन्सन के "Imperfect Competition and Falling Supply Price"[50] में स्पर्शिता हल प्रकट हुआ, जो वर्धमान प्रतिफल विवाद से प्रस्फुटित हुआ था। स्राफा ने प्रवेश की (और अनुमान (inference) से निर्गम की ?) समस्या की उपेक्षा भूल से नहीं, बल्कि जानबूझकर, की थी, और जिन कारणों से की थी उन्हें वे समुचित और पर्याप्त समझते थे : जहां पहले ही स्थापित फर्म का सुनाम एक कारक है वहां भारी व्यय; और क्योंकि वह "केवल तब महत्व प्राप्त कर सकता है जब व्यापार के एकाधिकार लाभ सामान्य स्तर से पर्याप्त रूप से अधिक हों", जो उनके विश्लेषण में पहले ही काफी ऊँचे है।[51] वास्तव में वे विस्तार से और कुछ ब्योरेवार विवेचन करते हैं कि उत्पादकों द्वारा (कुछ उद्योगों में नहीं, या अधिक में भी नही, बल्कि **सामान्यतया**) कीमतों को घटाने की अपेक्षा बढ़ाना अधिक सम्भाव्य है। इस प्रकार वे न केवल प्रवेश को अपवर्जित करते हैं बल्कि कीमत प्रतियोगिता का भी यथार्थतः विलोपन कर देते हैं।[52]

श्रीमती रॉबिन्सन का प्रवेश की समस्या का विश्लेषण और उनका स्पर्शिता हल उद्योग में "गिरती पूर्ति कीमत" के उनके विश्लेषण की एक अवस्था के रूप में प्रकट होता है। उनका लक्ष्य इस दूसरी समस्या के प्रति, जिसका विवेचन "सिम्पोजिअम" में और हैरॉड के दो लेखों में किया गया था, और अंशदान करना था।[53] वह सुविदित है, और उसका सारांश देने की आवश्यकता कम है। यदि किसी उद्योग में प्रवेश सम्भव है, तो वास्तविक उद्योग-लाभ के "सामान्य" से अधिक या कम होने के अनुसार फर्में उसमे प्रवेश करेंगी या उसे छोड़ेंगी। कठिन प्रवेश का अर्थ केवल इतना है कि उसमें प्रवेश करने के लिए लाभ का स्तर उच्चतर होना चाहिए जिसके लिए कठिनाई को पार किया जाए। "इसलिए यह प्रस्थापना कि उद्योग केवल तब सन्तुलन में होता है जब उसमें लाभ सामान्य होते है, एक द्विरुक्ति में बदल जाता है।"[54] यह स्वीकार किया गया है कि यह प्रस्थापना केवल तब विफल होती है जब प्रवेश इस अर्थ में असम्भव है कि लाभ के किसी भी स्तर पर, चाहे वह कितना ही ऊँचा क्यों न हो, प्रवेश नहीं होगा, जिस स्थिति में "हम चाहें तो कह सकते है कि उद्योग सदा सन्तुलन में रहता है या चाहें तो यह कि कभी सन्तुलन में नही रहता।" इस बहु-विवेचित "हल" के संबंध में मैं यहां केवल एक बात कहना चाहता हूँ कि केवल (1) किसी **उद्योग** में (2) किसी भी तरह से प्रवेश न होने की इस दूसरी स्थिति में लाभ **परिभाषा से** प्रतियोगितामूलक नही है। उद्योग के किसी **भाग** मे कठिन या असम्भव प्रवेश से जो लाभ उत्पन्न होते हैं, वे चाहे कितने ही ऊँचे क्यों न हों, प्रतियोगितामूलक है, यदि उसके किसी भाग में प्रवेश किसी भी प्रकार से सम्भव हो। यह हतबुद्धिकर परिणाम इस तथ्य से निकलता है कि "सामान्य" लाभ **उद्योग** से संबंधित संकल्पना है।

(2) वर्धमान प्रतिफल विवाद में उद्योग की सर्वव्यापिता को प्रलेखों (documents) द्वारा विस्तार से प्रमाणित करने की कोई आवश्यकता नहीं है—*Imperfect Competition* में उसका प्रमुख स्थान सुविधाजनक और पर्याप्त सूचक है। "प्रविधि" पर खण्ड 1 को अलग कर देने पर, केवल खण्ड 2 और खण्ड 5 में फर्म के रूप में फर्म पर विचार किया गया है। अन्य सात खण्ड उद्योगों पर केन्द्रित हैं; और अन्त में खण्ड 10 में, 'A World of Monopolies" में, हमें एकाधिकृत उद्योगों की, अपूर्णत: प्रतियोगी उद्योगों की, और पूर्णत: प्रतियोगी उद्योगों की दुनियाओं की तुलना मिलती है। यह उससे अलग दुनिया है जिसमे प्रत्येक विक्रेता का **अपने प्रभेद्य उत्पाद** पर एकाधिकार है और जिसमें उनके बीच विभिन्न प्रकार के समूह-संबंधों पर विचार किया गया है। इन दो दुनियाओं मे भेद की व्याख्या इस तथ्य से हो जाती है कि इनमें से पहली वर्धमान प्रतिफल विवाद से उत्पन्न हुई और दूसरी नही हुई।[55]

(3) **उद्योग** के **पूर्ति** वक्र की व्याख्या मे सहायता देने में "अपूर्णताओं" की भूमिका, जो **फर्म** के **मांग वक्र** में अभिव्यक्त की जाती हैं, मुझे वर्धमान प्रतिफल विवाद का एक अन्य उत्पाद प्रतीत होती है, जो अविचारित नही रहनी चाहिए। श्रीमती रॉबिन्सन के, पहले ही उद्धृत "Imperfect Competition and Falling Supply Price" में (या देखिए, *Imperfect Competition*, पृ० 97-100) इस विचार का विवरण सबसे स्पष्टत: और सरलत: दिया गया है, और तीन महीने बाद उसे पिगु का उत्साहपूर्ण अनुमोदन मिला, जिन्होंने उसका कुछ और विकास और विस्तार किया।[56] मै तत्वांशों को देने की कोशिश करूँगा। उद्योग मे स्थिर लागत की कल्पना की गई है; फर्मो के लागत वक्र U-आकृति के है, जो उद्योग के क्षैतिज लागत वक्र की स्पर्शरेखा है, और जब उद्योग का प्रसार होता है तो वे बदलते नहीं है। सब उत्पादकों के लिए लागत वक्र और मांग वक्र दोनों एकसमान है। सन्तुलन में सब फर्मों के लिए मांग और लागत वक्र एक-दूसरे की स्पर्शरेखाएं है, और उद्योग के लागत वक्र से स्पर्श-बिन्दु की ऊंचाई सबके लिए एक-सी है। अब मांग बढ़ने पर फर्में अधिक हो जाएंगी, और सब मांग वक्र, जो नये सन्तुलन में फिर लागत वक्रों की स्पर्शरेखाएं है, परिस्थितियों के अनुसार, पहले की तुलना में हो सकता है कि अधिक लोचदार हों, या कम लोचदार हों, या उतने ही लोचदार हों। प्रसारमान उत्पत्ति और परिवर्तनशील लोचों के होने पर, इन तीन स्थितियों में इन स्पर्श-बिन्दुओं का बिन्दु-पथ वक्र क्रमश: अधोमुखी ढालू, उपरिमुखी ढालू और क्षैतिज होगा। ये तीन वक्र पूर्ति वक्र, अथवा गिरती, बढ़ती या स्थिर पूर्ति-कीमत के वक्र, कहे जाते हैं। तिस पर भी, इनमें से कोई भी कीमत-निर्धारण में कोई भाग नहीं ले सकता है, क्योंकि जब तक कीमत ज्ञात न हो वे निर्धारित नहीं किए जा सकते है! यहां कुछ दोष है। फिर भी, आगे विवेचन किए बिना, मैं केवल इतना कहूँगा कि इसी समस्या पर सरलतर रूप में (मांग की लोच में परिवर्तन के बिना) पहले ध्यान दिया जा चुका था, जो वर्धमान प्रतिफल

विवाद से स्वतन्त्र था, और जिसका निष्कर्ष बहुत भिन्न था। यहां ऊपर पृष्ठ 92-94 (विशेषत: पृष्ठ 94; या थीसिस, पृष्ठ 308) का निर्देश है, जहां विचार प्रकट किया गया है कि फर्मों के लिए मांग और लागत वक्रों के स्पर्श-बिन्दुओं का पथ लागत वक्र किसी भी प्रकार से नहीं बनाता है। एक-एक फर्म के लागत वक्र के अलावा, एकमात्र सच्चा लागत वक्र शुद्धत: प्रतियोगी लागत वक्र है, और विचाराधीन बिन्दु इस वक्र पर नहीं होते हैं। इसके आगे, पाठक अपना निष्कर्ष स्वयं निकाल सकते हैं।

तीसरा है प्रतिनिधि फर्म। थीसिस में लागतों के कुछ प्रकार के सांख्यिकीय अध्ययनों की विस्तृत आलोचना की गई है। ये वे अध्ययन हैं जिनमें किसी उद्योग या व्यापार में विभिन्न फर्मों की लागतों को आरोही क्रम में बायें से दाहिने व्यवस्थित किया जाता है, और परिणामिक तोरण वक्र (ogive curve) से ऐसे निष्कर्ष निकाले जाते हैं जैसे कि वह पूर्ति वक्र हो, जो वह स्पष्टत: नहीं है। आलोचना के मुख्य विषय सुपरिचित हैं : उत्पाद की विविधता, यह तथ्य की विचाराधीन लागत विक्रय लागत को सम्मिलित करती है, कि फर्में विभिन्न बाजारों में है, आदि। यहां बहुलक (modal) फर्म का निर्देश करने के लिए प्रतिनिधि फर्म वाक्यांश का अनेक बार प्रयोग किया गया था, परन्तु, अभी-अभी बताए गए कारणों से, कीमत-निर्धारण में ऐसी फर्म की भूमिका के बारे में कोई प्रश्न नहीं उठाए गए थे। पुस्तक में यह सब सामग्री छोड़ दी गई थी, और उसमें प्रतिनिधि फर्म की संकल्पना प्रकट नहीं होती है। "उदाहरणस्वरूप"[57] शब्द का अर्थ सर्वथा भिन्न है—और, इसके अलावा, वह अर्थ चित्रों के (बहुवचन में, अत: वे जिनके लाभ न्यूनतम से अधिक हैं या नहीं हैं, अल्पाधिकार शक्तियों सहित या उनके बिना, इत्यादि), और "प्रत्येक के लिए समुपयुक्त स्तरों" के, संदर्भ में निर्देशों से स्पष्टतर कर दिया गया है।

एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत किसी सच्चे "समूह सन्तुलन" में इन "उदाहरणस्वरूप" फर्मों को भी सम्मिलित करना होगा। अध्याय 5 का "स्पर्शिता हल" वास्तव में अनेक "हिम्मतभरी" कल्पनाओं पर आधारित है, और उसकी अभिकल्पना संश्लिष्ट समष्टि के कतिपय महत्वपूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डालने के लिए केवल की गई थी। विशिष्ट रूप से, वह विविधता के विवेचन की प्रस्तावना है, जिसे "अब व्यक्त रूप से स्वीकार अवश्य किया जाना चाहिए और 'एकसमानता की सरलतर परिकल्पना के अन्तर्गत प्रतिपादित निष्कर्षों से सम्बन्धित अवश्य किया जाना चाहिए।"[58] किसी समूह में अन्तिम हल को उत्पादों, कीमतों, लागतों, उत्पत्तियों, **और लाभों** की विस्तृत विविधता के संगत अवश्य होना चाहिए;[59] और विक्रय लागतों का विश्लेषण जोड़ना भी बाकी है : ("अब सिद्धान्त को सम्पूर्ण अवश्य किया जाना चाहिए.....")[60]

इन सब मामलों में "प्रतिनिधि फर्म" की, **जो किसी अर्थ में समूह का संयमन करेगी**, तलाश करना बेकार है, क्योंकि समस्या का सारतत्व यह है कि प्रत्येक फर्म **स्वयं अपने** आर्थिक पर्यावरण द्वारा संयमित होगी। अब तक यह स्पष्ट हो जाना

चाहिए कि प्रत्येक फर्म के आर्थिक पर्यावरण में अद्वितीयता के तत्व की स्वीकृति को फर्मों के बीच अन्योन्याश्रय के तत्वों में से किसी का प्रत्याख्यान या अवमान गलती से नहीं समझना चाहिए; ये तत्व वे हैं जो अर्थ-प्रणाली को संगठित रखने वाली लागत संरचना में और मांग पक्ष में "पेचीदा समस्याओं के जंजाल" में,[61] इन दोनों में, विद्यमान हैं, विशेषकर के तब जब विक्रय लागतें भी सम्मिलित कर ली जाती हैं।

मैं इस निष्कर्ष से बचने का कोई रास्ता नहीं देखता (और बचने का कोई कारण नहीं देखता) कि अल्पाधिकार की और कीमतेतर प्रतियोगिता की (केवल इन्हीं का नाम दें) सर्वव्यापी शक्तियाँ कई लटके हुए मामलों, बहुल इष्टतमों, और "समूहों" में तथा प्रणाली में किसी न किसी अर्थ में अनिर्धार्यता के लिए उत्तरदायी अवश्य होनी चाहिए। इन शक्तियों के बारे में यह आशंसा अवश्य की जानी चाहिए कि या तो वे अपने को दृढ़तापूर्वक जमा लेंगी या निश्चेष्टता अथवा अन्य समरूप शक्तियों की कृपा से वस्तुतः स्थायित्व प्राप्त कर लेंगी। समूह सन्तुलन की सामान्य अपेक्षा कि किसी साधन का एक उपयोग से दूसरे में स्थानान्तरण सुलाभकर न हो, इन सब समस्याओं को किसी भी प्रकार से नहीं निबटाती है।

इस पुस्तक में समय की समस्या पर व्यक्ततः विचार नही किया गया है, परन्तु यह भी स्पष्ट कर देना चाहिए कि स्थैतिक दशाओं की विरलित (rarefied) कल्पनाओं के द्वारा, जिनके द्वारा वह वर्जित कर दिया जाता है, उसे नजरन्दाज भी नहीं किया गया है। लागत वक्रों के संबंध में दिया गया विवरण अन्तर्निहित दृष्टिकोण का प्रतिरूप है : ".....प्रायः दीर्घकालीन लागत वक्र रखा गया है; परन्तु U-आकृति के वक्र की अन्तर्वस्तु का समुचित निर्वचन करके विश्लेषण को अल्पकालीन समस्याओं के अनुकूल आसानी से बनाया जा सकता है।"[62] पुनः विक्रय लागत के संबंध में कहा है : "विक्रय लागत का वक्र समयावधि के.....अनपेक्ष [जानबूझ कर] निर्धारित किया गया है।.....उत्पादन लागत वक्र की भांति, [उसे] समयावधि के संगत उन व्ययों और परिणामों को अवश्य सम्मिलित करना चाहिए जिन्हें अपनी नीतियां निश्चित करते समय व्यवसायी ध्यान में रखता है, और उसका निर्वचन ऐसी ही अवधि के संदर्भ में अवश्य किया जाना चाहिए।"[63]

विशिष्ट रूप से, वृद्धि के संबंध में, और मार्शल की प्रमुख स्थैतिक-गत्यात्मक समस्या—एक स्थिर समष्टि के भीतर "गतिविधि"—के संबंध में, एक अपेक्षाकृत सम्मोहक संकल्पना है, जिसे और अधिक निर्वचन के लिए खुला छोड़ दिया गया था; वह है वैयक्तिक फर्म के लागत वक्र में लाभ की राशि। उसकी परिभाषा यों की गई है कि वह "उद्यमी की सेवाओं को प्राप्त करने के लिए आवश्यक **न्यूनतम** लाभ" है।[64] परन्तु वृद्धि के प्रारंभिक काल में, या किसी अल्पावधि में, जिसके बाद दशाओं के सुधरने की आशंसा है, हो सकता है कि यह न्यूनतम वास्तव में, ऋणात्मक हो। यह भी संभव है कि अति-आशावादी आशंसाएं, जो याथार्थिक रूप से प्राप्य किसी भी चीज के परे हों, कुछ फर्मों को दीर्घकाल तक व्यवसाय में रहने दें और जब वे लुप्त होती हैं तो उनका

स्थान उन्हीं जैसी फर्में ले लें, और इस प्रकार समष्टि में अलाभकर फर्मों का एक स्थायी "उपान्त" (fringe) प्रदान करें। पुनः, ह्रासोन्मुख उपक्रम में, न्यूनतम लाभ प्राथमिक लागत से अधिक कुछ भी हो सकते हैं। और इसी प्रकार और भी। और एक उद्यमी का यह न्यूनतम अन्य के वास्तविक लाभों से, या, जब सब संबंधित लोगों के वास्तविक लाभों का अस्तित्व ही न हो तो, आशंसाओं से किस सीमा तक प्रभावित होता है? "न्यूनतम" इनके और अन्य गत्यात्मक समस्याओं के शब्दों में निर्वचन की मांग निस्सन्देह करता है।

6. एकाधिकारिक प्रतियोगिता पर मार्शल

Monopolistic Competition मार्शल पर नहीं बल्कि पूर्ण प्रतियोगिता के सिद्धान्त पर आक्षेप थी। वह (1) उन "शुद्ध सिद्धान्तियों" के विरुद्ध लक्षित की गई थी, जिनके लिए हमारे विषय का सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता है; परन्तु इससे अधिक (क्योंकि संख्या अधिक थी) (2) उनके विरुद्ध जो "प्रतियोगितामूलक" और "एकाधिकारमूलक" को केवल पृथक् प्रवर्ग समझते हैं, जिनके सिद्धान्त पृथक् हैं, और जिनके बीच स्पष्ट प्रभेदक रेखा खिंची है।

हाल के वर्षों मे इन दूसरे वादपदों के बारे में मार्शल की स्थिति क्या थी, और इनके संबंध में मार्शल की व्याख्या किस प्रकार की जानी चाहिए, इस बारे में बहुत वाद-विवाद हुआ है। उदाहरणार्थ, श्री न्यूमैन शिकायत करते हैं कि "बहुत सारा विश्लेषण, शुद्धतः प्रतियोगी दशाओं तक का विश्लेषण, जो आज मार्शलीय कह कर प्रस्तुत किया जा रहा है, उसका अधिकांश मार्शल के चिन्तन के सर्वथा असदृश है,"[65] और मैं कहूँगा कि मैं उनसे सहमत हूँ। परन्तु यह प्रश्न भी अवश्य उठाया जाना चाहिए कि मार्शल के विश्लेषण के उस भाग का जो एकाधिकारिक प्रतियोगिता के शब्दों में किया गया **प्रतीत** होता है और जिसे इस रूप में आज पुनर्जीवित किया जा रहा है, अधिकांश भी क्या, इस अर्थ में कि उसकी अभिव्यक्ति के रूप में वह **अयथेष्ट** है, उनके चिन्तन के सर्वथा असदृश नहीं है।

परन्तु हम मार्शल के चिन्तन की "यथेष्ट" अभिव्यक्ति कैसे प्राप्त करें? मार्शल कहते हैं कि ".....जिस दुनिया में हम रहते है,.....उत्पादन की लागत, मांग और मूल्य के बीच संबंधों के बारे में हर सुबोध और सरल सिद्धान्त आवश्यक रूप से मिथ्या है: और निपुण प्रतिपादन द्वारा उसे दी जाने वाली विशदता का आभास जितना ही अधिक हो, वह उतना ही अनिष्टकर है।"[66] इसका पदान्वय दुर्निवार्य है: मार्शल के बारे में हर सुबोध और सरल सिद्धान्त आवश्यक रूप से मिथ्या है, और वह जितना ही अधिक विशद है उतना ही अधिक अनिष्टकर है—जैसा मार्शल के सिद्धान्त जितने यथार्थ वास्तव में थे या उन्हें जितना यथार्थ बनाने का उनका इरादा था, उससे अधिक यथार्थ बनाकर उनका मार्शल पर आरोपण करके किया जाता है। अर्थशास्त्र

में गणितीय रीतियों की परिसीमाओं के बारे में उनकी सुविदित स्थिति प्रासंगिक है।

मार्शल वास्तविक जीवन में व्यवसायी ने क्या किया केवल इतना बताकर स्थितियों के बारे मे बहुधा "सिद्धान्त स्थापित किया करते" थे; और ऐसा होने के कारण, विशिष्ट बाजारों, उत्पाद विशिष्टीकरण (विशिष्ट शब्दावली के बिना), आदि, को यत्र-तत्र प्रकट होते हुए (या तलटीपों में दबे हुए) पाया जाना आसान है, क्योंकि वास्तविक जीवन का ढंग यही है। और जैसा श्री डी. सी. हेग अपने हाल के लेख, "Alfred Marshall and the Competitive Firm",[67] में कहते हैं यद्यपि मार्शल "*Principles* में [अल्पाधिकार] को विशिष्टतया वर्जित करते है", वे बहुधा व्यवसायियों के व्यवहार का वर्णन ऐसे शब्दों में करते हैं जो सुस्पष्ट रूप से "पारस्परिक आश्रितता की स्वीकृति" को सन्निहित करते है। मार्शल के अर्थशास्त्र में "सिद्धान्त" और "वास्तविक जीवन" के बीच सूक्ष्म प्रभेदक रेखा खींचना असंभव है, क्योंकि मार्शल ने स्वयं उसे नहीं खींचा, और वे अन्य को उसे खींचने के विरुद्ध चेतावनी देते कभी नहीं थके।

जहां तक एकाधिकार और "मुक्त प्रतियोगिता" का संबंध है, हमें ऐसे कथन मिलते हैं कि "वे अतिसूक्ष्म मात्राओं में एक से दूसरे में क्रमशः बदल जाते है।"[68] फिर भी, *Industry and Trade* में प्रत्येक पर पृथक् खंड में विचार किया गया है; और *Principles* में मूल्य की **सामान्य** समस्याओं का विश्लेषण मांग और पूर्ति के विषय के रूप में किया गया है, और एकाधिकार पर **अकेला** एक अध्याय दिया गया है, जिसमें मूल नियम अधिकतम निवल आय मे बदल जाता है! इस बारे में मार्शल अपने युग के प्रतिरूप थे; वस्तुतः उस युग पर उनके विशाल प्रभाव को देखते हुए यह कहना बेहतर होगा कि वह युग उनका प्रतिरूपी था। परन्तु ऐसे कई लेखांशों के होने के बावजूद, जिनमे वे फर्म के विशिष्ट बाजारों, विज्ञापन, आदि की ओर ध्यान खींचते हैं, बल्कि उन पर बल देते हैं, क्या यह कहना उचित नहीं है कि अपने सामान्य प्रतिपादन में वे स्वयं प्रतियोगिता को मूलभूत शक्ति समझते थे, और एकाधिकार को एक भिन्न और **वैकल्पिक** तत्व (principle) समझते थे? यदि ऐसा है और **जहां तक ऐसा है**, *Monopolistic Competition* (अन्य के साथ) मार्शलीय अर्थशास्त्र के विरुद्ध लक्षित है, परन्तु वर्धमान प्रतिफल और प्रतिनिधि फर्म पर 1926-33 के वादपदों के शब्दों में नहीं, बल्कि ऊपर (2) में निर्देशित अधिक सामान्य आधारों पर।

Principles के गणितीय परिशिष्ट के एक अल्प-विदित अंश में, मार्शल, शायद समस्या के गणितीय निरूपण के दबाव में, एकाधिकार और प्रतियोगिता के बारे में अपने दृष्टिकोण को इस प्रकार रखते है जो व्यापक है, और जो अन्य कारणों के साथ इस कारण से, अन्तिम (definitive) प्रतीत होता है। सीमान्त आय के संबंध में उसे ऊपर उद्धृत किया गया था[69], परन्तु वास्तविक प्रश्न अधिक **सामान्य** है, जो यह है कि बेची गई राशि में वृद्धि होने पर, उत्पाद की सीमान्तान्तरिक इकाइयों की किंचित् कम कीमत पर बिक्री के कारण कुल आय में कमी पर विचार किया जाना चाहिए या

नहीं। यह लेखांश उद्धरण के लिए, बहुत लम्बा है। परन्तु एकाधिकारियों के लिए, एक ऐसे उत्पादक के लिए जिसके "व्यावसायिक सम्पर्क सीमित हैं" और "अल्पावधियों से सम्बन्धित," विशेषकर के मंदी आदि की, कई समस्याओं के लिए इसका उत्तर "हां" है; और सामान्य स्थिति के लिए उत्तर है, "नहीं"।

वे कहते हैं कि "लेकिन, जब हम उत्पादन के अनेक कर्ताओं (agents) की **सामान्य मांग** को संयमित करने वाले कारणों की **सामान्य क्रियाविधि** का निदर्शन करने के उद्देश्य से वैयक्तिक उपक्रमी की क्रियाओं का अध्ययन कर रहे हैं, तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि हमें **इस प्रकार की स्थितियों का परिहार करना** चाहिए। हमें उनके प्रविशेष लक्षणों को पृथक् रूप से विश्लेषण करने के लिए विशेष विवेचनों के लिए छोड़ देना चाहिए। ....." "हमारे प्रसामान्य दृष्टान्त" में सीमान्तान्तरिक इकाइयों पर होने वाली हानि की "उपेक्षा की जा सकती है" और हम "किसी कर्ता की..... निवल उत्पत्ति के मूल्य" का उल्लेख....."उत्पाद के सामान्य विक्रयण मूल्य पर ली गई उस निवल उत्पत्ति की राशि के रूप में" कर सकते है।[70] यह "मार्शल **के बारे में**" एक "सुबोध और सरल" कथन नहीं है जो, जैसा ऊपर सुझाया गया था, "आवश्यक रूप से मिथ्या" होगा। यह मार्शल **का** कथन है, और इसलिए आवश्यक रूप से—खैर, शायद साक्ष्य का केवल एक और नमूना है। परन्तु यह एक इतना व्यापक और इतना स्पष्टतः प्रासंगिक कथन लगता है कि यदि मार्शल से यह बताने के लिए सीधे कहा जाता कि क्या वे सोचते है कि मूल्य सिद्धान्त में एकाधिकार और एकाधिकार-प्रभावों की "सामान्य" भूमिका है या यह कि वह केवल अल्प काल में और विशेष स्थिति में है, तो यह मार्शल का प्रत्युत्तर हो सकता था। यह सब यहां है। और इस प्रकार, साक्ष्य के रूप में, इस कथन का दर्जा काफी ऊंचा होना चाहिए।

निष्कर्ष यह प्रतीत होगा कि, अपनी सब संश्लिष्टताओं के साथ, मार्शल ने सामान्य दीर्घकालिक समस्या को, हमारी शब्दावली में, कम से कम "शुद्ध" प्रतियोगिता की समस्या अवश्य सोचा था। एकाधिकार कुल मिलाकर एक विशेष समस्या था या एक **अल्पकालिक** समस्या था। इतने अधिक अर्थशास्त्रियों के दिमाग में आज भी वह वैसा ही बना हुआ है, इस तथ्य की व्याख्या मार्शलीय परम्परा की निरन्तर सामर्थ्य से बहुतांश में हो जाती है।

तलटीप

अध्याय 1—विषय प्रवेश (पृष्ठ 1-7)

[1] (पृ. 2) अन्य कारण भी प्रवेश करते है। इस समस्या पर अध्याय 3 में विस्तार से विचार किया गया है।

[2] (पृ. 2) *The Economics of Overhead Costs*, पृ. 417।

[3] (पृ. 2) और यदि अब हम पूर्ण प्रतियोगिता को एक मानक के रूप में देखें, जिसका अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमतें न्यूनाधिक समीपता से सन्निकटन करती हैं, तो हम इस विस्मयकारी निष्कर्ष पर पहुँचते है कि वे एकाधिकार कीमतों का सन्निकटन करती है।

[4] (पृ. 2) *Risk, Uncertainty and Profit*, पृ. 193।

[5] (पृ. 3) वही, पृ. 193, तलटीप।

[6] (पृ. 3) *The Theory of Business Enterprise*, पृ. 54।

[7] (पृ. 3) अतिरिक्त उद्धरणों के लिए आगे, अध्याय 4 तलटीप 24 देखिए, जो प्रत्येक विक्रेता के लिए पृथक् बाजार के विचार का विशेष करके उल्लेख करते है।

[8] (पृ. 3) इसके लिखे जा चुकने के बाद, तीन नये लेखकों ने अन्तर्वर्ती सिद्धान्त के औचित्य का समर्थन किया है। "The Laws of Returns under Competitive Conditions" शीर्षक वाले [*Economic Journal* (*EJ*), खंड 36 (1926)] अपने लेख में प्रोफेसर स्राफा "मुक्त प्रतियोगिता के मार्ग का परित्याग करने और विपरीत दिशा में, एकाधिकार की ओर, मुड़ने का" आह्वान करते है (पृ. 542)। वे कहते है कि "हमे.....इस पर विश्वास करने के लिए अभिप्रेरित किया जाता है कि जब उत्पादन, नियंत्रण के संबंध में एक-दूसरे से सर्वतः स्वतंत्र, बड़ी संख्या में विक्रेताओं के हाथ में होता है, तो जिस बाजार में पदार्थों का विनिमय किया जाता है वह यदि सर्वथा पूर्ण न भी हो, तब भी प्रतियोगिता के लिए समुचित निष्कर्षों को लागू किया जा सकता है, क्योंकि उसकी अपूर्णताएं सामान्यतया निर्धर्षों से बनी होती है जो प्रतियोगिता की सक्रिय शक्तियों के प्रभावों को, हो सकता है कि, केवल मन्दित कर दें या किंचित् परिवर्तित कर दें, परन्तु जिसे अन्ततः सारवान रूप से अभिभूत करने में वे [प्रतियोगिता की सक्रिय शक्तियाँ] सफल होती हैं। यह विचार मूलभूत रूप से अग्राह्य प्रतीत होता है। बाजार की एकता को, जो प्रतियोगिता की अनिवार्य शर्त है, तोड़ने वाली रुकावटों में कई 'निर्घर्ष' के स्वरूप की नहीं हैं, बल्कि स्वयं सक्रिय शक्तियाँ हैं जो चिरस्थायी और यहां तक की सचयी प्रभावों को उत्पन्न करती हैं। इसके अतिरिक्त, प्रायः वे पर्याप्त स्थायित्वयुक्त होती हैं जो उन्हें स्थैतिक कल्पनाओं पर आधारित विश्लेषण का विषय बनवाने में समर्थ करती है।" वे

इस प्रकार का विश्लेषण करने के लिए बढ़ते हैं, जिसमें अनुवर्ती अध्यायों में प्रस्तुत विचारों में से कुछ के असाधारण रूप से सदृश विचार मिलते हैं। देखिए, परिशिष्ट 'झ', विशेषतया, पृ. 308-11। (जिस समय प्रोफेसर स्राफा का लेख प्रकाशित हुआ, प्रस्तुत अध्ययन जो, 1 अप्रैल 1927 को, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी में डाक्टर की थीसिस के रूप में प्रस्तुत किया गया था, यथार्थतः पूरा हो चुका था।)

इसी प्रकार प्रोफेसर होटेलिंग ["Stability in Competition", *EJ*, खंड 39, (1919)] अर्थसिद्धान्त की आलोचना करते हैं, क्योंकि उसमें "प्रत्येक विक्रेता के संबंध में क्रेताओं के ऐसे समूहों के अस्तित्व पर सामान्यतया" विचार नहीं किया गया है, "जो कीमत में अन्तर के बावजूद उसके प्रतियोगियों से व्यापार न करके उससे व्यापार करेंगे।.....कहा जा सकता है कि ग्राहकों के ऐसे दायरे एक सीमित वर्ग और क्षेत्र में प्रत्येक उद्यमी को एकाधिकारी बना देते हैं और ऐसा कोई एकाधिकार नहीं है जो किसी सीमित वर्ग और क्षेत्र के भीतर बन्द न हो। अपने उत्कर्ष में स्टैन्डर्ड ऑयल कंपनी और नुक्कड़ पर छोटे पंसारी के बीच भेद गुणात्मक न होकर मात्रात्मक है। सिद्धान्त की पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार के बीच वास्तविक स्थितियाँ होती हैं।" (पृ. 44)। वे अल्प-संख्या में उद्यमियों में आपस में प्रतियोगिता के विशेष संदर्भ में ऐसे वैयक्तिक बाजारों के परिणामों को विकसित करते हैं।

अन्त में डा. ज्यूदन (*Problems of Monopoly and Economic Warfare*, लन्दन 1930) वस्तुस्थिति का जोरदार, शायद बहुत जोर देकर, वर्णन करते हैं :—"न तो प्रतियोगिता और न ही एकाधिकार कभी निरपेक्ष होते हैं, और उनके बारे में सिद्धान्त वास्तविकता के केवल बाहरी किनारों पर विचार करते हैं, जिसे सदा उनके बीच में ढूंढा जाना चाहिए। वास्तविकता का ऐसा प्रतिपादन जैसे कि वह सीमान्त स्थितियों में किसी से अभिन्न हो, एकपक्षीय और भूल से भरा है, जब कि केवल सीमान्त स्थितियों का सही निदर्शन अपर्याप्त है। फलतः, हमें शुद्धतः सीमान्त स्थितियों के स्थान पर वास्तविकता के इस क्षेत्र का अध्ययन अवश्य करना चाहिए।" (पृ. 62)। उनकी पुस्तक इस विषय पर एक उल्लेखनीय अंशदान है।

[9] (पृ. 3) प्रोफेसर नाइट, पूर्वउद्धृत, पूर्ण प्रतियोगिता के इस पहलू पर विशेष जोर देते हैं।

[10] (पृ. 3) यहां अभिप्राय दीर्घकालीन बाजार से है। बाजार, निस्संदेह, जोड़-तोड़ से मुक्त नहीं है, जो अल्पावधियों में आंशिक एकाधिकार नियंत्रण का एक रूप है।

[11] (पृ. 4) मेरा अभिप्राय यह दावा करने का नहीं है, जैसा कूर्नो ने किया था, कि मेरे सब निष्कर्ष एक ही परिकल्पना से निकाले गए हैं।

[12] (पृ. 4) तर्क किया जा सकता है कि खरीदे गए तुष्टिगुण केवल तब एक-से होंगे

यदि क्रेता भी "मानकित" हैं, क्योंकि हो सकता है कि वे पदार्थों को विभिन्न उपयोगों में लगाएं या उनका मूल्यन भिन्न-भिन्न कारणों से करें। यह निष्कर्ष निकलता नही दीखता। "तुष्टिगुण" का अर्थ है किसी आवश्यकता को तुष्ट करने की **क्षमता**, और यह, किसी पदार्थ की एकैक इकाइयां जिन विभिन्न उपयोगों में लगाई जा सकती है उनके अनपेक्ष, एक-सी बनी रहती है।

[13] (पृ. 5) मेरे ध्यान में (1936 में) आया कि "अल्पाधिकार" शब्द का प्रयोग 1914 जितना पहले कार्य इनेजिंगर ने किया था, *Theorie der Geld und Kredit-wirtschaft*, पृ. 17, 18, 57। "The Origin of Oligopoly", *EJ*, जून 1957 भी देखिए (*Towards a More General Theory of Value* मे दूसरा लेख)।

[14] (पृ 5) "एकाधिकारिक प्रतियोगिता" पद पहली की अपेक्षा दूसरी प्रकार की समस्या के लिए अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है, क्योकि जहा उत्पाद विशिष्टीकृत होता है, प्रत्येक विक्रेता सच्चे रूप से एकाधिकारी और प्रतियोगी दोनों होता है (आगे देखिए, अध्याय 4)। लेकिन, उसका प्रयोग अधिक व्यापक अर्थ मे एकाधिकारमूलक और प्रतियोगितामूलक तत्वों के सम्मिश्रण का केवल वर्णन करने के लिए भी किया जा सकता है (जैसे इस पुस्तक में)। इस प्रकार वह दोनों प्रकार की सकर समस्याओं को समाविष्ट कर लेता है।

[15] (पृ. 5) इन दो प्रकार की समस्याओं के सम्मिलन की और भी संभावना प्रकट होती है : (क) किसी विशिष्टीकृत उत्पाद के (ख) अपेक्षाकृत कम सख्या मे विक्रेता। इस पर अपनी पारी में पृ. 80 और आगे विचार किया गया है। इस सम्पूर्ण समस्या की ओर एक वैकल्पिक उपागम को मेरे लेख, "Monopolistic Competition Revisited", *Economica*, नवम्बर 1951, पृ. 343, मे प्रस्तुत किया गया है, और इन दो उपागमों की तुलना पृ. 361-362 मे की गई है। (*Towards*.....में तीसरा लेख, पृ. 67-68)।

अध्याय 2—शुद्ध प्रतियोगिता में मूल्य (पृष्ठ 8-23)

[1] (पृ. 8) आगे, पृ. 51-54।

[2] (पृ 8) "पूर्ण" प्रतियोगिता के सिद्धान्त के रूप मे जो अन्य अपेक्षाओं के साथ यह भी सन्निहित करता है कि क्रेता और विक्रेता बड़ी सख्याओं में हों (जो, प्रकल्पित रूप से (presumably), एकरूप उत्पाद के क्रेता-विक्रेता है)।

[3] (पृ. 9) मार्शल, *Principles*, आठवां संस्करण, पृ. 315। मार्शल के पाठ में यह कथन प्रतियोगी बाजार का निर्देश करता है।

[4] (पृ. 9) मैं कल्पना करता हूं कि एकाधिकारिक कीमत भेद के अनुकूल दशा अनुपस्थित है।

[5] (पृ. 9) उदाहरणार्थ, यह नहीं कहा जा सकता है कि एकाधिकारी का पूर्ति वक्र

AM है, क्योंकि इस रेखा का अर्थ यह अवश्य होना चाहिए कि बाजार में OA राशि कीमत के अनपेक्ष प्रस्तुत की जाती है। ऐसा नहीं होता। वह कीमत AQ से प्रतिबन्धित है, और केवल उसी कीमत पर प्रस्तुत की जाती है।

[6] (पृ. 9) यदि मांग और पूर्ति का निर्वचन वास्तव में खरीदी और बेची राशि के अर्थ में किया जाए तो, निस्संदेह, यह सच नहीं है क्योंकि इस स्थिति में वे सदा समान होते हैं, और पूर्ति तथा मांग का नियम केवल एक स्वयंसिद्धि (truism) बन जाता है। इस अर्थहीन तात्पर्य के सिवाय, एकाधिकार कीमत का पूर्ति और मांग के नियम से कोई सरोकार नही है। एकाधिकारी या तो (क) अपनी कीमत, या (ख) वास्तव में खरीदी-बेची गई राशि को चुन सकता है, और इन दो का एक-दूसरे से जो संबंध होगा वह उसके उत्पाद के मांग वक्र से प्रकट होता है। वह चाहे जो कीमत चुने, खरीदी गई राशि और बेची गई राशि बराबर होंगी; और वह चाहे जो राशि चुने, वह खरीदी भी जाएगी और बेची भी। परन्तु कीमत और राशि लाभ को अधिकतम करने के लिए चुनी जाएगी, न कि मांग और पूर्ति को समीकृत करने के लिए।

[7] (पृ. 10) श्रीमती रॉबिन्सन अन्य कई लोगों का उल्लेख करती हैं, जिन्होंने इस वक्र का स्वतन्त्र रूप से और लगभग एकसाथ "पता लगाया"। तुलना कीजिए, *The Economics of Imperfect Competition*, पृ. *vi*। आगे, पृ. 256, भी देखिए।

[8] (पृ. 10) हम एक और बात पर गौर कर लें। पूर्ति वक्र SS' या तो औसत लागत का वक्र है या सीमान्त लागत का, और यह इस पर निर्भर करता है कि दुर्लभता अधिशेषों को (जो, हमारे दृष्टान्त में, उत्पाद को बढ़ानें पर उत्पन्न होते है) लागत समझा जाता है या नही। यदि वे लागत नहीं समझे जाते, तो वह सीमान्त लागत बताता है। उदाहरणार्थ, OB राशि की कुल लागत $OBPR$ है, सीमान्त लागत BP है, और अधिशेष RPH है। परन्तु यदि अधिशेषों को लागत समझा जाता है तो पूर्ति वक्र औसत लागत वक्र होता है। OB राशि की, अधिशेष समेत, कुल लागत $OBPH$ है, और BP औसत लागत है। (औसत, अधिशेषहीन, लागत का वक्र R से शुरू होगा और SS' के नीचे होगा। सीमान्त अधिशेषयुक्त लागत का वक्र R से शुरू होगा और SS' के ऊपर होगा। यह वर्णन चित्र को पूरा कर देता है।) अब, एकाधिकारी के लिए, उसके अपने उत्पाद की बढ़ी हुई उत्पत्ति के कारण उत्पन्न होने वाले अधिशेष लागत नहीं हैं; प्रत्युत्, वे उन राशियों में हैं जिन्हें अधिकतम बनाने की वह कोशिश करता है। जैसा SS' खींचा गया है उसके संदर्भ मे, वह $GEQK$ जैसे क्षेत्रों को नहीं बल्कि, $REQK$ जैसे क्षेत्रों को अधिकतम करने की कोशिश करता है। लेकिन, एक-एक प्रतियोगी के लिए वे लागत है जो किसी अन्य व्यय से किसी प्रकार भिन्न नहीं हैं, क्योंकि अन्य से प्रतियोगिता उन्हें उसके ऊपर लाद देती है और वे उसके नियंत्रण के

अधीन नहीं हैं। वही वक्र SS', एकाधिकार के अन्तर्गत सीमान्त लागत का वक्र है, और प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत लागत का वक्र है। इन विचारों को दृष्टि में रखकर, हम एक सामान्य निष्कर्ष पर पहुँचते है जिसे यों कहा जा सकता है कि: एकाधिकार के अन्तर्गत, सन्तुलन राशि सीमान्त आय और सीमान्त लागत वक्रों के प्रतिच्छेद से निर्धारित होती है; प्रतियोगिता के अन्तर्गत वह औसत आय और औसत लागत वक्रों के प्रतिच्छेद से निर्धारित होती है। प्रत्येक उतना ही यथार्थतः सन्तुलन है, जितना कि दूसरा, यद्यपि केवल प्रतियोगी सन्तुलन मांग और पूर्ति को समीकृत करता है।

[9] (पृ. 10) एकाधिकारी सदृश कार्य करना और प्रतियोगी सदृश कार्य करना के बीच परेटो द्वारा किया गया भेद (*Manuel d'Economie Politique*, पृ. 163 और आगे) भ्रामक है, और विषय के मूल तक नहीं जाता है।

[10] (पृ. 10) अर्थात्, एक शुद्धतः प्रतियोगी बाजार मे विक्रेता।

[11] (पृ. 13) एक अन्य दृष्टिकोण से, kt या md को DD' वक्र का (चित्र $2a$) खंड समझा जा सकता है, जो चित्र $2b$ के पैमाने पर आलेखित किया गया है, और जो D से P तक 1000 oa की दूरी में गिरता है।

[12] (पृ. 13) 10,000 इकाइयां केवल औसत हैं।

[13] (पृ. 15) सन्तुलन की ओर गति का वर्णन ऐसे सदृश तर्क द्वारा भी निरूपित किया जा सकता है, जिसमें क्रेता अपनी प्राप्तियों को अधिकतम करते हैं। संक्षिप्तता की खातिर, उसे छोड़ दिया गया है। इस पर गौर करें कि अकेले विक्रेताओं की (या अकेले क्रेताओं की) क्रिया सर्वथा पर्याप्त है।

[14] (पृ. 15) अतः, सकेतन मे SS' का CC' में परिवर्तन (चित्र $3a$, $3b$, $3c$)।

[15] (पृ. 15) इस पर परिशिष्ट 'ख' में और अधिक विचार किया गया है।

[16] (पृ. 17) फर्म के दीर्घकालीन और अल्पकालीन, दोनों, लागत वक्र U-आकृति के होते है, यद्यपि दोनों के कारण भिन्न-भिन्न हैं। तुलना कीजिए, परिशिष्ट 'ख'। यहां, और अन्यत्र, प्राय. दीर्घकालीन लागत वक्र पर विचार किया गया है; परन्तु U-आकृति के वक्र की अन्तर्वस्तु का समुपयुक्त निर्वचन करके विश्लेषण को अल्पकालीन समस्याओं के अनुकूल आसानी से किया जा सकता है।

[17] (पृ. 17) तुलना कीजिए, आगे, परिशिष्ट 'ख'।

[18] (पृ. 17) प्रतीत हो सकता है कि ऐसे विचारों के परिणामस्वरूप निम्नतर न्यूनतम बिन्दु मिलेगा। परन्तु यह असंभव है, क्योंकि अतिरिक्त प्राप्तियां एक अधिशेष बनाती हैं जो जब समुपयुक्त कारकों पर आरोपित की जाती हैं, और पूंजीकृत की जाती है तो, वक्र को फिर ऊपर उठा देंगी।

[19] (पृ. 18) यदि अधिशेष सम्मिलित है तो औसत; यदि अधिशेष निकाल दिया गया है तो सीमान्त।

[20] (पृ. 18) तुलना कीजिए, ऊपर पृ. 14, 15, जहां तर्क किया गया है कि एक

प्रतियोगी ठीक वही करता है जो एकाधिकारी करता है।

[21] (पृ. 19) जैसा पहले ही बताया जा चुका है, ये वक्र एवं CC' सदा इस कल्पना पर खींचे जाते हैं कि काम में लाए गए साधनों को प्रत्येक विशेष उत्पत्ति के लिए सर्वाधिक प्रभावकारी रूप से अनुकूल किया गया है। यदि, जब उत्पत्ति OB है (चित्र $3a$), सब साधनों को इस राशि का उत्पादन करने के लिए पूर्णतः संगठित नहीं किया गया है (जैसा कि, कुसमायोजन की स्थिति में होना बहुत संभाव्य है), तो cc' जैसे वक्रों के न्यूनतम बिन्दु ठीक-ठीक BH नहीं होंगे। परन्तु प्रस्तुत प्रयोजन के लिए ये बारीकियां अनावश्यक हैं।

[22] (पृ. 19) पुनःसमायोजन को दूसरे ढंग से भी दिखाया जा सकता है, जो पहले के उदाहरण (पृ. 14) के अनुरूप है। उसमें, BQ कीमत पर, वास्तविक निवेद (offerings) OB से बढ़कर OA होने के स्थान पर, BQ कीमत होने पर प्रस्तुत की गई बृहत्तर राशि से घट कर OA हो जाता है।

[23] (पृ. 19) इस प्रश्न के और विस्तृत विवेचन के लिए, देखिए, मेरा लेख, "An Experimental Imperfect Market", *Journal of Political Economy* (*JPE*), खंड 56 (1948), पृ. 95। *Towards*...मे ग्यारहवां लेख)।

[24] (पृ. 19) तुलना कीजिए, ऊपर पृ. 3।

[25] (पृ. 20) *Papers Relating to Political Economy*, खंड 2, पृ० 314। उनकी *Mathematical Psychics* भी देखिए।

[26] (पृ. 21) यह निष्कर्ष मांग वक्र के (मार्शलीय) निर्वचन को अव्यक्त रूप से सन्निहित करता है, जो यह है कि न केवल BP कीमत पर OB इकाइयां ली जाएंगी, बल्कि AP' कीमत पर OA इकाइयां धन BP कीमत पर AB इकाइयां (इस प्रकार OB के लिए किया गया कुल भुगतान $OBPE$ क्षेत्रफल से अधिक हो जाता है), और इसी प्रकार आगे भी। इस तथ्य का निर्देश किया गया है कि मांग वक्र का निर्वचन इस प्रकार नहीं किया जा सकता है, और यह 'उपभोक्ता के अतिरेक" की संकल्पना के विरुद्ध मूलभूत आपत्ति है। (तुलना कीजिए, ए. ए. यंग, एली कृत *Outlines of Economics*, 5वां संशोधित संस्करण, पृ. 180।) सामान्यतया, यदि क्रेता OB इकाइयों को, सब को, BP कीमत पर खरीदने के लिए तैयार हैं तो, यदि वे उनके (OB के) एक भाग के लिए BP से अधिक कीमत (मान लो AP') दे चुके हैं, वे OB से किंचित् कम लेने को तैयार होंगे। इसलिए, ऐसा प्रतीत हो कि उच्चावचन बिक्री के परिमाण को, जैसा हमने कहा है, बढ़ाने के स्थान पर घटा देंगे। परन्तु उच्चावचन BP के नीचे एवं ऊपर होते हैं, और इस स्थिति में विपरीत तर्क ठीक उतरता है। यदि सब की कीमत BP होने पर OB इकाइयां ली जातीं तो, यदि उनका एक भाग BP से कम पर (मान लो CP'' पर) लिया जा चुका है, OB से अधिक इकाइयां ली जाएंगी। ये दो शक्तियां एक-दूसरे को लगभग बराबर कर देंगी।

इसलिए, ऐसा प्रतीत होगा कि इसके कारण ऊपर निकाले गए निष्कर्ष पर यदि कोई प्रतिबन्ध लगाना आवश्यक हो जाए तो वह मामूली होगा। (समरूप विचार पूर्ति वक्र पर भी लागू होते हैं।)

27 (पृ. 22) स्वभावतया, *BP* औसत कीमत केवल तब है यदि उच्चतर और निम्नतर कीमतों पर होने वाली बिक्रियों की संख्या समान है, और सामान्य स्थिति में यह सच होगा। मांग वक्र यह निर्देश करता प्रतीत हो सकता है कि *BP* से अधिक कीमत की अपेक्षा उससे कम कीमत पर बिक्री का परिमाण बृहत्तर है, परन्तु विक्रेताओं को पाने की कठिनाई को, जिसका संकेत पूर्ति वक्र करता है, भूलना नहीं चाहिए। इसी प्रकार, जब कीमतें *BP* से अधिक होती है तो बढ़ा हुआ निवेद क्रेताओं को पाने की कठिनाई द्वारा बराबर कर दिया जाता है। औसत कीमत *BP* से भिन्न केवल तब होगी यदि सौदाकारी में एक पक्ष दूसरे से "अधिक समर्थ" (stronger) हो या अधिक जानकार हो, और, सामान्यतया, इनमें से किसी के पक्ष मे कोई प्रकल्पना नही है।

28 (पृ. 22) तुलना कीजिए, मार्शल का अनाज की मडी का वर्णन, *Principles*, 8वां ससकरण, पृ 332।

29 (पृ. 23) यहां ऐसे अतिरिक्त कारकों पर विचार नही किया गया है, जैसे "पूलो" (pools) की क्रियाएं, और वे दांव-पेंच जिनके द्वारा पेशेवर सटोरिये कीमतों में परिवर्तन लाते हैं।

अध्याय 3—द्वयधिकार और अल्पाधिकार (पृष्ठ 24-43)

1 (पृ. 24) *Towards* ....मे दूसरा लेख, "The Origin of Oligopoly," भी देखिए।

2 (पृ. 24) सब स्थितियों मे गणितीय हलों का अनुवाद अगणितीय शब्दो में दिया गया है। लेकिन, गणितीय हलों को अधिकांशत: परिशिष्ट 'क' में रखा गया है।

3 (पृ. 24) यद्यपि थोड़े क्रेताओं और बड़ी सख्या में विक्रेताओं के अन्तर्गत मूल्य की समस्या (जैसे असगठित श्रम बाजार में) इस पुस्तक के विषयक्षेत्र में नहीं आता, फिर भी साम्यानुमान से उस पर प्रकाश पड़ता है। जहां तक विक्रेताओं की अल्पता शुद्धत: प्रतियोगी कीमतों से ऊंची कीमतें देती है, कम से कम यह प्रकल्पना है कि क्रेताओं की अल्पता का विलोम प्रभाव होगा (जिसका नुकसान मजदूर सबसे अधिक उठाते है)।

4 (पृ. 26) *Recherches sur les Principes Mathématiques de la Théorie des Richesses*, अध्याय 7। गणितीय कथन परिशिष्ट 'क' मे दिया गया है।

5 (पृ. 27) यह सुस्पष्ट है कि सरल रेखा मांग वक्र की और सम्पूर्ण पूर्ति की शून्य कीमत की कल्पना समस्या के अगणितीय विवरण को सरल कर देती है।

6 (पृ. 27) यह दृष्टान्त विक्सैल के एक समरूप दृष्टान्त से स्वतत्र रूप से निकाला

गया था, विक्सैल "Mathematische Nationalökonomie" (बॉले की *Mathematical Groundwork* की समीक्षा), *Archiv für Sozialwissenschaft und Sozialpolitik*, खंड 58, अंक 2 (1927), पृ. 252-281।

[7] (पृ. 28) विषय के विकास की एक अवस्था में, मेरी प्रवृत्ति इस निर्वचन का दृढ़ता से आग्रह करने की थी, परन्तु मित्रों से वाद-विवाद करने के बाद मैंने उसे, अति आग्रहपूर्ण समझकर, त्याग दिया। ऐसे दृष्टिकोण का परिणाम क्या होता है इसका शीघ्रता से संकेत कर दिया जाए। मान लो कि प्रत्येक विक्रेता की अधिकतम संभव उत्पत्ति पहले की भांति $OA=OB$ है, और मान लो कि प्रत्येक अपनी आरम्भिक पूर्ति-कीमत AP रखता है। कुल बिक्री OA में दोनों का हिस्सा

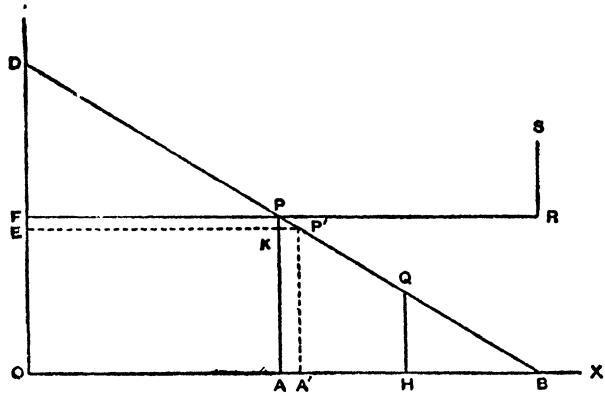

बराबर होगा, क्योंकि कोई कारण नहीं है कि क्रेता एक पर दूसरे को अधिमान दे; और उनके संयुक्त लाभ अधिकतम होंगे। अब मान लो कि कोई विक्रेता अपनी पूर्ति-कीमत को घटाकर $A'P'$ कर देता है। पूर्ति "वक्र" खंडित रेखा $EKPRS$ हो जाता है, और कीमत AP बनी रहती है, क्योंकि निम्नतर कीमत पर निवेद करने वाले की पूर्ति केवल OA है जब कि उस कीमत पर कुल मांग OA' है। दोनों के लिए वास्तविक कीमत AP होने के कारण, उन दोनों के बीच बिक्री पहले की भांति बँट जाएगी, और जिसकी पूर्ति-कीमत निम्नतर है, उसे कोई फायदा नहीं मिलेगा। उसके प्रतिद्वन्द्वी के हित मे है कि वह अपनी पूर्ति-कीमत OA बनाए रखे; क्योंकि उस कीमत पर उसके लाभ $\frac{1}{2}OAPP'$ है, जब कि यदि वह अनुसरण करके कीमत को $A'P'$ कर देता है तो वे केवल $\frac{1}{2}\ OA'P'E$ होंगे, जो पहले से कम हैं। यदि वह अपनी पूर्ति-कीमत को $A'P'$ से कम कर देता है तो अब भी कीमत $A'P'$ (उसके प्रतिद्वन्द्वी की पूर्ति-कीमत) होगी, और उसके लाभ फिर $\frac{1}{2}\ OA'P'E$ होंगे। इसलिए कीमत AP पर निर्धारित है। यदि दो से अधिक विक्रेता होते, तो वह एक परिसर में अनिर्धार्य होती जो विक्रेताओं

की संख्या में वृद्धि के अनुसार बढ़ता जाता है। इस विलक्षण नतीजे का ब्यौरा मुश्किल से प्रस्तुत करने के योग्य है।

[8] (पृ. 29) *Journal des Savants* (1883), पृ. 503।

[9] (पृ. 29) *Principles*, प्रथम संस्करण, पृ. 485 तलटीप; द्वितीय संस्करण, पृ. 457 तलटीप। दूसरे संस्करण में इस उद्धरण का अन्तिम वाक्य बदल कर निम्नलिखित कर दिया गया है : "कूर्नो उन व्यावहारिक परिसीमाओं की उपेक्षा करते हैं जो वास्तविक जीवन में इस परिणाम को प्राप्त होने से रोकती है।"

[10] (पृ. 29) *Cours d'Economie Politique* (1896), पृ. 68। अपनी बाद की रचनाओं में वे सिद्धान्त के एक अधिक सामान्य कथन को विकसित करते है, जिस पर परिशिष्ट 'क' मे विचार किया गया है।

[11] (पृ. 29) "La Teoria Pura de Monopolio", *Giornale degli Economisti*, खंड 15 (1897)। इसका अंग्रेजी अनुवाद उनकी *Papers Relating to Political Economy*, खंड 1, पृ. 111, मे प्रकाशित है।

[12] (पृ. 29) वही, पृ. 118।

[13] (पृ. 31) वही, पृ. 119, 120। सकेतन में मामूली परिवर्तन किए गए है।

[14] (पृ. 31) वही, पृ. 121। सिद्धान्त का विकास पूरक पदार्थो के लिए भी किया गया है, परन्तु वह हमारी समस्या के क्षेत्र के परे है।

[15] (पृ. 31) वही, पृ. 118 (बल मेरा)। एॅजवर्थ से अपरिचित पाठक के लिए, यह व्याख्या दी जा सकती है कि "संविदा" अनन्तिम कीमत का निरूपण करती है जो, यदि कोई अन्य विक्रेता क्रेता से निम्नतर कीमत माँगे या यदि कोई अन्य क्रेता विक्रेता को उच्चतर कीमत दे तो (पुन.संविदा द्वारा), सदा बदली जा सकती है। जब तक पुनःसविदा क्रेता और विक्रेता दोनो के हित मे न हो, वह स्वभावतया नही की जाएगी। यह प्रक्रिया, शब्दावली नही, यथार्थतः वही है जो प्रतियोगी कीमत लगाने के नाम से अधिक सामान्यतया जानी जाती है, जो शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत सन्तुलन, या अन्तिम, कीमत से भिन्न सब (अनन्तिम) कीमतों को नष्ट कर देती है।

[16] (पृ. 32) **जब कीमत लगाई जाती है**, तब "प्रतियोगितामूलक" परिणामों को प्रदान करने में दो विक्रेताओं की पर्याप्तता, और उससे संलग्न यह तथ्य कि प्रतियोगी सन्तुलन की ओर गति के बारे में सामान्यतया इन (कीमत लगाने के) शब्दों में सोचा जाता है, कदाचित् द्वयधिकार और एकाधिकारिक प्रतियोगिता की समस्याओं की ओर सामान्यतया अपर्याप्त ध्यान दिए जाने की व्याख्या अंशतः करता है।

[17] (पृ. 32) एॅजवर्थ की त्रुटि का स्वरूप उनके तर्क को अधिक सुपरिचित मार्शलीय पूर्ति और मांग सारणियों, या वक्रों, के शब्दों में ढालने पर शायद अधिक अच्छी तरह से समझ में आ जाए। "सविदा वक्र" (तुलना कीजिए, *Mathematical*

Psychics) पर जिस क्षेत्र में कीमत अनिर्धार्य है वह उस क्षेत्र के अनुरूप है जिसमें, क्रेताओं और विक्रेताओं के अल्प होने और फलतः मांग और पूर्ति सारणियों के असतत (discontinuous) होने की स्थिति में, "सौदाकारी" हो सकती है। उसकी सीमा, एक ओर तो, सीमान्त मांग-कीमत और पहली सीमान्तातीत (extra-marginal) पूर्ति-कीमत है, और दूसरी ओर, सीमान्त पूर्ति-कीमत और पहली सीमान्तातीत मांग-कीमत है। जैसे-जैसे क्रेताओं की संख्या बढ़ती है, मांग वक्र अधिक निकट से सतत हो जाता है, और सीमान्त मांग-कीमत और पहली सीमान्तातीत मांग-कीमत के संपतन की प्रवृत्ति होती है। इसी प्रकार जैसे-जैसे विक्रेताओ की संख्या बढ़ती है, सीमान्त पूर्ति कीमत और पहली सीमान्तातीत पूर्ति-कीमत के अधिक निकट से संपतन की प्रवृत्ति होती है। यदि क्रेता और विक्रेता दोनों की सख्या कम हो, तो उनकी प्रतियोगिता द्वारा नियत सीमाएँ, जिनके भीतर सौदाकारी की जाती है, हो सकता है कि एक-दूसरे से बहुत दूर हों। यहां एॅजवर्थ के अर्थ में कीमत अननिर्धार्य है, इस अर्थ में कि "अन्तिम निपटारा" इन सीमाओं के भीतर कही भी हो सकता है—"अन्तिम निपटारों की सख्या अनिश्चित है।" परन्तु शाश्वत (perpetual) दोलन नही होता। अब, क्रेताओं या विक्रेताओं की संख्या में वृद्धि (परन्तु यह आवश्यक नही है कि दोनों की संख्या में वृद्धि हो) इस क्षेत्र को सकुचित करके बिन्दु बना देती है, और एक अकेला "अन्तिम निपटारा", या निर्धार्य सन्तुलन कीमत, देती है, क्योंकि एक सतत मांग सारणी और एक असतत पूर्ति सारणी (या इसके विलोम) का कटान बिन्दु केवल एक होता है। द्वयधिकार के उदाहरण मे, मांग सारणी के सतत होने के कारण, केवल एक "अन्तिम निपटारा" *OQ* कीमत पर होगा। यदि कीमतें मुक्त सविदा या प्रतियोगी बोली बोलने से स्थापित होती है, और यदि प्रत्येक विक्रेता मान लेता है कि उसके प्रतिद्वन्द्वी की कीमत उसकी अपनी नीति से अप्रभावित रहती है, तो यही निर्धार्य सन्तुलन कीमत है।

[18] (पृ. 31) उपरिमुखी गति संविदा के सिद्धान्त, या प्रतियोगी बोली बोलने, के असगत है, क्योंकि कोई नयी "सविदा" सदा सब पक्षों के अनुकूल अवश्य होनी चाहिए। प्रतियोगी बोली बोलने के अन्तर्गत **उपरिमुखी** गति केवल तब हो सकती है यदि गति सन्तुलन बिन्दु के **नीचे** से शुरू होती है। इसका एक उदाहरण नीलामी बिक्री है। यहां कीमतें ऊपर को चलती है (नीचे को कभी नही), और प्रत्येक नयी कीमत नयी बोली लगाने वाले और विक्रेता दोनों के अनुकूल है।

[19] (पृ. 32) वास्तव में, एॅजवर्थ उपपत्ति इस तरह देते है जैसे वह "दो या अधिक" एकाधिकारियों पर लागू होती है (उद्धृत परिच्छेद, पृ. 116), परन्तु यह मानना कठिन है कि वे उसे बहुत अधिक विक्रेताओं पर लागू करेंगे, क्योंकि उनका सामान्य सिद्धान्त यह है कि 'अधिक या कम पूर्ण प्रतियोगिता में संविदा कम या अधिक निर्धार्य होती है।" (*Mathematical Psychics*, पृ. 20।)

[20] (पृ. 32) श्री काह्न ने इस तर्क की आलोचना की है। वे निर्देश करते है कि यद्यपि पहली फर्म को कीमत को एकाधिकार कीमत तक बढाने पर फायदा होगा, किंतु जैसे ही एक या दो अन्य फर्में कीमत को उससे किंचित् कम तक बढ़ा लेती हैं, पहली फर्म की उत्पत्ति घटकर शून्य हो जाएगी, 'और इसके पहले कि बहुसंख्यक फर्मों को कदम उठाने का मौका मिले, कीमत में कटौती यथापूर्व स्थिति (status quo) को पुनःस्थापित कर देती है। दोलनों का **आयाम** (amplitude) अपरिवर्तित रहता है; परन्तु जैसे-जैसे विक्रेताओं की संख्या बढ़ती है वे उद्योग के क्रमशः ह्रासमान भाग को प्रभावित करते है।" (लेखक को लिखा पत्र।) यह काफी सच है यदि हम मान लें (जो वास्तविक जीवन के कदाचित् अनुरूप है) कि जब तक किसी दूसरे के द्वारा अगुआई नहीं की जाती अधिकांश विक्रेताओं की प्रवृत्ति कुछ न करने की होती है। परन्तु यदि हम उन सब को समान रूप से सतर्क मानें, तो हमें यह निष्कर्ष अवश्य निकालना चाहिए कि पिछडने वाला कोई नहीं होगा। "**किसी** को भी अपनी कीमत बढाने पर फायदा होगा" (ऊपर), अर्थात् हर एक को फायदा होगा।

[21] (पृ. 33) ऊपर, पृ 28, तलटीप 7।

[22] (पृ. 33) अधोमुखी गति इस परिकल्पना के कारण अपेक्षित है कि प्रत्येक विक्रेता दूसरे की कीमत को स्थिर मानता है, बशर्ते कि हम कीमत का निर्वचन **पूर्ति-कीमत** न करें, जिसे **कीमत** से भिन्न किया गया है, और यह दृष्टिकोण न अपनाएँ कि, इस स्थिति मे, हो सकता है कि दूसरे उत्पादक की पूर्ति-कीमत शून्य बनी रहती है, यद्यपि क्रेताओं की प्रतियोगिता ने उसकी कीमत को $\frac{1}{2}$ AP (से किंचित् कम) तक ऊपर उठा दिया है। इस स्थिति में, पहले उत्पादक द्वारा स्थापित कीमत, $\frac{1}{2}$ AP, स्थायी सन्तुलन का निरूपण करेगी, क्योंकि दूसरे उत्पादक के लिए कोई कारण नहीं है कि वह अपनी शून्य पूर्ति-कीमत को बदले। क्रेताओं की प्रतियोगिता उसे किसी भी स्थिति मे $\frac{1}{2}$ AP कीमत दिलवा रही है, और पहले उत्पादक को अपनी पूर्ति कीमत को $\frac{1}{2}$ AP से कम करने पर अपने प्रतिद्वन्द्वी के ऊपर, जिसकी पूर्ति-कीमत सदा शून्य बनी रहती है, कोई फायदा नहीं होगा। लेकिन, यह परेशान करने वाला प्रश्न अनुत्तरित रह जाता है कि कौन सा विक्रेता पहल करता है।

[23] (पृ. 34) इस परिणाम के लिए, बाजार में विक्रेताओं की कुल संख्या के अनपेक्ष, यह आवश्यक है कि कम से कम दो ऐसे विक्रेता हों जिनमें से **प्रत्येक** सम्पूर्ण बाजार में अकेला पूर्ति कर सकता है। यदि केवल एक ऐसा विक्रेता होता तो, यद्यपि **अन्य** अपनी कीमतों को नहीं बढ़ा सकते, वह अपनी कीमत को बढ़ा सकता है। जहां एक बड़ा विक्रेता पूरे बाजार पर छाया रहता है और सीमित उत्पत्ति वाले कुछ छोटे विक्रेताओं को उसमें भाग लेने देता है, वहां यह बात महत्वपूर्ण हो जाती है। तुलना कीजिए, गास्तों लेदु, *La Théorie des Prix de*

Monopole, पृ. 257 और आगे। श्री लेदु का विचार है कि कूर्नो का अन्य ने खंडन कर दिया है, और द्वयधिकार के लिए "अधिक सामान्य परिकल्पना" के रूप में वे दोनों विक्रेताओं की ओर से असीमित पूर्ति की परिकल्पना देते हैं।

[24] (पृ. 34) *Economics of Welfare* तीसरा संस्करण (1929), पृ. 267।

[25] (पृ. 35) वही, पृ. 268।

[26] (पृ. 36) वही, पृ. 268।

[27] (पृ. 37) तुलना कीजिए, प्रोफेसर इर्विंग फिशर, "Cournot and Mathematical Economics," *Quarterly Journal of Economics* (*QJE*), खंड 12 (1898), पृ. 126 : "...वास्तव में, कोई व्यवसायी यह नहीं मान लेता है कि उसके प्रतिद्वन्द्वी की या तो उत्पत्ति या कीमत स्थिर रहेगी, ठीक वैसे ही जैसे शतरंज का कोई खिलाड़ी यह नहीं मान लेता कि उसके द्वारा प्रतिद्वन्द्वी के घोड़े को मारने के प्रयास में प्रतिद्वन्द्वी बाधा नहीं डालेगा। प्रत्युत् उसका पूरा ध्यान यह पूर्वानुमान करने में लगता है कि उसकी अपनी चाल के प्रत्युत्तर में प्रतिद्वन्द्वी क्या चाल चलेगा।" तुलना कीजिए, विक्सैल भी, *Archiv für Sozialwissenschaft*, खंड 58 (1927), पृ. 272। "तब उनमें से एक एकाधिकारी द्वारा इस आशंसा में कीमत घटाना सर्वथा निरर्थक होगा कि दूसरा अपनी कीमत को बनाए रखेगा।" यह आश्चर्यजनक है कि इस विचार के द्वारा विक्सैल एँजवर्थ के विरुद्ध कूर्नो का पक्ष लेने की ओर प्रवृत्त हुए, जब कि इस उद्धरण में जब "कीमत" के स्थान पर "राशि" रखी जाती है तो वह कूर्नो के विरुद्ध भी समान रूप से प्रयोज्य है। यह सुझाव श्री काह्न द्वारा दिया गया है।

[28] (पृ. 37) प्रोफेसर ऐच. ऐल. मूर, *QJE*, खंड 20 (1906), पृ. 219 तलटीप, कूर्नो की "त्रुटि" उनकी इस कल्पना को बताते है कि एक उत्पादक अपनी उत्पत्ति का आदेश इस बात के अनपेक्ष देता है कि उसके कार्य का उसके प्रतियोगियों के आचरण पर क्या प्रभाव पड़ेगा; जबकि यह कल्पना केवल तब उचित ठहराई जा सकती है (क) जब किसी उत्पादक की उत्पत्ति का कुल उत्पत्ति की प्रति इकाई कीमत पर नगण्य प्रभाव पड़ता है, और (ख) जब कुल उत्पत्ति की तुलना में किसी उत्पादक की उत्पत्ति नगण्य है। यदि इसका संकेत यह है कि (चूँकि (क) और (ख) सच नही है) कल्पना के विपर्यय से सही हल मिलना चाहिए, तो वही अब प्रस्तुत किया जा रहा है।

[29] (पृ 37) इस हल को ए. ए. यंग ने बॉले की पुस्तक *"Mathematical Groundwork of Economics"* की अपनी समीक्षा में सुझाया है, *JPE*, खंड 20 (1925), पृ. 134। और तुलना कीजिए, प्रोफेसर शुम्पीटर, *EJ*, खंड 38 (1928), पृ. 369, तलटीप 1, जहां वे निष्कर्ष निकालते हैं कि द्वयधिकार का हल निर्धार्य है, जो या तो यह हल है या कूर्नो का हल है।

[30] (पृ. 39) प्रोफेसर जे. ऐम. क्लार्क तर्क करते हैं (*Economics of Overhead*

Costs [1923], पृ. 417) कि "यदि कीमत में कटौती होने पर सब विक्रेता उसका तत्क्षण अनुसरण करें तो प्रत्येक को उत्पादन में हुई परिणामी वृद्धि में से अपना यथांश (कोटा) मिल जाएगा, और किसी विक्रेता के व्यवसाय में होने वाली आनुपातिक वृद्धि उस वृद्धि से अधिक नहीं होगी जो एक एकाधिकारी के व्यवसाय में उतनी ही कटौती करने पर होती। इस प्रकार कीमत में प्रतियोगितात्मक कटौती ठीक वही पर स्वभावतः रुक जाएगी, जहां प्रतियोगिता न होने पर रुकती।" यह मेरे अपने निष्कर्ष से, जब प्रतियोगियों की संख्या अपेक्षाकृत थोड़ी होती है, सम्मत है; किन्तु, जैसा अभी-अभी दिखाया गया है, **जब उनकी संख्या बड़ी होती है तो यह लागू नहीं होता है।** पूर्ण प्रतियोगिता के और एकाधिकार के परिणाम एकरूप नहीं है। इसी प्रकार, यह निष्कर्ष भी सिद्धान्ततः पूर्ण प्रतियोगिता की मान्य आलोचना नहीं है कि "बाजार की मन्दित क्रियाविधि जो एक ही समय में विभिन्न कीमतों को प्रचलित होने देती है, वास्तव में, एक 'अपूर्णता' नहीं है, जैसा उसे समझने की प्रवृत्ति सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र में रही है," बल्कि "...वह एक अनिवार्य अपेक्षा है, जिसके बिना वह [बाजार] अपने लाक्षणिक प्रभावों को पैदा नहीं कर सकता।" बाजार में प्रतियोगितामूलक परिणाम पैदा होने के लिए बड़ी संख्या, मन्दित क्रियाविधि के या किसी अन्य प्रकार की अपूर्णता के बिना, एक पर्याप्त अपेक्षा है। वह प्रायः ऐसे परिणामों को पैदा नहीं करता, इसका कारण यह है कि संख्या अल्प होती है, और यह कि "अपूर्णताओं" को एकत्र करना तक पर्याप्त नही होता है।

[31] (पृ. 39) जब एक सामान्यतया स्वीकृत कीमत-अगुआ (*Price Leader*) होता है—अर्थात्, एक प्रबल प्रतियोगी, जिसकी कीमतों के अनुकूल अन्य सब प्रतियोगी अपने को यह मान करके बना लेते हैं कि उसी में उनका अधिकतम अन्तिम फायदा अन्तर्निहित है—तब भी कीमतें एक-साथ घटती-बढ़ती है, और परिणाम भी वही होता है। इस स्थिति में, इससे कोई फर्क नही पड़ता कि कितने प्रतियोगी है या प्रत्येक कुल का कितना प्रतिशत उत्पादन करता है; और स्थापित कीमत उससे अभिन्न होती है जो तब स्थिर होती यदि प्रतियोगिता बिल्कुल न होती। कीमत-अगुआ का, जो जानता है कि अन्य उसका अनुसरण करेंगे, उतना ही नियंत्रण होता है जितना एकजुट हो कर काम करने वाले समूह का होता।

[32] (पृ. 40) स्वभावतया, मैं उसी स्थिति के बारे में कह रहा हूँ जिसमें विक्रेताओं की संख्या इतनी बड़ी नहीं है कि प्रत्येक के प्रभाव को नगण्य बना दे। अब दिए जाने वाले तर्क को वहां लागू नहीं किया जा सकता जहां विक्रेताओं की संख्या बहुत बड़ी है।

[33] (पृ. 40) यदि वह सटोरिया है, जो खरीदता भी है और बेचता भी है, तो हो सकता है कि वह ठीक उलटा करे : वह कीमत में हानि उठाकर इस आशा में बेचता है कि वह बेचने की प्रक्रिया शुरू कर देगा, जो कीमतों को और घटा

देगी, और जो उसने बेचा है, उसे लाभ पर खरीदने में उसे समर्थ करेगी।

[34] (पृ. 41) परेटो के आग्रह का कि यह समस्या "अनिर्धार्य" नहीं बल्कि "अति निर्धार्य" है, शायद यहां निर्वचन दिया जाना चाहिए। *Manuel d'Economie Politique* (1909), पृ. 595 और आगे।

[35] (पृ. 43) इस अध्याय के *QJE* में लेख के रूप में प्रकाशित होने के बाद मेरा श्री काल्ड, कैम्ब्रिज, इंग्लैंड, से पत्र-व्यवहार हुआ है। उनके शोध-निबन्ध में, जिसका शीर्षक है "The Economics of the Short Period" और जो उस समय यथार्थतः पूरा हो चुका था, एक परिच्छेद द्वयधिकार पर भी है। हमारे अध्ययनों में असाधारण समानताएं हैं, जो सामान्य अध्ययनरीति के बारे में हैं और सिद्धान्त के कई विशिष्ट वाद-विषयों के बारे में भी हैं। श्री काल्ड राशियों या कीमतों को स्थिर बनाए रखने के बीच भेद करते हैं, और तब एक तीसरी स्थिति को मान्यता देते हैं जिसमें वे सब "जटिल संभावनाएं" सम्मिलित हैं "जो व्यवसायियों द्वारा यह अनुभव करने पर उभरती है कि यदि वह अपनी कीमत में परिवर्तन करता है तो उसके प्रतियोगियों की न तो उत्पत्तियाँ और न ही कीमतें स्थिर बनी रहेंगी।" (तुलना कीजिए, ऊपर, पृ. 37 और आगे।) इस तीसरी स्थिति के संबंध में उनके निष्कर्ष मेरे निष्कर्ष से किंचित् भिन्न हैं, परन्तु चूंकि मैंने उनका केवल अनन्तिम प्रारूप देखा है, मैं अपने को उनका विवेचन करने के लिए स्वतंत्र नहीं समझता हूं। समरूपता के दो विशिष्ट वाद-विषय विशेषतया दिलचस्प हैं। (1) श्री काल्ड समय-पश्चता को हल का एक कारक मानते है, और कहते हैं कि "किसी फर्म की नीति.....समय-पश्चता के विस्तार पर और उसकी तात्कालिक लाभ की इच्छा तथा उसकी अधिक सुदूर भविष्य में लाभ की इच्छा के बीच संबंध पर निर्भर करती है।" (तुलना कीजिए, ऊपर पृ. 40।) (2) वे पिगु वाली अनिर्धार्यता और ऐंजवर्थ वाली अनिर्धार्यता में भेद करते हैं। इस संबंध में यह मनोरंजक है कि पिगु का यहां दिया गया उद्धरण (ऊपर, पृ. 36) इसी रूप में वहां मिलता है, और उसमें एक-से परिवर्धन किए गए हैं, और एक-सी चीजें छोडी गई हैं।

डा. ज्यूदन, अपनी *Problems of Monopoly and Economic Warfare* (लन्दन, 1930) में "एकाधिकारिक प्रतियोगिता" को एक अध्याय देते हैं। उनकी अध्ययन की रीति नूतन (और जब तक उससे परिचित नहीं हो जाया जाता) पेचीली (tricky) है, उसमें प्रचलित मांग वक्रों के स्थान पर "विस्तार के गुणांकों" (coefficients of extension) को रखा गया है, जिनका लेखाचित्रीय निरूपण कोणों द्वारा किया गया है। "गतिशीलता की उच्चतम मात्रा" की कल्पना के अन्तर्गत, "जिससे एक प्रतियोगी द्वारा कीमत में किंचित् कमी करने पर उसे, जहां तक उसकी उत्पादन क्षमता में गुंजाइश है, सब बिक्री तत्काल मिल जाती है," केवल दो हल प्रकट होते हैं, ऐंजवर्थ का और कूर्नो का। यदि प्रत्येक

उत्पादक "बिक्री के केवल आधे भाग के अनुसार सदा हिसाब लगाता है" तो एकाधिकारमूलक परिणाम की संभावना की चर्चा की गई है (पृ. 28)। परन्तु उसे इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि "वह पूर्वकल्पना करता है कि...वे मौन रूप से या व्यक्त रूप से मिले हुए हैं.. ..." डा० ज्यूदन उस स्थिति पर विस्तार से विचार करते हैं जहां उत्पाद विशिष्टीकृत है। (तुलना कीजिए, आगे, अध्याय 5, तलटीप 24।)

एक सम्बद्ध विषय पर हाल में किया गया अध्ययन है: ए. जे. निकॉल, *Partial Monopoly and Price Leadership* (लेखक द्वारा प्रकाशित, 1930)।

पॉल ब्राएस्स ("Kritisches zur Monopol- und Duopoltheorie," *Archiv für Sozialwissenschaft und Sozialpolitik*, खंड 65, अंक 3 [1931], पृ. 525-538) निष्कर्ष निकालते हैं कि कीमत के वास्तव में स्थायी होने के लिए द्वयधिकार की सामान्य स्थिति को कार्टेल (kartell) में परिणत अवश्य होना चाहिए। अन्यथा वह केवल तब स्थायी हो सकती है यदि दोनों विक्रेताओं को आरम्भ से ही माँगों की संरचना (structure) ज्ञात हों।

ए. ई. मॉनरो (*Value and Income* [1931], पृ. 24-28) प्रमाणित करते है कि एकाधिकार की और प्रतियोगिता की चरम स्थितियों के बीच में कीमत निर्धारण प्रत्येक विक्रेता के पास पण्य की इकाइयों की संख्या पर हो सकता है कि निर्भर करे। यद्यपि तर्क को विक्रेताओं की संख्या को स्पष्ट किए बिना प्रस्तुत किया गया है (वहाँ दिए गए दृष्टान्त में कई विक्रेता है), मेरा विश्वास है कि वह केवल अल्प संख्याओं के लिए मान्य है, क्योंकि, जैसा अध्याय 2 में दिखाया जा चुका है, यदि कई प्रतियोगी हैं तो पण्य की सम्पूर्ण राशि किसी भी हालत में अवश्य बिकनी चाहिए। (लेकिन, तुलना कीजिए, आगे, पृ. ९2 और आगे।)

अध्याय 4—उत्पाद का विशिष्टोकरण (पृष्ठ 44-55)

[1] (पृ. 46) कुछ संदर्भ यों ही चुने गए हैं: ऍल्फ्रॅथ, *Patents, Copyrights, and Trade-Marks*, पृ. 33; प्रुडल, *Patents as a Factor in Manufacturing*, पृ. 16; मिल, *Principles of Political Economy*, खंड 5, अध्याय 10, परिच्छेद 4; एली, *Outlines of Economics*, 5वां संस्करण, पृ. 561; गार्वर और हॅन्सॅन, *Principles of Economics*, पृ. 258।

[2] (पृ 46) *The Economics of Our Patent System*, पृ. 26।

[3] (पृ. 46) *Principles of Economics* (1917), पृ. 414।

[4] (पृ. 46) House Report संख्या 114, 62वीं कांग्रेस, 2रा सत्र, पृ. 2, 3। (व्हॉग्न द्वारा उद्धृत, पूर्वउद्धृत, पृ. 27।)

[5] (पृ. 46) वही, पृ. 5।
[6] (पृ. 47) *Introduction to Economics*, पृ. 246-247।
[7] (पृ. 47) *Monopolies and Trusts*, पृ. 43।
[8] (पृ. 47) पृ. 48।
[9] (पृ. 47) *The Theory of Business Enterprise*, पृ. 55।
[10] (पृ. 47) *Risk, Uncertainty and Profit*, पृ. 185।
[11] (पृ. 48) 5वां संस्करण, पृ. 562, 563।
[12] (पृ. 48) पृ. 50-52।
[13] (पृ. 49) वही, पृ. 56। (बल मेरा।)
[14] (पृ. 51) इसकी पूरी व्याख्या अनुवर्ती अध्यायों में मिलेगी।
[15] (पृ. 51) एकाधिकार की एक अधिक व्यापक परिभाषा का, जिसमें दुर्लभता की सब स्थितियां सम्मिलित की गई हैं, योग्य समर्थन डॉब, *Capitalist Enterprise and Social Progress*, पृ. 105 और आगे, में मिलता है। उसके साथ-साथ यह प्रमाणित करने के लिए संदर्भ भी दिए गए है कि ऐसी परिभाषा को "प्रथा का अनुमोदन" प्राप्त है। इस लेखक को यह भ्रामक और खतरनाक प्रतीत होता है। श्री डॉब तीन प्रकार के एकाधिकार (दुर्लभता) में भेद करते हैं—स्वाभाविक, संस्थानिक, और आयोजित (deliberate)। आयोजित एकाधिकार एक व्यक्ति या व्यक्तियों के एक समूह द्वारा पूर्ति पर नियंत्रण का निर्देश करता है। स्पष्ट है कि तीसरे प्रकार को अन्य दो प्रकारों से भिन्न अवश्य किया जाना चाहिए, और भले ही गुणवाचक विशेषणों का उपयोग किया गया है, तिस पर भी, "प्रतिबंध", या दुर्लभता, की सब स्थितियों को सम्मिलित करके परिभाषा को व्यापक बनाने के कारण प्रभेद (distinction) हलका हो जाता है और भ्रान्तिकारी विश्लेषण प्रकट होता है। अंग्रेजी शब्द Monopoly की ग्रीक से व्युत्पत्ति (*μόνος*, अकेला + *πωλεῖν*, बेचना), एवं अर्थशास्त्र में प्रयोग का आधिक्य, ऐसे विस्तार के निश्चित रूप से विरुद्ध है।
[16] (पृ. 52) *Principles of Economics*, 3रा संस्करण, संशोधित, खंड 2, पृ. 114।
[17] (पृ. 52) वही, खंड 1, पृ. 209।
[18] (पृ. 52) *Monopolies and Trusts*, पृ. 35।
[19] (पृ. 53) ऊपर, पृ. 60।
[20] (पृ. 53) *Principles of Economics*, पृ. 213।
[21] (पृ. 53) जिस स्थिति में उत्पादों में बहुत कम भिन्नता होती है, वहां एक प्रतीय मान कठिनाई पैदा हो जाती है। हो सकता है कि विक्रेता उस प्रकार के पदार्थों के लिए सामान्यतः स्वीकृत कीमत से अधिक कीमत पर कुछ भी न बेच पाए, उसके उत्पाद की मांग सारणी पूर्णतः लोचदार हो—अर्थात् एक क्षैतिज रेखा हो जिसे

हमने शुद्ध प्रतियोगिता से सम्बद्ध किया है। हो सकता है कि क्रेता उसके उत्पाद को समान कीमत पर अधिमान दें, जबकि कीमत में अल्पतम वृद्धि होने पर वे सामूहिक रूप से उसके प्रतिद्वन्द्वियों के पास चले जाएं।

यदि मौद्रिक इकाई अपरिमित रूप से विभाज्य हो तो यह कठिनाई प्रकट नहीं होगी। क्योंकि यदि समान कीमत पर क्रेता एक उत्पाद के ऊपर दूसरे को अधिमान देते हैं, तो उसे दूर करने के लिए कीमत में कम से कम किंचित् भिन्नता अपेक्षित होगी। इस भिन्नता की मात्रा अलग-अलग क्रेताओं के लिए अलग-अलग होगी, और इसलिए यदि कई क्रेता हों तो प्रत्येक उत्पाद की मांग सारणी सतत होगी, और क्षैतिज से किंचित् तिरछी हो जाएगी। लेकिन, वास्तविकता में मान लिया जाए कि मांगी गई कीमत से अगली ऊँची कीमत पर हो सकता है कि बिक्री गिरकर शून्य हो जाए। इसके द्वारा एकाधिकार का विलोपन नहीं होता है, क्योंकि लाभ बिक्री के बड़े परिमाण के एवं ऊंची कीमत के कारण से ऊंचे हो सकते हैं। जहां यह स्थिति है, अतिरिक्त लाभ का कारण विशिष्टीकरण को अवश्य माना जाना चाहिए, क्योंकि यदि उत्पाद पूर्णतः एकरूप होता, तो क्रेताओं द्वारा उसी का चुनाव किए जाने का कोई आधार न होता, और वे विभिन्न विक्रेताओं के साथ यादृच्छिक रूप से व्यापार करते, जो प्रत्येक विक्रेता के बिक्री के परिमाण को लगभग समान बना देता। शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत जो लाभ मिलते उन पर वास्तविक लाभ के किसी भी आधिक्य का कारण एकाधिकार अवश्य माना जाना चाहिए।

[22] (पृ. 54) शब्दावली के विषय में, तुलना कीजिए, अध्याय 1, तलटीप 14।

[23] (पृ. 55) बीजगणितीय शब्दों में कहा जा सकता है कि प्रत्येक चर को अन्य के पदों में व्यक्त करके युगपत् समीकरणों को हल नहीं किया जा सकता है।

[24] (पृ. 55) प्रत्येक विक्रेता के लिए पृथक् बाजार के विचार के छिटपुट उल्लेखों के अनेक दृष्टान्तों को उद्धृत किया जा सकता है। फिशर निर्देश करते हैं कि (*Elementary Principles of Economics*, पृ. 323) "एक पंसारी द्वारा कीमत में अल्प कटौती उसी नगर के दूसरे भाग में स्थित पंसारी के व्यापार को चौपट नहीं करेगी, क्योंकि वे दोनों सर्वथा एक बाजार में नहीं हैं। प्रत्येक का अपना क्षेत्र है, जिसमें दूसरा केवल संतत पहुंच सकता है, जिसका कारण न केवल दूरी है बल्कि यह भी है कि प्रत्येक की अपनी "ग्राहकी" है, अर्थात् ऐसे लोगों का संगठन, जो, आदतों या किसी अन्य कारण से, पंसारियों को केवल इसलिए नहीं बदलेंगे क्योंकि कीमत में किंचित् अन्तर है।" मार्शल (*Principles*, 8वां संस्करण, पृ. 458; गणितीय परिशिष्ट, टिप्पणी 14 भी) ऐसे उद्योगों का उल्लेख करते हैं "जिनमें प्रत्येक फर्म का अपने विशेष बाजार तक न्यूनाधिक मात्रा में सीमित रहना बहुत संभाव्य है," परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वे इसे सर्वतः अल्पकालिक घटना समझते हैं। वे सोचते हैं कि, शायद इस कारण से,

उत्पादक के अपने विशेष बाजार का विशिष्ट मांग वक्र "सामान्यतया बहुत प्रवण (steep) होगा"। इसमें संदेह नहीं कि वह दीर्घावधि की अपेक्षा अल्पावधि में कम लोचदार होगा, परन्तु उत्पाद विशिष्टीकरण के बने रहने पर, वह क्षैतिज कभी नहीं होगा, जैसा कि शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत होता है। डॉब की *Capitalist Enterprise and Social Porgress*, पृ. 88, में निम्नलिखित लेखांश (passage) मिलता है : "किसी पर्याप्त स्थापित व्यवसाय क्षेत्र में... प्रत्येक फर्म का संभाव्यतः अपना 'निजी बाजार' होगा, जो बहुत-कुछ नियमित ग्राहकों से बना होता है, जिन्हें वह विविध उपायों से अपने से संलग्न कर लेती है।" कीमतों पर इसके प्रभाव के बारे में उसके साथ दिए गए संक्षिप्त विवेचन की विशिष्ट प्रवृत्ति आगे अध्याय 5 जैसी है।

प्रतियोगिता के लिए आवश्यक के रूप में सीमित (qualified) एकाधिकार की अपनी संकल्पना की व्याख्या करते हुए जे. ऐम. क्लार्क कहते हैं कि "सीमित मात्रा तक, प्रत्येक उत्पादक का अपना व्यक्तिगत बाजार होता है, जो उसके प्रतियोगियों के बाजार से न्यूनाधिक घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित रहता है, जिससे विभेदों की मात्रा और अवधि सीमित हो जाती है, और पदार्थों के मानकित स्वरूप के बढ़ने के साथ वे लघुतर और अधिक संक्षिप्त (briefer) हो जाते हैं।" (*Economics of Overhead Costs*, पृ. 418।) परन्तु वे इस विचार का और विकास नहीं करते, और ऐसे सोचते है जैसे कि प्रतियोगिता एक बड़े बाजार में हो रही हो। ए. बी. वुल्फ विभिन्न नगरों में स्थित खुदरा व्यापारियों पर, जैसे कि वे एक ही बाजार में हों, इस प्रकार विचार करने के सत्याभास का निर्देश करते हैं, और पाते हैं कि एक ही नगर में भी "प्रभिन्न, यद्यपि सर्वथा स्वतन्त्र नहीं, बाजार" होते हैं जिनकी "सीमाएं स्थिति द्वारा और ग्राहकों के वर्ग द्वारा निश्चित होती है।" ("Competitive Costs and Rent of Business Ability," *QJE*, खंड 39 (1924), पृ. 50।) परन्तु वे इस विवेचन के तर्कसम्मत निष्कर्ष तक नहीं पहुंचते—जो यह है कि प्रत्येक विक्रेता का "एक प्रभिन्न, यद्यपि सर्वथा स्वतन्त्र नहीं, बाजार" है। उनके लिए "प्रत्येक नगर या इलाका एक बाजार बनाता है," यद्यपि उसके साथ कई शर्तें और इसकी अपूर्णताओं की यथेष्ट स्वीकृति जुड़ी हुई है। ऐफ. ऐच. नाइट ("Cost of Production and Price over Long and Short Period," *JPE*, खंड 29, पृ. 332; *Ethics of Competition and other Essays* में पुनर्मुद्रित, पृ. 213) विशिष्टीकृत उत्पादों के परिणामिक "आंशिक एकाधिकार" पर प्रतियोगिता के सिद्धान्त की अपेक्षा एकाधिकार के सिद्धान्त के अनुप्रयोग के पक्ष के तर्कों का स्पष्ट रूप से वर्णन करते हैं। लेकिन वास्तव में वे अपने मूलभूत दृष्टिकोण में कि "आर्थिक सिद्धान्त" केवल पूर्ण प्रतियोगिता का सिद्धान्त है, परिवर्तन करने की कोई प्रवृत्ति नहीं दिखाते। देखिए मेरी टिप्पणी, *American Economic Review* (*AER*), खंड 3(

(1946), अंक 2 (कार्यवाही), पृ. 93। (*Towards a...* में पन्द्रहवां लेख, "The Chicago School," भी देखिए।)

अध्याय 5—उत्पाद विशिष्टीकरण और मूल्य सिद्धान्त (पृष्ठ 56-94)

[1] (पृ. 56) इस अभिप्राय में वह प्रायः उद्धरण चिह्न के भीतर रखा जाएगा।

[2] (पृ. 56) इस विषय को दूसरे ढंग से यों रखा जा सकता है कि अल्प अन्तर शुद्ध प्रतियोगिता के असंगत नहीं है, बशर्ते कि **प्रत्येक प्रकार के** उत्पादक बड़ी संख्या में हों, और एक ही बाजार में प्रतियोगिता करें।

[3] (पृ. 57) उत्पाद विचरण के विस्तरित विवेचन के लिए, देखिए मेरा लेख "The Product as an Economic Variable", *QJE*, खंड 67 (1963), पृ. 1। (*Towards a...* में छठा लेख।)

[4] (पृ. 57) होटेलिंग के अकेले अपवाद को छोड़कर, "Stability in Competition," *EJ*, खंड 39 (1929)।

[5] (पृ. 58) इस स्थान पर यह उल्लेख किया जा सकता है कि कोई कारण प्रतीत नहीं होता है कि एकाधिकार तत्वों से युक्त प्रतियोगिता "उत्पाद" में इन या अन्य के सम्बन्ध में आवश्यक रूप से सुधार करने की प्रवृत्ति रखे। परिणाम परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। जिस प्रकार एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत विक्रेता अपनी कीमत को बढ़ाकर कम बेचकर एवं कीमत को घटाकर अधिक बेचकर लाभ प्राप्त कर सकता है, ठीक उसी प्रकार वह अपने उत्पाद को बिगाड़कर एवं उसे सुधारकर लाभ प्राप्त कर सकता है।

[6] (पृ. 60) ऊपर देखिए, पृ. 15; परिशिष्ट 'ख' भी देखिए। PP' का संकेतन इस तथ्य का निर्देश करता है कि केवल उत्पादन की लागतें सम्मिलित की गई है। इसके विरुद्ध आपत्ति की जा सकती है कि "P" का प्रयोग अब कीमत को बताने के लिए, जैसा कि सामान्य है, नहीं किया जा सकेगा। लेकिन, हमारा विश्वास है कि बाद में, जब उत्पादन लागत और विक्रय लागत में भेद करना आवश्यक हो जाता है, यह परिवर्तन अपना औचित्य प्रमाणित करेगा।

[7] (पृ. 61) मांग और पूर्ति वक्रों की आकृति ऐसी हो सकती है कि वे अनेक बिन्दुओं पर एक-दूसरे की स्पर्शरेखा हों या काफी दूर तक स्पर्शरेखा बने रहें। इसी प्रकार, चित्र 9 में, किसी भी वक्र में किंचित् "लहर" (wave) होने पर दो या अनेक हल मिल सकते हैं। स्पष्टतः, इस सम्बन्ध में बहुविध संभावनाएं या अनिर्धार्य हल हैं। लेकिन, यहां और आगे, सिद्धान्त का विकास केवल ऐसे वक्रों के लिए किया जाएगा जो आकृति में सरल (smooth) और "नियमित" हैं।

[8] (पृ. 61) ऊपर देखिए, पृ. 10-11।

[9] (पृ. 61) यहां एक प्रतिबन्ध का उल्लेख अवश्य किया जाना चाहिए। यदि मांग वक्र अत्यन्त लोचदार है और **लागत वक्र के ऊपर पर्याप्त दूरी पर स्थित भी है,** तो हो सकता है कि उत्पादन का सर्वाधिक लाभदायक पैमाना दक्षतम पैमाने के बराबर हो या उससे अधिक हो। (लेकिन, कीमत सदा प्रतियोगी कीमत से अधिक होगी।) इस संभावना के महत्व का निर्णय, विविधता समेत समूह समस्या के विवेचन के बाद, आगे करना सबसे अच्छा रहेगा।

[10] (पृ. 63) माप (measurement) की समस्या का पूर्णतर विवेचन "The Product as an Economic Variable", पूर्वउद्धृत, विशेषकर के पृ. 8 में किया गया है। यह याद रखते हुए कि स्थिति "उत्पाद" का एक पहलू है, देखिए, परिशिष्ट 'ग'।

[11] (पृ. 64) लेकिन, समूह संकल्पना के सारभूत लचीलेपन के बारे में, देखिए पृ. 82-85, 160-165।

[12] (पृ. 66) पृ. 89।

[13] (पृ. 66) (खरीदारी करते समय) नगर के केन्द्र में जनसंख्या का समाहरण इसे वहां असत्य कर देगा। तुलना कीजिए, परिशिष्ट 'ग'।

[14] (पृ. 68) जिस मात्रा तक वे पहुंचाई जाती हैं वह अंशतः विचारित विनिर्मित उत्पाद के वर्ग के विस्तार पर निर्भर करती है (लकड़ी की लागत-प्रवृत्ति जितना कुर्सियों तक पहुंचेगी उससे अधिक फर्नीचर तक पहुंचेगी) और अंशतः साधन-विशेष के उपयोगों की संख्या पर निर्भर करती है (गेहूँ की लागत-प्रवृत्ति आटे तक अधिक मात्रा में पहुंचेगी, जब कि लकड़ी की लागत-प्रवृत्ति फर्नीचर तक, उसकी तुलना में, कम मात्रा तक पहुंचेगी, क्योंकि अधिकांश गेहूँ का आटा बनाया जाता है, जबकि लकड़ी के, फर्नीचर बनाने के अलावा, अन्य कई महत्वपूर्ण उपयोग हैं)।

[15] (पृ. 69) तुलना कीजिए, स्राफा, "The Laws of Returns under Competitive Conditions," *EJ*, खंड 36, विशेषतः पृ. 538-541। इधर हाल के वर्षों में लागत और पूर्ति वक्र संबंधी साहित्य में तेजी से वृद्धि हुई है। डा. मॉर्गेन्स्टर्न के लेख, "Offene Probleme der Kosten- und Ertragstheorie," *Zeitschrift für Nationalökonomie*, खंड 2, अंक 4 (मार्च 1931), में ग्रंथ-सूची पाई जा सकती है, जिसमें निम्नलिखित को जोड़ लें: हैरॉड, "Notes on Supply," *EJ*, खंड 15 (1930), और "The Law of Decreasing Costs," *EJ*, खंड 31 (1931); व्हाइनर, "Cost Curves and Supply Curves," *Zeitschrift für Nationalökonomie*, खंड 3, अंक 1 (1931); और इनाइडर, "Zur Interpretation von Kostenkurven," *Archiv für Sozialwissenschaft*, खंड 65, अंक 2 (1931)

और "Kostentheoretisches zum Monopolproblem," *Zeitschrift für Nationalökonomie*, खड 3, अंक 2 (1932)।

[16] (पृ. 70) लेकिन, ऊपर, तलटीप 9 में दिए गए प्रतिबन्ध को देखिए।

[17] (पृ. 71) अर्थात् मानक विचलन शून्य के अधिक निकट से पहुंचेगा।

[18] (पृ. 73) ऐसा प्रतीत हो सकता है कि कीमत को BQ से कम करने वाले किसी विक्रेता को निम्नतर कीमत पर सम्पूर्ण बाजार की सब अतिरिक्त मांग मिल जाएगी, अर्थात् चित्र 14 में DD' द्वारा दिखाई गई राशि का 100 गुना; और यह कि केवल यह तथ्य वक्र dd' को, शुद्ध प्रतियोगिता के संबंध में विकसित तर्क के द्वारा, वस्तुतः क्षैतिज बना देगा। लेकिन, स्थिति यह नहीं है। सबके द्वारा कीमत कम किए जाने पर बढ़ी हुई मांग, जो सामान्य बाजार के तथाकथित मांग वक्र द्वारा बताई जाती है, उन लोगों के यथोचित भाग को अन्तर्विष्ट करती है जो उत्पाद के प्रत्येक अलग-अलग प्रकार को अधिमान देते है, और एक उत्पादक द्वारा कम कीमत उनके केवल एक अंश को आकर्षित करेगी। वास्तव में, किसी विशिष्टीकृत उत्पाद के सामान्य बाजार के मांग वक्र की संकल्पना के विरुद्ध यह आपत्ति है कि लोग "सामान्यतः" उत्पाद की नही बल्कि उसके विशेष प्रकारों की मांग करते है, जिसके कारण जिस राशि को कोई क्रेता लेगा वह न केवल कीमत पर निर्भर करती है बल्कि निवेदित प्रकार पर भी निर्भर करती है।

[19] (पृ. 73) तुलना कीजिए, ऊपर, पृ. 37 और आगे।

[20] (पृ. 73) इस गति की किसी अवस्था-विशेष मे, dd' की **स्थिति** एकसमान कीमत पर निर्भर करती है जो सब विक्रेताओं के लिए क्षणमात्र के लिए प्राप्त होती है। गति के दौरान उसकी लोच को लगभग अपरिवर्तित समझा गया है, क्योंकि प्रागनुभव (a priori) से यह बताने का कोई ढंग नहीं दिखता कि वह उच्चतर या निम्नतर **सामान्य** कीमत से कैसे प्रभावित होगी, और यह सोचने का कुछ तो कारण है कि उस पर बहुत कम प्रभाव पड़ेगा।

[21] (पृ. 75) खुदरा व्यापार में, यह बृहत्तर "विविधता" कमतर अन्तरालों पर दुकानों की स्थिति का रूप अंशतः लेगी, और इस प्रकार क्रेताओं को अधिक सुविधा प्रदान करेगी। उत्पाद विशिष्टीकरण के विभिन्न पहलुओं के लिए ठीक बैठाने के लिए शब्दावली के निर्वचन की आवश्यकता को निरन्तर ध्यान में अवश्य रखा जाना चाहिए।

[22] (पृ. 78) लेकिन, स्थिर कीमत OE के साथ, यदि "उत्पाद" के इस प्रस्तावित विचरण की **कल्पना स्वेच्छ रूप से कर ली जाए**, तो फर्मों का बहिर्वाह या अन्तर्वाह प्रति फर्म उत्पत्ति को OA' पर स्थिर करेगा।

[23] (पृ. 82) उसके AR, जो निम्नतम बिन्दु है, के ऊपर स्थित होने के और परिणामों को शीघ्र ही बताया जाएगा।

[24] (पृ. 82) डा० ज्यूदन ने (तुलना कीजिए, ऊपर, अध्याय 3, तलटीप 35) दो विक्रेताओं के लिए संभव हलों की पूरी श्रेणी का चतुराई से संपादन किया है, जो (क) एक-दूसरे के ग्राहकों को, और (ख) नये ग्राहकों को हथियाने के बारे में, और प्राप्ति स्थायी है या नहीं इस बारे में, विभिन्न कल्पनाओं पर आधारित हैं।

[25] (पृ. 84) ऊपर, पृ. 75।

[26] (पृ. 84) अतिरिक्त क्षमता के सिद्धान्त पर "Mr. Harrod's Recantation," *Towards a...* में चौदहवां लेख, भी देखिए, और उसमें श्री हैरॉड और अन्य की रचनाओं के और संदर्भ भी देखिए।

[27] (पृ. 85) हॉल और हिच ने ("Price Theory and Business Behaviour," *Oxford Economic Papers*, संख्या 2, 1939) इस "कुल लागत" (Full Cost) सिद्धान्त को "प्रचलित सिद्धान्त" की, जिसमें विशिष्टतः मेरा विश्लेषण (पृ. 29-30) सम्मिलित है, आलोचना के रूप में प्रस्तुत किया है। इसको प्रत्यक्षतः अनदेखा कर दिया गया कि प्रश्नास्पद सिद्धान्त एकाधिकारिक प्रतियोगिता सिद्धान्त का एक अभिन्न अंग सदा रहा है। और अधिक विवेचन के लिए, देखिए मेरा लेख " 'Full Cost' and Monopolistic Competition," *EJ*, खंड 62 (1952), पृ 318 (*Towards a...* में तेरहवां लेख)।

[28] (पृ. 85) तुलना कीजिए, कैर्न्स की खुदरा कीमतों की व्याख्या से, *Political Economy*, पृ. 115-116। वे "पूजी की अत्यधिक राशि का" निर्देश करते हैं "जो, एक या दूसरे कारण से, केवल वितरण के व्यवसाय में लगाई गई है। इसका अपरिहार्य परिणाम यह है कि इस प्रकार अत्यधिक हो गई, समस्त रूप में लेने पर, पूजी धीरे-धीरे पलटती है— अपने कार्य के यथोचित निर्वाह के संगत उसका जितना पलटना आवश्यक है, उससे अधिक धीरे-धीरे; और यह कि जो लोग खुदरा व्यापार में लगते है वे **अपनी पूजी पर औसत लाभ पाने के लिए अपने माल की उच्चतर कीमत लेने के लिए बाध्य हो जाते हैं**। उनके द्वारा ली गई कीमत उस कीमत से ऊंची होती है, जो तब ली जाती यदि व्यापार में लगी पूजी की कुल राशि कम होती।" (बल मेरा।) और भी तुलना कीजिए, विक्सैल, *Lectures on Political Economy*, खंड 1, पृ. 88।

[29] (पृ. 86) *Printer's Ink* के 21 सितम्बर 1916 के अंक में, पृ. 17, अमेरिकन इलैक्ट्रिक हीटर कंपनी के विक्रय प्रबन्धक डब्लू. ए. बेकर से एक भेंट का विवरण प्रकाशित हुआ, जिसमें वे क्लीवलैंड की एक बड़ी दुकान के अनुभव के बारे में बताते है। वह दो प्रकार के बिजली के लोहे बेच रही थी। एक की कीमत 3·75 डालर थी, और दूसरे की 5 डालर। सस्ते लोहे की गारन्टी थी, और दुकान सिफारिश करती थी: उसकी कम कीमत पर जोर दिया जाता था और महंगे लोहे की अपेक्षा उसे बेचने का हर एक प्रयत्न किया जाता था। लेकिन

सस्ते की अपेक्षा महंगे लोहे की बिक्री 50 प्रतिशत अधिक थी। बेकर के निष्कर्षों के कुछ अंश हैं : "कीमतों की कमी में लोगों की दिलचस्पी जितना औसत व्यापारी समझता है उससे कहीं कम है।...इस बात की संभावना आधे से अधिक है कि ग्राहक नहीं जानता कि किसी अच्छे पदार्थ की कीमत क्या होनी चाहिए, और औसत ग्राहक लगभग किसी ऐसी कीमत को देगा जो उसे उचित कीमत बताई जाती है।"

System, सितम्बर 1912, पृ. 227, में "What Makes Men Buy" शीर्षक से प्रकाशित एक लेख मे सी. डी. मर्फी खरीदारी प्रयोजनों को पांच वर्गों में बांटते है, जिनमें से एक मौद्रिक लाभ या मुद्रा की बचत है। वे निष्कर्ष निकालते है कि "लेकिन, जहां संभावित ग्राहक तुष्टिगुण चाहते है—गुण चाहते है न कि सस्तापन—वहां इस मौद्रिक प्रयोजन पर अत्यधिक बल देने के परिणामस्वरूप प्रतिष्ठा और ग्राहकों की हानि हो सकती है।"

"कीमत बनाए रखने" पर अपनी टिप्पणी में प्रोफेसर टॉसिग विषय के सार को प्रभावकारी रूप से प्रस्तुत करते है (*AER Supplement*, मार्च 1916, अमेरिकन इकॉनॉमिक एसोसिएशन की 28वी वार्षिक बैठक की कार्यवाही, पृ. 172-173): "यदि इस प्रकार ['गुण' विज्ञापन के द्वारा] प्रशंसित पदार्थो को कम कीमत पर प्रस्तुत किया जाता है, यदि वे सस्ती दुकानों के काउन्टरों पर घोषित कीमत से कम पर बडी राशि में इधर-उधर पड़ी रहती है, यदि उनका इस्तेमाल सस्ता माल तलाशने वालों को प्रलोभन देने के लिए 'अगुआ' के रूप में किया जाता है, —तो उनकी प्रतिष्ठा खतरे मे पड़ जाती है।...दीर्घकाल में, निम्नतर कीमत, खरीदारों का सहयोग प्राप्त करना तो दूर रहा, सभव है कि उन्हें दूर भगा दे।"

[30] (पृ. 87) मिल के कथन से तुलना कीजिए : "ऐसा प्रतीत होता है कि फुटकर कीमत, वास्तविक उपभोक्ता द्वारा दी गई कीमत, प्रतियोगिता के प्रभाव को बहुत धीरे-धीरे और अपूर्णतया महसूस करती है; और जब प्रतियोगिता विद्यमान होती ही है तो वह बहुधा, कीमतों को घटाने के स्थान पर, ऊची कीमत की प्राप्ति को व्यापारियों की बृहत्तर सख्या के बीच बांट भर देती है। अतः हम पाते है कि उपभोक्ता द्वारा दी गई कीमत का इतना बड़ा भाग खुदरा व्यापारियों की प्राप्तियों में विलीन हो जाता है...।" *Principles*, खड 2, अध्याय 4, परिच्छेद 3।

[31] (पृ. 88) इसी प्रकार जे. ऐम. क्लार्क, पूर्वउद्धृत, पृ 437-439, 464-467, निष्कर्ष निकालते हैं कि अतिरिक्त उत्पादन क्षमता उद्योग का एक सामान्य लक्षण है। लेकिन. अधिकांश में, वे व्यापार-चक्र की घटना में दिलचस्पी लेते है, जैसे, उदाहरणार्थ, "अधिकतम" (peak) मांग के बारे में सतर्क रहने के लिए संयंत्र क्षमता का निर्माण—और जब मांग उससे कम होती है तो वह क्षमता, इसीलिए, फालतू होती है।

[32] (पृ. 89) ऊपर देखिए, पृ. 65, 66।

[33] (पृ. 89) पृ. 66, 67।

[34] (पृ. 90) पृ. 59 और आगे।

[35] (पृ. 90) ऊपर देखिए, पृ. 66, 67।

[36] (पृ. 90) न केवल यह कि एकरूप उत्पाद का उत्पादन करने वाले और किसी निश्चित वक्र द्वारा बताई गई मांग मे हिस्सा करने वाले प्रतियोगी नहीं हैं, बल्कि यह भी कि (जो अधिक महत्वपूर्ण है) ऐसे प्रतियोगी नहीं हैं जो समरूप उत्पादों का प्रभावकारी रूप से इस प्रकार निवेद करते हैं कि मांग वक्र को लागत वक्र से उसके स्पर्श-बिन्दु तक पीछे हटा दें।

[37] (पृ. 91) शुम्पीटर की एकाधिकार की पूर्णतः गत्यात्मक संकल्पना से इस परिणाम की तुलना करना दिलचस्प है। देखिए, *Towards a...* में दसवां लेख और पृ. 62-64।

[38] (पृ. 92) ऊपर, पृ. 14, 15।

[39] (पृ. 92) केवल स्थिर लागत की दशाओं पर विचार किया गया है। वर्धमान लागत की ओर ह्रासमान लागत की दशाओं के लिए तर्क सदृश होगा।

[40] (पृ. 93) यदि किसी विशिष्टीकृत उत्पाद से आवश्यकताएं अधिक यथार्थतः संतुष्ट हों तो वह सामान्यतया और अधिक दायीं ओर होगा।

[41] (पृ. 93) संक्षिप्तता की खातिर, कीमतों की इससे ऊंची उठने की संभावनाओं को छोड़ दिया गया है (तुलना कीजिए, ऊपर पृ. 81 और आगे।) उनकी व्याख्या भी सदृश अवश्य होगी। साथ ही, इस सरल तुलना मे दशाओं की विविधता की उपेक्षा कर दी गई है।

अध्याय 6—विक्रय लागत बनाम उत्पादन लागत
(पृष्ठ 95-105)

[1] (पृ. 95) आगे भी देखिए, परिशिष्ट 'ज'।

[2] (पृ. 96) उदाहरणार्थ, व्यवसायी का भविष्य का अपूर्ण ज्ञान, जो लाभ के जोखिम सिद्धान्त से सम्बद्ध किया गया है, हमारी समस्या का अग नही है।

[3] (पृ. 96) इस स्थान पर हमारा सम्बन्ध विज्ञापक के बाजार पर केवल प्रत्यक्ष प्रभाव से है। समूह के भीतर या सम्पूर्ण अर्थप्रणाली में विज्ञापन के प्रभावों पर अगले अध्याय में विचार किया गया है।

[4] (पृ. 97) निम्नलिखित से तुलना कीजिए : "क्रेता का मस्तिष्क बिसात है, जिस पर खेल खेला जाता है। मस्तिष्क की मनःशक्तियाँ (faculties) मोहरें हैं। बिक्रीकार इन मनःशक्तियों का संचालन या नियन्त्रण करता है जैसे वह बिसात पर मोहरों या गोटों का करता। जिस क्षेत्र में आपको संघर्ष करना है, और जिन

मानसिक तत्वों का आपको सामना करना, जिन्हें फुसलाना, चलाना, खदेड़ना या आकर्षित करना है, उन्हें समझने के लिए आवश्यक है कि आप मन की विभिन्न शक्तियों को समझें।" डब्लू डब्लू. ऐटकिन्सन, *The Psychology of Salesmanship*, पृ. 70।) "क्रेता के आचरण का मनोविज्ञानीकरण (psychologize) आरम्भ करने में, यह समझ लिया जाए कि हम उसे अनुप्राणित करने वाले संवेदनों, विचारों और अनुभूतियों की सूची बनाने का और उसकी क्रिया के स्रोतों को खोजने का इरादा करते है...हम क्रेता के आचरण का केवल सम्पूर्ण वर्णन और व्याख्या देना चाहते हैं और उसे चालाकी से कैसे प्रभावित किया जाए, इसकी व्याख्या करना चाहते है।" (ऐच. डी. किट्सन, *The Mind of the Buyer*, पृ. 8।)

[5] (पृ. 98) प्रोफेसर ऐम. टी. कोपलैंड द्वारा किए गए पदार्थों के दिलचस्प वर्गीकरण को देखिए, जिसके अनुसार पदार्थ तीन वर्गों में, "सुविधा" (convenience), "बाजार किए जाने वाले" (shopping), और "वैशिष्ट्यपूर्ण" (speciality) पदार्थों मे, बाँटा जाता है, "Consumers' Buying Motives", *Harvard Business Review*, खंड 2 (1924), पृ. 139।

[6] (पृ. 100) जी. बी. डिब्ली, विक्रय और उत्पादन लागतों में भेद करने के महत्व पर बल देने के बाद, इस स्थल पर गलती कर जाते है। "विक्रयण की लागत का एक, और बृहत्तर, भाग संपूर्णतः विनिर्मित पदार्थ की पहली थोक कीमत और जिस अन्तिम कीमत पर वह उपभोक्ता के हाथ में चला जाता है उसके बीच के अन्तर को निकाल कर लगभग प्राप्त किया जा सकता है।" (*The Laws of Supply and Demand*, पृ० 53।) वे आगे कहते है कि शेष लागत विनिर्माता की अपने "सम्बन्धों" का निर्माण करने की लागत से बनी होती है।

[7] (पृ. 102) जिस सीमा तक वह स्थान प्रभावकारी विज्ञापन के लिए विशेष अवसर प्रदान करता है, जैसे खिड़की-सजावट के रूप में जिसे बहुत सारे लोग देखेंगे, इत्यादि, इस वर्णन में संशोधन कर दिया जाना चाहिए।

[8] (पृ. 102) डिब्ली ने (पूर्वउद्धृत) विक्रय लागत और उत्पादन लागत में भेद दिखलाया है, और इस भेद के महत्व पर बल दिया है। प्रोफेसर नाइट ने उसका उल्लेख किया है, परन्तु वे केवल यह निष्कर्ष निकालते है कि वे अन्य लागतों से भिन्न नही है। "जिस सीमा तक वे [आवश्यकताओं में परिवर्तन] साधनों के जान-बूझकर किए गए व्यय का परिणाम है, वे अन्य सब आर्थिक क्रियाओं जैसे हो जाते है। वास्तव में, जैसा हम पहले कह चुके है, किसी पण्य की मांग का सृजन करने के लिए आवश्यक विज्ञापन, अति या मिथ्या प्रशंसा (puffing) या बिक्रीकारी स्वयं पण्य में अन्तर्निहित तुष्टिगुण से कारणात्मक रूप से (causally) अविभेद्य है।" (*Risk, Uncertainty and Profit*, पृ. 339।) बड़े पैमाने के उत्पादन के अपने प्रतिपादन में, मार्शल कहते है कि विशिष्टताओं की स्थिति

में "प्रत्येक व्यवसाय की बिक्री, परिस्थितियों के अनुसार न्यूनाधिक मात्रा में, उस विशेष बाजार तक सीमित रहती है जिसे उसने धीरे-धीरे और खर्च करके प्राप्त किया है; और यद्यपि उत्पादन में किफायती रूप से बहुत तेजी से वृद्धि की जा सके, परन्तु बिक्री में नहीं की जा सकती।" (*Principles*, 8वां संस्करण, पृ. 287। बल मेरा।) परन्तु उनके लिए भी, "उत्पादन की लागत" में व्यवसायी के सब व्यय समाविष्ट हैं। डेवनपोर्ट (*Economics of Enterprise*, पृ. 133 और आगे।) उत्पादन की, प्रतियोगितामूलक रूप से विचारित, परिभाषा करने में उसे केवल अर्जन (acquisition) कहते हैं, और उसमें, प्राप्ति देने वाले अन्य सब व्ययों के साथ, विज्ञापन उत्पादनकारी के रूप में सम्मिलित है। और भी तुलना कीजिए, ऐली, *Outlines*, 5वां संशोधित संस्करण, पृ. 113। व्यवसाय अर्थशास्त्र के लेखकों में, ए. डब्लू. श ने (*An Approach to Business Problems*, अध्याय 15) विज्ञापन के कारण से मांग में वृद्धि को मांग सारणी को दाहिनी ओर हटा कर सचित्र स्पष्ट किया है; परन्तु उत्पाद के सामान्य वर्ग की मांग सारणी को हटाया गया है, और वे तुरन्त कठिनाइयों का सामना करते है क्योंकि विज्ञापन करने वाले व्यापारी पर प्रभाव को सामान्य चित्र में नही दिखाया जा सकता है, और क्योंकि विशिष्टीकृत उत्पाद विभिन्न कीमतों पर बिकता है। वक्र को हटाने की लागतों पर विचार करने का कोई प्रयत्न नही किया गया है।

इस और अनुवर्ती अध्याय के लिख जाने के बाद डोरोथिया ब्रैथ्वैट का एक लेख ("The Economic Effects of Advertisement," *EJ*, खंड 38 [1928], पृ. 16) प्रकाशित हुआ है, जिसमें वे उत्पादन और विक्रय लागतों में भेद करती है, और दूसरी को "सच्ची" विक्रय लागत और विज्ञापन लागत में विभाजित करती है, और राष्ट्रीय भाज्य और आर्थिक कल्याण पर दूसरे के प्रभावों का विवेचन करती है। और भी तुलना कीजिए, "The Law of Decreasing Costs," *EJ*, खड 41, पृ. 566।

[9] (पृ. 103) द कैलीफोर्निया फ्रूट ग्रोअर्स एक्सचेन्ज में सब उत्पादक शामिल नही हैं। इसलिए उसने अपने उत्पाद में छाप लगाने की आवश्यकता का अनुभव किया ताकि, जहां तक संभव हो, फायदा एक्सचेन्ज के सदस्यों को मिले, न कि सामान्य रूप से सभी नींबूफलादि के उत्पादकों को।

[10] (पृ. 103) तुलना कीजिए, पिगु, *Economics of Welfare*, 3रा संस्करण, पृ. 198, तलटीप : "सरल प्रतियोगिता के अन्तर्गत, इस विज्ञापन का कोई प्रयोजन नहीं है, क्योंकि, परिकल्पना से, बाजार कीमत पर कोई छोटा विक्रेता जितना भी बेचना चाहता है, बाजार उतना खरीद लेगा।"

अध्याय 7—विक्रय लागत और मूल्य सिद्धान्त
(पृष्ठ 106-145)

[1] (पृ. 106) इस अध्याय में "विज्ञापन का प्रयोग बहुधा सामान्यतया विक्रय लागत के समानार्थक के रूप में किया जाएगा।

[2] (पृ 106) यदि विज्ञापन विशिष्ट रूप से किसी विशेष कीमत का उल्लेख करता है तो हो सकता है कि वक्र का केवल एक भाग प्रभावित हो।

[3] (पृ. 107) तुलना कीजिए, कार्वर, *Distribution of Wealth*, अध्याय 2; ऐफ. ऐम. टेलर, *Principles of Economics*, 9वां संस्करण, अध्याय 9-11; नाइट, *Risk, Uncertainty and Profit*, अध्याय 4।

[4] (पृ. 109) जब सामान्यतया विक्रयण कार्यों में प्रसार किया जाता है तो वैयक्तिक फर्म में मिलने वाली इन "भीतरी" किफायतों के अतिरिक्त "बाहरी" किफायतें भी मिलती हैं, जैसे ऐसी एजेन्सियों का विकास जिनका यह कार्य है कि अपने ग्राहकों के विज्ञापन को सबसे प्रभावकारी रूप से बिठाएं। लेकिन, वैयक्तिक फर्म के विक्रय लागत के वक्र की रचना करने में इनकी उपेक्षा की जा सकती है और अवश्य की जानी चाहिए, क्योंकि यदि कई फर्में हैं तो (अन्य फर्मों के व्ययों के समान बने रहने पर) किसी एक फर्म के विक्रय व्यय में परिवर्तनों का इन पर नगण्य प्रभाव पड़ेगा।

[5] (पृ. 110) जिनमें फुर्सत (leisure) सम्मिलित है, अर्थात् वह अधिक घंटे काम कर सकता है, और अधिक पदार्थों का उपभोग करने के उद्देश्य से फुर्सत का त्याग करता है।

[6] (पृ. 112) कीमत में से विक्रय लागत घटाने की वैकल्पिक क्रियाविधि का विकास हेनरी स्मिथ और अन्य द्वारा किया गया है। *Towards a...* के आठवें लेख, "Advertising Costs and Equilibrium," में उसका विवेचन किया गया है, जहां संबंधित साहित्य के और संदर्भ मिलेंगे। और भी देखिए, टी. ऐच. सिल-कॉक, "Advertising Costs in Monopolistic Competition," *Dundee Economic Essays*, संपादक जे. के. ईस्टहैम, लन्दन, 1955।

[7] (पृ. 112) इस वक्र के लिए PP' का संकेतन उत्पादन लागत का और CC' का संकेतन संयुक्त लागत का निर्देश करता है। (एक अधिक अच्छा शब्द कुल लागत होता यदि उससे सब इकाइयों की लागत के अर्थ में "कुल" का भ्रम आसानी से होने का डर न होता।) CC' को लागत निर्दिष्ट करने वाला भी समझा जा सकता है, क्योंकि केवल यही ऐसा वक्र है जिसका निर्देश, किसी विशेषण के बिना, लागत वक्र के रूप में किया जा सकता है और जो, जैसा कि यह करता है, सब लागतों को समाविष्ट करता है।

[8] (पृ. 113) यह संभव है कि विक्रय की न्यूनतम लागत, और इसलिए न्यूनतम संयुक्त लागत, D की दाहिनी ओर होगी। तुलना कीजिए, आगे पृ. 132।

[9] (पृ. 114) इस पर ध्यान दें कि स्थानापन्नों के **बाजारों** को—प्रत्येक के मांग वक्र को, और इसलिए उनकी बिक्रियों के परिमाणों को—दत्त (given) नहीं माना गया है। जिस विक्रेता की नीतियों की परीक्षा की जा रही है, उसके समायोजनों से वे आवश्यक रूप से प्रभावित होनी ही चाहिए।

[10] (पृ 115) इस पर ध्यान दें कि यह एक क्षैतिज मांग रेखा नहीं है जैसी कि शुद्ध प्रतियोगिता के सम्बन्ध में ऊपर (पृ. 12) खींची गई है और जो बताती कि OF कीमत पर असीमित राशि की मांग की जाएगी। वर्तमान दशाओं के अन्तर्गत मांगी गई राशि विज्ञापन व्यय के अनुसार बदलेगी। उदाहरणार्थ, कुल विज्ञापन व्यय के $HGNE$ होने पर वह OB है।

[11] (पृ. 115) अध्याय 5 की भाँति, केवल उन वक्रों के लिए हल प्रस्तुत किए गए हैं जिनकी आकृति सरल और "नियमित" है।

[12] (पृ. 115) ऊपर, पृ. 113।

[13] (पृ. 118) इस वक्र और पहले विवेचित संयुक्त लागत वक्र (उदाहरणार्थ, चित्र 21 और 22) में विषमता को दिमाग में अवश्य रखना चाहिए। पहले का वक्र, दी हुई कीमत पर, उत्पाद की प्रत्येक राशि के उत्पादन और विक्रयण की लागतों को प्रकट करता था। यदि निर्दिष्ट व्यय किया जाता तो संगत राशि बेची जाती। वर्तमान वक्र स्थिर विक्रय लागत को (अतः संकेतन FF') उत्पाद के विभिन्न परिमाणों से केवल विभाजित करता है, और वास्तव में बेची गई राशि के बारे में कुछ नहीं कहता है। बेची गई राशि कीमत पर निर्भर करती है, जैसा मांग वक्र द्वारा बताया जाता है।

[14] (पृ. 119) ऊपर, पृ. 62-64।

[15] (पृ. 120) निरूपण की एक वैकल्पिक रीति त्रिविमितीय चित्र है।

[16] (पृ. 120) ऊपर, पृ. 115-117।

[17] (पृ. 122) ऊपर, पृ. 64-66।

[18] (पृ. 126) "Markets which Come without Calling" *Printer's Ink*, नवम्बर 16, 1911, पृ. 52। अन्य उदाहरण दिए गए हैं। सेप्टीरेज़र के विज्ञापन ने लोगों को घर में दाढ़ी बनाने के लिए प्रेरित करके अन्य उस्तरों की बिक्री बढ़ा दी, और फोनोग्राफ के विज्ञापन ने पियानो की बिक्री बढ़ा दी।

[19] (पृ. 127) इसी कारण से यह वक्र A की बायीं ओर नहीं जाता, क्योंकि, सामान्यतया विज्ञापन के अभाव में, कोई एक फर्म OA राशि को कोई विक्रय व्यय किए बिना बेच सकती है। लेकिन, ज्योंही विज्ञापन सामान्य हो जाता है, जिस राशि को कोई एक उत्पादक उसके बिना बेच सकता है वह अन्य के विक्रयण प्रयासों के कारण से घट जाती है, और यह वक्र बायीं ओर को और अवश्य बढ़ाया जाना

चाहिए, जैसा पहले की रचनाओं में किया गया है। वर्धमान प्रतिफल की संभव प्रारम्भिक अवस्था के बावजूद, यह वक्र एक उच्चतर बिन्दु से इस कारण शुरू नहीं होता क्योंकि औसत विक्रय लागत की गणना करने में केवल A के बाद इकाइयों को ही शामिल नहीं किया जाता, जिनके लिए विक्रयण व्यय आवश्यक है, बल्कि सब बेची गई इकाइयों को शामिल किया जाता है, जिनमें O से A तक की इकाइयां **सम्मिलित** हैं, जिनकी विक्रय लागत शून्य है। इस प्रकार, यद्यपि A के बाद पहली इकाई बेचने की विक्रय लागत हो सकता है कि बहुत ऊंची हो, फिर भी वक्र CC', जो **औसत** लागत दिखाता है, उसे $(OA+1)$ राशि से विभाजित करके दिखाता है।

[20] (पृ. 128) गणितीय रूप से, $x(y_f - y_p) = k$.

[21] (पृ. 130) इसके लिए आवश्यक प्रतिबन्ध यह नहीं है कि MZ की CC' स्पर्श-रेखा हो। इस प्रतिबन्ध का अर्थ यह होगा कि एक-एक उत्पादक स्पर्श-बिन्दु की ओर चल कर अपनी हानि को मिटा सकता है और आवश्यक न्यूनतम लाभ कमा सकता है। वस्तुतः, जब तक वह अपने विक्रय व्ययों को बढ़ा कर हानि को किसी तरह घटा सकता है, वह ऐसा करेगा। यह गति तब रुक जाएगी जब CC' ऊपर को हट जाएगा और पीछे को मुड़ जाएगा जिससे उस पर के इष्टतम बिन्दु का और CC' और FF' के प्रतिच्छेद बिन्दु का संपात हो जाता है।

[22] (पृ. 130) विज्ञापन-प्रतियोगिता के माध्यम से जिस प्रवृत्ति के द्वारा उत्पादक व्यवसाय छोड़ने के लिए बाध्य कर दिए जाते हैं वह उस प्रवत्ति से सम्पूर्णतः तुलनीय है जिसके द्वारा वे कीमत प्रतियोगिता के कारण से व्यवसाय छोड़ने के लिए बाध्य कर दिए जाते हैं। (तुलना कीजिए, ऊपर, पृ. 67।) इन दोनों स्थितियों में, लागत कीमत से अधिक होती है; दूसरी स्थिति में यह आधिक्य कीमत के लागत से नीचे गिर जाने के कारण पैदा होता है, पहली स्थिति में वह लागत के कीमत से ऊंची हो जाने के कारण।

[23] (पृ. 132) सुस्पष्ट है कि MZ को FF' दो बार काटता है। हमारा अभिप्राय सदा बायीं ओर वाले प्रतिच्छेद से है।

[24] (पृ. 132) तुलना कीजिए, ऊपर, पृ. 127-129।

[25] (पृ. 133) सम्पूर्ण उद्योगों के या उत्पादों के व्यापक वर्गों के (प्रतियोगितामूलक) लागत वक्रों के शब्दों में विश्लेषण की स्वीकृत विधि द्वारा इस स्थिति को अव्यक्त रूप से ग्रहण किया हुआ समझा जा सकता है कि प्रत्येक फर्म के लिए विक्रय व्यय लगभग नियत है। केवल इसी प्रकार की कल्पना के आधार पर (जिसे कभी व्यक्त नहीं किया गया है), या इस कल्पना के आधार पर कि विक्रय लागत बिल्कुल नहीं है, "प्रतियोगितामूलक" लागत वक्र और मांग वक्र खींचे जा सकते हैं।

[26] (पृ. 133) ऊपर, पृ. 127-129।

[27] (पृ. 135,) पृ. 71-72, 73, और चित्र 14। अब देखा जा सकता है कि प्रस्तुत अध्याय में (पृ. 127 और आगे) विक्रय लागत के दो प्रकार के वक्र, FF' और CC', इन दो प्रकार के मांग वक्रों के सदृश है। CC' एक उत्पादक द्वारा अपनी बिक्री बढ़ाने पर, और अन्य के व्यय समान बने रहने पर, लगाई गई लागत को बताता है, ठीक उसी प्रकार जैसे dd' एक उत्पादक द्वारा अपनी बिक्री बढ़ाने पर, और अन्य की कीमतें समान बनी रहने पर, कीमत में की गई कटौती को बताता है। जब सब अपने विक्रय व्ययों को बढ़ाते हैं तो लागतों में वृद्धि FF' द्वारा दिखाई जाती है (वह बिक्री में वृद्धि को नहीं दिखाता है), और जब सब अपनी कीमतों में कटौती करते हैं तो परिणाम DD' द्वारा दिखाया जाता है।

[28] (पृ. 136) पृ. 132।

[29] (पृ. 136) सदा सन्तुलन पर लिया गया है। एक वक्र की ढालों और लोचों की दूसरी वक्र की ढालों और लोचों से तुलना करने में कई कठिनाइयां प्रकट होती हैं, जिन पर यहां विचार नहीं किया गया है।

[30] (पृ. 137) तुलना कीजिए, ऊपर पृ. 61-64।

[31] (पृ. 137) लेकिन, चूंकि विक्रय लागतें स्थिर हैं इसलिए, उनके बीच की दूरी सदा समान बनी रहेगी।

[32] (पृ 138) प्रतिबन्ध यह है कि कीमत **वस्तुतः** अचल है। यदि उसे केवल पृथक्करण के उद्देश्य से अचल माना गया है तो ढालू मांग वक्र तुरन्त प्रकट कर देता है कि FF' वक्र MZ की स्पर्शरेखा नहीं हो सकता है।

[33] (पृ. 139) ऊपर, पृ. 120।

[34] (पृ. 139) पृ. 80-85। अब लागत वक्र में विक्रय लागतों को स्वभावतया जोड़ा जाना चाहिए।

[35] (पृ. 140) पृ. 37 और आगे।

[36] (पृ. 140) पृ. 84 और आगे।

[37] (पृ. 142) तुलना कीजिए, ऊपर पृ. 89 और आगे।

[38] (पृ. 143) तुलना कीजिए, पृ. 94।

[39] (पृ. 145) अपूर्ण अध्ययन इस निष्कर्ष को इंगित करते प्रतीत होते हैं कि जब एकाधिकारिक तत्वों को, और विशेष करके विक्रय लागत को, स्वीकृति प्रदान की जाती है तो वितरण का उत्पादिता सिद्धान्त अपनी तर्कसंगति (validity) को लगभग खो देता है।

अध्याय 8—एकाधिकारिक प्रतियोगिता और वितरण का उत्पादिता सिद्धान्त (पृ. 146-156)

[1] (पृ. 146) अमेरिकन इकानामिक एसोसिएशन की फिलाडैल्फिया में दिसम्बर 1933 की बैठक में पढ़े गए निबन्ध का संशोधित रूप। उस निबन्ध का आंशिक

सारांश *AER*, खंड 24 (1934), परिशिष्ट, पृ. 23 में प्रकाशित हुआ था। *Explorations in Economics*, न्यूयार्क, मैक्ग्र-हिल बुक कम्पनी, 1936, की अनुमति से पुनर्मुद्रित।

[2] (पृ. 146) तुलना कीजिए, मैक्लप, "On the Meaning of the Marginal Products," *Explorations in Economics*, पृ. 250।

[3] (पृ. 147) सही अर्थ में, सीमान्त उत्पत्ति की प्रत्येक इकाई को उसकी अपनी सीमान्त आय से गुणा किया जाना चाहिए और जोड़ दिया जाना चाहिए।

[4] (पृ. 149) इन मामलों का ऊपर अधिक पूर्ण रूप से विवेचन किया गया है, पृ. 56 और आगे।

[5] (पृ. 149) इस प्रसंग में यह उल्लेख कर देना चाहिए कि अन्य कारकों को स्थिर रख कर जब एक कारक में परिवर्तन किए जाते हैं तो जो लागत वक्र संगत है वह दीर्घकालीन वक्र नहीं है, जिस पर हमारे अध्ययन में प्रायः विचार किया गया है, और जिस पर उत्पत्ति के प्रत्येक परिमाण को निर्दिष्ट करके साधनों का सबसे प्रभावकारी रूप से संगठन किया जाता है। यह कल्पना करके कि OB उत्पत्ति को निर्दिष्ट करके उनका सबसे प्रभावकारी रूप से संगठन किया गया है, बिन्दु Q इस दूसरे वक्र पर होगा। चूंकि इस बिन्दु से अन्य कारकों में परिवर्तन किए बिना किसी एक कारक में परिवर्तन, सामान्यतया, परिणामी उत्पत्तियों के लिए इष्टतम दशाओं से किंचित् कम प्रभावकारी उत्पादन की दशाओं को सन्निहित करता है, इसलिए यहां प्रसंगोचित वक्र, Q बिन्दु के अलावा अन्य बिन्दुओं द्वारा बताई गई प्रत्येक उत्पत्ति के लिए, उस वक्र के ऊपर होगा जो कारकों के सबसे प्रभावकारी संगठन द्वारा निर्धारित किया जाता है, और यह वक्र Q बिन्दु पर उसकी स्पर्शरेखा होगा। लागत वक्रों के इन दो कुलकों में संबंध के लिए देखिए, परिशिष्ट 'ख'।

[6] (पृ. 150) एक भिन्न दृष्टिकोण के लिए तुलना कीजिए, श्रीमती रॉबिन्सन, *The Economics of Imperfect Competition*, पृ. 283 और आगे।

[7] (पृ. 151) *Economics of Welfare*, पृ. 549।

[8] (पृ. 151) इन विषयों का और अधिक विवेचन किया गया है, पृ. 173-175, 206-208 और 214।

[9] (पृ. 151) तुलना कीजिए, ऊपर पृ. 80-88।

[10] (पृ. 151) तुलना कीजिए, पृ. 85-86।

[11] (पृ. 153) स्वभावतया, इन उच्चतर लागतों का अर्थ उच्चतर कीमतें, विचाराधीन पदार्थों के सामान्य वर्ग के लिए खर्च की गई विभिन्न कुल राशियां, और इस प्रकार, परोक्ष रूप से, अन्य पदार्थों के लिए भिन्न मांग वक्र होता है।

[12] (पृ. 153) यदि विज्ञापन ने लोगों को अधिक पदार्थों का उत्पादन करने के उद्देश्य से फुर्सत का त्याग करने को अभिप्रेरित किया है तो जिन पदार्थों का उत्पादन

अब नहीं किया जा रहा है उनमें फुर्सत को भी शामिल अवश्य किया जाना चाहिए।

[13] (पृ. 154) विज्ञापन-उद्योग द्वारा अपने बचाव में यह दूसरा प्रभाव सबसे अधिक बार आगे रखा जाता है। लेकिन, स्पष्ट है कि, यदि विज्ञापन के सामाजिक औचित्य का निर्णय इस आधार पर करना है, तो मांग को अधिक लोचदार बनाने की दिशा में लगाए गए साधनों के कारण परोक्ष रूप से प्राप्त उत्पत्ति में वृद्धि की तुलना उत्पत्ति में उस वृद्धि से अवश्य की जानी चाहिए जो तब प्राप्त होती यदि उन्हीं साधनों को प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन मे लगाया जाता।

[14] (पृ. 154) श्रीमती रॉबिन्सन के अतिरिक्त, जिन्होने वितरण की समस्याओं के, जैसी कि वे "अपूर्ण" प्रतियोगिता द्वारा प्रभावित होती है, विश्लेषण पर अन्य किसी व्यक्ति से अधिक काम किया है, निम्नलिखित व्यक्तियों का उल्लेख कर दिया जाना चाहिए। काल्डर (*Economica* खड 1, न्यू सिरीज [अगस्त, 1934], पृ. 337); आर. एफ. काह्न (*EJ*, खड 45 [मार्च, 1935], पृ. 3); फ्रिट्ज मैक्लप, (*Explorations in Economics* मे, पृ. 250); और संभाव्य है कि अन्य भी।

[15] (पृ. 154) पूर्व उद्धृत, पृ. 237।

[16] (पृ. 155) एकक्रयण (monopsony) की स्थितियों को छोड़कर।

[17] (पृ. 155) स्थानाभाव के कारण हम "उत्पादिता" सिद्धान्त के इस निर्वचन के पक्ष में बहुत से उद्धरणों का समावेश नहीं कर पाए है। मार्शल सिद्धान्त का कथन उसके अधिक व्यापक रूप में करते हैं, जो फर्म की कुल उत्पत्ति के मूल्य में निवल वृद्धि के शब्दों में दिया जाता है (*Principles*, पृ. 406, 521)। फिर भी वे ऐसा इसलिए करते प्रतीत होते हैं क्योंकि वे विश्वास करते हैं कि पदार्थ-उत्पत्ति की निश्चित इकाइयों को प्रायः पृथक् नहीं किया जा सकता है (पृ. 407)। यहां विवेचित वाद-विषयों पर, वे स्पष्टतः प्रतियोगितामूलक प्रतिपादन को उचित ठहराते हैं (गणितीय परिशिष्ट, टिप्पणी 14)। पिगु (*Economics of Welfare*, पृ. 119) और हिक्स (*Theory of Wages*, पृ. 8) भी देखिए। नाइट का निर्वचन सन्दिग्ध है। यद्यपि वे उत्पादन पर एकाधिकारिक रोकों और विक्रय लागतों, दोनों, को उत्पादक बता कर उनका बचाव करते है (*Risk, Uncertainty and Profit*, पृ. 186, पृ. 339), प्रतियोगितामूलक प्रतिपादन का कथन भी स्पष्टतः किया गया है (पृ. 107 तलटीप)। पाठ्यपुस्तकें दृष्टान्तों से भरपूर हैं। उदाहरणार्थ देखिए, गार्वर और हैन्सन, *Principles*, पृ. 409 (संशोधित संस्करण, पृ. 384)।

[18] (पृ. 155) इस प्रकार हमने वितरण का "सीमान्त उत्पत्ति" सिद्धान्त कहा है, मार्शल "निवल उत्पत्ति" शब्द का प्रयोग करते हैं, श्रीमती रॉबिन्सन सीमान्त मूल्य उत्पत्ति के अर्थ में "सीमान्त उत्पत्ति" शब्द का प्रयोग करती हैं, इत्यादि।

श्री काह्न (पहले ही उद्धृत अवतरण में पृ. 3) "उत्पादिता" का प्रयोग दोनों अर्थों में करते हैं। उनकी "सीमान्त व्यक्तिगत उत्पत्ति" की परिभाषा मूल्य-उत्पत्ति के रूप में दी गई है, जबकि कुछ पंक्तियों बाद एक तलटीप में वे कहते है कि "आगे जो दिया गया है उसमें...[सामाजिक ?] 'उत्पत्ति' 'उत्पाद का मूल्य' है।"

19 (पृ. 156) मजदूरी के विशेष संबंध में, वितरण में एकाधिकार तत्वों के और आगे विश्लेषण के लिए देखिए, *The Impact of the Union* (न्यूयार्क, 1951) में मेरा लेख "The Monopoly Power of Labour" (*Towards a...* में बारहवां लेख।) मेरी पुस्तिका *The Economic Analysis of Labour Union Power* (अमेरिकन इंटरप्राइज एसोसिएशन, वाशिंगटन डी. सी., 1958); और फिलिप डी. ब्रैड्ले (संपादक), *The Public Stake in Union Power*, शार्लोट्सविल, 1959, में *"Labour Union Power and the Public Interest"* भी देखिए।

अध्याय 9—एकाधिकारिक और "अपूर्ण" प्रतियोगिता में भेद (पृष्ठ 157–175)

1 (पृ. 157) अगस्त 1937 के *QJE* मे "Monopolistic or Imperfect Competition ?" शीर्षक से प्रकाशित एक लेख का संशोधित रूप। इस लेख ने श्री निकोलस काल्डर को उत्तर देने के लिए प्रेरित किया जिसमें उन्होंने यहां प्रस्तुत किए गए विचारों का प्रतिवाद किया। उनका लेख उसी जर्नल के मई 1938 के अंक में प्रकाशित हुआ, और अपने विचारों के बचाव में मैंने एक लेख लिखा जिसके अंश अब इस अध्याय मे समाविष्ट कर दिए गए हैं। तब से इस सम्पूर्ण विषय का सर्वांगीण विवेचन डॉ. रॉबर्ट ट्रिफिन द्वारा अपनी पुस्तक *Monopolistic Competition and General Equilibrium Theory* में किया जा चुका है। यहां डॉ. ट्रिफिन की पुस्तक का विस्तार से हवाला देने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया है।

मूल लेख में अनेक सहकर्मियों की सहायक आलोचनाओं के लिए उनका आभार माना गया था, विशेष कर के प्रोफेसर वैसिली लिऑन्टीफ और डॉ. डोनाल्ड ऐच. वालेस का। अब यहां मुझे श्री काल्डर को उनके द्वारा उत्तर में दी गई आलोचनाओं के लिए धन्यवाद देना चाहिए, जिनके परिणामस्वरूप अनेक स्थलों पर कथन का स्पष्टीकरण किया गया और कुछ परिवर्धन किए गए।

2 (पृ. 157) विशिष्टतया, वे भाग जिनका संबंध एकक्रयण की अनुपस्थिति में कीमत-राशि संबंधों, कीमत-भेद, अल्प-संख्या, उत्पाद विचरण, और विक्रय लागत से है।

3 (पृ. 157) *The Economics of Imperfect Competition*, पृ. vi।

4 (पृ. 158) सीमान्त लागत वक्र बहुधा औसत लागत वक्र के बिना दिए गए हैं।

[5] (पृ. 158) पृ. 94।

[6] (पृ. 158) पृ. 54, तलटीप 2।

[7] (पृ. 158) *Review of Economic Statistics*, खंड 18, पृ. 84।

[8] (पृ. 159) तुलना कीजिए, ऊपर, प्रथम संस्करण की भूमिका, दूसरा पैरा। "वर्धमान प्रतिफल" पर लेखों का समूह तीसरे दशाब्द के अन्तिम वर्षों और चौथे दशाब्द के प्रारंभ में प्रकट हुआ था।

[9] (पृ. 159) *Imperfect Competition*, पृ. 51, और ऊपर, पृ. 4, 12-13, 56। प्रोफेसर हट, अपने लेख "Economic Method and the Concept of Competition" (*Journal of South American Economics*, खड 2, पृ. 3) में मानते हैं कि वर्धमान प्रतिफल के विकासक्रम का, मेरी रचनाओं की तुलना में श्रीमती रॉबिन्सन की रचनाओं के "प्रामाणिक" स्वरूप से महत्वपूर्ण संबंध है (पृ. 4)।

[10] (पृ. 159) "उद्योग" के लिए वर्धमान, स्थिर और ह्रासमान लागत, तीनों, के वक्र शुद्ध और एकाधिकारिक दोनों प्रकार की प्रतियोगिता के अविरुद्ध प्रतीत होते हैं।

[11] (पृ. 159) लागत वक्र में "वर्धमान प्रतिफल" की **दशाओं** के अधिक व्यापक प्रश्न के संबंध में (जो सन्तुलन में वर्धमान के प्रतिफल के प्रश्न से प्रभिन्न है), यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता के लिए ऐसी दशाएं न तो **आवश्यक** हैं और न **पर्याप्त**। वे आवश्यक नहीं हैं क्योंकि (उदाहरणार्थ) कोई लागत वक्र न होने पर, या किसी अन्य आकृति का होने पर, भी एकाधिकारिक प्रतियोगिता संभव है। वे पर्याप्त नहीं है क्योंकि U-आकृति वाला सुपरिचित लागत वक्र शुद्ध प्रतियोगिता के अविरुद्ध है।

[12] (पृ. 159) *Imperfect Competition*, अध्याय 7 और 9। इस संबंध में श्रीमती रॉबिन्सन के और मेरे अपने विवरण के बीच "केवल आकारिक (formal) समरूपता" की ओर श्री काल्डर ने जो ध्यान आकर्षित कराया है, वह सही है। तुलना कीजिए, "Market Imperfection and Exess Capacity", *Economica*, फरवरी 1935, पृ. 34।

लाभ के सिद्धान्त के लिए इस प्रतिपादन की सार्थकता का उल्लेख आगे किया जाएगा।

[13] (पृ. 159) इस विषय पर देखिए शिकागो गोलमेज में की गई प्रोफेसर मैक्लप की टिप्पणी, *AER*, जून 1937, पृ. 325; और उनका लेख "Monopoly and Competition : A Classification", वही, सितम्बर 1937।

[14] (पृ. 160) *Imperfect Competition*, पृ. 101 (बल मेरा)।

[15] (पृ. 161) पूर्व उद्धृत, पृ. 42।

[16] (पृ. 161) स्थिति में सुविधा के अलावा अन्य सब बातों में उत्पादों को यहां एकरूप माना गया है।

तर्क के लिए यह आवश्यक नहीं है कि सुविधा की युक्तियुक्त (rational) गणना की जाए। संभव है कि लोग निकटतम दुकान से, किसी भी प्रकार की गणना किए बिना, केवल आवेग या संयोग के कारण खरीदते हों।

[17] (पृ. 161) जब वक्र बांयी ओर को हटता है तो किसी विशेष कीमत पर उसकी लोच स्पष्टतः बढ़ेगी, जबकि किसी विशेष उत्पत्ति पर उसकी लोच घटेगी। सन्तुलन बिन्दु पर लोच का क्या होगा यह केवल लागत वक्रों को लाकर जाना जा सकता है।

[18] (पृ. 162) तुलना कीजिए, श्रीमती रॉबिन्सन द्वारा दी गई मांग में तीन प्रकार की वृद्धियां; *Imperfect Competition*, पृ. 100।

[19] (पृ. 162) यह नही भूलना चाहिए कि **एकाधिकारिक** प्रतियोगिता के अन्तर्गत विक्रेताओं की संख्या में वृद्धि करने पर, प्रत्येक नया उत्पादक एक नये उत्पाद का उत्पादन करता है। इसलिए, शुद्ध प्रतियोगिता की भांति और श्रीमती रॉबिन्सन की "अपूर्ण" प्रतियोगिता की भाति भी, उत्पादकों और उत्पादों के अनुपात में होने वाली वृद्धि यहां नहीं होती। तुलना कीजिए, आगे पृ. 169-170।

[20] (पृ. 162) पूर्व उद्धृत, पृ. 42।

[21] (पृ. 163) मूलतः, जितना यह सोचने का कारण है कि सम्पूर्ण अर्थ-प्रणाली के सब उत्पाद केवल एक एकरूप पदार्थ में बदल जाएंगे, उससे अधिक यह कल्पना करने का कारण नहीं है कि कारकों की पूर्ण विभाज्यता के कारण या संख्या में वृद्धि के कारण उत्पाद के किसी सामान्य वर्ग में के अन्तर मिट जाएंगे।

[22] (पृ. 163) "What is Perfect Competition ?" *QJE*, खंड 49, पृ. 104-111।

[23] (पृ. 163) उद्धृत शब्द *Monopolistic Competition* के पांचवें से पहले के संस्करणों में, पृ. 111 पर, स्पर्शिता हल के पहले के वर्णन में अन्तर्निहित "अव्यक्त कल्पना" के रूप में प्रकाशित हुए थे। लेकिन, "प्रवेश की स्वतन्त्रता" के मामले को कभी वास्तव में उठाया नहीं गया था, और पहले के तर्क के संक्षेप को इस संकल्पना का प्रयोग किए बिना पृ. 91-92 पर अधिक परिशुद्ध रूप से दिया गया है : "जिस सीमा तक संपूर्ण क्षेत्र मे या उसके किसी भाग में लाभ सामान्य प्रतियोगी स्तर से उच्चतर होते हैं तो, यदि संभव हो तो, नये प्रतियोगी क्षेत्र में घुस आएगे। यदि ऐसा सदा संभव होता, जैसा अब तक माना गया है, तो वक्र सदा एक-दूसरे की स्पर्शरेखाएं होंगे....."

[24] (पृ. 163) पूर्व उद्धृत, पृ. 43-44।

[25] (पृ. 164) यह कठिनाई "अपूर्ण" प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रकट नहीं होती है, जिसमें किसी पण्य का संबंध एक फर्म से नहीं बल्कि एक "उद्योग" से स्थापित

किया गया है और उद्योग में पण्य को **एकरूप** बताया गया है। तुलना कीजिए, आगे, पृ. 169-170।

[26] (पृ. 165) इस तर्क का यह मतलब नहीं है कि "उद्योग" की संकल्पना को पूरी तरह से हटा दिया जाए। कई संदर्भों में, अर्थप्रणाली के एक भाग को परिसीमित करना और शेष से उसे कुछ मात्रा तक अलग करके उसका अध्ययन करना स्पष्टतः उपयोगी है। और यदि ऐसा किया जा सकता है तो, यद्यपि प्रवेश कभी "मुक्त" नहीं होता फिर भी जिस **सापेक्ष** आसानी से इस क्षेत्र में प्रवेश किया जा सकता है उसकी चर्चा करना पूर्णतः अर्थहीन नहीं है, जहां सापेक्ष आसानी का अर्थ यह है कि "उद्योग" को बनाने वाले विशेष स्थानापन्नों का उत्पादन कितनी आसानी से किया जा सकता है। लेकिन, उद्योगों के वर्गीकरण के किसी प्रयत्न के बाद अनुभव होता है कि यह सब बहुत मनमाना है। उद्योगों की जिन "सामान्य बुद्धि" (commonsense) वाली परिभाषाओं के शब्दों में व्यावहारिक समस्याओं का अध्ययन होने की संभावना है, वे बाजार में प्रतिस्थापना की संभावना की अपेक्षा तकनीक संबंधी कसौटी पर कहीं अधिक आधारित प्रतीत होती है।

[27] (पृ. 165) *QJE*, खंड 49, पृ. 112। श्रीमती रॉबिन्सन द्वारा विशिष्टीकरण पर यहां की गई आपत्तियां इसकी पुष्टि करती हैं कि उद्योग के भीतर उत्पाद को **एकरूप** मानना (*Imperfect Competition*, पृ. 17) उनकी "चूक" (slip) नहीं थी, बल्कि समस्या की ओर उनके उपगमन का एक अनिवार्य भाग था। एकाधिकारिक प्रतियोगिता की जो संभवतः सबसे अधिक मूलभूत संकल्पना है उस का अपूर्ण प्रतियोगिता में सर्वथा अभाव है, और यह अर्थ-प्रणाली के उनके निर्वचनों में असाधारण भिन्नता में निहित है, जिसकी व्याख्या आगे की गई है।

[28] (पृ. 165) ऊपर, पृ. 44।

[29] (पृ. 165) श्रीमती रॉबिन्सन के लेख में *Monopolistic Competition* के जो चार उल्लेख हैं उनमें से एक में भी उन्होंने, जो मैंने कहा है, उसको सही-सही न तो कहा है, न व्याख्या की है। प्रथमतः, "शुद्ध" और "पूर्ण" प्रतियोगिता के भेद को उन्होंने स्पष्टतः गलत रूप से समझा है (पृ. 105), जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने उसका गलत प्रयोग किया और यह निष्कर्ष निकाला कि वह "भ्रामक" है और "पुराने संभ्रम की शाब्दिक प्रशंसा करता है।" इस विषय पर श्री ह्वाइट का लेख "A Review of Monopolistic and Imperfect Competition Theories," *AER*, दिसम्बर 1936, पृ. 642-43, देखिए, जिसमें वे यह विचार प्रकट करते हैं कि श्रीमती रॉबिन्सन के तर्क ऐसे भेद के पक्ष को कमजोर नहीं करते बल्कि उसे सुदृढ़ करते हैं।

द्वितीयतः, उत्पाद के विशिष्टीकरण की गलत दिशा में (misdirected) आलोचना है, जिस पर ऊपर पाठ्य-भाग में विचार किया गया है।

तृतीयतः, संख्या के संबंध में वे कहती हैं (पृ. 114) कि "कभी-कभी यह

ाा जाता है कि प्रतियोगिता के पूर्ण होने के लिए क्रेताओं की संख्या का
होना आवश्यक है"। [तलटीप में मेरा हवाला दिया गया है, यद्यपि किसी
भी हवाला दिया जा सकता था।] परन्तु यह सच्चाई के विपरीत है।"
अपने कथन में क्रेताओं और विक्रेताओं दोनों का स्पष्ट उल्लेख है, और
त्र श्रीमती रॉबिन्सन स्वयं वही बात कहती हैं (*Imperfect Competition*,
216)। "पूर्ण प्रतियोगिता" को विशिष्टीकृत उत्पाद के अविरुद्ध बनाने के
के निष्फल प्रयास में वह "सच्चाई के विपरीत" हो जाता है। इसके लिए
श्यक है कि क्रेता "अपने अधिमानों मे बिल्कुल एक-से हो", और हम इसके बारे
श्चत तब तक नही हो सकते जब तक कि, जैसा श्रीमती रॉबिन्सन दिखाती है,
ल एक क्रेता न हो। तो, **विक्रेताओं** में पूर्ण प्रतियोगिता होने के लिए एकक्रयण
श्य होना चाहिए। अब श्रीमती रॉबिन्सन को "विपरीत" सत्य पूरी शीघ्रता
मिल गया। **क्रेताओं** में पूर्ण प्रतियोगिता के लिए केवल एक विक्रेता, अर्थात्
ाधिकार, अवश्य होना चाहिए। तो क्या हम यह निष्कर्ष निकालें कि पूरी
ता के लिए द्विपक्षीय एकाधिकार की अपेक्षा है?

अन्त में श्रीमती रॉबिन्सन यह कहकर सारांश देती है कि " 'बड़ी संख्या में फर्मों
' ऐसा एक सार्विक (universal) मान कोई नहीं है जो पूर्ण प्रतियोगिता को
निश्चित करता है" (पृ. 120) और, तलटीप में मेरा हवाला देकर, पाठक
यह सोचने के लिए प्रेरित करती है कि मेरा सुझाव है कि ऐसी "बड़ी संख्या"
00 है। जिस विशेष लेखांश का वे उल्लेख करती हैं (ऊपर पृ. 39), उससे
ह स्पष्ट प्रतीत होता है कि 100 की संख्या को उदाहरण के रूप में दिया गया
और यह स्पष्टतः कहा गया है कि जब विक्रेताओं की संख्या बढ़ती है "तो
ह बताना असंभव है कि ठीक किस बिन्दु पर यह विचार [जिसका सबंध कम
ख्या से है] एक कारक नहीं रह जाता।" यह एक ऐसा निष्कर्ष है जो उनके अपने
ष्कर्ष के बिल्कुल अनुरूप प्रतीत होता है, यद्यपि, निस्संदेह, भिन्न कारणों से।
ोमती रॉबिन्सन यह कह कर समाप्त करती है कि, यद्यपि मैने लिखा था कि 100
ा सख्या "बडी" है, जिस विशेष स्थिति पर मैं विचार कर रहा था, उसमें दो
क्रेता पर्याप्त होते (पृ. 39)। इसका स्पष्टीकरण नही किया गया था; और
योंकि, मैंने स्वयं इसे विस्तारपूर्वक स्पष्ट किया है कि दो की संख्या पर्याप्त क्यों
हीं है, इसलिए मै केवलमात्र इस धारणा (conviction) के कारण कि ऐसा
हीं है विचलित नही हुआ हूं, चाहे उस धारणा को कितनी ही तीव्रता से महसूस
यों न किया जाता हो।

पृ. 165) जिसमें "सार्थक" और "बशर्ते कि वह क्रेताओं के लिए कुछ भी महत्व
ा हो, और अधिमान मे परिणत होता हो" (ऊपर पृ. 44) भी सम्मिलित
। इसकी व्यापक परिभाषा करने पर, जिसमें चाहे कैसा भी अन्तर आ जाता है,
ह स्पष्ट प्रतीत होता है कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता के लिए विशिष्टीकरण

आवश्यक है, परन्तु पर्याप्त नहीं है। बिना कुछ अन्तर के, चाहे वह केवल स्थिति में ही क्यों न हो, एक इकाई को दूसरी से भिन्न करना और अतः किसी अधिमान का होना असंभव होगा। अतः विशिष्टीकरण आवश्यक है। दूसरी ओर, उत्पाद की हर एक एकाई (उदाहरणार्थ गेहूँ का हर एक दाना) किसी न किसी अल्पमात्रा में हर अन्य इकाई से भिन्न होता है। केवल विशिष्टीकरण, अपने व्यापकतम अर्थ में, पर्याप्त नहीं है। यह आवश्यक है कि वह कम से कम कुछ क्रेताओं के लिए कम से कम किंचित् मात्रा में सार्थक हो।

[31] (पृ. 167) Basing Point System in the Iron and Steel Industry पर NRA का प्रतिवेदन, पृ. 59।

[32] (पृ. 168) श्री ह्वाइट टिप्पणी करते हैं कि (पूर्व उद्धृत, पृ. 643) : "न केवल यह शब्दावली [पूर्ण प्रतियोगिता, अपूर्ण प्रतियोगिता, और एकाधिकार की त्रयी] सैद्धान्तिक पुनरभिविन्यास (re-orientation) के सारभूत लक्षणों को छिपाती है, वह वस्तुतः इस आधार-वाक्य (premise) का खडन करती है कि प्रतियोगिता और एकाधिकार एक-दूसरे के अविरुद्ध है, न कि परस्पर-अपवर्जी।" जब यह अनुभव किया जाता है कि श्रीमती रॉबिन्सन का ऐसा कोई आधार-वाक्य नही है तो व्याख्या कठिन नहीं रह जाती।

[33] (पृ. 168) बल्कि यथेष्ट रूप से भी अधिक। मुझे ऐसे हवाले मिले है जो उन बातों के लिए *Monopolistic Competition* का उल्लेख करते है जिन पर केवल श्रीमती रॉबिन्सन ने विचार किया है, और इसके विपरीत भी।

[34] (पृ. 168) पूर्व उद्धृत।

[35] (पृ. 168) एकाधिकार की उनकी "वैयक्तिक फर्म" वाली परिभाषा के अनुसार वे, निस्संदेह, परस्पर-अपवर्जी नहीं है : वैयक्तिक फर्मे प्रतियोगिता के सर्वथा अविरुद्ध हैं। अविरुद्धता की वास्तविक समस्या केवल तब उठती है जब एकाधिकार की सामान्य परिभाषा, पूर्ति पर नियंत्रण, स्वीकार की जाती है।

[36] (पृ. 168) शायद उनके द्वारा बहुधा व्यक्त भावना भी कि मेरा अपना प्रतिपादन "भ्रामक" है, "बिल्कुल स्पष्ट नहीं" है, "किंचित् कमजोर" है, इत्यादि।

[37] (पृ. 169) पृ. 5।

[38] (पृ. 169) पृ. 52।

[39] (पृ. 169) "तर्कशास्त्र" में इसको निम्नलिखित के बराबर समझा जा सकता है : किसी नाटक की किसी अकेली भूमिका को एकालाप कहना, रेल-पथ की एक रेल को मोनोरेल कहना, या किसी बहुविवाही के अपनी किसी पत्नी से विवाह-संबंध को एकपत्नित्व कहना।

[40] (पृ. 170) *Imperfect Competition*, पृ. 17 (बल मेरा)। स्पष्टत, "व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए" वाक्यांश सिद्धान्तीकरण के व्यावहारिक उद्देश्यों का निर्देश करता है। श्रीमती रॉबिन्सन का इस विलक्षण स्थिति पर आना तर्कानुसार

है, क्योंकि वे प्रत्येक उत्पादक की उत्पत्ति को पृथक् पण्य मानने की **"अवस्था में आने"** (reduced) के लिए तैयार नहीं थीं (बल मेरा, पृ. 5)। इस प्रकार, वे कभी भी एक फर्म का **उत्पाद** (product) नहीं कहती हैं, बल्कि उसकी **उत्पत्ति** (output) कहती हैं। चूंकि उनके अनुसार "उद्योग" एक **एकरूप** उत्पाद का (हालांकि एक "अपूर्ण" बाजार में) उत्पादन करता है, यह आश्चर्यजक नहीं है कि (पूर्ति पर नियंत्रण के अर्थ में) एकाधिकार की संकल्पना, जैसी वह एक-एक उत्पादक से संबंधित है, उनके सिद्धान्त में कोई भूमिका अदा नहीं करती। ऐसे उत्पादक के पास, जिसके बारे में सिद्धान्त यह स्वीकार नहीं करता कि उसका अन्य से भिन्न अपना उत्पाद या "पण्य" है, ऐसी कोई चीज नहीं है जिसकी पूर्ति को वह नियंत्रित कर सके।

41 (पृ. 170) पृ. 5।

42 (पृ. 170) *Imperfect Competition*, पृ. 98; और ऊपर पृ. 65।

43 (पृ. 170) ऊपर, पृ. 66।

44 (पृ. 170) पृ. 88, 141।

45 (पृ. 170) "Some Notes on Ideal Output", *EJ*, खंड 45, पृ. 20।

46 (पृ. 171) श्री स्राफा ने 1926 में एकाधिकार पर बहुत बल दिया था, और प्रतियोगिता का "परित्याग" करने का आह्वान किया था, और उन्होंने स्वयं उसका लगभग परित्याग कर दिया था। (तुलना कीजिए, आगे पृ. 266)। यह कम से कम संभव तो है कि श्रीमती रॉबिन्सन और श्री काह्न द्वारा एकाधिकार का अनगीकार (denial) इस दूसरी चरम स्थिति की प्रतिक्रिया हो। परन्तु किसी का भी परित्याग क्यों किया जाए ?

47 (पृ. 171) ".....यह प्रमाणित करने को कि वास्तविक जगत की एकाधिकार-सदृश (monopoloid) स्थितियां...**विशेष व्यक्तियों में निविष्ट विशेष सुविधाओं** (advantages) **के सर्वथा अभाव** के अविरुद्ध है (बल मेरा), मैने एकाधिकारिक प्रतियोगिता के सिद्धान्त की महान उपलब्धियों में एक सदा माना है।.....[उसने] हमें दिखाया है कि...**किसी प्रकार की "अनन्य सुविधा" के बिना भी** विभिन्न मात्राओं मे एकाधिकार हो सकता है (बल मेरा) ...अर्थशास्त्र में [यह] एक बहुत बड़ा कदम था ; और इसका श्रेय, उनके प्रस्तुत प्रत्याख्यान के बावजूद, प्रोफेसर चैम्बरलिन को दिया जाना चाहिए।" (पूर्व उद्धृत, पृ. 523।)

48 (पृ. 171) "Market Imperfection and Excess Capacity," *Economica*, फरवरी 1935, पृ. 44।

49 (पृ. 171) वही, पृ. 35। स्वभावतया, "संस्थानिक एकाधिकार" भी चित्र में लाए जा सकते हैं, जैसा श्री काल्डर संक्षेप में पृ. 45 में करते हैं, जहां वे कहते हैं कि यद्यपि "[वे] किसी भी प्रकार से आवश्यक नहीं हैं, वे बाजार की अपूर्णता

के बहुतांश के लिए प्रत्यक्षतः उत्तरदायी भी हो सकते हैं," जैसा मेरे परिशिष्ट 'च' में दिखाया गया है ! पुनः यह सुस्पष्ट है कि इस परिशिष्ट तक पहुंचने के पहले श्री काल्डर को *Monopolistic Competition* में ऐसा कोई विचार नहीं मिला ।

[50] (पृ. 171) इस अध्याय के पहले के रूप के उत्तर में, श्री काल्डर, एकाधिकारिक प्रतियोगिता के मेरे निर्वचन का प्रतिवाद करते हुए, कहते हैं कि यदि उसे स्वीकार कर लिया जाए तो एक-एक फर्म के मांग वक्र की लोच के शब्दों में प्रतियोगिता की अपूर्णता की मात्रा के व्यापक रूप से प्रयुक्त माप का प्रयोग "किसी दी हुई स्थिति में 'एकाधिकार' और 'प्रतियोगितामूलक' तत्वों की सापेक्ष प्रबलता को, उसका जो अर्थ प्रोफेसर चैम्बरलिन के दिमाग में है उस अर्थ में, बताने के लिए निश्चित है कि नही किया जा सकता है" (पूर्व उद्धृत, पृ. 256) । यह इसका अच्छा साक्ष्य है कि वे अब अपने आरंभिक गलत निर्वचन से अवगत है—और श्री लर्नर के "एकाधिकार की मात्रा" के माप का व्यापक उपयोग इस बात का अगला साक्ष्य है कि यह गलत निर्वचन कितना सामान्य रहा है । मै श्री काल्डर से पूर्णतया सहमत हूं कि ऐसे सूचक का उपयोग नही किया जा सकता है, और मैंने स्वयं न तो उसका अनुमोदन किया है न उपयोग । वह, सरलीकृत कल्पनाओं के अन्तर्गत, एकाधिकारिक प्रतियोगिता के कई पहलुओं मे से (जिनमे से कुछ गुणात्मक है और नापे ही नहीं जा सकते) केवल एक को नापता है; और इस प्रकार वह अपने निहितार्थों में निश्चय ही पूर्णतया अनिष्टकर है । स्पष्टतः, यह निष्कर्ष निकलता है कि इस सूचक का परित्याग कर दें, यह नही कि उसे बनाए रखने के लिए सिद्धान्त का गलत निर्वचन करें । "एकाधिकार की मात्रा" के पूर्णतर विवेचन के लिए देखिए मेरा लेख, "Measuring the Degree of Monopoly and Competition," *Monopoly and Competition and their Regulation*, सम्पादक, ई. ऐच. चैम्बरलिन, लन्दन और न्यूयार्क, 1954 ; (*Towards a.....* में, अनुप्रस्थ (cross) लोच पर अनुपूरक टिप्पणी के साथ चौथा लेख) ।

[51] (पृ. 171) *Imperfect Competition*, अध्याय 7 और 9 ।

[52] (पृ. 172) मैं दावा नहीं करता कि मैंने ऐसा कोई सिद्धान्त प्रस्तुत किया है । मैंने एक फर्म के लागत वक्र में वे सभी भुगतान केवल सम्मिलित किए है जो उसके द्वारा प्रयुक्त साधनों को, जिनमें "उद्यमी" की सेवाएँ भी हैं, प्राप्त करने के लिए आवश्यक हैं । स्वभावतया, इस राशि के अतिरिक्त वास्तविक लाभ, हो सकता है कि, सामान्य रूप से उद्यमी की सेवाओं की पूर्ति को प्रभावित करने वाला सारवान कारक हो ।

[53] (पृ. 172) सामाजिक नियंत्रण से स्वतंत्रता के अर्थ में "स्वतंत्रता" वैयक्तिक आर्थिक इकाइयों, चाहे फर्म हों या व्यक्ति, के बीच में समझौतों और विविध

रूपों की सहचारी कार्रवाइयों में स्पष्टतः परिणत हो सकती है। ऐसे समझौते स्पष्टतः एकाधिकारमूलक हैं, और अर्थप्रणाली के एकाधिकार तथा प्रतियोगिता के मिश्रण के रूप में यहां दिए गए चित्र में स्पष्टतः अवश्य जोड़े जाने चाहिए। लेकिन, वे इस पुस्तक की विषय-सामग्री का कोई महत्वपूर्ण भाग नहीं बनाते हैं। ऐसे समझौतों के अभाव में अर्थ-प्रणाली को "प्रतियोगितामूलक" समझने के खतरे से बचना चाहिए।

इसी प्रकार, यद्यपि "बड़ी इकाइयों" के पास बहुधा एकाधिकार शक्ति होती है, यह नहीं मान लेना चाहिए कि उन्हें विघटित कर देने पर एकाधिकार-अमिश्रित प्रतियोगिता स्थापित हो जाएगी। प्रत्युत्, "स्वतंत्र लघु-एकक" (atomistic) प्रतियोगिता में, (पैमाने की किफायतों को प्राप्त करने के लिए) बड़ी इकाइयों में जो मानकीकरण अब होता है उसका उन्मूलन करके, लगभग निश्चित रूप से उत्पाद विशिष्टीकरण में **वृद्धि** सन्निहित होगी। एकाधिकार तत्व (अंशतः) उत्पाद की अनेकरूपता के कारण उत्पन्न होते है, केवल आकार के कारण नहीं, और बहुत छोटी इकाइयों से बनी हुई कोई अर्थप्रणाली निश्चित रूप से एकाधिकारिक प्रतियोगितामूलक होगी, न कि शुद्ध या पूर्ण प्रतियोगितामूलक। वस्तुतः, यह भी हो सकता है कि उसमें काम में लाए गए (exercised) एकाधिकार शक्ति के योग में **वृद्धि** सन्निहित हो, जो बृहत्तर संख्या में व्यक्तियों में उसके वितरण के अविरुद्ध है। (लेकिन, मापन की समस्याएं ऐसी मात्रात्मक तुलना को सूक्ष्मता प्रदान करना असंभव कर देती हैं।) यदि यह मान भी लिया जाए कि कुछ मात्रा तक मानकीकरण वांछनीय है, और इसलिए सामाजिक नियंत्रण द्वारा विशिष्ट रूप से थोपा जाता है, तब भी वास्तव में वह केवल निश्चित सीमाओं के भीतर प्राप्त किया जा सकता है, और इसलिए "स्वतंत्र लघु-एकक" प्रतियोगिता में एकाधिकार तत्वों को केवल आंशिक रूप से कम कर सकता है।

[54] (पृ. 173) तुलना कीजिए, डी. ऐच. वालेस, "Monopolistic Competition and Public Policy", *AER*, खंड 26, परिशिष्ट, पृ. 77; और मेरा लेख, "Product Heterogeneity and Public Policy, वही, खंड 40, अंक 2 (कार्यवाही)। (मेरा लेख *Towards a.....* में पांचवां लेख है।)

[55] (पृ. 173) बल्कि, "अपूर्ण" प्रतियोगिता तो अपूर्णताओं को दूर करने का सुझाव देती है। उदाहरणार्थ, तुलना कीजिए, *Imperfect Competition*, पृ. 284 और आगे।

श्री लर्नर की *Economics of Control* कल्याण-विश्लेषण का सबसे हाल का उदाहरण है, जिसमें उसके इष्टतम की परिभाषा पूर्णतः प्रतियोगितामूलक कसौटी के शब्दों में सर्वांगीण और सम्यक् रूप से की गई है; और इसलिए ऊपर दी गई आलोचनाएं उस पर पूरी-पूरी लागू होती हैं।

[56] (पृ. 173) पृ. 282-83।

[57] (पृ. 174) तुलना कीजिए, ऊपर पृ. 150; और "Euler's Theorem and the Problem of Distribution," *EJ*, खंड 44 (1934), पृ. 411 में और यत्र-तत्र; "शोषण" का और अधिक विवेचन श्रीमती रॉबिन्सन ने अपनी *Essay on Marxian Economics*, "Imperfect Competition" पर नवें अध्याय, में किया है; और मेरी *Towards a*..... में सोलहवां लेख, "Mrs. Robinson's Recent Visit to Monopolistic Competition"।

[58] (पृ. 174) "Euler's Theorem", पृ. 411। तलटीप 1 में वे कहती हैं कि "प्रस्तुत सदर्भ में लागत में लाभ सम्मिलित नहीं हैं।"

[59] (पृ. 174) उद्यमी की सेवाओं में परिवर्तन किया जा सकता है, इस संभावना की एक सक्षिप्त स्वीकृति मे उसे अविभाज्य इकाई बनाए रखने का विचित्र प्रयत्न मिलता है। "जब उद्यमी की आय उसके द्वारा फर्म को प्रदान किए गए प्रयास की राशि के अनुसार बदलती है, तो उद्योग के दृष्टिकोण से उद्यम की इकाई को एकल (single) उद्यमी मानना सबसे अच्छा है, जो कार्य की वह राशि करता है जिसकी उसके लिए सीमान्त लागत और जिसकी फर्म के लिए सीमान्त उत्पत्ति बराबर है" (पृ. 409, तलटीप 2)। इस प्रकार जिस तर्क के द्वारा वह शोषक हो जाता है, उसे ठीक बैठाने के हेतु वास्तविक रूप से विभाज्य उद्यमी को अविभाज्य बना दिया जाता है।

[60] (पृ. 174) पृ. 413। श्री काह्न (पूर्व उद्धृत, पृ. 23), श्रीमती रॉबिन्सन की उपपत्ति को अपने अनुमोदन के साथ उद्धृत करते है, और उसे "अपूर्ण" प्रतियोगिता के अन्तर्गत उद्यमी की आय के और अधिक विश्लेषण के आरम्भ-बिन्दु के रूप में अपनाते हैं।

[61] (पृ. 175) तव सिद्धान्त का जो विकास होता है, उसका निर्देश परिशिष्ट 'ख' मे किया गया है, पृ. 188; विशेष कर के पृ. 205-208 और 214।

परिशिष्ट क—द्वयधिकार और अल्पाधिकार के गणितीय सिद्धान्त (पृष्ठ 179-187)

[1] (पृ. 179) पूर्व उद्धृत, ऊपर पृ. 32।

[2] (पृ. 180) *Encyclopédie des Sciences Mathématiques* में "Économie Mathematique", ग्रंथ 1, खड 4 (1911), पृ. 606, तलटीप। *Manuel d'Economie Politique*, पृ. 595-602। पहले में उनकी कूर्नो की निर्दिष्ट आलोचना मिलती है।

[3] (पृ. 181) *Les Mathématiques Appliquées à l'Économie Politique*, पृ. 68-75।

[4] (पृ. 181) वही, पृ. 73।

[5] (पृ. 182) तुलना कीजिए, बॉले का हल, आगे, पृ. 182।

एरिख् श्नाइडर ने ("Zur Theorie des mehrfachen Monopols, insbesondere der des Duopols," *Archiv. für Sozialwissenschaft und Sozialpolitik*, खंड 63, अंक 3 [1930], पृ. 539-555; और खंड 64, अंक 2 [1930], पृ. 380) भी परेटो के तर्क की आलोचना की है। वे इस आधार पर उनके विरुद्ध निष्कर्ष निकालते है कि उसमें D_1 और D_2 की अन्योन्य-आश्रितता की उपेक्षा की गई है, और वे कूर्नो (और विक्सॅल) का बचाव करते है। एक अन्य लेख में ("Drei Probleme der Monopoltheorie", *Zeitschrift für Nationalökonomie*, खंड 2, अंक 3 [1931], पृ. 382) वे कूर्नो का अनुसरण करते हुए एक विशेष स्थिति का विकास करते हैं।

[6] (पृ. 182) *Lezioni di Economia Matematica* (1921), पृ. 258 और आगे। और भी तुलना कीजिए, एक हाल का लेख, 'La Curva Statica di offerta," *Giornale degli Economisti*, खंड 70 (1930), विशेषकर के पृ. 11-20।

[7] (पृ. 182) *EJ*, खंड 32 (1922), पृ. 400।

[8] (पृ. 182) "A Simple Theory of Competition," *American Mathematical Monthly*, खंड 29 (1922), पृ. 371। और तुलना कीजिए, उनकी *Mathematical Introduction to Economics* (1930), अध्याय 3। सी. ऐफ. रूस ने ("A Mathematical Theory of Competition," *American Journal of Mathematics*, खंड 47 [1925], पृ. 163) इस सिद्धान्त का एक गत्यात्मक विकास प्रस्तुत किया है।

[9] (पृ. 183) *The Mathematical Groundwork of Economics* (1924), पृ. 38।

[10] (पृ. 184) "Stability in Competition," *EJ*, खंड 41 (मार्च 1929), पृ. 41। होटेलिग का लेख द्वयधिकार पर मेरे अध्याय (और इस परिशिष्ट) के *QJE* (नवम्बर 1929) में प्रथम प्रकाशन के कई महीने पहले प्रकाशित हुआ था। मेरे लेख में उसका उल्लेख नहीं किया गया था क्योंकि मैंने मानकित उत्पाद की कल्पना को सर्वत्र बनाए रखा था, और ऐसा लगा कि वह समस्या की उस अवस्था से संबंधित है जो इस पुस्तक के एक अन्य भाग में दी जाने वाली थी। (तुलना कीजिए, ऊपर पृ. 80-84।) उसे अब यहां सम्मिलित किया जा रहा है, क्योंकि तर्क गणितीय है।

[11] (पृ. 184) वही, पृ. 44 (जोर मेरा)।

[12] (पृ. 187) वास्तव में, होटेलिंग अपने निर्धार्य हल पर प्रतिबन्ध लगाते हैं, और कहते हैं कि "सन्तुलन बिन्दु के निर्देशांकों (coordinates) से भिन्न कीमतें

काफी समय तक बनी रह सकती हैं।" परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उनके अनुसार कीमतों के सन्तुलन बिन्दु के ऊपर बने रहने का कारण मौन समझौते हैं, और वे कहते हैं कि ऐसे समझौते अपनी "भंगुरता के लिए कुख्यात" है।

[13] (पृ. 187) Papers, खंड 1, पृ. 121।

परिशिष्ट ख—एक उत्पादक का लागत वक्र (पृष्ठ 188-214)

[1] (पृ. 188) छठे से पहले के संस्करणों में इस विषय के अधिक संक्षिप्त प्रतिपादनों के स्थान मे यह परिशिष्ट दिया गया है। यह फरवरी 1948 के *QJE* में छपे लेख "Proportionality, Divisibility and Economies of Scale" का, मामूली परिवर्तनों के साथ, पुनर्मुद्रण है। इस लेख पर ए. ऐन्. मैक्ली-ओड और ऐफ्. ऐच. हान की टिप्पणियों और लेखक द्वारा उत्तर के लिए उसी जर्नल का फरवरी 1949 का अंक देखिए। (यह परिशिष्ट और टिप्पणियों के उत्तर *Towards a*..... का नवां लेख है।)

[2] (पृ. 189) इस प्रकार कारकों की खरीदारी में एकक्रयण का लागत वक्रों पर प्रभाव इस विश्लेषण के विषय-क्षेत्र में नही आता। यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि हम केवल उत्पादन लागतों पर विचार कर रहे है। विक्रय लागतों का (वे लागतें जो किसी उत्पाद की मांग का सृजन करने या उनमें वृद्धि करने के लिए लगाई जाती है, और जो उत्पाद का निर्माण करने से भिन्न है) व्यवहार एक अलग विषय है। परन्तु विक्रय लागत वक्र को उत्पादन लागत वक्र में सीधे जोड़ा जा सकता है। (तुलना कीजिए, ऊपर, अध्याय 6,7।)

[3] (पृ.189) इन वक्रों के पूरे विवेचन और इनकी व्युत्पत्ति के लिए देखिए, उदाहरणार्थ, गार्वर और हान्सॅन, *Principles of Economics*, अध्याय 5; बॉल्डिंग, *Economic Analysis*, संशोधित संस्करण, अध्याय 24; स्टिग्लर, *Theory of Price*, अध्याय 8।

[4] (पृ. 189) इन संभावनाओं में न केवल विभिन्न आकार के संयंत्र (समस्त निवेश) बल्कि (निवेश की प्रत्येक कुल राशि के लिए) विभिन्न गुणात्मक या तकनीकी विशेषताओं वाले संयंत्र भी सम्मिलित है। उनमें वे विभिन्न संभव कल्पनाएं भी सम्मिलित है जिनके अनुसार कुल साधनों को स्थिर और परिवर्ती वर्गों में बांटा जाता है। दीर्घकाल में सब कारकों के परिवर्ती होने के कारण, किसी स्थिति-विशेष में किसे स्थिर और किसे परिवर्ती माना जाता है, यह एक तरह से मनमाना है, जो समस्या के स्वभाव पर और उद्यमकर्ता द्वारा लिए गए निर्णयों के स्वभाव पर निर्भर करता है।

[5] (पृ. 189) प्रत्येक उत्पत्ति के लिए सर्वोत्तम संयंत्र को चुनने की संभावना (जिसे स्पष्टतः केवल "दीर्घकाल" से संबंधित किया जाना चाहिए), PAC_1, PAC_3,

और PAC_5 वक्रों के भागों को और सम्पूर्ण PAC_2 और PAC_4 को वर्जित कर देती है। यद्यपि वक्र PAC_2 और PAC_4 वक्र AC का कोई भाग नहीं बनाते फिर भी वे सार्थकतारहित नहीं हैं। प्रथमतः, ऐसे वक्रों का शुरू से ही यह कहकर कि वे पूरे के पूरे AC के ऊपर हैं, हटा देना संभव नही है क्योकि अभी तक हम नहीं जानते कि AC वक्र कहां पर है। इसलिए, उनको खीचने से, जो किया गया है, AC वक्र की खोज करने की रीति स्पष्ट हो जाती है। द्वितीयतः, जहां तक "अल्पकाल" में संयंत्र को नहीं बदला जा सकता है, अल्पकालीन समस्याओं के लिए वक्र PAC_1, PAC_3 और PAC_5 के न केवल हलकी रेखा वाले भाग बल्कि PAC_2 और PAC_5 जैसे वक्र भी सार्थक हो सकते है। यह सच है क्योंकि जिस दीर्घकालीन स्थिति के बारे मे यह कल्पना की गई है कि अल्पकाल में समायोजन नहीं किए जा सकते, उसमें न केवल AC वक्र में अंशदान करने वाले दिए गए संयंत्र लागत वक्रों पर उत्पत्ति में परिवर्तन सन्निहित है, बल्कि कारकों की राशियों और तकनीकों में भी परिवर्तन सन्निहित है, जो सब संयत्र वक्रों और इसलिए स्वयं AC वक्र को पुनःनिर्धारित करता है। यदि चित्र में दिया गया AC वक्र **वर्तमान** दीर्घकालीन औसत लागत वक्र समझा जाए, तो PAC_2 और PAC_4 जैसे वक्र, हो सकता है कि, पहले की दीर्घकालीन इष्टतम दशाओं के अन्तर्गत स्थापित किए गए सयत्रों का निरूपण करें। ऐसा प्रतीत होगा कि किसी अल्पकालीन अवधि मे ऐसे संयंत्र सम्मिलित होगे, और अल्पकालीन आर्थिक विश्लेषण को स्थिर साज-सामान वाले उन वक्रो तक ही सीमित नही रखना चाहिए, जैसा कि (कम से कम निहितार्थ से) वह करता है, जो "अन्वालोप" या दीर्घकालीन वक्र को स्पर्श करते है।

(पृ. 190) यदि फर्म का सीमान्त आय वक्र इस असतत सीमान्त लागत वक्र के एक से अधिक खंडों को काटता है, तो सन्तुलन उस प्रतिच्छेद बिन्दु द्वारा निर्धारित होगा जो अनेक सापेक्ष लाभ-अधिकतमों (relative profit maxima) में **उच्चतम** लाभ प्रदान करता है; और "बहु सन्तुलन" केवल तब होगे जब दो या अधिक अधिकतम एकसम होंगे। श्री हिगिन्स ने इस समस्या का विश्लेषण भिन्न रूप से किया है ("Indeterminancy in Non-Perfect Competition," *AER*, सितम्बर 1939, पृ. 471-473)।

(पृ. 190) यहां हमें इस सत्याभास (fallacy) के स्वभाव का अग्रिम सकेत मिलता है कि कारकों की पूर्ण विभाज्यता से पैमाने की किफायतें लुप्त हो जाती हैं। (यह कल्पना करने पर कि "परिवर्ती" कारक सूक्ष्म रूप से विभाज्य है) "पूर्ण विभाज्यता" तब प्राप्त होती है जब "संयंत्र" की संभावनाएं सतत हैं, और इसलिए जब सयंत्रों की संख्या के अपरिमित की ओर बढ़ने पर AC वक्र की सीमान्त स्थिति द्वारा परिभाषित की जाती है। पूर्ण विभाज्यता के कारण पैमाने की किफायतों का विलोपन केवल तब होगा यदि अन्वालोप वक्र एक क्षैतिज रेखा हो, अर्थात्,

यदि सब संयंत्र वक्रों के न्यूनतम मान समान हों। तो, अब वाद-विषय संयंत्र वक्रों की स्थिति पर निर्भर हो जाता है। इस बारे में सामान्य सहमति प्रतीत होती है कि वे उसी प्रकार स्थित होते हैं जैसे चित्र में दिखाए गए हैं, यद्यपि, स्वभावतया, जिसे सिद्ध करना है उसे माने बिना इसे दिया हुआ नहीं माना जा सकता है। इसका विवेचन आगे किया जाएगा।

[8] (पृ. 192) जो प्रोफेसर व्हाइनर और उनके प्रशंसनीय रूप से जिद्दी चीनी ड्राफ्टमेन के बीच हुए अब पुरातन (classic) विवाद से शुरू होता है (*Zeitschrift für Nationalökonomie*, खंड 3, अंक 1, पृ. 36 तलटीप)। वहां खींचा गया अन्वालोप वक्र न केवल संयंत्र वक्रों के निम्नतम बिन्दुओं से गुजरता है, बल्कि यह सुझाया गया है कि हो सकता है कि वह केवल इन्हीं बिन्दुओं पर सार्थक हो !

[9] (पृ. 192) प्रासंगिक रूप से यह बता दें कि उत्पादन के पैमाने के फलन के रूप में स्वयं उत्पाद में गुणात्मक परिवर्तन साधारणतया होते है, जो बहुधा नितान्त प्रबल होते है, और इस प्रकार "पैमाने की किफायतों" की सम्पूर्ण सकल्पना के विषय में संदेह पैदा करते है, क्योंकि बड़े पैमाने के उत्पादन की रीतियो के अन्तर्गत जिसका उत्पादन अधिक किफायत से किया जाता है वह वही चीज बिल्कुल नहीं है जिसका उत्पादन छोटे पैमाने के उद्योग की सरलतर रीतियों द्वारा किया जाता है। यह "उत्पाद विचरण" की व्यापक समस्या का एक पक्ष है, जिस पर अर्थशास्त्र में बहुत ही कम ध्यान दिया गया है। दुर्भाग्य से, उसका विकास यहां नहीं किया जा सकता। यहां हमने प्रत्येक फर्म के लिए "दिए हुए" उत्पाद की सामान्य कल्पना की है।

[10] (पृ. 192) जैसा बताया गया है, वक्र का अधोमुखी पथ क्रमशः निम्नतर संयंत्र वक्रों से निकलता है; लेकिन, वक्र पर गति मे, जब तक निम्नतम बिन्दु नहीं आ जाता, दक्षतर संयंत्र और उनका दक्षतर प्रयोग, दोनों, सन्निहित है, और निम्नतम बिन्दु पर हमें (क) दक्षतम रूप से उपयोग में लाया गया (ख) दक्षतम संयंत्र मिलता है।

[11] (पृ. 193) *The Theory of Price* (1946), पृ. 202 तलटीप। (जोर मेरा।) यहां यह बता दिया जाना चाहिए कि स्टिग्लर के लिए यह द्विरुक्तिरूप मूलभूत नही बल्कि प्रासंगिक है। पहले एक स्थान पर (पृ. 133) इसका उल्लेख नहीं किया गया है; और वे (क) अविभाज्यताओं और (ख) "मानवी कारक" दोनों लिखते हैं। "मानवी कारक" के दृष्टान्त के रूप में विशेषीकरण का और प्रबन्ध की समस्याओं का उल्लेख है। परन्तु "मानवी कारक" को तुरन्त अविभाज्यताओं में बदल दिया गया है। दिए गए तर्क संदिग्ध हैं (और निपट साधारण हैं)। उदाहरणार्थ, यद्यपि प्रबन्ध का दुगुने से अधिक होना (एतद्वत् लिखित) लिखा गया है जबकि श्रम को दुगुना किया जाता है, तिस पर भी उसे

"अविभाज्य" कहा गया है; प्रतीयमानतः, इस कारण से कि उसका "उपयोग अधिक गहन रूप से" होता है। (यदि वह "दुगुने से अधिक" किया गया है तो उसका उपयोग **कम** गहन रूप से किया जाएगा।) लेकिन, अन्त में विचार प्रकट किया गया है कि अन्वालोप वक्र "प्रायः" एक निम्नतम बिन्दु तक गिर कर फिर उठने लगता है, जिसके कारण वे बताए गए है जो इस परिशिष्ट में दिए गए हैं।

[12] (पृ. 193) "The Equilibrium of the Firm", *EJ*, खंड 44, पृ. 65 तलटीप। (बल मेरा।)

[13] (पृ. 194) *Economics of Control*, पृ. 143। "पूर्ण विभाज्यता" के अन्तर्गत पैमाने की किफायतों की अनुपस्थिति के लिए, देखिए, पृ. 165-67 और यत्र-तत्र। इस प्रमुख नियम के बारे में कि पैमाने में कोई परिवर्तन किसी भी कारक की सीमान्त उत्पादिता को नही बदलेगा, देखिए, पृ. 144-154 और यत्र-तत्र।

[14] (पृ. 194) *Risk, Uncertainty and Profit*, पृ. 98। (बल मूल पुस्तक में।)

[15] (पृ. 195) इस संबंध में श्री काल्डर को पुनः उद्धृत अवश्य किया जाना चाहिए। वे कहते है कि "इसलिए हम देखते है कि 'पूर्ण प्रतियोगिता' को अपना आरम्भ-बिन्दु मानने में गणित-अर्थशास्त्री आखिर इतने बड़े मूर्ख नहीं थे। उन्होंने हर एक चीज की पूर्ण विभाज्यता की कल्पना की थी; और जहां हर चीज पूर्णतः विभाज्य है, और फलतः पैमाने की किफायतें सम्पूर्णतः अनुपस्थित हैं, वहां 'आर्थिक शक्तियों के मुक्त क्रियाकरण' (play) के परिणामस्वरूप [एकाधिकारिक प्रतियोगिता के स्थान पर] केवलमात्र 'पूर्ण प्रतियोगिता' अपने को आवश्यक रूप मे स्थापित कर लेती है।" (Market Imperfection and Excess Capacity, *Economica*, फरवरी 1935, पृ. 42। पैमाने की किफायतों की अनुपस्थिति उनके तर्क के लिए निर्णायक है; लेकिन, उसमें अन्य बातें भी सन्निहित हैं। तुलना कीजिए, ऊपर पृ 161-163।) यहां न केवल पैमाने की किफायतों को बल्कि एकाधिकार को भी निकाल दिया गया है, और "गणित" पागल रानी जैसा प्रतीत होता है जो अर्थशास्त्र रूपी क्रोके के मैदान में फिर रहा है। और चिल्ला रहा है "उनके सर काट लो!" शायद यह स्मरण कर लेना चाहिए कि जब ऐसी कार्यवाहियों से एलिस का धैर्य समाप्त हो गया तो उसने मुहतोड़ जवाब दिया था "क्या अंड-बंड है!...तुम्हारी परवाह करता कौन है?" (और वह शीघ्र ही जाग उठी थी।)

दुर्भाग्य से, "पूर्ण प्रतियोगिता" से गणित अर्थशास्त्र का यह तादात्म्य (identification) केवल श्री काल्डर तक सीमित नहीं है। इससे घनिष्ठ रूप से संबंधित

यह विचार भी है कि "अर्थ-सिद्धान्त" पूर्ण प्रतियोगिता का सिद्धान्त है; और, इसके विरुद्ध, एकाधिकारिक प्रतियोगिता का संबंध "वास्तविकता" से है।

[16] (पृ. 195) मेरे सहकर्मी डा. ए. ई. मोन्रो की सहायतापूर्ण आलोचनाओं से विभाज्यता का विश्लेषण अधिक सुस्पष्ट हुआ है।

[17] (पृ. 201) इसी प्रकार से, यदि घोड़े उड़ नहीं सकते तो यह जानने का कोई तरीका नहीं है कि यदि वे उड़ सके होते तो कितना ऊँचा उड़ते।

[18] (पृ. 201) इसके विपरीत, यह एकाधिकारिक प्रतियोगिता के सिद्धान्त के लिए कहीं कम महत्वपूर्ण है—इस अर्थ में कि एकाधिकार के तत्व फर्म के सन्तुलन को उत्पादन लागत वक्र के निम्नतम बिन्दु की बायीं ओर प्रायः (परन्तु सदा नहीं, तुलना कीजिए, ऊपर, अध्याय 5, तलटीप 9, और पृ. 132) निर्धारित करेंगे। फिर भी, व्यापकतम अर्थ में अर्थ-प्रणाली की व्याख्या करने और उसे समझने के लिए, सन्तुलन के आसन्न सामीप्य के परे वक्र की आकृति सदा महत्वपूर्ण अवश्य होनी चाहिए।

[19] (पृ. 202) प्रतियोगी प्रणाली के कार्यकरण के लिए इस आधारतत्व को मान लेना आवश्यक है कि "...सम्पूर्ण उद्योग के अनुपात में अपेक्षाकृत छोटे आकार की सिब्बन्दी बृहत्तर सिब्बन्दी से अधिक दक्ष है।" *Risk, Uncertainty and Profit*, पृ. 98।

[20] (पृ. 202) "The Equilibrium of the Firm", पृ. 66।

अपनी पुस्तक *Entrepreneurial Costs and Price* में प्रोफेसर जी. जे. कैडी इस दृष्टिकोण को इतनी दृढ़ता से मानते प्रतीत होते हैं कि वे इसका वर्णन मेरे परिशिष्ट 'ख' (पहले के संस्करणों में) की "लक्षित कल्पना" के रूप में करते हैं (पृ. 7 तलटीप), जो गलत है।

[21] (पृ. 202) "The Equilibrium of the Firm" पृ. 69। (बल मेरा।) श्री काल्डर यह दिखाने के लिए बड़ा श्रम करते हैं कि चोटी पर एक **अकेली इकाई** अवश्य होनी चाहिए। परन्तु इस संदिग्ध प्रस्थापना को स्वीकार कर लेने पर भी (निगम में ऐसी अकेली इकाई कौन है?), ऐसा प्रतीत होगा कि केवल यह प्रमाणित किया गया है कि एक परिवर्ती कारक में पदानुक्रम है। जैसे-जैसे फर्म का प्रसार होता है, मुख्य लेखाकार में एवं मनगढ़न्त "मुख्य समन्वयकारी" में साधन जोड़े जाते हैं। यह बतलाना शायद उतना ही प्रासंगिक होगा जितना यह कि वे संगठन में सबसे लम्बे व्यक्ति, या सबसे लम्बी मुस्कराहट वाले व्यक्ति में भी जोड़े जाते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि स्थिर और अविभाज्य इकाई के रूप में उद्यमी, इंग्लैंड में फर्म के सिद्धान्त में दृढ़ रूप से जम गया है, और इस संकल्पना पर शोषण का एक सिद्धान्त खड़ा किया गया है, जिसकी मैंने ऊपर आलोचना की है, पृ. 150-51, 173-75। श्री काल्डर द्वारा परिवर्ती कारक समन्वय के अपेक्षित ऐकिक आधार में रूपान्तरण की तुलना श्रीमती रॉबिन्सन द्वारा सर्वसम्मति से

विभाज्य उद्यमी के समरूप परिवर्तन से करना दिलचस्प है (ऊपर उद्धृत, अध्याय 9, तलटीप 59)।

[2] (पृ. 203) श्री कलेस्की का "वर्धमान जोखिम का नियम" (*Essays on the Theory of Economic Fluctuations*, अध्याय 4) इस शीर्षक के अन्तर्गत आता प्रतीत होता है। अपनी पूजी की दी हुई राशि होने पर, कोई उद्यमी अपने उधार का प्रसार उत्तरोत्तर उच्चतर ब्याज की दरों पर ही कर सकता है, जिसका दृष्टान्त यह है कि पहली बन्धक (mortgage) की तुलना में दूसरी बन्धक पर ब्याज की दर ऊंची होती है। परन्तु इस तर्क को निगम पर लागू करना विश्वासोत्पादक नही है। यह दिखाने की कोशिश में, जो उन्हें अवश्य दिखाना है, कि "साधारण शेयरों" की राशि की एक सीमा है, श्री कलेस्की केवल यह प्रमाणित करते हैं कि एक नयी कम्पनी के प्रवर्तक या एक विद्यमान (लाभदायक !) कम्पनी के मूल शेयरहोल्डर नये शेयरहोल्डरों को अपने समान आधार पर प्रवेश नहीं करने देंगे, जो एक बिल्कुल भिन्न मामला है। विद्यमान शेयरहोल्डरो को नये शेयर खरीदने का अधिकार देकर साधारण शेयरों को बढ़ाने की संभावना की भी उपेक्षा की गई है।

इस तथ्य से युक्त होकर कि विभिन्न उद्यमियों की व्यक्तिगत पूजी समान नही है, "वर्धमान जोखिम का नियम" एक ही उद्योग में बड़े और छोटे उद्यमों के सहअस्तित्व की व्याख्या करने में भाग निश्चित रूप से अवश्य लेगा, जैसा श्री कलेस्की कहते है। परन्तु इस विविधता की व्याख्या के (पृ. 98) एक कारक के रूप में अपूर्ण प्रतियोगिता को अस्वीकार करने में (जो सही है) प्रतीत होता है कि उन्होने अपूर्ण और एकाधिकारिक प्रतियोगिता को एक समझने की आम गलती की है, और एकाधिकारिक प्रतियोगिता को भी अस्वीकार किया है (जो गलत है)। इस विषय के बारे में पाठक ऊपर, पृ. 169-70, देखें। फर्मों मे दशाओं की एकरूपता अपूर्ण प्रतियोगिता का सारतत्व है; जबकि एकाधिकारिक प्रतियोगिता का सारतत्व विविधता है (ऊपर, पृ. 88-92)। एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत, जिसमें विभिन्न उत्पादक लागत और मांग की विभिन्न परिस्थितियों के अन्तर्गत विभिन्न उत्पादों का उत्पादन करते है, आशंसित परिणाम सब आकारों की फर्मे होगा ; और यह सबसे संभाव्य प्रतीत होता है कि विभिन्न उद्यमियों के भिन्न-भिन्न पूंजी साधनों से संबद्ध विविधता अपने को "उत्पाद" अनेकरूपता से उत्पन्न इस अधिक मूलभूत विविधता के अनुकूल कर लेगी। इस प्रकार अल्प साधनों वाला उद्यमी अपने को ऐसी स्थिति में स्थापित करेगा जहां बाजार सीमित है, इत्यादि।

प्रासंगिक रूप से, अपने तथ्यात्मक कथन से कि अपूर्ण प्रतियोगिता विविधता की व्याख्या नहीं कर सकती, श्री कलेस्की ने "अपूर्ण प्रतियोगिता" के स्वभाव की मेरी अपनी व्याख्या के पक्ष में, और इसलिए श्रीमती रॉबिन्सन और मेरे

सिद्धान्तों के बीच अनिवार्य भेद के पक्ष में, महत्वपूर्ण समर्थक साक्ष्य प्रदान किया है (ऊपर पृ. 168-171)।

[23] (पृ. 203) *The Structure of Competitive Industry*, पृ. 44।

[24] (पृ. 203) पाठक निम्नलिखित को देख सकते हैं: रॉबिन्सन, पूर्व उद्धृत; और जे. ऐम. क्लार्क, The Economics of Overhead Costs, पृ. 131 और आगे।

[25] (पृ. 204) कभी-कभी तर्क किया जाता है कि निम्नतम बिन्दु के बाद विकेन्द्रीकरण की नीति अपनाई जा सकती है, जिसमें उस बिन्दु पर पाई जाने वाली दशाओं को सारवान रूप से स्वतंत्र इकाइयों में दोहराया जाता है, और इस प्रकार, लगभग परिभाषा से, जटिलता की समस्या को दूर किया जा सकता है। प्रश्न यह है कि क्या, "नियंत्रण इकाई" के रूप में, फर्म अपने को अपने संघटक भागों पर नियंत्रण के अधिकार से **सम्पूर्णतया** वंचित कर सकती है; क्योंकि यदि वह ऐसा नहीं कर सकती तो दशाएं दोहराई नही जाती; विकेन्द्रीकरण और प्राधिकार का प्रतिनिधान (delegation) बड़े (और छोटे भी) संगठनों के सुविदित कार्यसाधक है; फिर भी, केन्द्रीय संस्था के हाथ मे प्राधिकार का अवशिष्ट भाग सदा अवश्य रहना चाहिए, जिसमे यह चुनने का अत्यन्त महत्वपूर्ण प्राधिकार भी सम्मिलित है कि प्राधिकार किन्हे सौपा जाए। जहां तक विकेन्द्रीकरण आकार के अपार्थो का सामना करने का प्रभावकारी साधन है, उसको नकारा नहीं गया है; बल्कि, स्वभावतया, उसे अन्वालोप वक्र के सब बिन्दुओं पर परिभाषा से सम्मिलित किया गया है। उसका महत्व तकनीकों और परिस्थितियों के अनुसार बदलेगा, और बहुधा उसका प्रभाव वास्तविकता में पाए जाने वाले उत्पादन के पैमानों से कही आगे तक निवल अपार्थो को स्थगित करना हो सकता है। यहां केवल यह दावा किया गया है कि अन्वालोप वक्र ऊपर को कही न कहीं अवश्य मुड़ता है।

इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि जहां तक अपार्थ स्थगित किए जाते हैं, इस तर्क-पद्धति के निष्कर्ष शुद्धतः प्रतियोगी सिद्धान्त के लिए अनर्थकारी हैं, क्योंकि शुद्ध प्रतियोगिता केवल तभी होगी जब वक्र कुल उत्पत्ति की तुलना में उत्पादन के छोटे पैमाने पर **वास्तव में** ऊपर को मुड़ते है। (स्वभावतया उत्पाद भी एकरूप अवश्य होना चाहिए।) प्रोफेसर नाइट इस कठिनाई का समाधान उसे कल्पना द्वारा बहिष्कृत करके करते है (ऊपर, पृ. 194)।

[26] (पृ. 205) इस दूसरी संभावना को सुझाने के लिए श्री जोजेफ लर्नर का आभारी हूँ। देखिए उनका लेख : "Constant Proportions, Fixed Plant and the Optimum Conditions of Production," *QJE*, खंड 63 (1949), पृ. 361।

[27] (पृ. 208) ऊपर, पृ. 88-92।

[28] (पृ. 208) वितरण के सिद्धान्त और कल्याण अर्थशास्त्र के लिए इस प्रस्थापना की सार्थकता को अभी तक मुश्किल से जांचा गया है, यद्यपि इस गलत विषय के इर्द-गिर्द कि "काम पर लगाए गए कारकों" का उद्यमी द्वारा शोषण किया जाता है, काफी साहित्य का विकास हुआ है। (तुलना कीजिए, ऊपर, पृ. 173-175।)

[29] (पृ. 209) अनधिमानित वक्र तकनीक की, जिसके बारे में कुछ लोग यह समझते प्रतीत होते है कि उसने लागत वक्रों को पुराना कर दिया है, कमियों में से एक यह भी है कि उसमें इस समस्या को नजरअन्दाज कर दिया जाता है।

[30] (पृ. 210) इसके भरपूर उदाहरण हैं। उदाहरणार्थ, तुलना कीजिए, बॉल्डिग, *Economic Analysis*, पृ. 491; संशोधित संस्करण, पृ. 677। अनुपातों और आकार के पृथक्करण का दृढ़ आग्रह करने में बॉल्डिग का सम्पूर्ण प्रतिपादन प्रतिरूपी है, और परिणामस्वरूप अनुपात मैदान जीत लेते हैं। "पैमाने के प्रतिफलों की परिवर्तनीयता" से पूर्णतया इन्कार नही किया गया है, परन्तु उन्हें "सिद्ध करना कठिन" बताया गया है, और जब भी उनका उल्लेख किया गया है, ऐसा लगता है कि जैसे सफाई दी जा रही हो। यह वस्तुतः विचित्र है कि बॉल्डिग (अपने प्रकृति से लिए गए विस्मयकारी उदाहरण से स्वयं बहुत कम प्रभावित प्रतीत होते है (जिसे किसी को भी कायल कर देना चाहिए) : मान लो कि एक पिस्सू को मनुष्य के आकार तक बढा दिया जाए (अनुपात समान रहें), तो वह न केवल "कुतुबमीनार के ऊपर से नही उछल" सकेगा, बल्कि अपनी जगह पर ढेर हो जाएगा। उनका अपना सावधान निष्कर्ष केवल यह है कि "इसलिए उत्पादन क्रम की समघातता से असली विचलनों की **संभावना** को ध्यान में अवश्य रखा जाना चाहिए।" (पृ. 493; संशोधित सस्करण, पृ. 678 ; बल मेरा।)

[31] (पृ. 210) बॉल्डिग के पिस्सू वाले उदाहरण में इसका अर्थ यह होगा कि यदि पिस्सू की लम्बाई और चौड़ाई 100 गुना बढ़ाई जाए, परन्तु ऊंचाई केवल 99 गुना, तो उसके ढेर हो जाने का कारण अनुपातों में परिवर्तन को सम्पूर्णतः बताया जाएगा, आकार को बिल्कुल भी नही।

[32] (पृ. 213) स्वभावतया, संयंत्र लागत वक्र इस पृष्ठ की ऐसी तिरछी काटों से व्युत्पन्न किए जाते हैं जिनमें एक कारक को स्थिर रखा जाता है। इस प्रकार यदि संयंत्र कारक B है, और परिवर्ती कारक A है, तो P_2 पर अन्वालोप वक्र को स्पर्श करने वाला संयंत्र वक्र OA के समान्तर खीची गई रेखा द्वारा पृष्ठ पर अनुरेखित पथ द्वारा (जो चित्र में नहीं खीचा गया है) दी गई भौतिक दत्त-सामग्री के साथ कारकों की कीमतों को संयुक्त करके व्युत्पादित किया जाएगा (जैसा चित्र 35 में)। यदि A स्थिर और B परिवर्ती होता, तो रेखा OB के समान्तर होती। ऐसी रेखाओं का "पार्श्वचित्र (profile) जैसा वह OA या

OB से देखा जाता है, और जिसे प्रत्येक उत्पत्ति के लिए परिवर्ती कारक की राशि से प्रायः विभाजित किया जाता है, वह वक्र है जो ह्रासमान प्रतिफल की और स्थिर और परिवर्ती कारक उपगमन के प्रस्तुतीकरण में आम तौर पर दिया जाता है। ऐसे पथों के किसी बिन्दु से (सिवाय *SL* से उनके कटान-बिन्दु के), जब तक *SL* नहीं आ जाता, या तो अनधिमान समोच्च रेखा पर या स्थिर व्यय रेखा पर जाना स्पष्टतः लाभदायक होगा (चित्र 40)।

[33] (पृ. 214) जैसा पहले स्पष्ट किया जा चुका है, इस प्रयोजन के लिए लागत वक्र के निर्धारण में **सब** कारकों, उद्यमी एवं अन्य, के पारिश्रमिक सम्मिलित है।

परिशिष्ट ग—शुद्ध क्षेत्रीय प्रतियोगिता (पृष्ठ 215-220)

[1] (पृ. 215) "Stability in Competition", *EJ*, खंड 41 (1929), पृ. 52-53।

[2] (पृ. 217) इस अपवाद के साथ कि प्रत्येक छोर पर दो विक्रेता अवश्य हों। यद्यपि इस पैरा के शेष भाग मे इस कारण से अशुद्ध अन्तरालों के लिए मान दिए गए हैं, फिर भी इसे वैसा ही रहने दिया गया है जैसा प्रथम संस्करण मे था। इस विषय के और अधिक विवेचन के लिए और सामान्य रूप से क्षेत्रीय समस्या के लिए देखिए, "The Product as an Economic Variable," पूर्व उद्धृत, विशेष कर के पृ. 17 और आगे।

[3] (पृ. 217) अपनी अत्यधिक एकरूपता की थीसिस का सामान्यीकरण करने में प्रोफेसर होटेलिंग अन्य क्षेत्रो में उसकी अनुप्रोज्यता बताते है। उदाहरणार्थ, जिस प्रकार दो विक्रेता रेखा पर साथ-साथ चलते है, ठीक उसी प्रकार वोटों की प्रतियोगिता में रिपब्लिकन और डेमोक्रेटिक दल अपने प्लेटफार्म (घोषणापत्र) जितना संभव हो उतने सदृश बनाते है। अब यह जोडा जा सकता है कि जब दो से अधिक दल होते है तो छितराव होता है जो रेखा पर विक्रेताओं के छितराव के सदृश है। उदाहरणार्थ, फ्रान्स में सब के सब दल केन्द्र पर समूहित नहीं हैं बल्कि, काफी विविधता के साथ, चरम वाम पंथ से चरम दक्षिण पंथ तक पाए जाते है।

[4] (पृ. 218) स्वभावतया, ऐसे संकेन्द्रण का स्पष्टीकरण खुदरा विक्रयण के दक्षतम पैमाने की तुलना में उत्पाद के किसी एक प्रकार के बाजार की परिसीमाओं से हो जाता है।

परिशिष्ट घ—एकाधिकार आय के रूप में नगरीय भाटक (पृष्ठ 221-225)

[1] (पृ. 221) तुलना कीजिए, ऊपर, पृ. 90-91।

[2] (पृ. 221) आवास या निर्माण स्थलों के भाटक की समस्या पर विचार नहीं किया गया है।

परिशिष्ट च—व्यापार-चिह्न अतिलंघन और "अनुचित व्यापार" के पक्ष में कुछ तर्क (पृष्ठ 226-230)

[1] (पृ. 226) अतिलंघन के कई दिलचस्प, सोदाहरण, मामलों के लिए देखिए, रोजर्स, पूर्व उद्धृत, पृ. 123 और आगे; डुरकाइंड, *Handbook on Trade-Marks*; और टॉम्सन, *Trade-Marks*। *Printer's Ink* के प्रायः किसी भी अंक में न्यायालयों के विचाराधीन अनुचित व्यापार के एक-दो मामलों का विवरण मिल जाएगा।

[2] (पृ. 226) अमेरिकन वाल्थम वॉच कम्पनी बनाम यूनाइटेड स्टेट्स वॉच कम्पनी, 173 Mass. 85; 53 N.E. 141; 43 L R.A. 826।

[3] (पृ. 227) सी. ए. ब्रिग्स कम्पनी बनाम नेशनल वेफर कम्पनी, 102 N.E. 87; 215 Mass. 100।

[4] (पृ. 227) स्टर्लिंग रैमेडी कम्पनी बनाम गोरे, 110 Fed. 372 (C.C.N D. Ohio)।

[5] (पृ. 227) येल एंड टाउन मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी बनाम एल्डर, 154 Fed. 37 (C.C.A. 2nd Cir., जो 149 Fed 783 को उलट देता है)।

[6] (पृ. 227) 200 Fed. 720 (C.C.A. 6th Cir.)।

[7] (पृ. 227) तुलना कीजिए, *Control of the Market*, अध्याय 2।

[8] (पृ. 228) रोजर्स, पूर्व उद्धृत, द्वारा उद्धृत पृ. 272। रोजर्स इसे उस समय "न्यायिक विवेक" (judicial conscience) के शिथिल विकास का एक लक्षण समझते हैं।

[9] (पृ. 228) 194 N.Y. 429; 87 N.E. 674। (बल मेरा।) और देखिए, जी. डब्लू. कोल कम्पनी बनाम अमेरिकन सीमेंट एंड ऑयल कम्पनी, 130 Fed. 703 (C.C.A. 7th Cir.)।

परिशिष्ट छ—विक्रय लागत की परिभाषा (पृष्ठ 231-237)

[1] (पृ. 231) पृ. 95, 100 और 102।

[2] (पृ. 231) विशेष करके देखिए, "The Product as an Economic Variable," *'Towards a...'* में छठा लेख, या *QJE*, फरवरी, 1953।

[3] (पृ. 231) देखिए, ऊपर पृ. 56-57, 62-63, और यत्र-तत्र।

[4] (पृ. 232) "The Economic Aspects of Advertising," *Review of Economic Studies*, खंड 18 (1949-50), पृ. 24। श्री काल्डर के लेख में

विज्ञापन के यहां विचारित पक्षों के बाद के कई पक्षों पर विचार किया गया है, और वह सामान्य विषय में दिलचस्पी रखने वाले के लिए आवश्यक पाठ्य-सामग्री है।

[5] (पृ. 232) इसी प्रकार विज्ञापन द्वारा प्रदान की गई जानकारी के साधारण विवेचन में उसका निश्चित रूप से प्रतिकूल "मूल्य निर्णय" (value judgment) किया जाता है। यद्यपि सीमाओं के भीतर और प्रतिबन्धों के साथ उसका सामान्यतया बचाव किया जाता है, परन्तु जो दिमाग में रखा जाता प्रतीत होता है वह मुख्यतया "तकनीकी" जानकारी है। परन्तु यह तथ्य कि कोई लब्धप्रतिष्ठ खिलाडी या सिने-अभिनेता किसी निश्चित छाप की सिगरेट पीता है, ठीक उतनी ही **जानकारी** है, जितनी तम्बाकू या फिल्टर के बारे में कथन—और हो सकता है कि वह क्रेता के लिए कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो।

[6] (पृ. 232) "Economic Aspects," पृ. 22।

[7] (पृ. 234) इस प्रकार यह विक्रय लागत की श्री काल्डर द्वारा सुझाई गई परिभाषा (अनेक परिभाषाओं में से, जो एक-दूसरे के संपूर्णतया संगत नहीं हैं, एक) से भिन्न है। श्री काल्डर की परिभाषा के अनुसार विक्रय लागतें उन "उत्पादों" या सेवाओं की लागतें है जो यदि अलग से बेची जाएं तो लागत वसूल नहीं होगी (काल्डर, "Economic Aspects," पृ. 23, अन्तिम वाक्य)। ऐसा उपगमन जिसे सिद्ध करना है उसे प्रमाण मानकर अपव्यय की समस्या को सामने रखता है : विक्रय लागतों को **परिभाषा से** अपव्यय बना दिया गया है।

[8] (पृ. 235) श्री काल्डर सब उत्पादों की विभाज्यता को और इस रीति से प्रत्येक तत्व के पृथक् कीमत निर्धारण और विक्रयण को "पूर्ण" प्रतियोगिता से अभिन्न समझते हैं ("Economic Aspects," पृ. 3)। वे विचार प्रकट करते है कि "यदि ऐसा हो कि वे एक-साथ बेची जाएं, तो सम्पूर्ण की कीमत उसके भागों की कीमतों के योग से भिन्न कभी नही हो सकती है।" यह एक ऐसी प्रस्थापना है जो स्पष्टतः पैमाने की किफायतों की अनुपस्थिति पर भारी मात्रा में टिकी हुई है। इस पर केवल आश्चर्य किया जा सकता है कि केवल "पूर्ण प्रतियोगिता की कल्पना करके" अर्थशास्त्र को कैसे ऐन्द्रजालिक गुण से भर दिया जा सकता है, विशेषकर तब, जब (जैसा श्री काल्डर करते है) दक्षता-हानि-रहित पूर्ण विभाज्यता की छड़ी घुमा कर पैमाने की किफायतों को भी छूमन्तर कर दिया जाता है।

[9] (पृ. 236) इस प्रमुख नियम के अधिक विवेचन और अगले परिणामों के लिए, देखिए, "The Product as an Economic Variable," *Towards a...*, यत्र-तत्र, विशेष करके पृ. 117-120 और 129-131।

[10] (पृ. 237) हान्स ब्रैम्स, "The Interdependence of Quality Variations, Selling Efforts and Price," *QJE*, 62;418 (1948)।

[11] (पृ. 237) अनेक चरों के लिए ऐसे पथ-वक्रों के उपयोग और उनके द्वारा अन्तिम हल निकालने की रीति की विस्तृत व्याख्या ऊपर कई स्थानों में की गई है। प्रस्तुत समस्या के लिए देखिए, विशेष करके पृ. 119-121, जहां सम्पूर्ण ससस्या का "हल" शब्दों में दिया गया है, परन्तु चित्रों में नहीं। इस प्रकार चित्र 24 (पृ. 121) "इष्टतम के लक्षणों" को केवल प्रदर्शित करता है, उसे प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले पथ-वक्रों को नही। श्री हेनरी स्मिथ ने 1934 में ही पथ-वक्रों का विकास इस कल्पना के अन्तर्गत कर लिया था कि विज्ञापन लागतें कीमत मे से घटाई जाती है, न कि जोड़ी जाती हैं। लेकिन समस्या ने अकल्पित जटिलताए उपस्थित की। (देखिए, हेनरी स्मिथ, Advertising Cost and Equilibrium," *Review of Economic Studies* (*RESt*) 2:62 (1934); ई. ऐच. चैम्बरलिन, "Advertising Costs and Equilibrium : A Correction," *RESt* (1944-45); हेनरी स्मिथ "Advertising Costs and Equilibrium : A Reply," *RESt* (1947-48); चैम्बरलिन, "Advertising Costs and Equilibrium : A Rejoinder," *RESt* (1949-50)। इनके विवेचन में मेरा अपना भाग *Towards a*..... में आठवाँ लेख है, और जटिलताओं का विवेचन विशेष करके पृ 158-159 में किया गया है। और भी देखिए टी. ऐच. सिल्कॉक, "Professor Chamberlin and Mr. Smith on Advertising," *RESt*, (1947-48) और "Advertising Costs and Monopolistic Competition," *Dundee Economic Essays* (सम्पादक जे. के. ईस्टहैम)। पथ-वक्र तकनीक के बुशानन द्वारा किए गए उपयोग ("Advertising Expenditures : a Suggested Treatment," *Journal of Political Economy* (1942), की ओर भी ध्यान दिलाया जाना चाहिए, जिसमे विक्रय लागतें उत्पादन लागतों मे जोड़ी जाती है, जैसा मेरे विवेचन मे भी है।

परिशिष्ट ज—विक्रेताओं की संख्या और लोचें (पृष्ठ 238-247)

**Festskrift til Frederick Zeuthen*, कोपेनहेगन, 1958 की अनुमति से पुनर्मुद्रित।

[1] (पृ. 238) एक उपपति मार्शल के *Principles*, गणितीय परिशिष्ट, मे दी गई है।

[2] (पृ. 239) देखिए, उदाहरणार्थ, पृ. 160-163।

[3] पृ. 241 देखिए, ऊपर अध्याय 3, विशेषतः पृ. 29।

[4] (पृ. 241) मै प्रोफेसर ज्यूदन द्वारा बहुविध संभावनाओं के उच्च रूप से मौलिक और प्रवीण विकास से सदा प्रभावित रहा हूँ, जो उनकी *Problems of Monopoly and Economic Warfare* के अध्याय 2 में दिया गया है, और इसे मैने अपने अध्यापन में नियमित रूप से ध्यान में रखा है। एक ओर तो

प्रतिद्वन्द्वियों के परिवर्ती बाजार में "प्रसार के गुणांकों" का और दूसरी ओर "असन्तुष्ट मांगों" का उनका विवेचन विशेष करके दिलचस्प है। स्वभावतया, इस विश्लेषण के अधिकांश का संबंध एकरूप उत्पादों से नहीं, बल्कि विशिष्टीकृत उत्पादों से है। विचारों की इस पद्धति को, जिसके पथप्रदर्शक प्रोफेसर ज्यूदन है, अल्पाधिकार सिद्धान्त में मेरे अनुसार जितना महत्व दिया जाना चाहिए था उतना महत्व दिया गया प्रतीत नहीं होता है।

[5] (पृ. 241) ऊपर, पृ. 37 और आगे।

[6] (पृ. 242) इस विषय का पूर्णतर विवेचन किया गया है, पृ. 37-40।

[7] (पृ. 243) देखिए, ऊपर परिशिष्ट 'ग'।

परिशिष्ट झ—एकाधिकारिक प्रतियोगिता सिद्धान्त की उत्पत्ति और उसका प्रारंभिक विकास (पृष्ठ 248-272)

**QJE*, नवम्बर 1961, से पुनर्मुद्रित।

[1] (पृ. 248) पुस्तक से पृथक् थीसिस का विवरण कुछ दिलचस्पी का है क्योंकि थीसिस केवल दराज में पड़ी हुई पांडुलिपि नहीं है, बल्कि हार्वर्ड यूनिवर्सिटी पुस्तकालय में रखी गई पुस्तक है, जो किसी को भी मिल सकती है। पुस्तकालय के विवरण दिखाते हैं कि वास्तव में 1927-33 के बीच एव बाद में आज तक उसका व्यापक रूप से उपयोग किया गया।

[2] (पृ. 248) पूर्व उद्धृत, पृ. 587। अल्पाधिकार और उत्पाद विशिष्टीकरण के बाद के संदर्भों, एवं सामान्य संदर्भ, से यह स्पष्ट है कि वे अपूर्ण प्रतियोगिता का व्यापक अर्थ में, जिसमें एकाधिकारिक प्रतियोगिता भी समाविष्ट है, प्रयोग करने का सुपरिचित प्रथा का अनुसरण कर रहे हैं।

[3] (पृ. 249) *An Essay on Marxian Economics* (लन्दन, मैक्मिलन, 1947), पृ. 73।

[4] (पृ. 249) लन्दन : मैक्मिलन, 1933।

[5] (पृ. 251) थीसिस, पृ. 193-195।

[6] (पृ. 251) केवल राशि समायोजन के शब्दों में शुद्ध प्रतियोगिता के इस कठोर निर्वचन को, जिसे मैंने बाद में शिथिल कर दिया था (तुलना कीजिए, ऊपर पृ. 28-29 और संलग्न तलटीप; और देखिए, पृ. 33, 39-40), स्टेकलबर्ज (*Marktform und Gleichgewicht*, बर्लिन, 1934) ने वास्तव में कठोर रूप से कायम रखा है (और भी देखिए, फैल्नर, *Competitions Among the Few*, न्यूयार्क, 1949, पृ. 101)। अतः थीसिस में ऐंजवर्थ को उत्पाद विशिष्टीकरण ("विशिष्टीकृत अल्पाधिकार") की स्थिति समझा गया था, परन्तु पुस्तक में नहीं।

[7] (पृ. 251) यथातथ्य परिशुद्ध रूप से यह कहा जाना चाहिए कि परस्पर आश्रितता की **उपेक्षा** के साथ **कीमत** समायोजन **इस विशेष स्थिति में** शुद्ध प्रतियोगिता के संगत ठहराए गए थे कि दो में से कोई एक विक्रेता अकेला सम्पूर्ण बाजार में पूर्ति कर सकता है। इस स्थिति में वह (किंचित्) कम कीमत पर, **और कीमत में कोई भिन्नता लाए बिना**, क्योंकि दूसरा कुछ नहीं बेच पाएगा, सम्पूर्ण बाजार को हथिया कर स्पष्टतः (अस्थायी रूप से) लाभ प्राप्त कर सकता है। देखिए, थीसिस, पृ. 74, 76।

[8] (पृ. 252) श्रीमती रॉबिन्सन के असदृश, कल्याण की समस्या मेरे आरंभिक उद्देश्य का कोई भाग नहीं थी, और थीसिस तथा पुस्तक दोनों में इस बारे में लगभग शून्य दिलचस्पी थी। लेकिन, देखिए, पांचवां (1946) और उसके बाद के संस्करण, पृ. 172-173, और मेरी *Towards a...*, 1957, में पांचवां और सोलहवां लेख। "अपव्यय" का उल्लेख (ऊपर, पृ. 88) अपने संदर्भ से स्पष्टतः "एक प्रकार के आदर्श" से कम उत्पादन का निर्देश करता है **न कि**, जैसा बहुधा समझा जाता है, लागत वक्र के निम्नतम बिन्दु की बायीं ओर किसी बिन्दु पर उत्पादन का (पृ. 84 और 75)।

[9] (पृ. 253) ऊपर, पृ. 29-34।

[10] (पृ. 253) ऊपर पृ. 9।

[11] (पृ. 253) (लन्दन, 1947) पृ. 18।

[12] (पृ. 253) वही, पृ. 23।

[13] (पृ. 254) *The Economics of Overhead Costs*, पृ. 417।

[14] (पृ. 254) ऊपर, अध्याय 3, तलटीप 30।

[15] (पृ. 255) ऊपर, पृ. 19-23।

[16] (पृ. 255) इस विश्लेषण को एक लेख में और अधिक आगे बढ़ाया गया है, "An Experimental Imperfect Market," *Towards a...* का ग्यारहवां लेख।

[17] (पृ. 255) इस अद्वितीय दृष्टान्त को छोड़कर पुस्तक के पाठ्य-भाग में **थीसिस के बाद के किसी प्रकाशन या सामग्री के** कारण कोई परिवर्तन नहीं किया गया। (ग्रंथ-सूची में उल्लिखित अंतिम संदर्भ 1925 का है; देखिए आगे पृ. 262।)

[18] (पृ. 255) "Stability in Competition," *EJ*, खंड 39 (मार्च 1929)।

[19] (पृ. 256) ऊपर, पृ. 184 और आगे।

[20] (पृ. 256) *Explorations in Economics* (1936) में प्रकाशन के बाद अध्याय 8 के रूप में तीसरे संस्करण (1938) में जोड़ा गया। यह अमेरिकन इकॉनॉमिक एसोसिएशन की दिसम्बर 1933 की बैठक में दिया गया था, और इसका संक्षेप *AER*, खंड 24 (परिशिष्ट, मार्च 1934) में प्रकाशित हुआ था।

[21] (पृ. 257) *Principles*, पृ. 849।

[22] (पृ. 257) थीसिस, पृ. 100।

[23] (पृ. 257) अंग्रेजी अनुवाद (न्यूयार्क, 1934), I, 86-88।

[24] (पृ. 258) ऊपर, पृ. 45-51।

[25] (पृ. 258) ऊपर उद्धृत, पृ. 48।

[26] (पृ. 258) वही, पृ. 49।

[27] (पृ. 259) इस मूलभूत विषय पर श्रीमती रॉबिन्सन की *Imperfect Competition* से पूर्ण विरोध है, और यह इन दो सिद्धान्तों के लगभग हर एक संघर्ष में अपना अंशदान करता है। देखिए, ऊपर, पृ. 168 और आगे; और अध्याय 9, तलटीप 19। श्रीमती रॉबिन्सन ने न केवल अपने "पण्य" को एकरूप **परिभाषित किया है**, बल्कि **वैश्लेषिक रूप से उसका ऐसा प्रतिपादन करके जैसे कि वह वास्तव में एकरूप हो**, परिणाम प्राप्त किए है, जिनका वे अभी भी समर्थन करती हैं। (देखिए, *Towards a...* मे सोलहवां लेख।)

[28] (पृ. 259) उदाहरणार्थ, देखिए, ऊपर, पृ. 5-7, 65-66, 82-84, 89-94, 122, 141-145। सबसे जोरदार कथन अन्त मे है (143): "जहां कही भी विक्रय लागतें लगाई जाती है—और वे किसी न किसी मात्रा में लगभग सब पण्यों पर लगाई जाती है—वहां कीमत समस्या को "प्रतियोगितामूलक" मांग और लागत वक्रों के शब्दों मे ढालना केवल अशुद्ध नही है; यह असभव है। ऐसे वक्रों की कल्पना करना और उनके शब्दों मे कीमतो की व्याख्या करना एक ऐसे अभ्यास को करना है जिसका समस्या से कोई सरोकार नहीं है।"

[29] (पृ. 259) मांग के संबंध मे कुछ कठिनाइयों का सकेत थीसिस से लिए गए निम्नलिखित लेखांश करते है :

"फोर्ड कारों के मांग वक्र और पैकार्ड कारों के मांग वक्र को जोड़कर जो योग मिलता है वह न तो फोर्ड कारों का न पैकार्ड कारों का और न 'सामान्य रूप से ऑटोमोबाइलों का' मांग वक्र है। वह किसी भी चीज की कीमत का कोई भी संकेत नही देता है।" (थीसिस, पृ. 361)

"विभिन्न कीमतों पर पदार्थों की जिन विभिन्न राशियों की मांग की जाएगी उन्हें कुल मांग सारणी बनाने के लिए, यह मान लेने पर भी कि ऐसी (कुल) सारणी के निर्माण में सब प्रकारों की कीमते साथ-साथ घटाई-बढ़ाई जाती है, सही अर्थ में जोड़ा नहीं जा सकता है। इसका कारण यह है कि उत्पाद के किसी विस्तृत वर्ग की कुल मांग अंशतः उन प्रकारों पर निर्भर करती है, जिनसे वह बना हुआ है। सामान्यतया यह सच नही है कि, यद्यपि लोग एक प्रकार की अपेक्षा दूसरे को अधिमान देते हैं, यदि उनकी इच्छा ठीक पूरी नही होती है तो वे किसी निकट स्थानापन्न की भी समान राशि को खरीदेगे। रोहू मछली के लिए किसी गृहिणी का अधिमान ऐसा हो सकता है कि यदि वह न मिले तो किसी अन्य

प्रकार की मछली खरीदने के स्थान पर वह मांस या तरकारी खरीद ले। पुनः, यद्यपि हो सकता है कई लोग यह छानबीन करने के पहले कि कैसा मनोरंजन कार्यक्रम उपलब्ध है, थिएटर जाना तय कर लेते है, परन्तु कई लोग उसका उल्टा करते है। वे थिएटर इसलिए जाते है कि क्योंकि वे किसी खास अभिनेता या नाटक को देखना चाहते है। 'सामान्य रूप से नाटकों' की मांग सारणी इस मात्रा तक अर्थविहीन है ▶....." (थीसिस, पृ. 311, तलटीप 1।)

30 (पृ. 259) ऐसी तुलनाओं की मूलभूत कठिनाइयों का अधिक पूर्ण विवेचन *Towards a.....*, पृ. 72-76, मे किया गया है।

31 (पृ. 259) माग वक्र के संबंध में पहले संस्करण में (पृ. 115, तलटीप 1) कहा गया था कि "ऐसा कोई विशेष कारण नही है कि वह बदले।" परन्तु स्पष्टतः ऐसा कारण है। दूसरे संस्करण मे इस तलटीप को हटा दिया गया और तीसरे सस्करण की दूसरी आवृत्ति में उसके स्थान पर निम्नलिखित रखा गया था : "यदि किसी विशिष्टीकृत उत्पाद से आवश्यकताए और अधिक यथार्थतः सन्तुष्ट होती है तो सामान्यतया वह और अधिक दाहिनी ओर को होगा।"

32 (पृ. 260) ऊपर, पृ. 72। तलटीप 18 (अध्याय 5) मे दिए गए संलग्न विवेचन को भी देखिए।

33 (पृ. 261) (लन्दन, 1929) तीसरा सस्करण, पृ. 198।

34 (पृ. 261) ऊपर, पृ. 57।

35 (पृ 262) अर्थात्, थीमिस के लिए देखी गई सबसे महत्वपूर्ण कृतियों की सूची, जिसे "एकाधिकारिक प्रतियोगिता की ग्रथ-सूची" नही समझना चाहिए, जो पुस्तक मे दूसरे सस्करण मे (1936) दी गई थी। इस दूसरी ग्रथ-सूची के स्वरूप के वर्णन और इसकी परिसीमाओ के लिए अग्रेजी संस्करण में ग्रथ-सूची के परिचायक पेरा को देखना चाहिए।

36 (पृ 262) यहा यह उल्लेख भी कर दिया जाना चाहिए कि द्वयधिकार और अल्पाधिकार पर तीसरा अध्याय इस इरादे से नही लिखा गया था कि वह इस सिद्धान्त के इतिहास का सक्षेप है, जैसा कभी कभी उसे कहा गया है; बल्कि इस के विपरीत, अपने कई उपवर्गो और अवस्थाओ में सम्पूर्ण समस्या के वैश्लेषिक ढांचे के रूप मे लिखा गया था, जैसा कि उसे, उदाहरणस्वरूप, अन्य लेखकों का कोई उल्लेख किए बिना भी लिखा जा सकता था। चूंकि तब तक के लगभग हर एक लेखक के "सिद्धान्त" में, जैसा मैंने देखा, अपनी विशेष कल्पनाओं को सम्पूर्ण समस्या से अभिन्न समझने की गलती की गई थी, इसलिए एक-एक लेखक और उसके निष्कर्षो के लिए उपयुक्त कल्पनाओ को, जहा भी संभव हुआ, समस्त रूप में तर्कसम्मत ढाचे मे उसकी स्थिति के साथ सबधित किया गया। (देखिए, ऊपर, पृ. 24।)

37 (पृ. 263) *Principles*, V, v, 2। (आठवां संस्करण, पृ. 366)।

[38] (पृ. 263) इस दृष्टिकोण से सम्पूर्ण पुस्तक की व्याख्या करने वाले वैश्लेषिक कथन के लिए, देखिए, *Towards a.....*, पृ. 68। (या *Economica*, 18 (नवम्बर 1951), 343।)

[39] (पृ. 263) "The Laws of Returns Under Competitive Conditions."

[40] (पृ. 263) पिगु, "An Analysis of Supply," और रॉबिन्सन, "The Representative Firm," *EJ*, 38 (जून और सितम्बर 1928)।

[41] (पृ. 264) "Economic Method and the Concept of Competition," डब्लू. ऐच. हट, *South African Journal of Economics*, खंड 2 (1934), पृ. 4। (बल मेरा)। मेरी पुस्तक की चर्चा करते हुए वे कहते है कि पुस्तक "अनुवर्ती अंशदानों को दृष्टि में रखकर और डॉ. काह्न से पत्र-व्यवहार के बाद संशोधित की गई।" संशोधन में "अनुवर्ती अंशदानों" पर, देखिए, ऊपर, परिशिष्ट 'झ', तलटीप 17। "डॉ. काह्न से पत्र-व्यवहार" मेरे लेख "Duopoly : Value Where Sellers Are Few," के *QJE*, 46 (नवम्बर 1929), में प्रकाशन के बाद द्वयधिकार पर चिट्ठी-पत्री तक सीमित रहा।

[42] (पृ. 264) पूर्व उद्धृत, पृ. 547-549 (अमेरिकन इकॉनॉमिक एसोसिएशन, *Readings in Price Theory*, पृ. 194-195)।

[43] (पृ. 264) पूर्व उद्धृत, पृ. 240।

[44] (पृ. 264) *EJ*, खंड 40 (जून 1930), 239-240 (और हैरॉड, *Economic Essays*, 1953; पृ. 86)। यदि पूरी निष्पक्षता बरती जाए, तो इसे विषय से "पिंड छुड़ाना" शायद नही बल्कि केवल चरम स्थिति की ओर उपगमन कहा जाना चाहिए।

[45] (पृ. 265) *Imperfect Competition*, पृ. 21।

[46] (पृ. 265) "Doctrines of Imperfect Competition," *QJE*, खंड 48 (मई 1934)।

[47] (पृ. 265) पूर्व उद्धृत, पृ. 445 (*Economic Essays*, पृ. 114।)

इस बारे में पर्याप्त साक्ष्य है कि इस काल के ब्रिटिश अर्थशास्त्रियों को जो चीज वास्तव में परेशान कर रही थी वह अल्पाधिकार की समस्या, जैसा हम उसे आज जानते हैं, नहीं थी, बल्कि (इंग्लैड मे) "द्वयधिकार" को और उसके एँजवर्थ द्वारा दिए गए विशेष अनिर्धार्य हल को अभिन्न समझा जाना था। (देखिए, पिगु, *Economics of Welfare*, पृ. 267।) उनके दृष्टिकोण का संक्षिप्त विवेचन और उस पर टिप्पणी ऊपर, पृ. 34-36 में मिलेगी।

[48] (पृ. 265) स्राफा, पूर्व उद्धृत, पृ. 540-541। (*Readings in Price Theory*, पृ. 186-187।)

[49] (पृ. 265) यद्यपि मैंने भी समूह सन्तुलन के सिद्धान्त को इसी प्रकार समूह के लिए "स्थिर लागत" के शब्दों में **प्रस्तुत किया है**, फिर भी वह वर्धमान और

ह्रासमान लागतों को भी व्यक्त रूप से समाविष्ट करता है, और प्रत्येक स्थिति में सन्निहित विशेष कारकों का संक्षिप्त वर्णन भी दिया गया है। स्थिर लागत का प्रतिबन्ध प्रतिपादन के सरलीकरण के लिए अधिकांशतः लगाया गया था, और उसका आधार यह था कि वर्धमान और ह्रासमान लागतों की स्थितियों की व्याख्या करने के लिए अतिरिक्त विस्तार को "तर्क की प्रत्येक अवस्था में दोहराना आवश्यक नहीं है।" (ऊपर, पृ. 67-70।) वर्धमान और ह्रासमान लागतों के होने पर फर्मों के लागत वक्र (जिनमें वर्धमान लागत की स्थिति में अधिशेष सदा सम्मिलित रहते है) क्रमशः ऊपर उठ जाते हैं या नीचे गिर जाते है; और समूह का प्रसार या आकुचन होने पर, सामान्यतया (समान लागत रहने पर भी) हो सकता है कि उनकी आकृति अप्रभावित न रहे। परन्तु वे सदा U-आकृति के रहेंगे।

इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में, समुच्चय (aggregate) के रूप में समूह के एक **लागत वक्र** की कोई संकल्पना सन्निहित नही है। (इस बाद की समस्या के विवेचन के लिए देखिए, ऊपर, पृ. 253-260।)

[50] (पृ. 266) *EJ*, खंड 42 (दिसम्बर 1932)।

[51] (पृ. 266) पूर्व उद्धृत, पृ. 549। (*Readings in Price Theory*, पृ. 196।)

[52] (पृ. 266) वही, पृ. 546-550। (*Readings in Price Theory*, पृ. 193-196)। स्वभावतया, मांग की लोच उपभोक्ताओं के अधिमानों की सामर्थ्य की माप बनी रहती है, परन्तु उसका महत्व अपने को कीमत में कमियों की अपेक्षा कीमत में वृद्धियों के सबंध में मुख्यतया व्यक्त करता प्रतीत होता है। "एकाधिकार की ओर मुड़ने" में श्री स्राफा प्रणाली में से प्रतियोगितामूलक शक्तियों के निष्कासन में "विपरीत दिशा में" वस्तुतः बहुत आगे बढ़ गए प्रतीत होते है!

[53] (पृ. 266) डी. ऐच. रॉबर्टसन, जी. ऐफ. शोव्ह, और पी. स्राफा, "Increasing Returns and the Representative Firm : A Symposium," *EJ*, खड 40 (मार्च 1930); हैरॉड, "Notes on Supply, पूर्व उद्धृत; "The Law of Decreasing Costs," *EJ*, खंड 41 (दिसम्बर 1931)। हैरॉड का लेख उनकी *Economic Essays* में भी प्रकाशित है।

[54] (पृ. 266) "Imperfect Competition and Falling Supply Price," पूर्व उद्धृत, पृ. 547। वे इस प्रस्थापना के लिए श्री काह्न का आभार-प्रदर्शन करती है। ऐसा प्रतीत होता है कि हैरॉड ("ह्रासमान लागत और प्रतियोगी सन्तुलन के सह-अस्तित्व की संभावना" का दृष्टान्त देने के हेतु) फर्म के सन्तुलन का एक उदाहरण पहले दे चुके थे, परन्तु उसमें प्रवेश की चर्चा नही थी, और उसमें स्पर्शिता केवल एक आकस्मिक परिणाम था। वही, पृ. 548। और भी, हैरॉड, "The Law of Decreasing Costs," पूर्व उद्धृत, पृ. 572; और

"Decreasing Costs: An Addendum," *EJ*, खंड 42 (सितम्बर 1932), पृ. 492। (और भी, हैरॉड, *Economic Essays*, पृ. 94-96।)

विशेष करके इस तथ्य को ध्यान मे रखते हुए कि इतने सारे लोग स्पर्शिता हल को एकाधिकारिक और अपूर्ण प्रतियोगिता का प्रमाण-चिह्न (*hall mark*) समझते है, यह चिन्तन करना दिलचस्प है कि, वर्धमान प्रतिफल के वंशक्रम में, स्राफा के पथप्रदर्शक लेख और श्रीमती रॉबिन्सन के स्पर्शिता हल के बीच, यद्यपि वह केवल द्विरुक्तिरूप तक सीमित था, छः साल का अन्तराल क्योंकर हुआ। यह एक अटकल का खेल है, और मेरी अपनी अटकल यह है कि इसका स्पष्टीकरण निम्नलिखित दो बातों से अंशतः हो जाता है: (1) स्राफा के "मॉडल" में से प्रवेश का बहिष्कार, जिससे अनुवर्ती विवेचन में उसकी आसानी से और स्वभावतः उपेक्षा कर दी गई, और (2) फर्म को "वर्धमान प्रतिफल" और उद्योग मे "प्रतियोगी" सन्तुलन के बीच सामजस्य स्थापित करने के लिए किया गया दीर्घ और अत्यन्त कष्टकारी सघर्ष। यह शायद महत्वपूर्ण है (और यह जो फल मिला उसकी स्वल्पता के स्पष्टीकरण मे सहायता दे) कि इस पृष्ठभूमि में जब एक "स्पर्शिता" हल निकला, तो वह **फर्म** के सन्तुलन पर प्रवेश और निर्गमन के प्रभावों के बारे मे **प्रत्यक्ष** प्रश्न के उत्तर के रूप में नहीं निकला, बल्कि (जैसा ऊपर बताया गया है) एक ऐसे प्रश्न के उपनिष्कर्ष के रूप मे निकला जिसका सबध **उद्योग** के पूर्ति वक्र की आकृति से था—जो एक ऐसा प्रश्न था जिसमें वर्धमान प्रतिफल वाद-विवाद इतनी गहराई से लवलीन था।

"उद्योग" के अड़गे के बिना, "स्पर्शिता" वास्तव मे साकार सरलता स्वय है, और मुश्किल से इस योग्य है कि उसे खोज के रूप मे गभीरता से स्वीकार किया जाए। वस्तुत वह केवल पैमाने की किफायतो और फर्म के लिए एक ढालू माग वक्र की अपेक्षा करती है; और इसके साथ, मेरे प्रस्तुतीकरण मे, उसे प्राप्त करने के लिए स्थानापन्नों की पर्याप्त सभावना की (अत वह किसी भी प्रकार से सामान्यतया प्राप्त नही होती है), और श्रीमती रॉबिन्सन के प्रस्तुतीकरण मे, 'उद्योग" में प्रवेश करने की किसी भी तरह की, चाहे कितनी ही सीमित क्यो न हो, सभावना की अपेक्षा करती है। (इसके साथ यह भी कहा जा सकता है और कहा जाना चाहिए कि वह अपेक्षा करती है इस पूर्वधिधारित धारणा से मुक्ति की कि, मांग की दशाओ के अनपेक्ष, किसी कारण से उत्पादन लागत वक्र के निम्नतम बिन्दु पर **अवश्य होना चाहिए**।)

[55] (पृ. 267) तुलना कीजिए, ऊपर, पृ 259, टिप्पणी 27।

[56] (पृ. 267) "A Note on Imperfect Competition," *EJ*, खड 43 (मार्च 1933)। पिगु मुख्यतया माग सबधो का विवेचन करते है, और इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि वे इस अर्थ की "उक्ति" देते है कि श्रीमती रॉबिन्सन का समस्त मांग फलन "साधारण प्रारम्भिक विश्लेषण" के वक्र के "एकसम

नहीं" है। इस संदर्भ में इसका अर्थ स्पष्टतः वह मांग वक्र है जो उत्पाद के एक-रूप होने पर होता है। वास्तव में वह सब **विभिन्न** उत्पादों की, प्रत्येक की कीमत p होने पर, मांगी गई राशियों का योग है। परन्तु इस महत्वपूर्ण "उक्ति" को और आगे विकसित नही किया गया है।

[57] (पृ. 268) ऊपर, पृ. 89-90, 141-142।

[58] (पृ. 268) पृ. 89।

[59] (पृ. 268) पृ. 89-92।

[60] (पृ. 268) पृ. 95।

[61] (पृ. 269) पृ. 114।

[62] (पृ. 269) अध्याय 2, तलटीप 16।

[63] (पृ 269) पृ. 113।

[64] (पृ. 269) पृ. 61, और पृ. 60-61; इस न्यूनतम पर विक्रय लागत के प्रभाव के लिए देखिए, पृ. 143।

[65] (पृ. 270) पूर्व उद्धृत, पृ. 588।

[66] (पृ. 270) *Principles*, पृ. 368।

[67] (पृ. 271) *EJ*, खड 68 (दिसम्बर 1958), पृ. 683।

[68] (पृ. 271) *Industry and Trade*, पृ 397। "खुले बाजारो" और "कुछ मात्रा मे एकाधिकारिक नियंत्रण के अन्तर्गत" बाजारो में भेद दिखाने के लिए समान वाक्यांश का उपयोग पृ. 178 मे किया गया है। पृ. 397 मे "क्रमशः बदलना" "व्यवहार मे" होता है, जब कि यह कहा गया है कि ये दो सकल्पनाएं "आदर्शतः पूरी तरह से पृथक्" है।

[69] (पृ. 271) ऊपर, देखिए, पृ. 257, तलटीप 21।

[70] (पृ. 272) *Principles*, गणितीय परिशिष्ट, टिप्पणी 14, पृ. 849-850। (जब मेरा) यह कहना अनावश्यक है कि सम्पूर्ण लेखांश को देखना चाहिए।

शब्दानुक्रमणिका

अंशदान	Contribution	अपविक्रयण	Undersclling
अक्ष	Axis	अपव्यय	Waste
अतिक्रमण	Incursion	अपसृत	Diverge
अतिरिक्त	Surplus, Excess	अपार्थ	Diseconomies
अतिरेक	Surplus	अपूर्वानुमेय	Unpredictable
अतिलंघन	Infringement	अपेक्षा	Requirement
अतिव्याप्त	Overlapping	अभिकल्पना	Design
अत्यणु	Infinitesimal	अभिवृत्ति	Attitude
अधिकतम	Maximum	अभिव्यक्ति	Expression
अधिमान	Preference	अमान्य	Invalid
अधिशेष	Rent, Economic	अमूर्त	Abstract
अध्ययनरीति	Methodology	अर्थ-प्रणाली	Economic-system
अनधिमान	Indifference		
अनियमित(ता)	Irregular(ity)	अर्थव्यवस्था	Economy
अनिर्धार्य	Indeterminate	अर्थसिद्धान्त	Economic Theory
अनुकूलन	Adaptation		
अनुचार	Response	अल्पकालीन	Short run
अनुचित प्रतियोगिता	Unfair Competition	अल्पावधि	Short period
		अल्पाधिकार	Oligopoly
अनुपात	Proportion	अवकलन	Differentiation
अनुप्रयोग	Application	अवकाश	Space
अनुभव	Experience	अवधि	Period
अनुमान	Inference	अवसर	Opportunity
अनेकरूप	Heterogeneous	अवसीमान्त	Sub-marginal
अन्तराल	Interval, Gap	अवस्था	Stage, Phase
अन्तर्वस्तु	Content	अविभाज्यता	Indivisibility
अन्तर्वाह	Inflow	अविरुद्ध	Compatible, Consistent
अन्तर्विरोध	Contradiction		
अन्योन्याश्रय	Inter-dependence	असंगति	Inconsistency, Incompatibility
अन्वालोप	Envelope	असतत	Discontinuour
अपरिवर्ती	Fixed	आंशिक	Partial

आकारिक	Formal	उदाहरण	Example
आदत	Habit	उदाहरणस्वरूप	Illustrative, for Example
आदर्श	Ideal		
आदी	Habitual	उद्धृत	Quote
आधारतत्व	Postulates	उद्यम	Enterprise
आधारवाक्य	Premise	उद्यमकर्त्ता	Entrepreneur
आनुपातिक (ता)	Proportion-al (ity)	उद्योग	Industry
		उधार	Credit
आबादी	Population	उपभोक्ता	Consumer
आय	Income, Revenue	उपभोग	Consumption
		उपकरण	Tool
आय उत्पत्ति	Revenue Product	उपगमन	Approach
		उपनति	Trend
आयत	Rectangle	उपस्कर	Equipment
आरम्भिक	Initial	उभयनिष्ठ	Common
आरोपण	Imputation	ऊर्ध्वाधर	Vertical
आवर्त	Turnover		
आवाजाही	Movement	ऋण	Minus
आशमा	Expectation		
आशय	Implication	एक-एक	Individual
आश्रितता	Dependence	एककयण	Monopsony
आसजन	Fit (a curve)	एकरूप	Homogeneous
		एकसम	Identical
इच्छा	Desire	एकसमान	Uniform
इष्टतम	Optimum	एकस्व	Patent
		एकाधिकार	Monopoly
उच्चावचन	Fluctuation	एकाधिकारवत्	Quasi-Monopoly
उत्पाद	Product		
उत्पादन	Production	एकाधिकारमूलक	Monopolistic
उत्पादन फलन	Production Function	एकाधिकारिक	
		एकाधिकारिक प्रतियोगिता	Monopolistic Competition
उत्पाद विशिष्टी-करण	Product Differentia-tion	एकाधिकारी	Monopolist
		एकैक	Individual
उत्पादिता	Productivity	एवं	As well as

कम्पन	Vibration	गति	Movement, Motion
कर्ता	Agent (of Production)	गतिविधि	Movement
कल्पना	Assumption	गतिशीलता	Mobility
कल्याण अर्थशास्त्र	Welfare Economics	गाहकी	Custom
कापीराइट	Copyright	गुणात्मक	Qualitative
कारक	Factor	ग्राहक	Customer
क्रान्तिक	Critical	घटबढ़	Fluctuation
कालिक	Temporal	घात	Degree
किफायतें	Economies	घातक प्रतियोगिता	Cutthroat Competition
किराया	Rent	चतुर्थक	Quartile
कीमत	Price	चयन	Choice
कीमत-भेद	Price Discrimination	चर	Variable
कीमतेतर प्रतियोगिता	Non-price Competition	चाल	Move
कुल	Total, Aggregate	चालू	Current
कुलक	Set	चुनाव	Choice
कृतिस्वाम्य	Copyright	जोखिम	Risk
कोटा	Quota	जोड़-तोड	Manipulation
क्यू	Queue	टिप्पणी	Note, Comment
क्रेता	Buyer	डिलीवरी	Delivery
क्षमता	Capacity	ढग	Mode, Method
क्षेत्रीय	Regional, Spatial	ढलान, ढाल	Slope
क्षैतिज	Horizontal	ढालू	Sloping
खुदरा	Retail	तकनीक	Technique
गुजाइश	Margin	तत्काल	Instantaneous
गणित	Mathematics	तत्क्षण	Instantaneous

तर्क (संगत)	Logic(al)	निवल	Net
तलटीप	Footnote	निवेश	Investment
तुष्टि	Satisfaction	निष्कर्ष	Conclusion
तुष्टिगुण	Utility	न्यूनतम	Minimum
तुष्टिहीनता	Disutility		
		पणन	Marketing
दक्षता	Efficiency	पण्य	Commodity
दखल	Incursion	पदार्थ	Good
दत्त	Datum	पदार्थ उत्पत्ति	Physical Product
दशा	Condition		
दीर्घकालीन	Long-run	परस्पर-अपवर्जी	Mutually exclusive
दीर्घावधि	Long Period		
दुर्लभता	Scarcity	परस्पर व्याप्त	Overlapping
दूरदर्शिता	Foresight	परिकल्पना	Hypothesis
दृष्टान्तस्वरूप फर्म	Illustrative Firm	परिणाम	Result
दोलन	Oscillation	परिणामी / परिणामिक	Resulting
दोलायमान	Oscillating	परिमाण	Volume
द्वयधिकार	Duopoly	परिमित	Finite
द्विघात	Quadratic	परिवर्ती	Variable
द्विरुक्ति (रूप)	Tautology (-gical)	परिवहन	Transport (ation)
		परिवीक्षण	Supervision
धन	Plus	परिवेश	Surroundings, Environment
नवप्रवर्तन	Innovation	परिवेशी	Surrounding
निम्नतम	Minimum	परिवेष्टित	Enclosed
नियतकरणीय	Allocable	परिशुद्ध	Accurate
नियोजित करना	Employ	परिसर	Range
निरपेक्ष	Absolute	परिसीमा	Limitation
निरूपण	Representation	परोक्ष	Indirect
निर्घर्ष	Friction	पर्यावरण	Environment
निर्धारण	Determination	पुनःसंविदा	Recontract
निर्धारणीय / निर्धार्य	Determinate	पूंजी	Capital
		पूर्ण	Perfect

पूर्ण एकाधिकार	Absolute Monopoly	प्रयोजन	Motive, Purpose
		प्रलोभन	Inducement
पूर्ति	Supply	प्रवणता	Gradient, Slope
पूर्वसिद्ध	A priori		
पृष्ठ	Surface	प्रवर्ग	Category
पैमाना	Scale	प्रवाह	Flow
पैमाना रेखा	Scale-line	प्रविधि	Technique
पैमाने के प्रतिफल	Returns to scale	प्रस्थापना	Proposition, Thesis
प्रकल्पना	Presumption	प्रागनुभव	A priori
प्रक्रिया	Process	प्रौद्योगिक	Technological
प्रकार	Variety		
प्रचलित	Current	फर्म	Firm
प्रतिचार	Response	फलन	Function
प्रतिदर्श	Sample	फुटकर	Retail
प्रतिद्वन्द्वी	Rivals	फुर्सत	Leisure
प्रतिनिधान	Delegation		
प्रतिबन्ध	Condition, Restriction	बंधी लागत	Overhead cost
		बचत	Savings
प्रतियोगिता	Competition	बन्धक	Mortgage
प्रतियोगितामूलक	Competitive	बहिर्वाह	Outflow
प्रतियोगी	Competitive, Competitor	बहुलक	Mode
		बाजार	Market
प्रतिरूप	Type	बाहरी	External
प्रतिरूपी	Typical	बाह्य	External
प्रतिस्थापन	Substitution	बोली,—लगाना	Bid
प्रतिस्पर्धी	Rival	ब्याज	Interest
प्रतीयमान	Apparent		
प्रत्यक्ष	Direct, Evident	भाटक	Rent (Urban)
		भीतरी	Internal
प्रत्यय	Concept	भुगतान	Payment
प्रत्युत्	On the contrary	भूमि	Land
		भौगोलिक	Geographical
प्रथम दृष्टि में प्रतीत	Prima facie		
प्रबन्ध	Management	मजदूरी	Wages

मांग	Demand	विकेन्द्रीकरण	Decentralisation
मान	Value		
मानक	Standard	विक्रेता	Seller
मानकित	Standardisation	विचरण	Variation
माप	Measure	विचलन	Deviation
मात्रा	Degree	विज्ञापन	Advertisement
मात्रात्मक	Quantitative	वितरण	Distribution
माल	Good(s)	विनिमय	Exchange
मुद्रा	Money	विनियोग	Appropriation
मूल्य	Value	विभाज्यता	Divisibility
मौद्रिक	Monetary	विमति	Dissent
		विमिति	Dimension
यथार्थ	Exact, Accurate	विरोधाभास	Paradox
यादृच्छिक	Random	विलोपन	Elimination
युगल	Pair	विवर्तन	Shift
		विविधता	Variety
रिवाज	Custom	विवेचन	Discussion
रीति	Method	विशिष्ट	Specific
रुचि	Taste	विशिष्टीकरण	Differentiation
रोजगार	Employment	विश्लेषण	Analysis
		वैश्लेषिक	Analytical
लक्षण	Characteristic	विसम्पर्कित	Isolated
लक्ष्यार्थ	Implication	विस्थापन	Displacement
लगान	Rent (Agricultural)	वृद्धि	Growth, Increase, Increment
लड़ी-सम्बन्ध	Chain-linking	वैयक्तिक	Individual
लागत	Cost	व्यजक	Expression
लाभ	Profit	व्यवसाय	Business
लोच	Elasticity	व्यवसाय-अर्थशास्त्र	Business Economics
वर्धमान	Increasing	व्यवसायी	Businessman
वाद	Thesis	व्यवहार	Behaviour
वाद-वस्तु	Point, Issue	व्याख्या	Explanation
वाद-विषय	Issue	व्याघात	Contradiction
विकल्प	Alternative	व्यापक	General

व्युत्पादन	Derivation	समघात	Homogeneous
व्युत्पन्न	Derived	समझौता	Agreement, Compromise
शक्ति	Force	समतुल्य	Equivalent
शाश्वत	Perpetual	समन्वय	Coordination
शोषण	Exploitation	समय-पश्चता	Time-lag
श्रम	Labour	समरूप	Similar
श्रम-विभाजन	Division of Labour	समान्तर	Parallel
		समायोजन	Adjustment
		समाहरण	Concentration
सकर	Hybrid	समीकरण	Equation
संकल्पना	Concept	समुच्चय	Aggregate
सकेन्द्रण	Concentration	समूह	Group
सक्रमण	Transition	सरल	Simple, Smooth
सगठन	Organisation	सर्वनिष्ठ	Common
संगत	Consistent, Corresponding	सर्वव्यापी	Ubiquitous
		समोच्च रेखा	Contour
संग्रथित	Composite	सहमति	Agreement
सचयी	Cumulative	सह-सम्बन्ध	Correlation
संयत्र	Plant	साज-सामान	Equipment
सयुक्त	Joint, Combined	सातत्यक	Continuum
		सादृश्य	Analogy
सयोजन	Combination	साधन	Resources
संरचना	Structure	सामान्य	Normal. General
संविदा	Contract		
सश्लेषण	Synthesis	सामूहिक	Collective
सस्था(निक)	Institution(al)	सारभूत	Essential
सटोरिया	Speculator	सार्थकता	Significance
सट्टा	Speculation	सिध्वन्दी	Establishment
सतत	Continuous	सीमा	Limit
सन्तुलन	Equilibrium	सीमान्त	Marginal, Limiting
सम-उत्पाद वक्र	Iso (Equal) Product Curve	सीमान्तान्तरिक	Intra-marginal
समएकघात	Linear homoge-neous	सुपुर्दगी	Delivery
		सुष्ठु(ता)	Good(ness)

सूचक	Index	स्थैतिक	Static
सृजन	Creation	स्पर्श-बिन्दु	Point of tangency/Contact
सौदा	Bargain		
सौदाकारी	Bargaining	स्पर्शरेखा	Tangent
सौष्ठव	Goodness	स्पर्शिता	Tangency
स्थल	Spot, Site	स्वतन्त्र	Independent
स्थानान्तरण	Transfer	स्वतन्त्र लघु एवक	Atomistic
स्थानापन्न	Substitute	स्वतो-व्याघात	Self-contradiction
स्थापना	Proposition		
स्थायित्व	Stability	स्वयंतथ्य	Axiom
स्थायी	Stable		
स्थिति	Location, Situation	हटना	Shift
		हानि	Loss
स्थिर	Constant, Fixed, Stationary	हिम्मतभरी	Heroic
		ह्रासमान	Diminishing, Decreasing

अनुक्रमणिका

(आ.=और आगे=*ff.* ; तलटीप के संदर्भ काले अंकों में)

अतिरिक्त क्षमता, 84 आ., 140 आ., 152 आ., **88/31**

अदूरदर्शिता, प्रतियोगियों की, 41, 43, 81-82, 140

अधिमान, अध्याय 4 (44 आ.), अध्याय 6 (95 आ.), परिशिष्ट 'छ' (231 आ.); **और भी देखिए** अपूर्ण ज्ञान, आवश्यकताओं का ।

अधिशेष, 16, 69, **11/8**, **18/19**, **265/49**

अनधिमान वक्र, 188, 208, 210 आ.

अनिर्धार्यता, कीमत की, **देखिए** कीमत की निर्धार्यता ।

अनुचित व्यापार, 226 आ.

अनुपात, कारकों का, उत्पादन में, 149, 188 आ., 201 आ., 208 आ.; विक्रयण में, 107 आ.; स्थिर, 204 आ., 252

अनुप्रस्थ लोच, **171/50**

अनेकरूपता, उत्पाद की, 172 आ., 241 आ.; **और भी देखिए** उत्पाद का विशिष्टीकरण ।

अन्वालोक लागत वक्र, 188 आ., 256

अपव्यय, प्रतियोगिता के, 88, 135-136, 140 आ , 151 आ., 230, **252/8**

अपार्थ, पैमाने के, 188, 201 आ.

अपूर्ण ज्ञान, आवश्यकताओं का, 57, 82, 96, 97, 122, 165 आ., 172 आ., 243, 259, **259/31**, **266/52**; भविष्य का, **96/2**, 154

अपूर्ण प्रतियोगिता, 3, 19, **203/22**; बनाम एकाधिकारिक प्रतियोगिता, अध्याय 9 (157 आ.), 248 आ., 263 आ., **266/54**

अल्पकाल और दीर्घकाल, **16/16**, 113-114, **189/5**, 255, 264, 272

अल्प संख्या, **देखिए** अल्पाधिकार ।

अल्पाधिकार, 5, अध्याय 3 (24 आ.), 179 आ , 268, 269, 271; उत्पाद विशिष्टीकरण के साथ, 80 आ.; और विक्रय लागत, 139 आ.; की उत्पत्ति, **5/13**, **24/1**, 241 आ., **262/36**, 263, 264 आ.

"अवक्रीत" कारक, 149, 150-151, **208/28**, **214/33**, 256

आन्तरिक किफायतें, 15 आ., 68-69, **109/4**, 265; **और भी देखिए** पैमाने की किफायतें ।

आश्रितता, परस्पर, द्वयधिकार में विक्रेताओं की, 25, 26 आ., 43; **और भी देखिए** परस्पर आश्रितता।

ईव्हान्स, जी. सी., 182 आ.

उत्पाद, चर के रूप में, 6, 26 आ., 37 आ., 57-58, 62 आ., 75आ., 118 आ., 137 आ, **157/2**, 160-161, 172, 173, 184 आ., **192/9**, **251/7**, 259-260
उत्पादन फलन, परिशिष्ट ख (188 आ.)
उत्पादन लागत और विक्रय लागत में भेद, **60/6**, अध्याय 6 (93 आ.), 141, 232 आ.
उत्पादन लागत वक्र, 15 आ., 59 आ, 89, 188 आ., 246 आ, 265, 269
उत्पादिता सिद्धान्त, वितरण का, **145/39**, अध्याय 8(146 आ.), 173 आ., 256
उदाहरणस्वरूप फर्म, 89-90, 141-142, 268
उद्यमकर्ता की विभाज्यता, **173** आ., 202
उद्योग, संकल्पना का मनमानापन, 164 आ., 168 आ, 171 आ, 258
उपभोक्ता का अतिरेक, **21/26**

एकक्रयण, **155/16**, **157/2**, **165/29**, 173, **189/2**
एकरूपता, उत्पाद की, 4, 92 आ., 125, 160, 161, **164/25**, **165/27**, 169, 170, 239 आ., 251, **और भी देखिए** उत्पाद का मानकीकरण।
एकसमानता कल्पना, 65 आ., 122 आ., 170, 259, 268, 269
एकसमानता, कीमतों की, 71, 224, 259
एकाधिकार, 3 आ., 9 आ., अध्याय 4(44 आ.), 90, अध्याय 9(157 आ.), **168/35**, 271 आ.; की परिभाषा, श्रीमती रॉबिन्सन की, **165/29**, 168 आ., 259 आ., क्षेत्रीय, 50, 221 आ.; बनाम प्रतियोगिता, अध्याय 1 (1 आ.), 11 आ., **39/30**, 165 आ., 242, 249 आ.; पूर्ण, 2, 19-20, 51 आ.; शुद्ध, 50, 51, 54, 168; संस्थानिक, 162, 171
एकाधिकारिक प्रतियोगिता, 5, 6, 54 आ.; और उत्पादिता सिद्धान्त, 149 आ.; की उत्पत्ति, परिशिष्ट 'झ' (248 आ.); पूर्ण प्रतियोगिता पर आक्षेप, 270 आ.; बनाम अपूर्ण प्रतियोगिता, xi अध्याय 9 (157 आ., विशेषत: 165 आ), **203/22**, 248 आ., 263 आ., **266/54**; बनाम शुद्ध प्रतियोगिता, अध्याय 1(1 आ.), अध्याय 4(44 आ.), 56आ., 69 आ.,

88, 91 आ., **115/10**, 142 आ., 147 आ., **162/19**, 206 आ., 220 आ., 243 आ., 249 आ., 258 आ.; मार्शल पर आक्षेप नहीं, 270 आ.
एमोरोसो, ऐल्., 182, 184

ऐटकिन्सन, डब्लू. डब्लू., **97/4**
ऐली, आर. टी., **21/26**, **46/1**, 47, 48, 52, **102/8**, 258
ऍजवर्थ, ऐफ. वाइ, 1, 2, 20, 29 आ., 34, 35, 36, **37/27**, **43/35**, 182, 184, 186-187, 241, **251/6**, 253, **265/47**
ऍल्फ्रॅथ, डब्लू. ऐच्., **46/1**

औसत आय, 150; का वक्र, 10, **11/8**, 13, 61, 157-158; **और भी देखिए** सीमान्त आय।
औसत लागत, 150; का वक्र, **11/8**, 17 आ., 61, 110-111, 157-158, 188 आ., 195, 203, 205-206; परिवर्ती, 189 आ.; स्थिर, 189 आ.; **और भी देखिए** सीमान्त लागत।

ऑयलर प्रमेय, 150 आ., 173 आ., 205 आ., 213 आ.

कलेस्की, ऐम्., **203/22**
कल्याण अर्थशास्त्र, 172 आ., 194, **208/28**, 252
कापीराइट, 45, 46, **77**, 90
कार्वर, टी. ऐन्., **107/3**
'कालिक' विशिष्टीकरण, 255
काल्डर, ऐन्, **154/14**, **157/1**, **159/12**, 161, 162 आ., 171 आ., 193, **195/15**, 202 आ, 232, **234/7**, **235/8**
काह्न, आर. ऐफ., **32/20**, **37/27**, **43/35**, **154/14**, **155/18**, 170, 174, **174/60**, **264/41**, **266/54**
किट्सन, ऐच्. डी., **97/4**
किफायतें, पैमाने की, 15 आ., 60, 108 आ., 135-136, 162, 163, 174, 188 आ., **235/8**, **266/54**
कीमत अगुआ, **39/31**, **86/29**
कीमत, चर के रूप में, 6, 28 आ., 59 आ., 116 आ., 133 आ., 179 आ., 249 आ., 260
कीमत प्रणाली, संग्रथित 1, 8

कीमत बनाए रखना, 86, **86/29**
कीमत भेद, **157/2**, 160, 236, 249 आ.
कीमत में कटौती, छिपी हुई, 86, 87
कीमत, विनिर्माता द्वारा नियत, 87, 88, 151-152
कीमतेतर प्रतियोगता, 269; **और भी देखिए** उत्पाद, चर के रूप में; विक्रय लागत।
कुल आय, 10-11, 129, 147, 271-272
कुल लागत, 18, 111 आ., 129, 212
कूर्नो, ए., 1, **4/11**, 26 आ., 29, 34, 35, **37/27**, 37-38, 41, **43/35**, 179 आ., 182-183, 239 आ., 253, 254, 262
केडी, जी. जे., **202/20**
केन्स, जे. ऐम्., 249
कैन्सं, जे. ई., **85/28**, 254
कैलीफोर्निया फ्रूट ग्रोअर्स एसोसिएशन, **103/9**
कोपलैंड, ऐम्. टी., **98/5**
क्लार्क, जे. बी., 3
क्लार्क, जे. एम., 2, **39/30**, **55/24**, **88/31**, 166, **203/24**, 254, 258

क्षेत्रीय एकाधिकार, 50, 221 आ.
क्षेत्रीय प्रतियोगिता, 83-84, 160 आ., 215 आ., 244 आ.
क्षेत्रीय विशष्टिीकरण, 222 आ., 244 आ., 255, 258

गणित, 215 आ., परिशिष्ट 'ज' (238 आ.), 271; और अविभाज्यता 194-195, 203; और उत्पादन फलन की समानता, 206, 212; और द्वयधिकार तथा अल्पाधिकार का सिद्धान्त, परिशिष्ट 'क (179 आ.)
गार्वर, ऐफ. बी., **46/1**, **155/17**, **189/3**

घटबढ़, **देखिए** विचलन, सन्तुलन से।

चैप्मैन, ऐस्. जे., 254

जनोपयोगी सेवाएं, 160
जावाद्स्की, डब्लू., 181
जॉन्सन, ए. ऐस, 47

ज्यूदन, ऐफ., **55/24**, **82/24**, **238/***, **241/4**

टिनबर्जन, जे., 187
टेलर, ऐफ. ऐम., **107/3**, 252
टॉम्सन, ऐच. सी., **226/1**
टॉसिग, ऐफ. डब्लू., 52, **86/29**, 166, 249 आ.
ट्रिफिन, आर., **156/1**

डिब्ली, जी. बी., **100/6**, **102/8**
डुश्काइंड, सी , **226/1**
डेव्हनपोर्ट, ऐच् जे., **102/8**, 254
डॉब, ऐम्. ऐच् , **51/15**, **55/24**, 257

थीसिस, डॉक्टर की, और पुस्तक में भेद, xi, परिशिष्ट 'झ' (248 आ.)

दक्षता, कारकों की, और विभाज्यता, 192 आ , 204
दीर्घावधि लागत वक्र, 15, **16/16**, **149/5**, 188 आ., 256
दोलायमान कीमतें, 2, 24, 29 आ , 43, 81, 150
द्वयधिकार, 1, 3, 5, 262, **264/41**; **और भी देखिए** अल्पाधिकार ।
द्विरुक्तिरूप, पूर्ति और मांग के संबंध में, 253; पैमाने की किफायतों के संबंध मे, 193 आ , 200, 210; "सामान्य" लाभ के संबंध में, 266

नाइट, ऐफ्. ऐच् , 2, **3/9**, 47, **55/24**, **102/8**, **107/3**, **155/17**, 159, 194, 201, **204/25**
निकॉल, ए जे., **43/35**
नियन्त्रण, सामाजिक, **172/53**, 173
निर्घर्ष, **3/8**, 3, 19 आ , 39-40, 42, 65, 257, 259
निर्धार्यता, कीमत की, 1, 2, 81-82; द्वयधिकार और अल्पाधिकार में, अध्याय 3 (24 आ.), परिशिष्ट 'क' (179 आ), 269; स्थानापन्न पण्यों की, 31
निर्धार्यता, विक्रयण व्यय की, 139 आ.
न्यूमैन, पी., 248, 249, 270

पण्य, 163 आ., 169 आ., 171 आ., **259/27**
परस्पर आश्रितता स्वीकृत, 37 आ., 43, 139-140, 241 आ., 251 आ., 271; **और भी देखिए** अल्पाधिकार ।

परिवर्ती लागत, 189 आ.; **और देखिए** लागत वक्र।
परिवहन लागत, 184 आ., 222, 249 आ.; उत्पादन की लागत है, विक्रयण की नही, 100, 101
परेटो, व्ही., **11/9**, 29, 32, **41/34**, 180 आ.
परोक्ष प्रभाव, कीमत पर, **देखिए** प्रत्यक्ष प्रभाव कीमत पर।
पिगु, ए. सी., xi, **34** आ., **43/35**, **103/10**, 151, **155/17**, 159, 166, 173, 249 आ., 261, 263, 264, **265/47**, 267
पूजी, 127, **203/22**; की विभाज्यता, 198 आ.
पूर्ण प्रतियोगिता, 163, **235/8**, 254, 267; बनाम शुद्ध प्रतियोगिता 3, 4, 19, **165/29**, 168 आ, 172, 254, 261
पूर्ति और माग, 8 आ.; का कीमत में घटबढ होने पर समीकरण न होना, 21; का शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत समीकरण, **11/8**, 13 आ., 253
पेटेन्ट, 44 आ., 90, 91, 226 आ., 258, 262
पैमाना, उत्पादन का, 15 आ, 61 आ, 70-71, 92 आ., 132आ., 143 आ., 188 आ., 203 आ., 218, 223 आ., 235 आ, 246 आ.
पैमाना रेखा, 212 आ.
प्रकार प्रतियोगिता, **देखिए** उत्पाद, चर के रूप मे।
प्रतिनिधि फर्म, 263, 265, 268
प्रतियोगिता, उत्पाद के सबध में, 6, 57-58, 62 आ., 75 आ., 118 आ, 137 आ., **157/2**, 160, 161, 172 173, 183 आ., **192/9**, **251/6**, 260; कीमत के संबध मे, 6, 27 आ., 59 आ, 66 आ, 116 आ, 133 आ, 179 आ., 250 आ., 261; के अपव्यय, 88, 135, 140 आ., 173, 230, क्षेत्रीय, 83, 160 आ., 215 आ., 244 आ.; शुद्ध क्षेत्रीय, 215 आ., 255, विक्रयण व्यय के सबध मे, 110 आ., 115 आ, 122 आ., 142 आ., 260
प्रतियोगिता बनाम एकाधिकार, अध्याय 1 (1 आ.), 11 आ, **39/30**, अध्याय 4 (44 आ.), 166 आ., 242, 250 आ.
प्रतियोगितामूलक लागत वक्र, 67 आ., 93, 103 आ, **133/25**, 143-144
प्रतियोगी आदर्श, 172 आ.,
प्रतिस्थापन, व्यापारियों द्वारा, 99
प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रभाव, कीमत पर, 25, 37 आ., 43, 73, 81 आ.; विक्रयण व्यय पर, 122-123, 140, 153
प्रवेश, 66 आ., 72 आ., 122 आ., 163 आ., 258 आ., 265 आ.

बर्ट्रैंड, जे., 29, 32, 241
बाजार, प्रत्येक विक्रेता के लिए पृथक्, 6, अध्याय 4 (44 आ.), 257 आ.
बाह्य किफायतें, 17-18, 67, 68, **109/4**, 265
बिन्दुपथ वक्र, 94, 237, 268
बुशानन, ऐन्. ऐस् , **237/11**
बेकर, डब्लू. ए., **86/29**
बोल्डिंग, के., **189/3**, **210/30**
बॉह्म बावर्क, ई. फॉन, 254
बॉले, ए. ऐल् , **27/6**, **37/29**, 182, 184, 262
ब्राएस्स्, पी , **43/35**
ब्रैड्ले, पी. डी., **156/19**
ब्रैथ्वैट, डी., **102/8**
ब्रैम्स, ऐच्., 237

भाटक, नगरीय, 91, 101-102, 218 आ., 221 आ., 227

मजदूरी, **देखिए** सीमान्त उत्पादिता ।
मर्फी, सी. डी., **86/29**
माग और पूर्ति, **देखिए** पूर्ति और मांग ।
माग का सृजन और अन्तरण, **देखिए** विज्ञापन।
माग वक्र, उत्पाद विशिष्टीकरण के अन्तर्गत, 52 आ., 56 आ., 149, 159 आ., 222 आ., 244 आ ; विक्रय लागत के साथ, 95 आ , 117 आ., 135 आ , 141 आ , DD' और dd', 72 आ.; शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत, 13 आ , **53/21**, 71, **259/28**; समूह का, कठिनाइयां, 141 आ.
मात्रा, एकाधिकार की, या "अपूर्ण प्रतियोगिता" की, **171/50**
मानकीकरण, उत्पाद का, 4, 5, 24, 28, **55/24**, 82, 103, 172, 174, **184/10**, 227 आ , 236
मार्शल, ए , **9/3**, **21/26**, **22/28**, 29, 32, **55/24**, **102/8**, **155/17**, 158, 166, **238/1**, 248, 249, 254, 256, 257, 263 आ., 269 आ.
मिल, जे. ऐस , **46/1**, **87/30**, 166, 254
मूर, ऐच् ऐल् , **37/28**
मैक्लप, ऐफ., **146/2**, **154/15**, **159/13**
मैक्लीओड, ए. ऐन , **188/1**
मोन्रो, ए. ई., **43/35**, **195/16**

मॉर्गेन्स्टर्न, ओ., **69/15**
'मौन' समझौता, **देखिए** समझौता, "मौन" ।

यंग, ए. ए., **21/26**, **37/29**, 47, 53, 248, 258, 261

रस्किन, 163
रिवाज, 87, 115, 152
रूस, सी. ऐफ., **182/8**
रेलवे दर सिद्धान्त, 160, 249 आ.
रोजर्स, ई. ऐस., 48, **226/1**, **228/8**
रॉबर्टसन, डी. ऐच्., **266/53**
रॉबिन्स, ऐल्., 257, **263/40**
रॉबिन्सन, ई. ए. जी., 203
रॉबिन्सन, जोन, **10/7**, **150/6**, 151, 154 आ., अध्याय 9, यत्र-तत्र, **202/21**, **203/24**, परिशिष्ट 'झ', यत्र-तत्र

लडी संबध, बाजारों का, 83, 84, 160 आ.
लर्नर, ए. पी., **171/50**, **173/55**, 194
लर्नर, जोजेफ, **205/26**
लागत वक्र, प्रतियोगितामूलक, 67 आ., 93, 103 आ., **133/25**, 143 आ.; एक उत्पादक का : उत्पादन लागत, 15आ., 59 आ., 76 आ., 89, 188 आ., 246 आ., 265, 269; विक्रय लागत, 106 आ., 231 आ., 259 आ.; सयुक्त लागत, 112 आ., **127/19**; अन्वालोप, 188 आ.; संयंत्र, 188 आ.
लाभ, 26-27, 89 आ., 142, 150 आ., 158, 159, 160, 164, 168, 171 आ., 174, 208, 220, 226 आ., 234; अतिरिक्त, 90 आ., 141 आ., 149 आ., 158 आ., 223 आ., 227 आ.; लागत वक्र में सम्मिलित न्यूनतम, 47, 60 आ., 65 आ., 78 आ., 92 आ., 115 आ., 120 आ., 126 आ., 139, 142, 171-172, 256; सामान्य, 266 आ.
लेदु, जी, **34/23**
लोच, संख्या के संबंध में, 160 आ., 238 आ.; स्थानापत्ति के संबंध में, अध्याय 4 (44 आ.); **और भी देखिए** विविधता; एकसमानता ।

वर्धमान जोखिम का सिद्धान्त, **203/22**
वर्धमान प्रतिफल, 17, 29, 158 आ., 263 आ., 271; विक्रय लागत से,

106 आ.; **और भी देखिए** ह्रासमान लागत।
वर्धमान लागत, 18, 28, 68, 69, **92/39, 159/10, 265/49**; विक्रयण में, 106 आ., 200 आ.
वाइमॅन, बी., **227/7**
वालेस, डी. ऐच., **173/54**
विक्रय लागत, 6, **57, 176/39, 157/2**, 160, 172, 173, 261, 268-269, **269/64**; और अतिरिक्त क्षमता, 140 आ.; और अल्पाधिकार, 139 आ.; और वितरण का उत्पादिता सिद्धान्त, 153 आ.; का वक्र, 106 आ., 231 आ., 259 आ, 269; का विश्लेषण, 95 आ, 106 आ.; की परिभाषा, अध्याय 6 (95 आ.), 141, परिशिष्ट 'छ' (231 आ); प्रतियोगिता के सबंध मे, 115 आ, 122 आ ; शुद्ध प्रतियोगिता के असंगत, 103 आ., 143 आ.
विक्रय लागत, चर के रूप में, 110 आ., 115 आ, 122 आ., 142 आ., 260
विक्रेताओं की पारस्परिक आश्रितता, अल्पाधिकार मे, 25, 37 आ, 81, 139-140
विक्सॅल, के., **27/6, 37/27, 85/28, 182/5**, 257
विचलन, सन्तुलन से, 19 आ., 150, 253, 255
विज्ञापन, 56, 57, अध्याय 7 (106 आ.), परिशिष्ट 'छ' (231 आ), 261; **और भी देखिए** विक्रय लागत ।
विज्ञापन मनोविज्ञान, 97, 98
वितरण, **145/39**, अध्याय 8 (146 आ.) 173 आ., 256
विभाज्यता, कारकों की, 162 आ., **190/7**, 192 आ., 209, **235/8**
विविधता, उत्पादकों की परिवेशी दशाओं की, 65, 88 आ., 122 आ., 141 आ., 170, **203/22**, 208, 259 आ.
विशिष्टीकरण, उत्पाद का, 4, 5, अध्याय 4 (44 आ.), अध्याय 5 (56 आ., अल्पाधिकार के साथ, 80 आ., **251/6**), अध्याय 9 (विशेषत: 160 आ., 165, 171 आ.), 232, 242 आ., 251, 258; "कालिक", 255; क्षेत्रीय, 222 आ., 244 आ., 255, 258
वुल्फ, ए. बी., **55/24**, 257
वैयक्तिक विक्रेता, शुद्ध प्रतियोगिता में, 12 आ.
वैयक्तिक सन्तुलन, 59 आ., 93, 94, 114 आ.
व्यवसाय अर्थशास्त्र, 6, 85 आ., 96 आ., 146 आ., 151 आ , 257 आ., 262
व्यापार-चिह्न, 44 आ., 62, 66, 76, 87, 90, 97, 257, 262; का अतिलंघन, 226 आ.

व्यापार संघ, 86
व्हाइट, ऐच , **165/29**, 168, **168/32**
व्हाइनर, जे., **69/15**, **192/8**
व्हेंब्लॅन, टी., 3, 47, 254
व्हॉग्न, ऐफ. ऐल., 46, **46/4**

श, ए. डब्लू , **102/8**
शार्फमैन, आइ. ऐल., 249
शिकागो स्कूल, **55/24**
शुद्ध एकाधिकार, 50, 51, 54, 168
शुद्ध क्षेत्रीय प्रतियोगिता, 215 आ , 255
शुद्ध प्रतियोगिता, 3 आ , अध्याय 2(8 आ), 206, 247; बनाम एकाधिकारिक प्रतियोगिता, अध्याय 1 (1 आ.), अध्याय 4 (44 आ.), 56 आ , 69 आ , 8९, 92 आ., **115/10**, 142 आ , 147 आ., **162/19**, 206 आ , 221 आ , 250 आ , 258 आ.; बनाम पूर्ण प्रतियोगिता, 3, 4, 19, **165/29**, 168 आ., 171-172, 254, 261
शुम्पीटर, जे , **37/29**, **91/37**
शोव्ह, जो. ऐफ. 159, **266/53**
शोषण, 149 आ , 168, 173 आ , **202/21**, **208/28**, 256
श्नीडर, ई., **69/15**, **182/5**
श्रम की विभाज्यता, परिशिष्ट 'ख' (188 आ.) ; **और भी देखिए** सीमान्त उत्पादिता, सीमान्त आय उत्पत्ति ।
श्लैजिंगर, के., **5/13**

सख्या, प्रतियोगियो की, 4 आ., **8/2**, 24 आ., 37 आ., 43, **43/35**, **56/2**, 66 आ., 71 आ., 82 आ , 103, 122 आ., 139 आ , 159, 160 आ., **165/29**, 174 आ., 216 आ., परिशिष्ट 'ज' (238 आ.), 254 आ , 260
सयुक्त लागत, 249 आ.
सयुक्त लागत वक्र, 114 आ , **127/19**
सविदा और पुनःसविदा, 20, 31, **32/17**, 38, 39, 43
सविदा, वक्र, **32/17**
सशय, 3, 96, आ., 202; अल्पाधिकार की दशाओं मे, 36, 40 आ., 43, 81 आ., 140, 183

सस्थानिक एकाधिकार, 162, 171
सट्टा, 22, 23, **40/33**
सन्तुलन, और पूर्ति तथा मांग के समीकरण मे भेद, 8 आ., 92 आ.; अतिरिक्त क्षमता के साथ, 84 आ.; एकाधिकार मे, 9, 10, 11, छोटे समूह मे, 80, 264, (**और भी देखिए** अल्पाधिकार); प्रतियोगी, 158 आ., 169; वैयक्तिक, 58 आ., 93, 94, 114 आ.; सट्टे से सबध, 22, 23; समूह, 64 आ., 122 आ., 163, 258 आ., **265/49**, 269; से विचलन, 19 आ., 150, 253, 255; **और भी देखिए** प्रतिनिधि फर्म।
सम-उत्पाद वक्र, **देखिए** अनधिमान वक्र।
समघातता, उत्पादन फलन की, 150, 174, 204 आ., 212 आ.
समझौते, **172/53**
समझौते "मौन", 25, 37, 86, 151, **187/12**
सममिति की कल्पना, 9, 71 आ., 92
समय-पश्चता, **39/30**, 40, 42, 43, **43/35**, 82, 254-255
समूह का लचीलापन, 82 आ., 122, 258, **और भी देखिए** विविधता।
समूह सन्तुलन, 64 आ., 122 आ., 163, 258 आ., **256/49**, 269
सामान्य लाभ, 265 आ.; **और भी देखिए** लाभ।
सामान्य सिद्धान्त, viii
सिलवर्मन, टी. ऐच., **112/6**
सीजर, ऐच आर., 46, 53
सीमान्त आय, 173, का वक्र, 10, **11/8**, 13, 18, 19, 61, 147, 157 आ., **190/6**, 206, 207, 246
सीमान्त आय उत्पत्ति, 147 आ., 154 आ., 173 आ., 206 आ., 214, 257; वनाम सीमान्त उत्पत्ति, 154-155
सीमान्त उत्पादिता सिद्धान्त, वितरण का, अध्याय 8 (146 आ.), 256
सीमान्त पदार्थ उत्पत्ति, 146 आ.
सीमान्त मूल्य उत्पत्ति, 146 आ., 256
सीमान्त लागत, **174/59**, का वक्र, **11/8**, 17 आ., 61, 157, 158, 188, 206, 246-247; विक्रयण की, 113
स्टिग्लर, जी जे, **119/3**, 193
स्टैकलबर्ग, ऐच्. फॉन्, **251/6**
स्थानापन्न, 46-47, 50, 52 आ., 58, 59, 89 आ., 111 आ., 114 आ., 123 आ., 142, 161, 164 आ., 167 आ., 218, 242 आ., 258, **259/29**; और अनिर्धार्य कीमत, 31
स्थायित्व कीमतों का, **देखिए** निर्धार्यता कीमतों की।

स्थिति, 44, 49 आ., **55/24**, 75, 101-102, 215 आ., 221 आ.; **और भी देखिए** क्षेत्रीय प्रतियोगिता।
स्थिर अनुपात, 204 आ., 209-210, 212-213
स्थिर लागत, 18, 28, 67 आ., **92/39**, 150, 193 आ., 206, 207, 208, 213-214, 265, 267
स्थिर व्यय रेखा, 211 आ.
स्थैतिक, और गत्यात्मक, 202, 269; दशा, 3
स्पर्शिता, 60 आ., 67 आ., 71 आ., 78-79, 90, 120-121, 132, 159 आ., 265 आ.
स्मिथ, एडम, 195
स्मिथ, ऐच्. **112/6**, **237/11**
स्राफा, पी., 3/8, **69/15**, 159, **171/46**, 257, 263 आ.
स्वतन्त्र लघु एकक प्रतियोगिता, **172/53**, 243

हट, डब्लू. ऐच., **159/9**, **264/41**
हान, ऐफ. ऐच., **188/1**
हान्सेन, ए. ऐच , **46/1**, **155/17**, **189/3**
हार्डविक, लॉर्ड, 228
हिक्स, जे. आर., **155/17**
हिगिन्स, बी. जे., **190/6**
हिच, सी. जे., **85/27**
हेग, डी. सी., 271
हैडर्सन, ऐच. डी., 253
हैरॉड, आर. ऐफ., **69/15**, **84/26**, **102/8**, 158, 159, 264 आ., **266/54**
होटेलिंग, ऐच., **3/8**, **57/4**, 184 आ., 215 आ., 255, 256
हॉल, आर. ऐल., **85/27**
ह्रासमान प्रतिफल, 202, 209, **213/32**, 265; विक्रय लागत से, 106 आ.; **और भी देखिए** वर्धमान लागत।
ह्रासमान लागत, 17, 18, 68, 69, **92/39**, 158 आ., 206, **265/49**; विक्रय लागत के सबंध में, 106 आ.

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय (शिक्षा-मंत्रालय) भारत सरकार से स्वीकृत

रैमज़े म्योर

ब्रिटेन का इतिहास

To meet special examination requirements it is available in the following forms :

(ई. पू. 55—1939)
(ई. पू. 55—1485)
(1485—1939)
(1688—1939)
(1783—1939)
(1485—1688)
(1815—1945)

Also available in **English** in the following forms :

Ramsay Muir

British History

(55 B C.—A.D. 1939) Complete
(1485—1688) Tudors & Stuarts
(55 B.C.—1485.)
(1485—1939)
(1688—1939)

Ramsay Muir

The Making of British India

Distributors :
Capital Book Depot
Nai Sarak, Delhi-6

Stockists :
UBS Publishers Distributors (P) Ltd.,
5, Ansari Road, Delhi-6